P-ISSN: 3117-5287
E-ISSN: 3117-5295

# SAHITYAYAN

# साहित्यायन

## ललितकला विशेषांक

अतिथि संपादक

**डॉ. अमिता राज गोयल**

अतिथि सह संपादक

**डॉ. विजय एम. ढोरे**

**डॉ. जगदीश प्रसाद मीणा**

साहित्यायन जर्नल (SJ) एक अंतरराष्ट्रीय, अर्द्धवार्षिक, सहकर्मी-समीक्षित, बहु-विषयक, ओपन-एक्सेस जर्नल।
(Peer Reviewed and Referred International Bilingual Multidisciplinary Research Journal)

विशेषांक
दिसम्बर 2025
अंक 01.1

**SAHITYAYAN**

Peer Reviewed and Referred International Bilingual
Multidisciplinary Research Journal.
P-ISSN: 3117-5287 E-ISSN: 3117-5295

P-ISSN: 3117-5287
E-ISSN: 3117-5295

**अतिथि संपादक**

**डॉ. अमिता राज गोयल**

(विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग, ललितकला संकाय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

**अतिथि सह संपादक**

**डॉ. विजय एम. ढोरे** (स्वतंत्र चित्रकार)

**डॉ. जगदीश प्रसाद मीणा** (सहायक आचार्य- चित्रकला विभाग, रा. वि. वि. जयपुर)

**प्रधान संपादक**

**डॉ. रमेश चन्द मीणा**

**संपादक**

**डॉ. मोनिका**

**ललितकला विशेषांक** : 01.1

**दिसम्बर** : 2025

**मूल्य** : ₹ 600

**प्रकाशन : अर्द्ध वार्षिक**

**स्वरूप : ऑनलाइन एवं हार्ड प्रिंट**

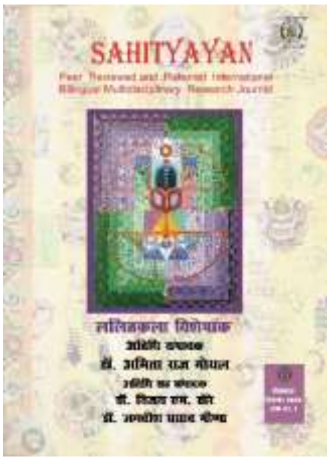


**मूल्य : ₹ 600** डाक खर्च अलग

**पृष्ठ : 284**

**प्रकाशक : मधुशाला प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड**

**भरतपुर, राजस्थान-321001**

**कॉपिराइट्स: साहित्यायन पत्रिका एवं सम्बंधित लेखक।**

साहित्यायन पत्रिका (SJ) : अंतरराष्ट्रीय, अर्द्धवार्षिक, सहकर्मी-समीक्षित, बहु-विषयक, ओपन-एक्सेस जर्नल।

**Language: Bilingual**

**Email : sahityanjournal@gmail.com**

**https://sahityayan.com/sa/index.php/sj**

(सम्पादन व संचालन अवैतनिक। समस्त विवादों के लिए न्यायिक क्षेत्र, जयपुर रहेगा।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के विचार सम्बन्धित लेखक के अपने हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

**प्रकाशन के प्रमुख क्षेत्र:**

- साहित्यिक अध्ययन और नवीन प्रवृत्तियाँ
- ललित कला और सौंदर्यशास्त्र
- तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद अध्ययन
- सामाजिक विज्ञान और सांस्कृतिक अध्ययन
- दर्शनशास्त्र और आलोचनात्मक अध्ययन
- दृश्य, प्रदर्शन एवं मीडिया कला
- डिजिटल ह्यूमैनिटीज़
- पर्यावरणीय ह्यूमैनिटीज़

साहित्यायन (SJ) : एक अंतरराष्ट्रीय, अर्द्धवार्षिक, सहकर्मी-समीक्षित, बहु-विषयक, ओपन-एक्सेस जर्नल है, जिसका प्रकाशन मधुशाला प्रकाशन प्रा. लि., भरतपुर द्वारा किया जाता है। यह जर्नल शोधार्थियों, शिक्षाविदों, अध्यापकों और रचनात्मक लेखकों के लिए एक सक्रिय मंच प्रदान करता है, जहाँ साहित्य, शिक्षा, मानविकी और सामाजिक विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों में मौलिक शोध-लेख, समीक्षाएँ, निबंध तथा रचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

साहित्यायन जर्नल नवोन्मेषी और अंतःविषयक शोध के माध्यम से ज्ञान-विस्तार और विद्वत् संवाद को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध है। यह जर्नल अंग्रेज़ी और हिंदी-दोनों भाषाओं में अकादमिक तथा रचनात्मक लेखन का स्वागत करता है, जिससे पारंपरिक विमर्श और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच सेतु स्थापित हो सके।

# पत्रिका आरम्भ – 2025

https://sahityayan.com/sa/index.php/sj


# Editorial Board

### Chief Editor:

Dr. Ramesh Chand Meena
Assistant Professor, Department of Drawing and Painting
Government Arts College, Kota
Qualifications: M.A., M.Phil., Ph.D., JRF, NET, SET
Mobile: 9816083135
Email: rmesh8672@gmail.com

### Editor:

Dr. Monika
Assistant Professor, Department of English
M.S.J. Government P.G. College, Bharatpur, Rajasthan
Qualifications: M.A., Ph.D., NET

### Editorial Board Members:

Prof. (Dr.) Anamika Biswas – Professor, Department of Art History

Prof. (Dr.) Vivek Kumar Mishra – Professor, Department of Hindi, Government Arts College, Kota - M.A., Ph.D., NET

Dr. Garima Jain – Associate Professor, Department of English, M.S.J. Government P.G. College, Bharatpur, Rajasthan - M.A., M.Phil., Ph.D., NET

Dr. Lahari Ram Meena – Assistant Professor, Department of Hindi, Banaras Hindu University, Varanasi - M.Phil., Ph.D.

Dr. Jagdish Prasad Meena – Assistant Professor, Department of Painting, Rajasthan University, Jaipur - M.A., NET, SET, Ph.D.

Dr. Shailesh Yadav – Assistant Professor, Department of Geography, Seth R.L. Saharia Government P.G. College, Kaladera, Jaipur (Rajasthan); Department of Higher Education, Rajasthan; Visiting Researcher, Technical University of Munich (TUM), Germany; Visiting Researcher, HafenCity University Hamburg, Germany

Dr. Anshu Verma – Assistant Professor, Department of Music, University of Rajasthan, Jaipur - M.A., Ph.D., NET

Dr. Brij Mohan Meena – Associate Professor, Department of Zoology, Government P.G. College, Bandikui (Dausa), Rajasthan

Dr. Purushottam Lal – Assistant Professor, Department of Botany, SRRM Government College, Jhunjhunu, Rajasthan - M.Sc., Ph.D., NET

Dr. Manoranjan Singh – Assistant Professor, Department of Public Administration, Government Arts College, Kota - M.A., Ph.D., NET, JRF

Review Board Members:

Dr. Shambhoo Ray – Senior Assistant Professor & H.O.D., Department of Sanskrit, B.N.M.V. College, Sahugarh, Madhepura, Bihar (B.N. Mandal University) - M.A. (Sanskrit), Ph.D., NET (UGC)

Dr. Ravindra Choudhary – Assistant Professor, Department of Geology, Government P.G. College, Jamwaramgarh, Jaipur

Dr. Jitesh Kumar Jangid – Assistant Professor, Department of Drawing and Painting, SRKP Government P.G. College, Kishangarh, Ajmer - M.A., Ph.D., NET

Dr. Anil Kumar Nagar Assistant Professor - Econimics, M.S.J. Government PG College, Bharatpur (Raj.), M. A., Ph.D., NET

Mrs. Yogesh Kumari Madhukar – Assistant Professor, Department of English, M.S.J. Government College, Bharatpur - M.A., NET

Mr. Gaurav Jain – Assistant Professor, Department of Political Science, Government College, Ramgarh, Alwar - M.A. (Political Science), M.A. (History), NET

Dr. Ram Kishor Saini – Senior Court Assistant, National Judicial Museum & Archive, Supreme Court of India

Mr. Chetan Audichya – Freelance Artist, Poet & Writer

Advisory Board Members:

Prof. (Dr.) Dev Vrat Sharma – Professor & Head, Department of English, SPNKS Government P.G. College, Dausa - M.A., Ph.D., NET

Prof. (Dr.) Kanihia Lal Meena – Principal, Government P.G. College, Rajgarh (Alwar); Dean, Social Science, RRBMU, Alwar; Department of Geography - M.A., SLET, NET, Ph.D.

Prof. (Dr.) Lakshmi Chand Agarwal – Professor, Department of Geography (Retd.), Government Arts College, Kota - M.Phil., Ph.D., NET

Prof. (Dr.) Mahesh Chandra – Professor, Department of Chemistry, Deshbandhu College, University of Delhi, Kalkaji, New Delhi – 110019 - M.Sc., Ph.D., NET-JRF

Mahamahopadhyaya Dr. Babulal Meena – Associate Professor, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi – 110007 - M.A. (Sanskrit), Gold Medalist, Ph.D. (B.H.U. Varanasi), Acharya

Dr. Asha Singh Rawat – Associate Professor, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi – 110007 - M.A. (Sanskrit), Gold Medalist, Ph.D., Acharya

Madeleine Filippi – Co-President, C-E-A (French Association of Art Curators); Vice-President, CIPAC (Federation of Contemporary Art Professionals); Member, Altaïr Think Tank Expert Council; Member, AICA France (Curator, Art Critic, Art Consultant)

Dr. Maja Ćirić – Independent curator & art critic (Serbia).

# सम्पादकीय

**अतिथि संपादक**
**डॉ. अमिता राज गोयल**
विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग,
ललित कला संकाय,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

समकालीन साहित्य और कला अपने–अपने माध्यमों में अभिव्यक्ति के स्वतंत्र रूप होते हुए भी एक–दूसरे रूप में जुडे हैं। दोनों ही सृजनात्मक अनुशासन समाज, समय और मनुष्य की संवेदनाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। वर्तमान समय में साहित्य और कला केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रहकर सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक सरोकारों को अभिव्यक्त करने के सशक्त माध्यम बन गए हैं।

समकालीन साहित्य में जैंसे कथा, कविता, नाटक और आलोचना के माध्यम से मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों, संघर्षों, अस्मिता, स्त्री–विमर्श, दलित चेतना, पर्यावरण और वैश्वीकरण जैसे मुद्दों को स्वर मिलता है, उसी प्रकार सममालीन कला भी रंग, रेखा, रूप प्रतीक और संरचना के माध्यम से इन्हीं प्रश्नों को दृश्य भाषा में प्रस्तुत करती है। कई बार साहित्यिक विचार और कथ्य कला को प्रेरित करते हैं, तो कई अवसरों पर दृश्य कला साहित्य का नई दृष्टि और संवेदना प्रदान करती है।

आज के समय में अंतरविषयकता (Interdisciplinarity) ने साहित्य और कला के संबंध को औश्र अधिक सुदृढ़ किया है। कलाकार और लेखक दोनों ही पारंपरिक सीमाओं को तोडते हुए नए माध्यमों, शैलियों और तकनीकों का प्रयोग कर रहे हैं। इंस्टॉलेशन, परफोर्मेंस आर्ट, वीडियो आर्ट और डिजिटल माध्यमों में साहित्यिक पाठ, कविता और कथ्य का समावेश इस अंतर्संबंध को और व्यापक बनाता है।

समकालीन साहित्य और कला का यह संवाद समाज को देखने और समझने की नई दृष्टि देता है। यह अंतर्संबंध न केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति को समृद्ध करता है, बल्कि बौद्धिक विमर्श और सांस्कृ तिक चेतना को भी सशक्त करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समकालीन साहित्य और कला एक–दूसरे के पूरक हैं और मिलकर समय की जटिलताओं को अधिक प्रभावशाली एवं संवेदनशील रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इस अंक के माध्यम से हमारा उद्देश्य यह समझना है कि कैसे साहित्य की गहराई और कला की दृ श्यता मिलकर एक ऐसी सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करती हैं, जो मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों और बाहरी संघर्षों को पूर्णता में व्यक्त करने में सक्षम है। हमें विश्वास है कि साहित्य और कला का यह जुगलबंदी भरा संवाद पाठकों को समाज को देखने की एक नई और समावेशी दृष्टि प्रदान करेगा।

**धन्यवाद**

# CONTENTS
# अनुक्रमणिका


| क्र. सं. | शोध-पत्र / शोधार्थी | पृ. सं. |
|---|---|---|
| 1. | समकालीन साहित्य एवं कला की उपजीव्यता / डॉ. अचल अरविंद | 9-13 |
| 2. | कविताओं में चित्रकला के सूत्र एवं सन्देश / अनामिका शाक्य, प्रो. पम्पा गौतम | 14-16 |
| 3. | राजपूत लघु चित्रशैली में साहित्य की भूमिका / कुमारी अर्चना | 17-20 |
| 4. | कला, साहित्य और क़ानून का द्वंद्व : डिजिटल मंचों पर अभिव्यक्ति की आज़ादी और समरजीत बसु की संवैधानिक विरासत / भारती रानी, डॉ. उज्ज्वल कडोदे | 21-28 |
| 5. | बाल कला में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ / चानण मल | 29-33 |
| 6. | समकालीन साहित्य एवं कला में अन्तः सम्बन्ध / दिनेश कुमार मौर्य, मीना कुमारी | 34-37 |
| 7. | समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत और हिंदी कविता का अंतर्संबंध / कुमार दिव्यांशु शेखर | 38-43 |
| 8. | समकालीन साहित्य और कला पर राजनैतिक प्रभाव / जितेन्द्र जांगिड़ | 44-47 |
| 9. | किशनगढ़ शैली और समकालीन कविता में बिंब एवं रूप-संरचना का तुलनात्मक अध्ययन / हेमन्त धवल, डॉ. जगदीश प्रसाद मीणा | 48-55 |
| 10. | भारतीय डाक टिकटों में कला और साहित्यिक प्रतीकों का अंतर्संबंधः राजा रवि वर्मा के चित्रों के विशेष संदर्भ में / हन्नी चौहान | 56-59 |
| 11. | लोक जीवन से संबंधित कला और साहित्य का परस्पर संबंध / डॉ. मधु पाराशर | 60-64 |
| 12. | भारतीय ज्ञान परंपरा से समकालीनता का संबंध: चित्रकला में परंपरागत चित्रण, काव्य और चित्रकारों का योगदान / महेंद्र प्रजापत | 65-71 |
| 13. | पर्यावरणीय संस्थापन कला व कलाकार मुकेश कुमार शर्माः एक अध्ययन / राजेन्द्र प्रसाद मीना, प्रो॰ दीपक भारद्वाज | 72-78 |
| 14. | साहित्य से प्रभावित क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कला / मिन्टू भारद्वाज | 79-84 |
| 15. | जनजातीय अंचल की सांस्कृतिक धरोहर मांडना: पारंपरिक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य / मुखराज मीणा, डॉ. सविता वर्मा | 85-89 |
| 16. | राजस्थान की लोककला में कथानक चित्रण एवं सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा का अन्तर्सम्बन्ध / पिंकी सैनी, डॉ. मनीषा चौबीसा | 90-94 |
| 17. | समकालीन कलाकार, साहित्य और कलाओं का संबंध / विजय पालदित्य जांगिड़ | 95-97 |
| 18. | डिजिटल एनिमेशन और साहित्य में दृश्य तत्व की अंतर्क्रियाः अभिव्यक्ति और अर्थ-निर्माण के नए आयाम / ज़ाकिर ख़ान, डॉ. लोकेश जैन | 98-104 |
| 19. | भारतीय संविधान में कला और साहित्य / अमित वर्मा | 105-107 |
| 20. | शिक्षा में चित्रकला का महत्व / सन्त राम, मंगलदीप | 108-115 |
| 21. | लघुचित्र कला की साहित्यिक परंपरा में समकालीन आयाम: वीरेन्द्र बन्नू के चित्रांकन | 116-122 |

| | | |
|---|---|---|
| | का विश्लेषण / शेरिल गुप्ता, प्रो. आई. यू. ख़ान | |
| 22. | मेवाड़ की काष्ठ कला एवं साहित्य का अंतर्सम्बन्ध / डॉ. बसन्त लाल बामनिया | 123-129 |
| 23. | समकालीन कला और साहित्य के अंतर्बोध का चिंतन / सिकंदर सुथार | 130-133 |
| 24. | राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोक संगीत और साहित्य: एक सांस्कृतिक अध्ययन / आदित्य तिवाडी, डॉ. नीलम सैन | 134-139 |
| 25. | कला में साहित्य और गोदना की यात्रा: गोदना कला में प्रयुक्त प्रतीकों का लोक साहित्य, कहावतों और मुहावरों में स्थानांतरण और उनके सांस्कृतिक निहिताथ/ डॉ. महेश सिंह, भावना मिश्रा | 140-145 |
| 26. | वैदिककालीन संगीत में वाद्यों का इतिहास / हर्षित वैयर, भावना मीणा | 146-148 |
| 27. | कला समाज एवं स्थानीय कथानक अंतर्संबंध / डॉ. अनिल सैन | 149-151 |
| 28. | समकालीन कला मे निहित दर्शन तथा सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन / गीतांजलि वर्मा | 152-157 |
| 29. | समकालीन भारतीय चित्रकला में उत्तर आधुनिक प्रयोग: कला की नई भाषा की खोज / हेमंता मीणा | 158-162 |
| 30. | गीताप्रेस के आलोक में ग्रंथचित्रण की अजस्र धारा/ पूनम कुशवाहा, डॉ. सचिन सैनी | 163-169 |
| 31. | भारतीय कला-साहित्य का दार्शनिक आधार: सौन्दर्य और अध्यात्म की अंतर्धारा / राहुल ऊषाहरा, डॉ. राजेंद्र प्रसाद | 170-176 |
| 32. | समकालीन भारतीय चित्रकला में **उत्तर** वैदिक युग के साहित्यिक कथानकों का व्यक्ति-चित्रण / आशा लालवानी | 177-182 |
| 33. | समकालीन साहित्य और कला का अंतर्संबंध / डॉ. अपर्णा अनिल, संजय कुमार | 183-185 |
| 34. | महाराजा सूरजमल का कला संरक्षण: लोहागढ़ के महलों में जाट शौर्य, बृज भक्ति और संस्कृति का समन्वय / रिचा शर्मा, डॉ. गिरिराज शर्मा | 186-190 |
| 35. | भारतीय अमूर्त चित्रकला और कविताओं का संवाद / नीतू सिंह चौधरी | 191-194 |
| 36. | परंपरा से आधुनिकता तक राम लीला की पृष्ठभूमि के माध्यम से लोक नाटक की यात्रा: सौंदर्यात्मक विश्लेषण / श्री रवि कुमार | 195-199 |
| 37. | साहित्य एवं कलाभिव्यक्ति में दार्शनिक अवधारणा / काजल महावर | 200-205 |
| 38. | खजुराहो और मोढेरा की कामुक मूर्तियाँ: समकालीन साहित्य और कला अंतर्संबंध का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य / सृष्टि वर्मा | 206-209 |
| 39. | शेखावाटी के भित्ति चित्रों में स्थानीय कथाएं / प्रो. सोनू द्विवेदी (विद्या भूषण) / भाष्कर पांडेय | 210-214 |
| 40. | राजस्थान की चित्रकला पर स्थानीय लोक कथा साहित्य का प्रभाव / डॉ. बाबूलाल चौधरी | 215-222 |
| 41. | राजस्थान की लोककला एंव लोकसाहित्य - लोकजीवन की अभिव्यक्ति / डॉ. दीपिका माली | 223-226 |
| 42. | अतियथार्थवाद से प्रभावित गणेश पाइन की कला मे साहित्य का योगदान / डॉ. रीतिका गर्ग/ दिव्या सुथार | 227-233 |
| 43. | लोक जीवन से संबंधित कला और साहित्य का परस्पर संबंध/ दीपिका राठौड़ | 234-238 |

| | | |
|---|---|---|
| 44. | कला और साहित्य का संरक्षण: भारतीय संविधान की भूमिका / डॉ.स्वाति आढ़ा | 239-243 |
| 45. | कला, समाज एवं स्थानीय कथानक अंतर्संबंध की विवेचना / डॉ. अनंता शांडिल्य | 244-247 |
| 46. | आधुनिक युग में कलाकारों और साहित्यकारों के बीच सहयोग: रचनात्मक साझेदारी का विश्लेषण / डॉ.रानी शर्मा | 248-249 |
| 47. | डॉ. उषा किरण के सृजन में कला और साहित्य की अंतर्धारा / डॉ. पूनम लता सिंह | 250-259 |
| 48. | समकालीन साहित्य और कला में सामाजिक जीवन: नारीवादी दृष्टि के संदर्भ में / कोमल उज्ज्वल | 260-263 |
| 49. | समकालीन साहित्य और कला में वैदिक युग / नंदिनी खण्डेलवाल | 264-270 |
| 50. | कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों का चित्रांकन/ रवि प्रसाद कोली, डॉ. जगदीश प्रसाद मीणा | 271-277 |
| | **पुस्तक समीक्षा** | |
| | **पुस्तक लोकार्पण** | |
| | Authour Guidelines | |

1

# समकालीन साहित्य एवं कला की उपजीव्यता

डॉ. अचल अरविन्द
सहायक आचार्य
माँ भारती पी. जी. कॉलेज, कोटा
achal.arvind@gmail.com

**सारांश** :– समकालीन भारतीय साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। भारतीय मनीषा की संरचनात्मक भावना ने संस्कृति के उषाकाल में जिन सुकुमार कल्पना का अंकन किया था, ऋग्वेद से लेकर वर्तमान युग तक उन कल्पनाओं ने एक ऐसे व्यापक साहित्य की सृष्टि कर डाली जिसकी तुलना विश्व में अन्य कहीं नहीं है। समय के दीर्घ विस्तार, भाव की समृद्धता, भाषा के शब्दगत एवं अर्थगत सौंदर्य तथा परिष्कृत कल्पनाओं की दृष्टि से समकालीन भारतीय साहित्य वह कला का संबंध अप्रतिम है। समकालीन भारतीय साहित्य में काव्य तथा कलाओं को एक ही धरातल पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की गई। ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध है जहाँ साहित्य और कलाओं को साथ–साथ स्मरण किया गया। भारतीय कलाकारों की दृष्टि साहित्यकारों की ही भांति सदैव आध्यात्मिक रही है। इसी से उन्होंने बाह्य की तुलना में आंतरिक सौंदर्य का प्रस्फुटन उत्तम माना है। समकालीन साहित्य के अध्ययन में साहित्यिक, ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और सांस्कृतिक बिंदुओं की व्याख्या की जाती है, तथा समकालीन भारतीय कला उत्तर–आधुनिक कला शैलियों के साथ–साथ पारम्परिक तकनीकों को भी शामिल करती है, जो सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत अनुभवों को चित्रित करती है। समकालीन कलाएँ और साहित्य के पारस्परिक संबंध से सामाजिक बदलाव, व्यक्तिगत अनुभव और बदलते परिदृश्य को प्रस्तुत किया जाता है तथा दोनों पर ही वैश्विक कलावृत्तियों और साहित्य उपादानों के रूझानों का प्रभाव पड़ता है जिससे स्वदेशी कला और साहित्य की पहचान वैश्विक स्तर पर होती हैं क्योंकि भारतीय कला चिंतन की यह विशेषता रही है कि उसमें रूपात्मक तत्व से भावनात्मक तत्व को सदा प्रदानता दी गयी है। किसी भी कला और साहित्य की विशेषता और सफलता व्यक्तिगत आनंद की समाजगत अनुभूति करा देने में है, जो भारतीय कला व साहित्य में इन दोनों उत्तरदायित्वों को संभाला है। साहित्य अपनी भाषा और शैलियों से दृश्यों को रचता है। वहीं कला विभिन्न माध्यमों से विचारों और भावनाओं को व्यक्त करती है। दोनों ही परंपराओं आधुनिकता और व्यक्तिगत रचनात्मकता को एक पिरोकर भारतीय कलात्मक प्रदर्शन को समृद्ध कर रहे हैं। दोनों ही कलाएं समाज के रीति–रिवाज सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों को चित्रण के माध्यम से प्रस्तुत करती है। समकालीन कलाओं साहित्य की तरह सामाजिक विसंगतियों को अपनी कृतियों में उजागर करते हैं। भारतीय साहित्य और कलाएं दोनों धर्म–दर्शन और आध्यात्मिकता से गहराई से प्रभावित रहे हैं। भारतीय कला में जो लोक कलाएं सदियों से अपनी परंपराओं और विश्वासों को सहेजती आयी है, उन्हें समकालीन कलाकारों ने नवीन तकनीकों और प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से नए रूप में डालने का कार्य किया है। कला और साहित्य के व्यापक क्षेत्र को देखते हुए इन्हें अवधारणात्मक स्तर पर विश्लेषित करना जरूरी है। संक्षेप में समकालीन भारतीय साहित्य और कला एक–दूसरे के साथ मिलकर जीवंत संवाद स्थापित करते हैं। जो समाज और संस्कृति की जटिलताओं को समझने और अभिव्यक्त करने के लिए निरंतर प्रयास है और यहीं समकालीन साहित्य जगत में कला की उपजीव्यता है।

**बीज शब्द** :– उपजीव्यता, अन्यत्र, प्रस्फुटन, प्रज्वलित, विचारोत्तेजक, अन्तर्वाह्य।

**मुख्य आलेख** :– कला साहित्य को आधार प्रदान करती है और साहित्य कला के विकास का आधार बनता है। भारतीय कला भारतवर्ष के विचार, धर्म, दर्शन एवं तत्वज्ञान का दर्पण है। यहाँ की परंपरा में जीवन के किसी भी क्षेत्र में ''असुन्दर'' को बर्दाश्त नहीं किया गया है। यहाँ का कण–कण, छन्द राग और रस से भरा हुआ है। तत्ववाद, कल्पनात्मक विस्तार और ऐतिहासिक परंपरा का प्रच्छन्न प्राधान्य भारतीय कला में निहित है। भारतीय चिन्तक कलाकार एवं साहित्यकार तो सर्वत्र ही ब्रह्मा का ही रूप अपनी रचना में व्यक्त देखता है। भारतीय संस्कृति में साहित्य की आत्मा में सौंदर्य का निवास है वहीं सौंदर्य

छिटककर कलाओं के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कलायें ही साहित्य का अलंकार है। जिस प्रकार शरीर का संबंध मन से है, कला का वही संबंध साहित्य से है। कला और साहित्य लंबे समय से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और दोनों एक दूसरे को प्रभावित और प्रेरित करते हैं। इन दो रचनात्मक विषयों के बीच के अन्र्तसंबंध ने पूरे इतिहास में अनगिनत उत्कृष्ट कलाकृतियों को जन्म दिया है। प्राचीन गुफा चित्रों से लेकर आधुनिक उपन्यासों तक, कल्पना और प्रेरणा की शक्ति हर ब्रशस्ट्रोक और लिखित शब्द में देखी जा सकती है। कला और साहित्य दोनों ही रचनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में है जो व्यक्तियों को अपने विचारों व भावनाओं को संप्रेषित करने की अनुमति देते हैं। जहाँ कला मुख्य रूप से रंग, आकार और बनावट जैसे दृश्य तत्वों का उपयोग करती है, वहीं साहित्य अपने संदेश को व्यक्त करने के लिए लिखित भाषा पर निर्भर रहता है, इन अंतरों के बावजूद, कला और साहित्य दोनों का एक ही साझा लक्ष्य है– दर्शक या पाठक से प्रतिक्रिया प्राप्त करना। कलाकार अक्सर साहित्य से प्रेरणा लेते हैं कहानियों, कविताओं या यहाँ तक कि व्यक्तिगत शब्दों को अपनी रचनाओं के लिए शुरुआती बिंदु के रूप में उपयोग करते हैं। बदले में लेखक दृश्य कला से प्रभावित होते हैं और अपने आख्यानों में चित्रों में या मूर्तियों के वर्णन को शामिल करते हैं। दोनों माध्यमों के बीच यह परस्पर क्रिया दर्शकों के समग्र अनुभव को बेहतर बनाती है, जिससे वे कई स्तरों पर कलाकृति से जुड़े व जाते हैं। कला में कल्पना को प्रेरित और प्रज्वलित करने की शक्ति होती है। जब हम किसी पेंटिंग या मूर्तिकला को देखते हैं, तो हम एक अलग ही दुनिया में पहुँच जाते हैं, एक ऐसी दुनिया जो कलाकार की कल्पना द्वारा रची गई होती है। कलाकारों ने अक्सर अपने साहित्यिक कार्यों के लिए दृश्य कला के माध्यम से प्रेरणा पाई है। दृश्य कला, लेखकों के लिए कल्पना और प्रतीकात्मकता का एक समृद्ध स्रोत प्रदान करती है, जिससे वे अपने पात्रों और परिवेशों में जान फूंक देते हैं। लेखक अक्सर अपनी कहानियों में दृश्य कला का उपयोग कथा को समृद्ध बनाने के साधन के रूप में करते हैं। चित्रों या मूर्तियों के विवरण कथानक में गहराई और अर्थ जोड़ सकते हैं। कला और साहित्य के परस्पर प्रभाव का समग्र रूप से समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। दोनों माध्यमों में सांस्कृतिक मानदंडों को आकार देने, सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने और सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित करने की शक्ति होती है। कल सक्रियता का एक शक्तिशाली साधन हो सकती है जिससे कलाकार विरोध या एकजुटता का संदेश दे सकते हैं। कला दृश्य, संकेत, बिम्ब और प्रत्येक प्रतीकात्मकता प्रदान करके साहित्य को प्रेरित करती है। जिसे लेखक अपनी कहानियों में शामिल कर प्रज्वलित करता है। वहीं साहित्य कहानियों, कविताओं या विवरणों के माध्यम से कला को प्रभावित करता है। जिनसे कलाकार प्रेरणा पाकर कार्य करते रहते हैं। साहित्यकार अक्सर जीवंत बिम्ब रचकर भावनाओं को जगाने के लिए शब्दों का उपयोग करते हैं जिन्हें कलाकार दृश्य रूप में रूपांतरित कर देते हैं। हालांकि कला और साहित्य की स्वतंत्र रूप से सराहना की जा सकती है लेकिन उनका परस्पर संबंध समग्र अनुभव को बढ़ावा है। कला के दृश्य तत्वों को साहित्य की कथात्मक शक्ति के साथ मिलाने से गहन और विचारोत्तेजक अनुभव का निर्माण होता है।

**भारतीय कला में साहित्य की भूमिका :–** भारतीय कला में साहित्य की भूमिका बहुआयामी है यह न केवल कला को दिशा और प्रेरणा देता है बल्कि सामाजिक मूल्यों, राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक विरासत को आकार देने में भी महत्वपूर्ण है। साहित्य विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर मनोरंजन, शिक्षा और सामाजिक सुधार के कार्य करता है। भक्तिकाल जैसे युगों में साहित्य में धार्मिक और सामाजिक एकता स्थापित की, जबकि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इसने राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने और एकता को बढ़ावा देने का कार्य किया। भारतीय साहित्य में कलाओं के अंतर्गत चित्रकला का सर्वोत्तम स्थान रहा है। चित्रलक्षण में वर्णित कथा के आधार पर ब्रह्मपुत्र का चित्र ही आदि चित्र माना जाता है। किंतु एक अन्य धारणा के अनुसार विष्णु धर्मोत्तर पुराण की कथा में महर्षि नारायण द्वारा विरचित उर्वशी के चित्र सृष्टि का प्रथम चित्र माना जाता है। चित्रकार अपने अंतःकरण में छिपी गुप्त अदम्य कामना अथवा अभिव्यक्ति को व्यक्त करने के लिए चित्र का निर्माण करता है। अमरकोश के अनुसार चित्र शब्द गीत व्युत्पति ''चीयते इति चित्रम'' से मानी गयी है। अर्थात् चित्रकार बाह्य जगत से रूप रस गंध और शब्द का तथा अंतर्जगत से सुख–दुःख, हर्ष–विषाद एवं भक्तिभाव के स्वरों का चयन करता है। भारतीय चित्रकला का स्वरूप मूलतः आध्यात्मपरक है, इस परिप्रेक्ष्य में यह बात भी विचारणीय है कि भारतीय चित्रकला का चरम लक्ष्य काव्य कला की ही तरह रसोपलब्धि है। चित्रकला का सर्वस्व तो वास्तव में भाव तत्व है जिसके द्वारा चित्र का स्वरूप उभरता अथवा बिगड़ा है। काव्यकला में भी यह भाव काव्य को

निखारता अथवा बिगाड़ता है। इस तरह हम देखते हैं कि दोनों में तात्विक सामीप्य तो है ही, इसके अतिरिक्त दर्शकों, पाठकों एवं श्रोताओं को अभिभूत करने की समान सामर्थ्य विद्यमान है। कला के स्वरूप की एक विशेषता यह भी है कि उसका प्रभाव विश्वव्यापी है और विश्व के किसी भी कोने से आए दर्शक को प्रभावित करने में समर्थ है। यह स्थिति साहित्य रूपी काव्य कला की भी है। कालिदास के सुरम्य नाटक अभिज्ञान शकुंतलम ने विश्व के काव्य–मनीषियों को प्रभावित किया है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि साहित्य रूपी काव्य का प्रभाव भी कला के सादृश्य ही विश्वव्यापी होता है। वर्तमान परिदृश्य में आधुनिक चित्रकला का विकास भी बहुत कुछ आधुनिक साहित्य के सामानान्तर हुआ है। चित्रकला की भाषा तो रंग और रेखाओं की होती है। प्रारंभ से ही चितेरे मनोनुकूल अभिव्यक्ति के लिए रंग और रेखाओं की क्षमताओं की खोज करते रहे हैं। साहित्य और चित्रकला की आधुनिक प्रवृत्तियों की समानता और विकास को यदि प्रारंभ से देखें तो पता चलता है कि आधुनिक युग का प्रारंभ तो रीतिकाल के बाद से ही प्रारंभ हो गया था। साहित्यकारों और चितेरों में नवीनता के प्रति तीव्र आकर्षण जागृत हो चुका था, दोनों ही अब काव्य और कलाओं को जगत और जीवन के व्यापक कैनवास पर साकार करना चाहते थे। काव्य और चित्रकला की समानान्तरता के संदर्भ में यदि चित्रकला की भक्तिकालीन स्थिति को देखा जाए तो पता चलेगा कि प्राचीन चित्रकला की शास्त्रीयता प्राचीन संस्कृत काव्य अधिकांश पोथी चित्रण में ही मिलती है। अतः साहित्य के साथ कला का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ। भारतीय काव्य और चित्रकला के संदर्भ में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारत में पौराणिक आख्यानों में उनके जीवन्त चित्रण के उल्लेख मिलते हैं। आधुनिक काल तक आते–आते काव्य और कला में देशज सीमाओं का अंतर बहुत कुछ हद तक समाप्त हो जाता है। साहित्य और काव्य की चित्रकला के प्रति उदार दृष्टि ने आधुनिक युग में चित्रण को विशेष रूप से अपने स्तर तक लाने का प्रयास किया। वहीं भारत में भी साहित्यिक मनीषियों ने अपनी विशेष रुचि चित्रकला में दिखाई और साहित्य में काव्य के साथ अन्य ललित कलाओं के अंर्तसंबंधों की चर्चा भी विधिवत हुई है। समकालीन कलाओं की मिली–जुली कार्यशालाओं का आयोजन भी निरंतर किया जा रहा है। साथ ही साथ कलाओं की साहित्यिक समीक्षाएँ भी की जा रही है। आज समकालीन युग में लोग कविता को भी एक चित्र की भाँति देखना अधिक पसंद कर रहे हैं इसीलिए काव्य की अनेक शैलियों के रूप में छोटे–छोटे लघु चित्रों का प्रचलन अधिक होता दिखाई दिया और हो सकता है कि आने वाले युगों में ललित कलाओं के तुलनात्मक अध्ययन को साहित्यिक मान्यता भी मिल जाये। चित्रकला और काव्य दोनों ही भावाभिव्यक्ति के सबल तथा प्रभावशील रूप है। मनुष्य ने इन दोनों कलाओं के माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति को तीव्रता के साथ अभिव्यक्त किया है। चित्रकला तथा काव्यकला का सामीप्य पर इस बात में निहित है कि कलाओं में तात्विक भिन्नता का अभाव है तथा रसोपलब्धि की एवं आनंद की प्राप्ति निरंतर साम्य है।

**कला और साहित्य का मूल्यांकन :–** भारतीय कला का विस्तार ऋग्वेद से लेकर आज तक यानि सूचना प्रौद्योगिकी के युग तक वैसे ही फैल रहा है, जैसे आरंभ के दिनों में कला ने उन्नति की थी। आज 21वीं शताब्दी तक साहित्य और कला का घनिष्ठ संबंध रहा है। भारतीय मनीषियों ने कला अनुभूतियों को नौ रसों में विभाजित करके मानव मन का इतना सुंदर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है जितना विश्व के किसी भाषा में उपलब्ध नहीं है। अनुभूतियों का सारा मनोविज्ञान इन्हीं नौ रसों में समाया हुआ है जिनकी सुंदर और पूर्ण अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से ही संभव है। चित्रकला आदिकाल से ही काव्य के बहुत निकट रही है, इसलिए उसकी शक्ति का निरंतर विकास हुआ है। इन दोनों कलाओं के आदि संबंधों के संदर्भ में यदि प्राचीन चित्राक्षरों को देखा जाए तो इनके संबंध और स्पष्ट हो जाते हैं क्योंकि काव्य रचना जिन वर्णों या अक्षरों में अंकित होती है, उन वर्णों या अक्षरों का प्रारंभ इन चित्राक्षरों से ही हुआ है। वर्णों से काव्य की चित्रोपम मूर्तता प्रमाणित होती है। वर्ण तो एक प्रकार का चित्र ही है इसीलिए चित्र के समान वर्ण भी कुछ मूर्त होता है। साहित्य और चित्रकलाओं में संगति का तात्विक महत्व विशेष है, काव्य में संगीत ध्वनियों और वर्णों के उच्चारण सौंदर्य से निर्मित होती है और चित्रकला में वही संगति विभिन्न आकृतियों या रंग, रेखाओं के अनुपात से बनती है। चित्रकला के छह अंगों में से तीन अंकों काव्यकला में स्पष्ट रूप से विद्यमान है। वात्स्यानकृत–कामसूत्र के प्रथम अधिकरण के तृतीय अध्याय की टीका में यशोधर पंडित ने चित्रकला के इन षडांगों पर विचार किया है। चित्रकला के षडांगों पर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपना मत व्यक्त किया है कि चित्र तब बनता है जब चित्रकार की अंतर्हित उदयकामना या अभिव्यक्ति वेदना छन्द के नियमों से अपने को बाँधकर अंतर्वाह्य दो प्रकार से अपने को रसोदय में

परिणत करती है। अननी बाबू ने छंद को ललित कलाओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग माना है। भारतीय काव्य में राधा और कृष्ण की प्रेम कथाओं ने चित्रकला को विशेष रूप से प्रभावित किया है, चितेरों के राधा–कृष्ण ने कवियों को खूब प्रवाहित किया है। कृष्ण कथा ने भारतीय काव्य और चित्रकला दोनों पर समान रूप से अपना आधिपत्य स्थापित किया है। विशेषकर कांगड़ा शैली के चित्रों पर कृष्ण काव्य सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। चूँकि आदिकाल से काव्य और चित्रकला समानांतर विकास की ओर बढ़े है। अतः जिन विषयों ने काव्य को अधिक प्रभावित किया है, उन्हीं विषयों ने चित्रकला को भी प्रभावित किया है। यामिनी रॉय और जार्ज कीट ने भी भारतीय काव्य में वर्णित कृष्ण संबंधित भावों को अपनी कला का विषय बनाया है, जार्ज कीट ने अपनी कृतियों में विशेषकर गीत–गोविंद के भाव चित्रों को प्रस्तुत किया। काव्य और कलाओं के इतिहास में मानव की यह विशेष ललक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। कला और साहित्य मानवीय अनुभव के मूल है। ये लोगों को स्वयं को अभिव्यक्त करने और एक दूसरे से जुड़ने का अवसर प्रदान करते हैं। सभी मानव संस्कृतियाँ किसी न किसी रूप में कला का सृजन करती रही है और सार्वभौमिक मानवीय सांस्कृतिक कसौटी पर खरी उतरी है। भारतीय दर्शन सौंदर्य तथा ललित अनुभवों को महत्व देता है और यह प्रवृत्ति भारतीय कला और साहित्य को हर स्तर पर जीवंत रखती है। कला का उद्देश्य व्यक्ति को रोजमर्रा के दुनियादारी के कामों और दुखों से थोड़े समय के लिए अलग ले जाकर उसे एक आदर्श, आनंदप्रद और उपचार सौंदर्य की वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करती है। भारतीय कला और साहित्य के इस फैलाव से परस्पर संवाद संपर्क, एक दूसरे से सीखने, अलग–अलग शैलियों के संयोग और विकास से नवीनता और सांस्कृतिक समृद्धि आई है। इस खुलेपन और उदारता से कला व साहित्य का विकास अनुक्रम के अगले स्तर तक पहुँच गया। समकालीन कला रोमांचक और नवाचारी साहित्य के माध्यम से समाज की समस्याओं का सामना करती हुई आगे बढ़ रही है। भारतीय समकालीन कला और साहित्य एक दूसरे के पूरक है। भारतीय कलाओं के विभिन्न आयाम है जिसमें सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाली कलाएँ चित्रकला व संगीत कला है क्योंकि इन दोनों कलाओं का साहित्य से या यूं कहे काव्य से अटूट रिश्ता है। कला व साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय एकता व विश्वबंधुत्व की भावना स्थापित की जाती रही है। साहित्य में भूतकाल की गूंज वर्तमान का प्रतिबिंब और भविष्य के निर्माण की शक्ति होती है इसीलिए भारतीय समाज में साहित्य की आत्मा में सौंदर्य का निवास होता है। वहीं सौंदर्य कलाओं को अभिव्यक्त करता है, अतः कलाएँ साहित्य का अलंकार है। संक्षेप में समकालीन भारतीय साहित्य और कला एक दूसरे के साथ मिलकर एक जीवंत संवाद स्थापित करते हैं जो समाज और संस्कृति के जटिलताओं को समझने और अभिव्यक्त करने के लिए कला और साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कलाओं का अंतः संबंध प्रभाव व उत्कृष्टता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह अत्यधिक घनिष्ठ है। अभिव्यक्ति शैली प्रेषणीयता के माध्यम, रूपाकर आदि की दृष्टि से कलाएँ परस्पर भिन्न हो सकती है किंतु तात्विक दृष्टि से समस्त कलाओं में साहित्य का विलक्षण साम्य है। समस्त कलाओं के प्रेरणा स्रोत मुख्यतः जीवन धर्म तथा राष्ट्रीयता रहे हैं। मानव व समाज का संबंध परस्पर प्रेम, घृणा, आकर्षण, हिंसा, विद्रोह, क्रोध, दया व शोक आदि प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करता है, जो मानव मन में घनी–भूत होकर साहित्य व कलाओं को जन्म देता है जिसका उदाहरण हमें समसामयिक परिदृश्य में दिखाई पड़ता है। आधुनिक भारतीय कलाकारों व साहित्यकारों ने भारतीय काव्य में वर्णित प्रसंगों को चित्रित किया है तथा चित्रित रूप वैभव पर अनेक काव्यकृतियाँ लिखी गयी। इस प्रकार व्यापक दृष्टि से विचार किया जाए तो मन, कर्म, वचन में मानवीय व्यक्तित्व के तीन गुण है। इन तीनों के परिणामस्वरूप विभिन्न रचनाएं होती है। धर्म, दर्शन, साहित्य एवं आध्यात्म आदि ये मन की सृष्टि है। ये सब रचनाएं मानव मन की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। सामाजिक और धार्मिक आंदोलन आदि कर्ममयी–संस्कृति के पुष्प होते हैं। जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता तथा जिनसे कलाओं की साहित्य से अंतः संबंध स्थापित करने वाली प्रेरणा मिलती है। इसी क्रम में आधुनिक भारतीय कला के गत पाँच दशकों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि कला व साहित्य की स्थिति में तीव्रता से परिवर्तन हुआ है। भारतीय कला व साहित्य समयानुसार परिवर्तित परिस्थितियों, प्रभावों एवं परिणामों से प्रभावित होते हुए समकालीन स्वरूप में नियोजित हुई है।

**निष्कर्ष** :– कला साहित्य अथवा अन्य सर्जनात्मक गतिविधियों में समकालीनता का आकलन एक ज्वलंत समस्या या जटिलता के साथ विविध प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता है तथा किसी भी प्रकार के विश्लेषण से दूर रहता है। नई पीढ़ी समकालीन/समसामयिकता/आधुनिकता को सामाजिक संगठन का एक समानार्थी अंग मानती है जिसमें पारंपरिकता को सहज रूप में त्यागने की भावना निहित होती है जबकि

समसामयिकता का प्रमुख तत्व सचेतना है। कलाकारों व साहित्यकारों के इच्छित प्रयासों द्वारा एक एकांगिकता एवं तनाव से उत्पन्न द्वन्द्व का नवीन प्रस्तुतीकरण ही आधुनिकता है। कलाकारों व साहित्यकारों के समक्ष अभिव्यंजना का पूर्ण क्षितिज ही साहित्य व विभिन्न भारतीय कलाओं की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। अतः उपर्युक्त विवरणात्मकता के आधार पर समकालीन साहित्य एवं कलाओं की उपजीव्यता का जीवंत विश्लेषण है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**

1. अग्रवाल गिर्राज किशोर, कला और कलाम, अशोक प्रकाशन मंदिर अलीगढ़, 2002, पेज न. 9

2. सांखलकर, रत्नाकर विजायक, कला के अन्तः दर्शन, रा. हि. ग्रं. अ. जयपुर, 2004, पेज न. 21, 47, 85

3. अशोक, कला सौंदर्य और समीक्षा शास्त्र, संजय पुस्तक मंदिर, आगरा, 2010, पेज न. 38, 47, 48

4. चतुर्वेदी ममता, समकालीन भारतीय कला, रा. हि. ग्रं. अ. जयपुर, 2008, पेज न. 2, 3

5. प्रताप रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा. हि. ग्रं. अ. जयपुर, 2015, पेज न. 7

6. चतुर्वेदी ममता, सौंदर्य शास्त्र, रा. हि. ग्रं. अ. जयपुर, 2015, पेज न. 16, 17

7. अग्रवाल गिर्राज किशोर, अशोक, कला निबंध, संजय पुस्तक मंदिर, आगरा, 2012, पेज न. 34, 65

8. गोयल प्रीतिप्रभा, भारतीय संस्कृति, राजस्थानी ग्रंथाकार, जोधपुर, 2004, पेज न. 129

9. दत्ता संजय, कला शिक्षा, जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 2018, पेज न. 14, 26

10. जोशी, शेखर चंद्र, चित्रकला एवं लोककला, प्रकाशक बुक डिपो बरेली, 2009, पेज न. 32

2

# कविताओं में चित्रकला के सूत्र एवं सन्देश

**अनामिका शाक्य**
शोध छात्रा
चित्रकला विभाग,
बरेली कॉलेज, बरेली
anamikashakya008@gmail.com

**प्रो0 पम्पा गौतम**
शोध निर्देशिका
चित्रकला विभाग,
बरेली कॉलेज, बरेली
gautampampa@gmail.com

प्राचीन समय से ही मनुष्य अपने भावों को चित्रों व शब्दों के माध्यम से प्रकट करता आ रहा है। कला मनुष्य की सिद्धि है, कला मनुष्य की युगों–युगों की चेतना है, कला ही मानव का आध्यात्म है। चाहे यह चित्रकला या कविता के माध्यम से हो। चित्रकला और कविता एक दूसरे से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं एवं उनका यह जुड़ाव मनुष्य की अभिव्यक्ति का एक समृद्ध ढाँचा रचता है। कविता और चित्रकला का यह ताना–बाना व्यक्तिगत तथा भौतिक माध्यमों से परे हैं। सदियों से अनेकों संस्कृतियों, में चित्रकारों व कवियों ने एक दूसरे के जरिये अपने आपको प्रेरित किया है। दोनों ने ही अपनी–अपनी कलाओं के जरिये से कल्पना, भावनाओं और प्रतीकात्मकता की गम्भीरता को खोजा है। चित्रकला और कविता दोनों का ही मूल उद्‌देश्य मनुष्य के भावों को जाग्रत कर विचारों को प्रकट करने में पारम्परिक इच्छा निहित है। जिस तरह एक कवि अपनी कविता के लिए सावधानीपूर्वक चयनित शब्दों के माध्यम से हृदय के मनोपटल पर एक जीवन चित्र उकेर सकता है, उसी प्रकार एक चित्रकार रंग, रूप एवं रचना के माध्यम से किसी अवसर या विचारों के मुख्य आशय को ग्रहण कर सकता है। चित्रकला और कविता एकत्रित होकर मानवीय अनुभूति की झाँकी प्रस्तुत करते हैं, दृष्टाओं और स्रोताओं को दुनिया के संग नवीन एवं गहन प्रकार से जुड़ने के लिए आमन्त्रित करते हैं।

कविता और चित्रकला के बीच के सम्बन्धों पर काफी वक्त से विचार–विमर्श होता आ रहा है। इस विचार–विमर्श के संग ही चित्र से कविता एवं कविता से चित्र सृजित करने की जो परम्परा के भी उतनी पुरातन है जितनी पुरातन ये विधाएँ हैं। चित्रकला के क्षेत्र में, कविता की छाप हम उन रचनाओं में देख सकते हैं जिसमें वृतान्त या रूपात्मक तत्व संयोजित होते है। चित्रकार कविताओं के माध्यम से विषयों, प्रतिच्छाया या प्रतिरूपों से प्रेरित होकर अपनी सृजनाओं में उद्‌देश्य और गूढ़ता के स्तरों को पूरित कर सकता है। उसी प्रकार कवि भी प्रायः चित्रकला से प्रेरित होकर अपनी काव्यमय रचना की खोज के लिए चित्रों, मूर्तियों या छायाचित्र आदि का प्रयोग प्रेरणा के रूप में करते हैं। चित्रकार और कवियों की मैत्री केवल वैयक्तिक रचनाओ तक ही नहीं सिमटी है, अपितु सहायक कार्यक्रम पर्यंत व्यापक हो सकता हैं। जहाँ चित्रकार कवि एकत्रित होकर अतः विषयक कृतियाँ सृजित करते हैं। इस सहभागिता के फलस्वरूप मौलिकता की दृढ़ अभिव्यक्तियाँ हो सकती है, जो दृश्यमान एवं सुसंस्कृत कलाओं को अतिनूतन और आश्चर्यजनक ढंग से सम्मिश्रित करती हैं।

चित्रकला के साथ काव्य के क्षेत्र में सन् 1933 में 'विचित्रता' नामक काव्य संकलन का प्रकाशन बांगला भाषा में हुआ। जिसमें दोनों ही क्षेत्र में अतिनूतन प्रयोग हुये। प्रसिद्ध चित्रकार व सम्मानित कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की मौलिक उपद्रव का स्पृहणीय प्रदर्शन भी था। जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर की 7 स्वयं सृजित कविताओं से संयोजित उनके 7 चित्र थे व अन्य 24 कविताओं के लिये अलग–अलग चित्रकारों के द्वारा अंकित एक–एक चित्र संयोजित थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर की मौलिक 31 कविताओं के विषयों से

सम्बन्धित चित्रों के चित्रकारों के नाम निम्नवत् है, ............वरवधू– रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, पसारिनी–नन्दलालबसु, अचेना–अवनीन्द्रनाथ टैगोर, वधू– गगनेन्द्रनाथ टैगोर, पुष्पचयिनी–क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार, विदाय–रवीन्द्रनाथ टैगोर, गोयालिनी–गौरीदेवी, दान–सुनयनी देवी, हार–सुरेन्द्रनाथकर, श्यामला–वीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रकाशिता–निशिकान्तराय चौधरी आदि। उपरोक्त कवित्त में रचनाकार के द्वारा उनकी कल्पनात्मक चित्रों का काव्यात्मक एवं संवेदनशील आयाम देखा जा सकता है। जिससे उनके वाचक अवगत रहें। अनुराग, वियोग, वैवाहिक जीवन, प्रणय और आत्मज्ञान की परिधि के संग कुछ अद्वितीय और आत्मीय पात्र इन कवित्त में दृष्टव्य होते हैं। चित्रकला जगत एवं काव्य जगत में इन अभिनव उद्यमों का खुले हृदय से अभिनन्दन किया गया। 'विचित्रता' काव्य संकलन का प्रकाशन नन्दलाबसु की पचासवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य को दृष्टि में रखते हुये किया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं का अलंकरण नन्दलाल बसु ने किया। नन्दलाल बसु ने 'विचित्रता' के आवरण पृष्ठ को अलंकृत किया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित एक पत्र ''विचित्रता' की भूमिका संयोजित किया गया जिसमें वे बताते हैं कि 'मैं जब कविता रचता हूँ तो बांगला भाषा के साथ उसके भाव का योग अपने आप जाग उठता है और जब चित्र आँकता हूँ तब बात रेखा की हो या रंग की, वे किसी प्रदेश विशेष का परिचय लेकर नहीं आते। इसलिए जो लोग जिस वस्तु को पसन्द करते है–बगांली होने के नाते मैं उन्हें बंगाली की वस्तु नहीं मानता। हमारे लोग (बंगाल के) यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि में किसी विशेष जाति का मनुष्य नहीं और इसलिए वे अन्दर ही अन्दर मुझसे विमुख हो गए हैं तथा मेरे प्रति कटु वचन कहने से बाज नहीं आते। मैं सौ–फीसदी बंगाली नहीं, और मैं उसी परिणाम में यूरोप का भी हूँ..................मैं चाहता हूँ यह बात मेरी छवि से भी प्रमाणित हो।' यह पत्र उन्होंने 18 अगस्त, 1930 को अपनी एक सहयोगी निर्मलकुमारी महलानवीश को लिखा था, जिसमें निश्चय ही उनमें कवि होने के साथ किसी देश–प्रदेश विशेष से परे एक चित्रकार होने का सदाशयी अहंकार भी ध्वनित है। [1]
प्रयाग शुक्ल के सम्पादन में पुस्तक 'कला और कविता' को प्रकाशित कर काव्य और कला के बीच के सहयोग एवं सम्बद्धता को दिखाने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में प्रयाग शुल्क ने 64 कवियों से सम्बन्धित वर्णन किया और इन सभी कवियों ने अपनी कविताओं का सृजन प्रायः किसी न किसी कलाकृति से प्रेरित होकर की है। इन कवियों ने ऐसे कृतित्व का सृजन किया जो कलात्मकता में दृश्यकाव्य की अनुभूति कराती है।। प्रयाग शुक्ल ने पुस्तक में उन कवियों को सम्मिलित किया हैं, जिन्होंने अधिकतर कला सम्बन्धी कविताएँ लिखी हें। जिनमें अशोक वाजपेयी, शमशेर बहादुर सिंह, कुँवर नारायण, मैथलीशरण गुप्त, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', स0 ही0 वात्स्यायन 'अज्ञेय', केदानाथ सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, चन्द्रकान्त देवताले, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रामकमल चौधरी आदि कवि हैं।

'कला और कविता' में शामिल कविताएँ कला से कविता की अनन्यता का पता अवश्य देती है। पुस्तक की पहली कविता है..............'बना दे चितेरे', जो अज्ञेय की प्रसिद्ध कविता है–

'बना दे, चितेरे
मेरे लिए एक चित्र बना दें।
पहले सागर आँक :
विस्तीर्ण प्रगाढ़ नीला,
ऊपर हलचल से भरा,
पवन के थपेड़ों से आहत
शत–शत रंगों से उद्वेलित,
फेनोर्मियों से टूटा हुआ,
किन्तु प्रत्येक टूटने में
अपार शोभा लिए हुए।
चंचल, उत्कृष्ट,
जैसे जीवन।

इस कविता में अज्ञेय चित्रकार से सागर आँकने का निवेदन करते हैं जिसमें उसकी समस्त क्रियाएँ हो जैसे–चंचल, उत्कृष्ट जीवन होता है। यह कामना कोई चित्रकार तो पूरी नहीं कर सकता, पर प्रकृति ही वहीं चितेरी हैं, जो सब कुछ देकर स्वयं में कृतकार्य हैं। [2]

कविता और चित्रकला की परस्परता में निर्मित रंग आकाश में शब्द (चित्र और कविताएँ साथ–साथ) में चित्र पर कविता और कविता पर चित्र की सर्जना हे, इसलिए इसमें जीवन के राग–विराग, ह्रास–परिहास, रोग–शोक और प्रेम–अप्रेम जैसे–मानवीय भावों की गहराई से देखा और महसूस किया जा सकता है। इसमें शासा के चित्रों को अपना संसार कई स्थलों पर सर्वाधिक आकृष्ट करता है। जिसमें आप तूलिका के स्पर्श से रंगों के विविध रूपों को विभिन्न छवियों में निर्मित मोहक अन्दाज में देख सकते हैं। चूँकि शामा स्वयं कवि भी है इसलिए कविता की अन्तरंगता को सूक्ष्मता से महसूस कर रंगों में ढाल सकते हैं। इसी तरह नरेन्द्र मोहन सधे हुये सर्जक हैं, जिन्होंने अपने विपुल जीवनानुभवों से इन कविताओं को बुना है, जो पठनीय तो है ही, चित्रों के समतुल्य दृश्य भी हो गई है। कह सकते हैं कि कविता और कला के समन्वय का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। [3]
अग्निपुरणा के 342वें अध्याय में ''चित्रकाव्य'' का स्वरूप बताया गया है :–
अनेकधा वृत्त वर्ण विन्यासैः शिल्प कल्पना।
तत्तत्प्रसिद्ध वस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते।। अ0पु0
वर्णों के द्वारा कविन्द जो वर्ण शिल्पका एक विशेष रूप से विन्यास करते हैं और जिसमें भिन्न आकार प्रकार की वस्तुओं की रूप–रेखा देखी जा सकती वह एक चित्र है, वही बन्ध है। काव्यालंकार के 5वें अध्याय में रूद्रट ने स्पष्ट कहा है कि मम्मट के पूर्ववर्ती मनीषी कवि[4] ''चित्रकाव्य'' के भेद–प्रभेदों के प्रदर्शन में पर्याप्त रुचि रख चुके हैं।

यथार्थ को नए परिवेश में देखने की प्रक्रिया केवल चित्रकला तक ही सीमित नहीं रही–वास्तव में कविता की भी यही मौलिक समस्या रही है। जब विम्ब या प्रतीक या पुराख्यान–जो कविता के विभिन्न तत्व हैं–भाषा या शब्द ग्रहण करते हैं। ठीक उसी प्रकार के प्रश्न उठते हैं, जिन्हें हम साधारणतया चित्रकला से सम्बन्ध समझते हैं।
दुपहर के कलमुहें शब्दों की मादा उल्लू
खिड़की के बाहर चिल्ला रही है
दुपहर का थूक फर्श पर से मिटा नहीं है।[5]

संक्षेप में चित्र और काव्य के मध्य सम्बन्ध मानवीय आत्मिक अपरिमित की रचनात्मकता का साक्ष्य है। काल एवं स्थान से परे, चित्रकार और कवि परस्पर प्रेरणा लेते रहे हैं और ऐसी अद्भुत सृजनाएँ करते रहे, जो दर्शक एवं स्रोता संग गहन और सर्वव्यापी स्तर पर प्रतिध्वनित होती है। चित्र और काव्य की सम्बद्धता का निरीक्षण करते हुए हम अन्वेषण और आमोद के एक ऐसे पथ पर चल पड़ते हैं जहाँ काव्य और चित्र दोनों मिलकर अभिव्यक्ति में स्वरों की समरसता उत्पन्न करते हैं।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहा, डॉ0 रणजीत, समकालीन कला, ललित कला अकादमी, अंक–50 (फरवरी, 2018), पृ0सं0–64।
2. पाण्डेय, यशस्विनी, समकालीन कला, ललित कला अकादमी, अंक–44–45, पृ0सं0–91।
3. द्विवेदी, डॉ0 अभिलाषा, समकालीन कला, ललित कला अकादमी, अंक–46–47 (2015), पृ0सं0–94।
4. शास्त्री, श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, सम्मेलन पत्रिका, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग, पृ0सं0–206।
5. भारद्वाज, विनोद, बृहद आधुनिक कला कोश, 2015, वाणी प्रकाशन, पृ0सं0–337, 359।

3

# राजपूत लघु चित्रशैली में साहित्य की भूमिका

**कु0 अर्चना**
प्रो0 मीना कुमारी
चित्रकला विभागाध्यक्ष
आगरा कॉलेज, आगरा
मो० न० 9027679534
Gmail - archanask1999@gmail.com

**सारांश:** सभी ललित कलाएं अन्योन्याश्रित है और उनमें अन्तर्सम्वन्ध स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। चित्रकला, मूर्तिकला. वास्तुकला, नाट्यकला व काव्यकला आदि सभी का आपसी अर्न्तसम्वन्ध है। साहित्य और चित्रकला के सम्बन्ध को इस पेपर के माध्यम से समझने का प्रयास करेगे। हम जिसके अन्तर्गत मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में साहित्य की भूमिका पर प्रकाश डालेगें। राजस्थानी चित्रकला में प्राचीनतम चित्रित उदाहरण चौरपंचाशिखा का है जो 11 वी 12 वी सदी में कश्मीरी कवि विल्हण द्वारा रचित है। जयदेव लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि जयदेव द्वारा रचित गीतगोविन्द, मैथिली ब्राहमण भानुदत्त की रसमंजरी, केशवदास की रासिकप्रिया और कविप्रिया, बिहारी लाल की बिहारी सतसई. रामायण महाकाव्य तथा महाभारत महाकाव्य।
राजपूत चित्रकला में चित्रित सर्वाधिक लोकप्रिय विषय रहे है। जिनके साहित्यिक चरित्रों और घटनाओ को चित्रकारों ने अपने चित्रों का विषय बनाया है।

**बीज शब्द:** लधुचित्रकला, गीतगोविन्द, कविप्रिया, रसमंजरी, लोकप्रिय, भावप्रवणता, साहित्य

**व्याख्या:** राजपूत चित्रकला में चित्रित कुछ महत्वपूर्ण साहित्यक रचनाएँ निम्नलिखित है–

**चौरपंचाशिखा –**

चौरपंचाषिखा या विल्हण पंचषिखा के 50 छन्द 12 वी सदी में कश्मीर के प्रसिद्ध कवि विल्हण द्वारा चम्पावती के प्रेम में रचे गए, जो संस्कृत काव्य ही नहीं वरन् चित्रकला के इतिहास की भी महत्वपूर्ण थाती है। इस समूह के 18 चित्र स्वर्गीय एन0सी0 मेहता की गैलरी गुजरात सोसाईटी म्यूजियम अहमदाबाद में सुरक्षित ह ै जिन्होंने राजस्थानी चित्रकला के नवीन मोड को समझने में सहयोग दिया है। मेवाड में चित्रित चौरपंचाशिखा के चित्रों में रंगों की चटकता, स्थापत्य की बनावट, प्रकृति की अनोखी खिलावट के साथ ही विल्हण एवं चम्पावती के चित्रण में सशक्त रेखांकन भावो की गत्यात्मकता चमकदार जामा, पायजामा, अटपटी कुलहदार पगडी, कमरबंद एवं कंचुकी ओढनी, मोचडी आदि वेषभूषा में अनेक संस्कृ तियो का मेल–मिलाप सहज ही झलकता है।

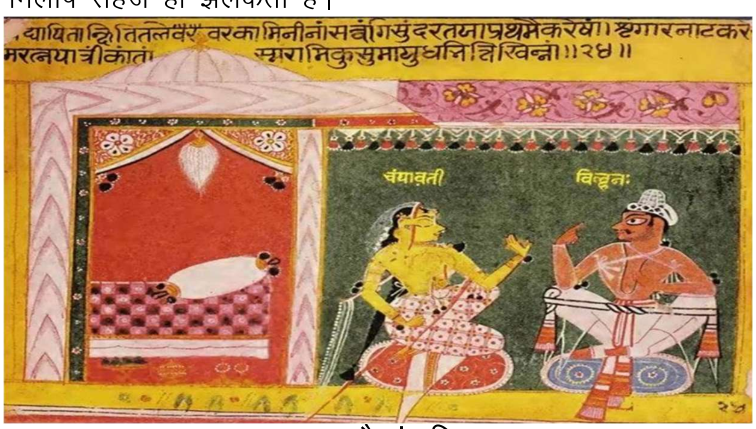

चौरपंचाशिखा

विल्हड–चम्पावती चित्र

**गीतगोविन्द–**

16 वीं सदी तक राम और कृष्ण से सम्बन्धित वैष्णव सम्प्रदाय भक्ति आन्दोलन के रूप में पश्चिम, उत्तर व मध्य, भारत में लोकप्रिय हो चुका था आगे चलकर यह पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैल गया जिसमे कृष्ण विशेष लोकप्रिय हुए। गीत गोविन्द का चित्रण भी करती राजपूत चित्रकला में कृष्ण की लोकप्रियता का एक उदाहरण है। गीत गोविन्द की रचना 12 वी शती में श्री जयदेव ने की थी। संस्कृत भाषा में रची गई इन कविताओं के संग्रह में श्रृंगार रस को प्रधानता दी गई है। प्रेम की धारणा को धार्मिक विषय के रूप में पोषित किया गया जहाँ भावना और रहस्यवाद का एक मनोहारी समन्वय प्राप्त होता है कृष्ण को सृष्टिकर्ता माना गया जिनसे सारी सृष्टि की रचना हुई और राधा मानवीय आत्मा का प्रतीक अपने को उनमे समाहित करने को उद्यत है। श्री गीतगोविन्द साहित्य जगत में एक अनुपम कृति होने के साथ एक ही कला जगत की भी अमूल्य निधि हैं। इसकी मनोरम रचना शैली भावप्रवणता, सुमधुर राग रागिनी, धार्मिक तात्पर्यता तथा कोमल कान्त पदावली साहित्य प्रेमियो तथा कला प्रेमियों को अपूर्व आनन्द प्रदान करती है। विलियम जोन्स ने अपनी पुस्तक म्यूजिकल मुड्स ऑफ हिन्दूज में इसे पास्टोरल ड्रामा कहा है।

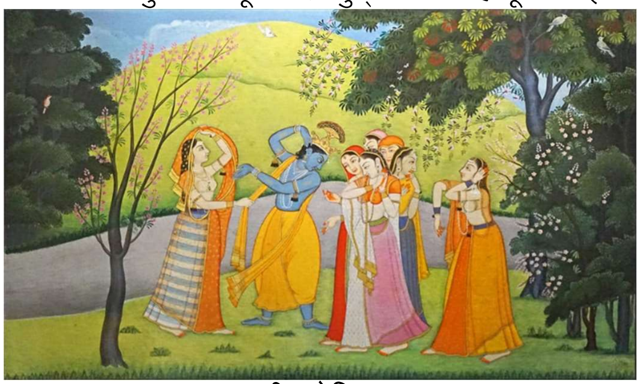

गीतगोविन्द

**रसमंजरी–**

संस्कृत साहित्य की महान कृति रसमंजरी की रचना 15 वी शताब्दी में भानुदत्त द्वारा की गई। रसमंजरी में नायक – नायिका भेद का विस्तृत वर्णन किया गया है। जो चित्रकारों का प्रिय विषय रहा है। रसमंजरी में 384 प्रकार की नायिकाओ का उल्लेख मिलता है आयु के आधार पर नायिकाओ को बाल, तरुण, प्रौढ़, शारीरिक बनावट के आधार पर पद्मिनी चित्रनी, शंखिनी हस्तिनी इत्यादि तथा भावनात्मक रूप में खण्डिता, बासक सज्जा अभिचारिका आदि मे विभाजित किया गया है।

वासक सज्जा अभिसारिका, उल्का आदि में विभाजित किया गया है। रसमंजरी का चित्रण मेवाड में 1630 के दशक में दक्षिण भारत में 1650 तथा बसोहली में 1660–1690 के समय चम्बा में 1690 नूरपुर में 1710 में किया गया है।

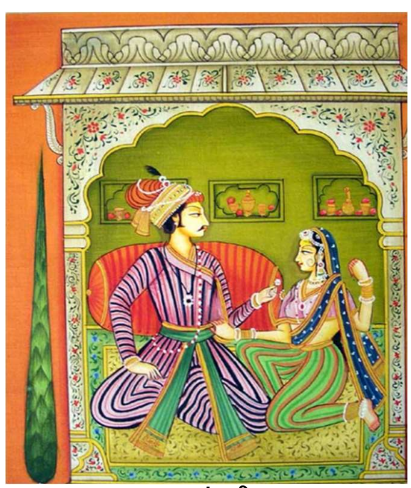

रसमंजरी

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

### रासकप्रिया–

रासकप्रिया भारतीय काव्यशास्त्र और का एक प्रेम पर 17 वी शताब्दी का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसे ओरछा के राजा के दरबारी कवि केशवदास ने लिखा था। रासकप्रिया रीतिकाव्य आधारभूत ग्रंथ माना जाता है यह लेखको के लिए एक शैलीगत और सैद्धान्तिक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करता है और इसने कई कलाकारो को इसके विषयो विशेष रूप से राधा और कृष्ण के प्रेम को दशति हुए लघु चित्र बनाने के लिए प्रेरित किया।

रासकप्रिया

### कविप्रिया–

केशवदास द्वारा रचित न कविप्रिया का राजपूत लघुचित्र कला में महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है क्योकि इसने चित्रों के लिए एक साहित्यिक आधार प्रदान किया। यह ग्रन्यथ रीतिकाल के साहित्यिक सिद्धान्तो पर आधारित है जिसका उद्देश्य काव्यात्मक भावनाओ को चित्रित करना था चित्रकारों ने इन साहित्यिक वर्णनो को अपनी कलाकृतियों में जीवत किया जिसमे राधाकृष्ण के प्रेम प्रसंगों को भी शामिल किया गया। कविप्रिया में साल के बारह महीनो और उनका प्रेमियो पर पड़ने वाले प्रभाव का भी वर्णन है। सचित्र चित्रकारों ने बारहमासा चित्रों के माध्यम से इन प्रेम रोमांस और विरह की भावनाओ को प्राकृतिक दृष्यों के साथ चित्रित किया है।

### बिहारी सतसई

मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि बिहारी लाल द्वारा रचित बिहारी सतसई 700 दोहो का एक संकलन है इन दोहो मे चित्रकारों ने विविध प्रेम प्रसंगों को का अवसर दिया। प्रत्येक दोहे में एक अलग कहानी और भावनात्मक स्थिति निहित होती थी जिसे कलाकार अपनी कल्पना से चित्रों में उतारते थे। बिहारी सतसई का सर्वाधिक चित्रण मेवाड स्कूल में हुआ है।

### निष्कर्ष

जिस प्रकार साहित्य से चित्रकार को अपने चित्रों के विषय प्राप्त होते ही उसी प्रकार साहित्यकारों को अपने साहित्य को आम जन तक पहुंचाने और अर्थ को स्पष्ट करने के लिए चित्रों की आवश्यकता होती है। चित्रकार केवल पाठ का अनुवाद नहीं करते वरन् वे कविता के भावो को दृश्यों में ढ़ाल देते है इससे देखने वालों के लिए इन कलाकृतियों को समझना और उनके साथ भावनात्मक रूप से जुड़ना आसान हो जाता है। इस पेपर के माध्यम से हम कुछ प्रमुख साहित्यिक रचनाओं का वर्णन कर चुके है जिनको –राजपूत लघु चित्रकला में अपने चित्रों का विषय बनाया गया है जैसे चौरपंचशिखा, गीतगोविन्द, रासकप्रिया, बिहारी सतसई इत्यादि ।

सन्दर्भ सूची

1. Tomory Edith, A history of Fine Art in India, and the west, Hyderabad, Orient Blackswan.

2. डॉ. जयसिंह जीर्ण, राजस्थानी चित्रकला, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

3. डॉ. कासलीवाल मीनाक्षी श्भारती, ललितकला के आधारभूत सिध्दान्त, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

Internet links-

1.https://www.google.com/imgres?imgurl=https%3A%2F%2Fkalyanikalamandir.com%2Fwp-content%2Fuploads%2F2023%2F11%2Fbasholi-painting.jpg&tbnid=CtpGFYV8HF_U7M&vet=1&imgrefurl=https%3A%2F%2Fkalyanikalamandir.com%2Fbhanudattas-rasamanjari-an-exploration-of-the-nayikas-and-nayakas%2F&docid=SEYli3NqzWzSyM&w=550&h=698&hl=en-GB&source=sh%2Fx%2Fim%2Fm1%2F4&kgs=7dc13adab71d9f11&shem=isst

2.https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%97%E0%A5%80%E0%A4%A4%E0%A4%97%E0%A5%8B%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6

4

# कला, साहित्य और क़ानून का द्वंद्व : डिजिटल मंचों पर अभिव्यक्ति की आज़ादी और समरजीत बसु की संवैधानिक विरासत

**सुश्री भारती रानी**
शोधार्थी
विजुअल आर्ट डिपार्टमेंट
सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ़ हिमाचल प्रदेश
**डॉ. उज्ज्वल कडोदे**
एसोसिएट प्रोफेसर
विजुअल आर्ट डिपार्टमेंट
सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ़ हिमाचल प्रदेश

## शोध सार

यह शोध एक मर्मस्पर्शी सवाल उठाता है: कला के पंख कब तक क़ानून की सीमा में बंधे रहेंगे ? हम समरजीत बसु बनाम अमल मैत्रा (1986) के उस ऐतिहासिक क्षण को टटोलते हैं, जब सुप्रीम कोर्ट ने कलाकार के 'हृदय' को कठोर 'हिकलिन टेस्ट' से मुक्त कर 'समकालीन सामुदायिक मानक' की लचीली कसौटी दी थी। लेकिन, आज जब हमारी कविताएँ और कलाकृतियाँ एक भौगोलिक दायरे से निकलकर वर्चुअल स्पेस में साँस लेती हैं, तो 'समुदाय' की परिभाषा ही बिखर गई है।

यह अध्ययन उस चौराहे पर खड़ा है जहाँ OTT प्लेटफ़ॉर्म की गति और सोशल मीडिया पर वायरल होती क्षेत्रीय अभिव्यक्तियाँ टकराती हैं। जब दुनिया भर के दर्शक किसी भारतीय कलाकृति को देखते हैं, तो हम किस 'वर्चुअल पंचायत' के नैतिक मापदंडों को सही मानेंगे ? हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि कैसे डिजिटल उप संस्कृतियाँ अपनी ही 'सौंदर्य संहिता' गढ़ रही हैं। अंततः, यह शोध एक प्रबल तर्क देता है कि न्यायपालिका को कला की रचनात्मक उड़ान और सामाजिक नैतिकता के बीच संतुलन साधने के लिए, 1986 के महान दृष्टिकोण को 'वर्चुअल कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स' के रूप में ढालना होगा।

**मुख्य शब्द: समरजीत बसु का सिद्धांत, डिजिटल कला, अभिव्यक्ति का अधिकार, वर्चुअल नैतिकता, सामुदायिक मानक का रूपांतरण।**

## परिचय

हिकलिन टेस्ट शुरू हुआ था 19वीं शताब्दी में "रेजिना बनाम हिकलिन" केस (1868) से। यहाँ पहली बार तय हुआ था कि कोई भी सामग्री तभी अश्लील मानी जाएगी जब वो किसी कमजोर व्यक्ति को प्रभावित कर सके और उसे अश्लील काम करने के लिए प्रेरित करें, खासकर बच्चे। यह हिकलिन टेस्ट ओब्सीन पब्लिकेशन्स एक्ट 1857 पर आधारित था। हिकलिन परीक्षण की यह भी विशेषता थी कि उसमें सामग्री को समग्र रूप से देखने की बजाय उसे अलग अलग भागों में देखा जाता था और अगर किसी एक भाग को देखकर भी कमज़ोर दिमाग वाले व्यक्ति पर गलत प्रभाव पड़ सकता है तो पूरी सामग्री को अश्लील माना जाता था। इसका उपयोग भारत में काफी लंबे समय तक संविधान में हिकलिन परीक्षण के रूप में किया गया। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने "रणजीत डी उदेशी बनाम महाराष्ट्र राज्य" मामले में इस परीक्षण का उपयोग किया था लेकिन इसकी काफी आलोचना भी हुई जैसे कि यह परीक्षण व्यक्ति की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सवाल उठता है। और जो इसके एक सेट नियम हैं वो समय के साथ बदले नहीं जो कि समय से मेल नहीं खाते हैं। भारत ने आगे चलकर

समुदाय के मानदंड परीक्षण को अपनाया जो कि सामग्री को समकालीन दृष्टिकोण से देखता था और पूरी सामग्री को समग्र रूप से देखकर फिर निर्णय देता था। और आज के समय में ये हिकलिन परीक्षण के हिसाब से अश्लीलता को नहीं देखा जाता है। (Tiwari)

अविक सरकार v. पश्चिम बंगाल राज्य (2014) ने एक मोड़ दिया, जिससे समुदाय मानक परीक्षण शुरू हुआ। यह परीक्षण सामग्री को एक समग्र के रूप में देखता है, न कि हिकलिन परीक्षण की तरह भागों में, और साथ ही वर्तमान स्थिति को देख कर न कि कुछ लोगों की दिमागी कमजोरी को देखकर। और इसी स्थानांतरण से यह समझ आया कि भारत एक विविध देश है और यह एक एकल कठोर मानकों में पूरे भारत को नहीं बांध सकते हैं। यह जो परिवर्तन था हिकलिन परीक्षण से समुदाय परीक्षण का यह अच्छा जरूर था लेकिन पूरी तरह से सभी चुनौतियों को नहीं हटा पाया। आलोचक तर्क करते हैं कि "राष्ट्रीय मानकों" में व्यापक सांस्कृतिक विविधता, क्षेत्रीय भिन्नताएं, और विभिन्न नैतिक दृष्टिकोण वाले एक देश में यह ठीक से परिभाषित नहीं हैं। न्यायाधीश अक्सर एक पारदर्शी, उद्देश्यपूर्ण विधि की कमी में भारतीय समुदाय के सामान्य मानकों का निर्धारण करने के लिए व्यक्तिगत पक्षपात पर निर्भर करते हैं, जो कला की अभिव्यक्ति और कानूनी अनुमानना को कम कर सकते हैं। (Chopra)

और अब इस डिजिटल दुनिया में, जहां कन्टेंट बहुत तेजी से एक क्षेत्र से दूसरे में बदलता है, यहाँ एक मजबूत, स्पष्ट, और अनुकूलनीय ढांचे की आवश्यकता है जिसे गियन तक ऑनलाइन प्लैटफॉर्म के माध्यम से पहुंचाया जाता है। केरल उच्च न्यायालय के एक मामले में एक आधी निर्वस्त्र शरीर चित्रण के संबंध में माँ द्वारा बरी होने का मामला लगातार जारी संघर्ष उभारता है जन सामान्य की सुरक्षा और आधुनिक भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच। एक परिष्कृत दृष्टिकोण संदर्भात्मक विश्लेषण, कला योग्यता, और डिजिटल वितरण की व्यावहारिक वास्तविकताओं का संतुलन रखना चाहिए, जो सृजनात्मक अभिव्यक्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए हानि और शोषण के बारे में वैध चिंताओं का समाधान करता है। (Chopra)

**शोध का अंतर**

भारत में अश्लीलता की परिभाषा और उसके परीक्षण के लिए अपनाए गए कानूनी मानकों में समय के साथ बदलाव तो हुए हैं, लेकिन आज भी एक स्पष्ट, पारदर्शी और समकालीन ढांचे की कमी महसूस होती है। "हिकलिन परीक्षण" से "समुदाय मानक परीक्षण" तक का सफर, भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता और डिजिटल युग की चुनौतियों को पूरी तरह संबोधित नहीं कर पाया है। न्यायालयों द्वारा "समुदाय मानक परीक्षण" के व्यावहारिक क्रियान्वयन में पारदर्शिता और वस्तुनिष्ठता की कमी, तथा डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर सामग्री के तेजी से प्रसार के कारण, वर्तमान कानूनी ढांचे में कई व्यावहारिक समस्याएँ बनी हुई हैं।

**शोध प्रश्न**

1.क्या भारत में अश्लीलता के निर्धारण के लिए वर्तमान कानूनी परीक्षण, विशेषकर "समुदाय मानक परीक्षण" पर्याप्त रूप से स्पष्ट, पारदर्शी और समकालीन हैं ?

2.क्या डिजिटल युग में, जब अश्लीलता की सामग्री क्षेत्रीय सीमाओं से परे तेजी से फैलती है, भारत में अश्लीलता के निर्धारण के लिए मौजूदा कानूनी ढांचे को बदलना आवश्यक है ?

**समरेश बोस और अन्य बनाम अमल मित्र और अन्य**

मामले को पढ़ने का मुख्य उद्देश्य है अश्लीलता की परिभाषा का विश्लेषण करना, जो चित्र कला और साहित्य पर लागू होता है, भारतीय प्रमुख मामले समरेश बोस और अन्य बनाम अमल मित्र और अन्य के संदर्भ में। यह एक मामला है कि क्या बंगाली उपन्यास "प्रजापति", जो बंगाली साहित्य पत्रिका सरोदिया देश में प्रकाशित हुआ, इसका कहना कहा जा सकता है

कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 292 के अर्थ में वह अश्लील है। न्यायालय के फैसले ने परीक्षा और अपीली फैसलों, साहित्य विशेषज्ञों के सबूत और धारा 292 IPC के कानूनी विश्लेषण, उपन्यास के पाठ और प्रख्यात साहित्य समीक्षकों के मौखिक सबूत का विश्लेषण किया। इस पेपर में तुलनात्मक परीक्षणों, अंग्रेजी "हिकलिन परीक्षण" और इसका भारत में परिचय, समुदाय के मानदंड परीक्षण, और साहित्यिक गुणवत्ता और सामाजिक नैतिकता परीक्षण का अध्ययन भी किया गया।

मुख्य कानूनी निष्कर्ष थे कि साहित्य और कला में अश्लीलता को पूरे कार्य और इसके पाठक पर संभावित प्रभाव के संदर्भ में निर्णयित किया जाना चाहिए  कि भाषा और घटनाओं मेंहालांकि अपरंपरागत और अक्षरणीय स्थिति हो, हालांकि वे यथार्थवादी चरित्रनिर्माण करने के लिए आवश्यक थे, और वे भ्रष्ट या भ्रष्ट नहीं कर सकते थे। सर्वोच्च न्यायालय का धारणा इनके बर्खास्त अदालतों के विपरीत था कि पुस्तक की बोलचाल और यौन संदर्भों ने अश्लीलता के आधुनिक समुदाय स्तर के परीक्षण में विफलता देखी, साथ ही इसका साहित्यिक महत्व भी। यह अन्य मूलभूत या यौन संबंधी सामग्री को भूलना सकता है, जो शायद अपमानित करे, लेकिन अश्लील नहीं है, इससे आप भ्रष्ट और ब्रश्ट होते हैं की भावना को अलग करता है। निर्णय ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सार्वजनिक शिष्टाचार के साथ संतुलित करने की आवश्यकता को महत्वपूर्ण बताया, और अंततः निष्कर्ष पर पहुंचे की इस मामले में अश्लीलता के दावों से साहित्यिक और कला संबंधी योग्यता अधिक है। (Sen) समरेश बोस बनाम अमल मित्र केस भारतीय न्यायपालिका के लिए एक मील का पत्थर है, जिसने अश्लीलता की परिभाषा और उसके परीक्षण के मानकों को लेकर गहरे सवाल खड़े किए। इस फैसले ने यह स्पष्ट किया कि किसी साहित्यिक या कलात्मक कृति को केवल उसके कुछ हिस्सों के आधार पर अश्लील नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि पूरे कार्य और उसके पाठक पर पड़ने वाले संभावित प्रभाव को ध्यान में रखना चाहिए। यह दृष्टिकोण "हिकलिन परीक्षण" की सीमाओं को उजागर करता है, जिसमें सामग्री के छोटे छोटे अंशों को अलग से देख कर निर्णय लिया जाता था, जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनावश्यक अंकुश लग सकता था।

इस केस के माध्यम से यह भी सामने आया कि "समुदाय मानक परीक्षण" अपनाने के बावजूद, भारत जैसे विविध सांस्कृतिक देश में एकल मानक तय करना व्यावहारिक रूप से चुनौतीपूर्ण है। न्यायालयों द्वारा "सामान्य भारतीय समुदाय" के मानकों का निर्धारण अक्सर न्यायाधीशों की व्यक्तिगत सोच पर निर्भर करता है, जिससे पारदर्शिता और वस्तुनिष्ठता की कमी रह जाती है। यह स्थिति हमारे पहले शोध प्रश्न क्या भारत में अश्लीलता के निर्धारण के लिए वर्तमान कानूनी परीक्षण विशेषकर "समुदाय मानक परीक्षण" पर्याप्त रूप से स्पष्ट, पारदर्शी और समकालीन हैं  ? को प्रत्यक्ष रूप से संबोधित करती है।

डिजिटल युग में, जब सामग्री का प्रसार क्षेत्रीय सीमाओं से परे हो गया है, यह केस और भी प्रासंगिक हो जाता है। अब अश्लीलता का मूल्यांकन केवल स्थानीय या क्षेत्रीय मानकों के आधार पर नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में, मौजूदा कानूनी ढांचे की सीमाएँ उजागर होती हैं और हमारे दूसरे शोध प्रश्न क्या डिजिटल युग में, जब अश्लीलता की सामग्री क्षेत्रीय सीमाओं से परे तेजी से फैलती है, भारत में अश्लीलता के निर्धारण के लिए मौजूदा कानूनी ढांचे को बदलना आवश्यक है  ? का महत्व और बढ़ जाता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर सामग्री की तेज़ी से पहुँच और विविधता, एक ऐसे लचीले, पारदर्शी और समकालीन कानूनी ढांचे की आवश्यकता को रेखांकित करती है, जो न केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करे, बल्कि समाज की संवेदनशीलता और सुरक्षा का भी संतुलन बनाए रखे।

**साहित्य समीक्षा**

आदर्श कुमार का पेपर "हिकलिन टेस्ट और भारत में अश्लीलता कानूनों पर इसका प्रभाव" इस बात की जांच करता है कि भारतीय अश्लीलता कानून औपनिवेशिक काल के हिकलिन टेस्ट से कैसे विकसित हुए। यह टेस्ट सामग्री को कमजोर पाठकों को "भ्रष्ट और दूषित" करने की उसकी क्षमता के आधार पर जज करता था, और अब यह आधुनिक कम्युनिटी

स्टैंडर्ड्स टेस्ट बन गया है जो सामाजिक मानदंडों और कलात्मक इरादे पर विचार करता है। डॉक्ट्रिनल लीगल रिसर्च अप्रोच का इस्तेमाल करते हुए, यह स्टडी अश्लीलता को नियंत्रित करने वाले संवैधानिक प्रावधानों और वैधानिक कानूनों के साथ साथ प्रमुख न्यायिक मामलों जैसे रंजीत उदेशी बनाम महाराष्ट्र राज्य और एवीक सरकार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य की समीक्षा करती है। पेपर का निष्कर्ष है कि जहां हिकलिन टेस्ट ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बहुत ज़्यादा सीमित कर दिया था, वहीं कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट स्वतंत्र भाषण, सार्वजनिक नैतिकता और कलात्मक स्वतंत्रता को संतुलित करके समकालीन मूल्यों के साथ बेहतर तालमेल बिठाता है, हालांकि "अश्लीलता" को परिभाषित करने में अभी भी अस्पष्टताएं बनी हुई हैं।

यह पेपर बताता है कि हिकलिन टेस्ट ने भारत के अश्लीलता कानूनों को कैसे आकार दिया और अदालतों ने स्वतंत्र भाषण के अनुरूप अधिक संतुलित, संदर्भ संवेदनशील दृष्टिकोण बनाने के लिए कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट को क्यों अपनाया। यह स्टडी "अश्लीलता" की स्पष्ट परिभाषा की कमी, असंगत न्यायिक व्याख्याओं, अनुभवजन्य डेटा पर डॉक्ट्रिनल विश्लेषण पर निर्भरता, और भारत के विविध समाज में समान मानकों को लागू करने की चुनौती को नोट करती है। कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट में बदलाव अभिव्यक्ति की रक्षा करने और आधुनिक मूल्यों के अनुकूल होने की दिशा में प्रगति का प्रतीक है, लेकिन स्पष्टता सुनिश्चित करने और अश्लीलता कानूनों के दुरुपयोग को रोकने के लिए निरंतर कानूनी सुधार की आवश्यकता है। (Kumar)

अश्लीलता कानून के बदलते आयाम: UK और US के न्यायक्षेत्रों से भारत के लिए एक सबक" नाम का यह पेपर भारत में अश्लीलता कानूनों के विकास की जांच करता है, उनकी औपनिवेशिक जड़ों का पता लगाता है और यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका में समकालीन न्यायशास्त्र के साथ उनकी तुलना करता है। एक सैद्धांतिक कानूनी अनुसंधान पद्धति का उपयोग करते हुए, लेखक रंजीत उदेशी बनाम महाराष्ट्र राज्य, के.ए. अब्बास बनाम भारत संघ, और एवीक सरकार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य जैसे महत्वपूर्ण मामलों का विश्लेषण करता है, साथ ही भारतीय दंड संहिता और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम जैसे कानूनी ढांचों का भी विश्लेषण करता है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि अदालतों ने अश्लीलता के लिए परीक्षणों की व्याख्या और विकास कैसे किया है। मुख्य निष्कर्ष यह है कि भारत का हिकलिन टेस्ट से कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट में बदलाव प्रगति का प्रतीक है, लेकिन आगे और सुधार संभावित रूप से कनाडा के बटलर टेस्ट के समान नुकसान आधारित दृष्टिकोण अपनाना बदलते IT नियमों के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, नैतिकता और डिजिटल युग की चुनौतियों को संतुलित करने के लिए आवश्यक है। यह पेपर जांच करता है कि भारत के अश्लीलता कानून औपनिवेशिक जड़ों से कैसे विकसित हुए और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को नैतिक विनियमन के साथ संतुलित करने के लिए यह UK और US न्यायशास्त्र से क्या सीख सकता है, यह सवाल उठाते हुए कि क्या कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट डिजिटल युग की चुनौतियों को पूरा करता है या नुकसान आधारित सुधार की आवश्यकता है। यह अनुभवजन्य डेटा के बिना सैद्धांतिक विश्लेषण पर निर्भर करता है, "सामुदायिक मानकों" की अस्पष्टता, असंगत न्यायिक व्याख्याओं को नोट करता है, और IT कानूनों के तहत प्रवर्तन की जांच का अभाव है। यह अध्ययन डिजिटल युग की नैतिकता को संबोधित करते हुए और न्यायिक अनुप्रयोग में निरंतरता सुनिश्चित करते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बेहतर सुरक्षा के लिए नुकसान आधारित तत्व जोड़कर अश्लीलता कानूनों को विकसित करने का आह्वान करता है। (S.)

पराक्रम चौहान का पेपर "भारत में अश्लीलता: न्यायिक मानकों का पता लगाना" इस बात की जांच करना चाहता है कि भारत में अश्लीलता की न्यायिक व्याख्या कैसे औपनिवेशिक हिकलिन टेस्ट से आधुनिक कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट तक विकसित हुई है, और इस विकास को व्यापक सामाजिक और नैतिक संदर्भों में रखता है। डॉक्ट्रिनल लीगल रिसर्च मेथड का उपयोग करते हुए, लेखक रंजीत डी. उदेशी बनाम महाराष्ट्र राज्य, के.ए. अब्बास बनाम भारत संघ, बॉबी आर्ट इंटरनेशनल बनाम ओमपाल सिंह हून, और एवीक सरकार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य जैसे ऐतिहासिक मामलों का विश्लेषण करता है, और भारतीय न्यायशास्त्र की तुलना रॉथ बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका और मिलर बनाम कैलिफ़ोर्निया जैसे प्रमुख

यू.के. और यू.एस. मिसालों से करता है। मुख्य निष्कर्ष यह है कि जबकि भारत का हिकलिन टेस्ट से कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट में बदलाव रचनात्मक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति दर्शाता है, कानून अभी भी अस्पष्ट और असंगत बना हुआ है, खासकर भारत की सांस्कृतिक विविधता और अश्लीलता को परिभाषित करने में बहुसंख्यक नैतिक मानकों के प्रभुत्व के कारण।

यह पेपर इस बात की पड़ताल करता है कि क्या भारत के हिकलिन टेस्ट से कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट में बदलाव ने एक अधिक संतुलित दृष्टिकोण बनाया है जो एक विविध समाज में नैतिक मूल्यों का सम्मान करते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करता है। यह "अश्लीलता" की स्पष्ट परिभाषा की कमी, असंगत न्यायिक व्याख्याओं, बहुसंख्यक नैतिकता के प्रभुत्व, और वास्तविक दुनिया के प्रभावों पर अनुभवजन्य विश्लेषण की अनुपस्थिति को नोट करता है। यह बदलाव कलात्मक स्वतंत्रता के लिए प्रगति का प्रतीक है, लेकिन दुरुपयोग को रोकने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि अश्लीलता कानून भारत की विकसित हो रही सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं, स्पष्ट, नुकसान आधारित दिशानिर्देशों की आवश्यकता है। (Chauhan)

यह पेपर जांच करता है कि भारतीय अदालतों ने अश्लीलता क्या है, यह तय करते समय कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट को कैसे अलग अलग तरह से लागू किया है, और यह तर्क देता है कि इसकी सब्जेक्टिविटी के कारण न्यायिक नतीजों में टकराव हुआ है। डॉक्ट्रिनल और केस बेस्ड एनालिसिस का इस्तेमाल करते हुए, लेखक अलग अलग अदालती व्याख्याओं की तुलना करते हैं  जैसे कि रणवीर इलाहाबादिया के मामले में प्रतिबंधात्मक विचारों से लेकर केरल हाई कोर्ट के ब्रेस्टफीडिंग कवर फैसले जैसे अधिक उदार विचारों तक  ताकि भारत के विविध सामाजिक परिदृश्य में "समुदाय" को परिभाषित करने में अस्पष्टता को दिखाया जा सके। मुख्य निष्कर्ष यह है कि कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट एक बहुसांस्कृतिक और डिजिटल समाज में अपर्याप्त है, और लेखक इसे एक वेरिएबल ऑब्सेनिटी टेस्ट से बदलने का प्रस्ताव करते हैं जो बोलने वाले के इरादे, संचार के तरीके और लक्षित दर्शकों को ध्यान में रखता है, जिससे अश्लीलता के न्यायनिर्णयन के लिए अधिक संदर्भ संवेदनशील और सुसंगत दृष्टिकोण सुनिश्चित होता है।
लेखक ध्यान देते हैं कि कम्युनिटी स्टैंडर्ड्स टेस्ट अस्पष्ट और व्यक्तिपरक है, जो भारत के विविध समाज में "समुदाय" क्या है, इसे परिभाषित करने में विफल रहता है। वे असंगत न्यायिक व्याख्याओं और राष्ट्रीय बनाम स्थानीय नैतिक मानकों को लागू करने के बीच भ्रम को उजागर करते हैं। इसके अलावा, यह टेस्ट डिजिटल युग के लिए अनुपयुक्त है, क्योंकि यह ऑनलाइन या कलात्मक अभिव्यक्ति के इरादे, संदर्भ और दर्शकों की उपेक्षा करता है। (law and other things)

**अश्लीलता और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म**

भारत में डिजिटल कंटेंट में अश्लीलता के मुद्दे को संबोधित करने के लिए मजबूत कानूनी ढांचा है, जो ऑनलाइन साझा की गई कला और साहित्य पर गहरा प्रभाव डालता है। भारतीय न्याय संहिता, 2023, धारा 292 में, किसी भी अश्लील सामग्री, जिसमें डिजिटल पुस्तकें, चित्रण, फिल्में, और प्रतिष्ठाएं शामिल हैं, की बिक्री, वितरण, या सार्वजनिक प्रदर्शन पर रोक लगाती है, जिसे अश्लीलता के रूप में परिभाषित किया गया है। जो कंटेंट भ्रष्टाचार, दुष्टाचार, या कामुकता की ओर आकर्षित करता है। जानकारी प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 ( धारा 67 और इसके संशोधन ) विशेष रूप से अश्लील डिजिटल सामग्री के प्रकाशन, प्रसारण, या धारण को लक्ष्य बनाता है, जिसमें वेबसाइटों, सोशल मीडिया, और स्ट्रीमिंग प्लेटफार्मों पर कंटेंट शामिल है । महिलाओं के अशोभनीय प्रतिष्ठापन ( निषेध ) अधिनियम, 1986, हाल ही में संशोधन द्वारा विस्तारित, वह सामग्री अपराधी ठहराता है  जो अब डिजिटल में भी शामिल है  जो महिलाओं को अशोभनीय या अपमानजनक ढंग से चित्रित करता है। इसके अलावा, बाल संभोग अपराधों से बच्चों की सुरक्षा (POCSO) अधिनियम, 2012, ने बाल यौन अपराधों के प्रयोग या प्रसारण पर कठोर दंड लगाने का प्रावधान किया है।मैंने किसी भी मीडिया, ऑनलाइन प्लेटफार्म सहित, में अपशब्द सामग्री का उपयोग किया है । ये कानून समूहित रूप से, डिजिटल फॉर्मेट में कला और साहित्य कार्यों के नियमन करते हैं, उन्हें सृजनात्मक स्वतंत्रता और कानूनी अनुपालन के बीच संतुलन बनाने की

आवश्यकता होती है। न्यायालय "समुदाय मानकों" की जाँच करते हैं, सामग्री के उद्देश्य और संदर्भ पर विचार करते हैं, लेकिन कानून के अस्पष्टता अक्सर कलाकारों और लेखकों को चुनौती देती है। इसलिए, सामग्री निर्माताओं को वैधानिक जोखिमों को नेविगेट करते हुए सामृद्ध कला और साहित्यिक डिजिटल संस्कृति के लिए योगदान देने हेतु उत्तरदायी प्रकाशन सुनिश्चित करना होगा, जैसे कि आयु सत्यापन, ट्रिगर चेतावनियाँ, और संपादकीय जाँच को लागू करना। यह विकासशील कानूनी पारिस्थितिकी तंत्र जनता की नैतिकता की सुरक्षा करने का उद्देश्य रखती है बिना कला की अभिव्यक्ति को दमन किए, डिजिटल क्रांति द्वारा उत्पन्न की गई जटिलताओं को मान्य करती है।

यह प्रकरण अप्रैल 2022 का है। मुंबई के व्यवसायी मुस्तफ़ा कराचिवाला, जो बी. के. पॉलीमैक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड नामक कंपनी के स्वामी हैं, लंदन से सात पेंटिंग्स मुंबई लेकर आ रहे थे। मुंबई हवाई अड्डे पर सीमा शुल्क विभाग ने इन चित्रों को जब्त कर लिया तथा यह कहते हुए रोका कि ये "अश्लीलता को प्रोत्साहित" करती हैं। (Deedwania)

यह विवाद इसलिए उत्पन्न हुआ क्योंकि भारत में अश्लीलता से संबंधित विधिक प्रावधान पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं हैं। मुस्तफ़ा कराचिवाला ने इस कार्यवाही के विरुद्ध बॉम्बे हाई कोर्ट में याचिका दायर की और यह प्रश्न उठाया कि इन चित्रों को अश्लील किस आधार पर माना गया। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि कला राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर का अंग है यदि नग्नता ही अश्लीलता का मापदंड है, तो खजुराहो के मंदिरों में स्थित नग्न मूर्तियों को भी अश्लील ठहराना होगा, जबकि वे भारतीय कला की अमूल्य धरोहर मानी जाती हैं। भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अश्लीलता की परिभाषा यह कहती है कि कोई भी सामग्री जो "कमज़ोर मनोवृत्ति वाले व्यक्ति में कामोत्तेजना उत्पन्न करे" उसे अश्लील माना जा सकता है। परंतु डिजिटल युग में यह परिभाषा अत्यंत संकीर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि आज के समय में साहित्य, चित्रकला और डिजिटल माध्यमों में नग्नता अथवा यौनता के विविध रूप वैश्विक स्तर पर उपलब्ध हैं। इसलिए वर्तमान सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अश्लीलता की परिभाषा का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

इस प्रकरण में बॉम्बे हाई कोर्ट ने यह टिप्पणी की कि किसी व्यक्ति की निजी नैतिक या सांस्कृतिक सोच को दूसरों पर थोपना उचित नहीं है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि प्रत्येक नग्न चित्र या यौन क्रिया को प्रदर्शित करने वाली कलाकृति को स्वचालित रूप से अश्लील नहीं कहा जा सकता। जब्त की गई चित्रकृतियाँ प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार एफ. एन. सूज़ा और अकबर पदमसी की थीं।
आगे, वर्ष 2024 में सुप्रीम कोर्ट ने एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए कहा कि कई कलाकारों और शिक्षकों का मानना है कि भारतीय समाज में यौन विषयों पर चर्चा को लज्जाजनक माना जाता है। इस मानसिकता के कारण लोग यौन स्वास्थ्य पर खुलकर बात करने से हिचकिचाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप किशोरों को आवश्यक जानकारी नहीं मिल पाती। न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा की अध्यक्षता वाली पीठ ने मद्रास हाई कोर्ट के एक निर्णय को निरस्त करते हुए कहा कि सेक्स एजुकेशन को "पाश्चात्य अवधारणा" मानना पूर्णतः भ्रमित दृष्टिकोण है। इसके विपरीत, युवाओं को यौन शिक्षा देना आवश्यक है ताकि उनमें नैतिकता, जागरूकता और आत्मसंयम का विकास हो।

**सीमा**

भारत के डिजिटल अश्लीलता संबंधी कानून, जो काफी व्यापक हैं, कई महत्वपूर्ण सीमाओं का सामना करते हैं। पहले, "अश्लीलता" की कानूनी परिभाषाएं अक्सर अस्पष्ट और वैयक्तिक होती हैं, जिससे न्यायिक व्याख्या और प्रवर्तन में असंगतियां पैदा होती हैं। समुदाय के मापदंडों का परीक्षण, जो अश्लीलता के मामलों में व्यापक रूप से लागू होता है, "समुदाय" को परिभाषित करने के लिए एक स्पष्ट फ्रेमवर्क की कमी होती है, विशेषकर एक सांस्कृतिक रूप से विविध और डिजिटलयुक्त समाज में, जिससे क्षेत्रों और प्लेटफॉर्मों में समान मानक लागू करना कठिन हो जाता है। दूसरे, कानून डिजिटल सामग्री के प्रसारण की जटिलताओं को अपर्याप्त रूप से संभालते हैं, जहां अश्लील सामग्री की निजी शेयरिंग और सार्वजनिक प्रसारण को अक्सर इसी तरह से देखा जाता है, जिससे इस प्रकार की प्रकाशनों के पीछे के संदर्भ या इरादे का

अंतर नहीं किया जाता। तीसरे, कलात्मक और साहित्यिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाजिक नैतिकता के साथ संतुलित करने में अस्पष्टता है जिसका परिणामस्वरूप संभावित तानाशाही या रचनात्मकता पर ठंडे प्रभाव परिप्रेक्ष्य में, विशेषकर उन मामलों में जहां कला की योग्यता संदिग्ध है। इसके अलावा, डिजिटल पर्यावरण त्वरित गति से विकसित हो रहा है, लेकिन कानूनी प्रावधान और कार्यान्वयन यंत्र इससे संगत रहने में संघर्ष करते हैं, विशेष रूप से सोशल मीडिया, OTTs, और इंटरैक्टिव ऐप्स जैसे उभरते प्लेटफार्म के मामले में। अंत में, मॉनिटरिंग की सीमाओं, ऑनलाइन सामग्री की अंतरराष्ट्रीय प्रकृति और गोपनीयता संबंधी चिंताओं के कारण कार्यान्वयन चुनौतियाँ जारी रहती हैं, जो अक्सर पीड़ितों को असुरक्षित छोड़ देती हैं या सर्जनकर्ताओं को मनमाने प्रक्षेपण के प्रति संवेदनशील बना देती हैं। ये सीमाएं यह स्पष्ट करती हैं कि स्पष्ट, पारदर्शी और संदर्भ संवेदी सुधारों की जरूरत है जो कानूनी सुरक्षा को समन्वित कर सकते हैं बिना डिजिटल अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक बहुसंख्यता को दबाए।

## निष्कर्ष

हिकलिन टेस्ट, जो 19वीं सदी का एक पुराना कानूनी मानक है, अश्लीलता को परिभाषित करने में संकुचित और उपयुक्त नहीं रहा क्योंकि यह सामग्री को उसके छोटे छोटे अंशों में देखकर निर्धारित करता था कि क्या वह कमजोर व्यक्तियों को भ्रष्ट कर सकता है। भारत में इस परीक्षण का उपयोग लंबी अवधि तक हुआ, लेकिन इसे समय के साथ बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक और डिजिटल युग के संदर्भों के अनुकूल नहीं माना गया। भारत ने 2014 के बाद से समुदाय मानक परीक्षण को अपनाया जिसने पूरी सामग्री को समग्र रूप में देखा और समकालीन समुदाय के नैतिक मानकों के अनुसार निर्णय लिया, लेकिन इसमें भी व्यापक सांस्कृतिक विविधता और न्यायिक पारदर्शिता की कमी जैसे गंभीर मुद्दे हैं। न्यायालयों द्वारा "सामान्य समुदाय" की अवधारणा अस्पष्ट है, जिसके कारण न्यायिक निर्णयों में असंगति होती है। डिजिटल युग में जब अश्लील सामग्री तेजी से विभिन्न प्लेटफार्मों पर फैलती है, वर्तमान कानूनी ढांचे को संशोधित करने और उसे अधिक स्पष्ट, पारदर्शी, संदर्भ संवेदी और अनुकूलन बनाने की सख्त आवश्यकता है ताकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक नैतिकता के बीच संतुलन स्थापित हो सके।

प्रमुख न्यायिक मामलों जैसे "समरेश बोस बनाम अमल मित्र" ने यह स्थापित किया है कि अश्लीलता को केवल सामग्री के अंशों से नहीं, बल्कि पूरे काम के साहित्यिक या कलात्मक महत्व और उसके प्रभाव को देखकर निर्णय किया जाना चाहिए। यही दृष्टिकोण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करता है। यह स्पष्ट करता है कि भारतीय अश्लीलता कानूनों में हिकलिन टेस्ट से समुदाय मानक परीक्षण तक का विकास हुआ है, लेकिन अभी भी सुधार की आवश्यकता है ताकि विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक और डिजिटल युग की चुनौतियों को प्रभावी रूप से संबोधित किया जा सके। भविष्य में ऐसे कानूनी सुधार आवश्यक हैं जो नुकसान आधारित दृष्टिकोण अपनाकर न्यायिक स्पष्टता, पारदर्शिता और सुसंगतता सुनिश्चित करें। यह भारतीय न्यायालयों की प्रवृत्ति, सांस्कृतिक विविधता, डिजिटल युग की आवश्यकताओं और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन के लिए कानून सुधार के महत्व पर प्रकाश डालता है।

## References


- Amarendra Nath Sen. indiankanoon.org. 24 september 1985.
- Chauhan, Parakram. “OBSCENITY IN INDIA: TRACING JUDICIAL STANDARDS.” Indian Journal of Integrated Research in Law (n.d.). english.
- Deedwania, Bapu. High art offends customs officials, works of Souza & Padamsee deemed obscene, Hindustan Times. 24 october 2024. english.
- Evolving Dimensions of Obscenity Law: A Lesson for India from the Jurisdictions of UK and US. n.d. english.
- Khanna, Sayed Kirdar Husain and Aayush. law and other things. 24 june 2025.

• Kumar, Adarsh. STUDY ON THE HICKLIN TEST AND ITS IMPACT ON OBSCENITY LAWS IN INDIA. n.d.
• Nishtha Chopra. Constitutional Law Society. दि.न. english.
• Ravi S. Evolving Dimensions of Obscenity Law: A Lesson for India from the Jurisdictions of UK and US. 03 april 2024. english.
• Tiwari, Paridhi. Legal Wires. 27 June 2024. english.
• Legal Implications of Obscenity Charges in Digital Content in India – ProLegalMinds
• Section 67 of Information Technology Act, 2000 iPleaders
• Obscenity Laws in India
• Chauhan, Sushila Devi, and Ritu. “COMBATING CYBER OBSCENITY IN INDIA AND UNITEDSTATES OF AMERICA: A COMPARATIVE ANALYSIS.” Jamia Law Journal, vol. 3, no. ISSN No.: 2456 2718 77, 2018, docs.manupatra.in/newsline/articles/Upload/0F834309 331E 4716 BE09 B2CC64317972.%20Combating%20Cyber_%20cyber%20law.pdf.
• ijassonline.in/HTML_Papers/International Journal of Advances in Social Sciences__PID__2013 1 1 2.html
• Sharma, Palvi, and Rani Aruna. “A Critical Analysis on Obscenity.” Indian Journal of Law, Polity and Administration, 2022
• Obscenity Through the Legal Lens: A Comprehensive Primer (Part I) NLS Forum
• Used Google Translator (English to Hindi)
• Used Good vibes Only Ai Translator AI Language Converter - हिन्दी में टाइप करें Hindi, Hinglish, English, Pinglish, ਪੰਜਾਬੀ

5

# बाल कला में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

**चानण मल**
सहायक आचार्य, चित्रकला
राजकीय महाविद्यालय नदबई, भरतपुर
ई—मेल chanan-suraj@gmail.com
मोबाइल नंबर — 9929431807

**सारांश**

बालक जन्म से ही कल्पनाशील, रचनात्मक और भावनाशील होता है। वह अपनी अनुभूतियों, जिज्ञासाओं और अनुभवों को रंगों, आकृतियों, शब्दों आदि को रचनात्मक माध्यमों से व्यक्त करता है। बालकों के चित्रों में न केवल कलात्मक रुचि बल्कि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी स्पष्ट दिखाई देती हैं। उनके चित्रों में कविता, कहानी, भावनाएं और प्रतीक रंगों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। उनकी सृजनशीलता और कल्पनाशीलता उनकी मानसिक स्वतंत्रता और संवेदनशीलता का प्रतीक होती है। उनका मन किसी सीमाओं के बंधन को स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार बालकों के चित्र केवल दृश्यात्मक अंकन नहीं रहते, बल्कि उनकी साहित्यिक चेतना, भावनात्मक प्रवृत्तियाँ और कल्पनाशक्ति का जीवंत प्रतिबिंब बन जाते हैं। उनके चित्रों में कथा, भावना, प्रतीक और संदेश छिपा होता है, जो उनकी कल्पना की शक्ति और साहित्यिक चेतना को उजागर करता है। यही विशेषता उनके चित्रों को साधारण कला से ऊपर उठाकर साहित्यिक कला का रूप प्रदान करती है। बालकों के चित्रों में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उनके मन की रचनात्मक सोच और भावनात्मक दृष्टि से उत्पन्न होती हैं। वे शब्दों में कहानी या कविता लिखने में असमर्थ होते हुए भी अपने चित्रों में कथा, भाव और कल्पना को सहज रूप से व्यक्त कर देते हैं। बालक द्वारा चित्रित दृश्य उनके मन की कविता या रंगों में अंकित कहानी के समान होता है। इन चित्रों में कल्पना, संवेदना, कथा—तत्व और प्रतीकात्मकता जैसी विशेषताएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। बालक अपनी कल्पना शक्ति द्वारा वास्तविकता से परे के दृश्य रचता है और कभी—कभी किसी कहानी, प्रसंग या घटना का चित्रात्मक अंकन भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। रंगों और आकृतियों के माध्यम से वह प्रतीकात्मक रूप से अपने विचार और भाव प्रकट करता है।

**बीज शब्द—** अंकुरण, कल्पनाशक्ति, कथात्मकता, प्रतिकात्मकता, मनोवृत्तियां, प्रतिबिम्ब, पुनरनुभव, प्रतीक, अनुभूति, अमूर्त, संवेदना बाल्यकाल व्यक्ति के जीवन की अतिसंवेदनशील, रचनात्मक या सृजनात्मक अवस्था होती है। एक बालक का अबोध मन अत्यधिक चंचल, स्वच्छंद तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है। वह सदा अपनी कल्पना में खोया रहता है। इस अवस्था में बालक विविध प्रकार के रचनात्मक क्रियाकलापों के द्वारा आनंद प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जैसे खेल—खेलना, मिट्टी के खिलौने या घरौंदे बनाना, कहानी सुनना या सुनाना, चित्रण करना आदि। उक्त गतिविधियों के माध्यम से वे अपनी मानसिक स्थितियों (शांति या संघर्ष), भावनाओं (विकृत या सुविकृत), संवेगों तथा इच्छाओं का प्रकाशन करते हैं। जिसमें उसकी सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति होती है। इनमें सर्वाधिक सृजनात्मकता चित्रों के माध्यम से प्रकट होती है। बालकों के चित्र उनकी सहज अभिव्यक्ति का माध्यम होते हैं। बच्चों में चित्र बनाने की प्रेरणा (उत्कंठा) जन्मजात ही होती है, जिस तरह आदिमानव की स्वाभाविक वृत्ति चट्टानों और गुफाओं की दीवारों पर चित्र आंकने की थी उसी तरह हर बालक में भी यह एक आदिम वृत्ति होती है 1। बचपन की इस अपरिपक्व अवस्था में वह अपने अंतर्मन की अभिव्यक्ति या आमोदवश अपने सहज ज्ञान के आधार पर रंग व रेखाओं के माध्यम से कलात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण अनेक प्रकार के रूपों का सृजन करता है। बालकों की इन अबोध चित्राकृतियों के रचनात्मक तत्वों पर उनके उन्मुक्त और स्वच्छंद मन का प्रभाव होता है। उनके चित्र उसकी आंतरिक मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब होते हैं। उदाहरण स्वरूप वह अपने अकेलेपन के अनुभव को धुंधले व धूसर रंगों तथा विकृत आकृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं, वहीं अपने आनन्द और प्रसन्नता को उज्जवल और चमकदार रंगों तथा विस्तृत व सुंदर आकृतियों के द्वारा

चित्रित करते हैं। चित्रों या कला–कृतियों के द्वारा बालक उन अनुभवों के पुनः स्मरण, पूर्वानुभव अथवा पुनरनुभव आदि में समर्थ होता है जिन्हें वह अन्य किसी विधि से व्यक्त नहीं कर सकता।2

प्रारंभ में बालक टेढ़ी–मेढ़ी या जिग–जेग प्रकार की रेखाओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के अमूर्त आकारों का सृजन करता है जो धीरे–धीरे मूर्त रूपों में विकसित होते हैं। वह बाह्य जगत का अवलोकन अपने सरल दृष्टिकोण, अनुभव और बाल स्वभाव के आधार पर करता है, तथा उन्हें शब्दों, चित्रों, खेलों आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। बालक जब चित्रण कार्य करता है तो वह केवल आकारों, आकृतियों या रूपों का अंकन नहीं करता अपितु अपने आंतरिक मन के विचारों, संवेदनाओं, कल्पनाओं, भावनाओं आदि को रेखा, रंग, रूप के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उनके चित्रों की मौलिकता और आडंबर रहित अभिव्यक्ति उसे विशिष्टता प्रदान करती है।
बालकों के चित्र रचनात्मक गतिविधियों के साथ–साथ एक विशेष प्रकृति की शब्दहीन भाषा शैली होती है, जो गहरे अर्थों एवं भावनाओं को संजोए रखती है तथा उनकी चेतना, अनुभूति, कल्पना और संवेदना को जीवंत बनाती है। यद्यपि बालकों के चित्रों का सार अर्थ भाषा कौशल के समानांतर ही विकसित होता है परन्तु उनमें चित्रण की प्रवृत्ति भाषा कौशल से पहले ही विकसित होने लगती है। उनके चित्रों में एक विशेष प्रकृति की शब्दहीन कथा का प्रवाह, काव्यात्मक लय और प्रतीकों की सृष्टि विद्यमान रहती है, जो उसकी आंतरिक साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करती है। साहित्यिक प्रवृत्तियों का अर्थ उन तत्वों से है जो रचना को कल्पनाशील, भावपूर्ण और प्रतीकात्मकता प्रदान करते हैं। जैसे साहित्यिक रचना में कल्पना, भाव, प्रतीक, रूपक, संवेदना, कथानक आदि की अभिव्यक्ति होती है वैसे ही चित्र सृजन में भी ये प्रवृत्तियां प्राकृतिक रूप से विद्यमान रहती है। बालकों द्वारा रचित चित्रों में भी ये प्रवृत्तियां स्वतरू प्रस्फुटित होती है। चित्रकला एवं साहित्य में गूढ़ सम्बन्ध होता है। ये मूलतः एक ही मानवीय मन की अभिव्यक्ति के दो विविध रूप हैं, किन्तु उसमें भिन्नता नहीं है। साहित्य में शब्दों से चित्र बनते हैं वहीं चित्रों में रंगों से साहित्य का सृजन होता है। दोनों में ही सृजनात्मक विशेषताएं विद्यमान रहती है, दोनों ही सृजन के महत्वपूर्ण माध्यम है, दोनों का ही उद्देश्य व्यक्ति की भावनाओं व अनुभवों को जीवंत एवं मूर्त रूप में साकार करना है अर्थात व्यक्ति अपनी आंतरिक मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से या रंगों, रेखाओं, रूपों आदि के माध्यम से ही करता है। साहित्य शब्दों के तो वहीं चित्र आकारों के द्वारा भावों को साकार करते हैं। यद्यपि बालकों की शाब्दिक अभिव्यक्ति में साहित्यिक कौशल का अभाव रहता है, क्योंकि इस अवस्था में उनमें साहित्यिक कौशल की प्रवृत्ति अविकसित रहती है लेकिन उनके चित्रों का गहन विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होता है कि उसमें साहित्य की मौलिक प्रवृत्तियां जैसे कथात्मकता, संवेदना, भावाभिव्यक्ति, कल्पना, प्रतिकात्मकता, लय आदि सहज रूप से विद्यमान रहती है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि बालकों के चित्र साहित्यिक चेतना की दृश्यात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। उनके चित्रों में रेखाओं, रंगों और आकारों का कलात्मक संयोजन साहित्यिक बिंब के समान दृष्टिगोचर होता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कला और साहित्य का मुख्य स्रोत एक ही होता है – कल्पना और मानवीय संवेदना। बालक अपनी कल्पनाओं में बाल–कहानियों का निर्माण करते हैं तथा अपने चित्रों में उन कथाओं या पात्रों की रचना करते हैं। इस प्रकार बाल–कला में साहित्यिक प्रवृत्तियां बालकों की भावनाओं, संवेदनाओं, कल्पनाओं और प्रतीकों के माध्यम से प्रकट होती है, तथा उसका स्वरूप अत्यंत समृद्ध होता है। इस दृष्टिकोण से उनके चित्रों का विश्लेषण एवं अध्ययन अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण विषय हो जाता है।

बालकों की चित्रकला में साहित्यिक अभिव्यक्ति का सबसे अहम पक्ष उसकी कथात्मकता है। बालक जब एक चित्र का सृजन करता है तो उसमें केवल रूपाकार नहीं होते हैं अपितु पूरी एक कथा दृष्टिगोचर होती है, उसमें उस घटना या प्रसंग का क्रमबद्ध वर्णन दिखाई देता है। जैसे एक विद्यालय के दृश्य में कक्षा में अध्ययनरत बच्चे, अध्यापन कराते शिक्षक, मैदान में क्रिडारत बच्चे, विद्यालय का भवन, सड़क, आइस्क्रीम बेचने वाला आदि दृश्यों एवं पात्रों का अंकन बालक एक साथ करता है, जिससे उनके चित्र में अंकित प्रत्येक भाग एवं पात्र मिलकर एक लघुकथा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। उनके चित्रों में अंकित सभी पात्रों, घटनाओं, स्थितियों में परस्पर संबंध होता है। जिस प्रकार साहित्य में एक कथा विभिन्न घटनाओं के माध्यम से अर्थ प्रकट करती है उसी प्रकार बालकों के चित्र में अंकित आकृतियां कथा का माध्यम बन जाती है। इस प्रकार बालक की चित्रकला एक साहित्यिक रचना के समान प्रतीत होती है,

जिसमें आरंभ से लेकर अंत तक की सभी घटनाओं का बोध होता है। वह केवल—श्यात्मक अंकन नहीं अपितु रूपों एवं रंगों के द्वारा सृजित साहित्यिक कथा या कविता बन जाती है

बालकों की संवेदनाएं उनके उत्साह, भावों, विचारों, अनुभवों, स्वप्नों, अभिरुचियों आदि को प्रतिबिंबित करती है, जिन्हें वह अपनी कहानियों, चित्रों, खेलों आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। बालक अपने आस—पास के परिवेश में जिन पदार्थों या व्यक्तियों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है, उन्हीं संवेदनात्मक अनुभवों की अभिव्यक्ति वह अपने चित्रों में सर्वाधिक करता है। उनकी रेखाओं, रंगों और रूपाकारों में संवेदनात्मक उतार—चढ़ाव से जो लय उत्पन्न होती है वह उन्हें साहित्यिकता प्रदान करती है। साहित्य और बाल—कला दोनों का उद्देश्य बालक की संवेदनशीलता को विकसित करना है। साहित्य में भावनाएं शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है जबकि वही भावनाएं बाल—कला में रंग और रेखाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। दोनों में समान साहित्यिक भाव और रचनात्मक दृष्टि मिलती है। बालक में एक व्यस्क की अपेक्षा संवेदना अधिक विशुद्ध रूप से उपस्थिति रहती है क्योंकि व्यस्क व्यक्ति का ज्ञानात्मक विकासपूर्ण रूप से हो चुका होता है, उनमें सांवेदनिक तथ्यों का संगठन एवं उत्तेजना विशेष के अर्थ का संज्ञान इतनी शिघ्रता से होता है कि प्रायः विशुद्ध संवेदना को प्रत्यक्षीकरण से भिन्न करना संभव नहीं होता 4। वहीं बालकों में ज्ञानात्मक शक्ति अविकसित रहती है तथा उसकी भावनात्मक शक्ति भी अधिक सक्रिय रहती है, परिणाम स्वरुप बालक के सामने उपस्थित उत्तेजना का वह सरलता से पूर्व ज्ञान नहीं कर पाता, जिससे उनमें संवेदना की उपस्थिति अधिक विशुद्ध रूप से तथा दीर्घकालिक रहती है। बालक अपने चित्रित रूपों एवं दृश्यों के प्रति भी अत्यधिक संवेदनशील रहते हैं।

बालक अपनी संवेदनात्मक अनुभूतियों को वास्तविक रूप में प्रदर्शित नहीं करता है, अपितु वह उन्हें भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। जब वह किसी पशु, पक्षी, व्यक्ति या दृश्य का चित्रण करता है तो उसके अंकन में एक भावनात्मक संबंध दृष्टिगोचर होता है। जैसे बारिश के दृश्य में बालक टपकती मोटी बूंदे, नाचते—भीगते बच्चे, बादलों की लहरें आदि भावनाओं का काव्यात्मक चित्रण करता है। वह केवल दृ श्यों के बाह्य अंगों का प्रदर्शन मात्र नहीं होते हैं अपितु उसके प्रति अपनी आंतरिक मनोस्थितियों जैसे प्रेम, प्रसन्नता, उत्साह, उल्लास, स्नेह, करुणा, सुरक्षा, अपनापन आदि की भावना को भी अभिव्यक्त करता है। यही भावनात्मक संवेदनशीलता उनके चित्रों की साहित्यिक प्रवृत्ति का आधार बनती है। बालक शब्दों के माध्यम से भले ही अपनी बात नहीं कह सकता है परंतु अपने चित्रों में व्यक्त भावनात्मक कथन से वह संवाद करने में समर्थ हो जाता है। बालक अपने चित्र सृजन में एक साहित्यकार की भांति शब्दों की बजाय रंगों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करता है। भावना जिस तरह प्रवाहमयी और तर्कातीत, आकस्मिक और गूढ़ होती है, उसी तरह रंगों का मूल भाव भी गूढ़ होता है 5।

बालकों की कल्पनाशीलता उनकी रचनात्मक शक्तियों में मुख्य स्थान रखती है, जो उनके चित्रों में अवास्तविक रूपों एवं रोमांचकारी दृश्यों के रूप में दृष्टिगोचर होती है। बालकों की कल्पना वस्तुनिष्ठ, तारगिंक तथा वास्तविक जीवन से पूर्णतः अनियंत्रित रहती है जिसका क्षेत्र अत्यधिक विस्तरित होता है। उनकी कल्पनाओं में प्रतीकात्मकता का अत्यधिक समावेश रहता है, साथ ही उनमें स्थायित्व का अभाव पाया जाता है। कल्पना के माध्यम से बालक अपने विचारों को सौंदर्यात्मक व रचनात्मक ढंग से प्रकाशित कर पाते हैं। कल्पना कविता, कला एवं साहित्य के सृजन का मुख्य आधार होती है। बालक अपनी कल्पना की अभिव्यक्ति अपने खेलों, अभिनयों तथा चित्रांकनों आदि के माध्यम से करते हैं। बालक प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण वास्तविकता का सामना नहीं कर पाते हैं या अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में असफल रहते हैं तो वे अपनी अतृप्त इच्छाओं की संतृप्ति हेतु कल्पनाओं का सहारा लेते हैं तथा सुख की कल्पना द्वारा तात्कालिक दुख के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न करते हैं। बालकों का व्यवहार वयस्कों द्वारा नियंत्रित रहता है, अतः मनोनुकूल कल्पना द्वारा मानसिक संतुष्टि प्राप्त करते है। बालकों का अपर्याप्त एवं अधूरा चिंतन या ज्ञान भी कल्पना उत्पत्ति में सहायक होता है जैसे घोड़े को पंखों सहित आकाश में उड़ने की कल्पना, निर्जीव पदार्थ में सजीवता की कल्पना आदि। बच्चों के पास शब्दों की भाषा कम होती है। किंतु उसके पास दूसरी ऐसी भाषा होती है, जो उसके मन में भरी कहानियों और अनुभवों को दूसरों को बता सके,6 और वह है चित्र की भाषा, जो रेखा, रंग, रूप के माध्यम से मानसिक या काल्पनिक प्रतिबिंब प्रकट करती है। बालकों के चित्रों में अंकित काल्पनिक रूप उन्हें साहित्यिक

विशेषताएं प्रदान करते हैं। बालकों में वास्तविकता से परे जाकर अपने परिवेश को नए और अवास्तविक रूपों में देखने की क्षमता विद्यमान रहती है। वह अपनी कल्पना में एक नवीन सृष्टि का सृजन करते हैं जो उनके चित्रों में अभिव्यक्त होती है, जिसमें साहित्यिक गुण विद्यमान रहते हैं। आसमान में उड़ते घोड़े या कारों की कल्पना, संवाद करते जानवरों की कल्पना, आकाश से पुष्प वर्षा, परियों आदि की कल्पना उसकी साहित्यिक कल्पनाशीलता की द्योतक होती है। बालकों की यह काल्पनिक अभिव्यक्ति एक कवि या साहित्यकार के समान ही प्रदर्शित होती है। बालक अपनी अबोध मानसिकता के अनुरूप अपने चित्रों की व्याख्या शब्दों के द्वारा भी करने का प्रयास करते हैं। बालक अपने चित्रों में रूपों और रंगों का भी प्रतिकात्मक प्रयोग करते हैं,7 जो उन्हें एक साहित्यिक गुण प्रदान करते हैं। साहित्य में जैसे कवि रूपक और प्रतीक के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है, वैसे ही बालक अपनी चित्रों में प्रतीकों का प्रयोग करता है। वह लाल रंग से प्रेम, पीले से प्रसन्नता, नीले से शांति और काले से भय या दुख का संकेत देता है। इस प्रकार रंग उसके लिए शब्दों का कार्य करते हैं। बालक अपने चित्रण कार्य में कुछ विशेष प्रकार के रूपाकारों के द्वारा अपने अनुभवों को प्रकट करता है, जो वस्तु के वास्तविक आकार से भिन्न तथा उनके अपने अनुभवों से निर्मित, दीखने वाली वस्तुओं के आकार के होते हैं। इसमें बच्चा वस्तु को 'जैसा जानता है' या 'जैसा अनुभव करता है', वैसा चित्र बनाता है वस्तु 'जैसी दिखती है', वैसा नहीं।8 बालक अपनी अबोध समझ और अनुभव के आधार पर उन वस्तुओं के निश्चित प्रतीक निर्धारित कर लेते हैं, तथा उन्हीं प्रतीकों का चित्रण अपने चित्रों में करते हैं, जैसे व्यक्ति के चेहरे एवं आंखों को वृताकार या गोलाकार ज्यामितीय रूपों में अंकित करना। बाल–कला के ये प्रतीकात्मक रूप बालकों की व्यक्तिगत सोच और वस्तुओं के प्रति उनके काल्पनिक व भावात्मक दृष्टिकोण के आधार पर सृजित होते हैं जिसका वस्तु या विचार के साथ मनोवैज्ञानिक एवं साहित्यिक संबंध होता है। बालकों द्वारा चित्रित प्रतीकात्मक आकृतियाँ परिवर्तनशील होती है, जो समय, स्थिति और भावों के अनुसार बदलती रहती है। बालक एक ही प्रतीक के माध्यम से विभिन्न वस्तुओं को अभिव्यक्त करते हैं, जैसे गोले के माध्यम से सूर्य, चेहरा, फल आदि का चित्रण। कभी–कभी बालकों के प्रतीकात्मक रूप वस्तु के मूलरूप से पूर्णतः भिन्न होते हैं अर्थात वस्तु और उसके चित्रित प्रतीक रूप की बाह्य बनावट में कोई संबंध नहीं होता है, परन्तु फिर भी बालक उन प्रतीकों में उस वस्तु की अभ्यर्थना करते हैं, जैसे बालक एक गोलाकार आकृति में दो छोटे बिंदु तथा एक सीधी रेखा खींच कर उन्हें अपने पापा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे वस्तुओं के प्रतीकों की रचना अपनी चाक्षुष अनुभव के आधार पर नहीं करते। उन्हें बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा अपने प्रतीकात्मक रूप अधिक सत्य और यथार्थ प्रतीत होते हैं। बालक यथार्थ रूपों की अपेक्षा काल्पनिक मिथकों और कथा–कहानियों के प्रतीकात्मक रूपों के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं, ऐसे रूप उन्हें अधिक रूचिकर लगते हैं। बाल–कला में प्रतीकों का अंकन बालक के सरल दृष्टिकोण का परिणाम होते हैं। उनमें विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यस्कों के समान समझ एवं अनुभव का अभाव होता है। उनकी रचना–प्रक्रिया सहज, सरल और पूर्वाग्रह रहित होती है। उनके चित्रों में प्रतीकों की रचना उनके स्वाभाविक रेखांकनों द्वारा स्वतः सृजित होती है।

बालक कला का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि उसकी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उसके मानक विकास और बौद्धिक परिपक्वता से गहरा संबंध रखती है। बालक का अबोध मन प्रतीकों, रूपकों, मिथकों और कल्पनाओं से खेलना अधिक पसंद करता है। वह अपने चित्रों में उन्हीं रूपाकारों का अंकन करता है, जो उसे संवेदनात्मक और भावनात्मक रूप से अधिक प्रभावित करते हैं या जिसके प्रति उसमें जिज्ञासा का भाव प्रबल होता है। बालमनोविज्ञान के अनुसार, तीन से छः वर्ष की अवस्था में बालक "पूर्व–संवेदी चरण" में होता है। इस अवस्था में उसका मन रंगों और आकारों के माध्यम से विचार करता है। जैसे–जैसे उसकी अवस्था में वृद्धि होती है, उसकी चित्र सृजन में भी भावनात्मक गहराई और कथात्मक स्पष्टता का प्रभाव आने लगता है। यही क्रम साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास की दिशा को भी प्रदर्शित करता है। बालक की चित्र सृजन में साहित्यिक चेतना के प्रस्फुटन का तात्पर्य यह नहीं कि वह जानबूझकर साहित्यिक तत्वों का प्रयोग करता है, बल्कि यह उसकी स्वाभाविक मानसिक क्रिया का परिणाम होती है। उसके आंतरिक मन में उत्पन्न भावनाएँ स्वतरू ही रूप से प्रतीक और रूपक का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। इस प्रकार बालक के चित्रों में साहित्यिक चेतना की उत्पत्ति उसकी आंतरिक मानसिक स्थितियों का नैसर्गिक परिणाम होता है।

## निष्कर्ष

इस प्रकार हम निष्कर्ष पर पहुंचते है कि बालकों की चित्रकला में उपस्थित साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उन्हें रोचकता प्रदान करती हैं एवं हमें शोध कार्य हेतु प्रेरित करती हैं। ये हमें यह समझने में मदद करती है कि एक स्तर पर कला और साहित्य अविभाजित होते हैं। बालकों द्वारा रचित चित्र बिना शब्दों के द्वारा कही गई कहानी या कविता होती है। बाल–कला में केवल रंगों और आकृतियों का संयोजन मात्र नहीं होता, अपितु आंतरिक विचारों, कल्पनाओं, भावों और अनुभवों का साहित्यिक रूपांतरण भी होता है। उसके द्वारा अंकित प्रत्येक रेखा या रूप उसकी संवेदना और कल्पनाशक्ति का द्योतक होते हैं। इस दृष्टिकोण से देखने पर बाल–कला दृश्यात्मक कला के साथ–साथ साहित्यिक चेतना की भी अभिव्यक्ति होती है। बालकों के चित्र मौलिक होते हैं, तथा यही मौलिकता साहित्य का भी मूल तत्व होता है। बाल–कला में निहित साहित्यिक प्रवृत्तियों की उत्पत्ति बालक के मन की अंतरिम गहराइयों से होती हैं। वह अपने सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश और अनुभवों से प्रेरित होकर अपनी कल्पना में एक नवीन जगत की रचना करता है, जिसमें वास्तविकता और कल्पनाशीलता का अद्भुत सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। बाल–कला में कहानी की कथात्मकता, काव्य की भावनात्मकता, नाटक का संवाद और गद्य की संरचना आदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकट होते हैं। इस प्रकार, बाल–कला में साहित्य की लगभग सभी प्रवृत्तियों का अंकुरण किसी न किसी रूप में उपस्थित होता है। बालकों की चित्रों में सामाजिकता, नैतिकता और सांस्कृतिक मूल्य भी समावेशित रहते हैं। उनके चित्रों में सहयोग, प्रेम, पर्यावरण–संरक्षण, परिवार के प्रति स्नेह, देशभक्ति और प्रकृति–प्रेम जैसी प्रवृत्तियाँ झलकती हैं, जिसका सीधा संबंध साहित्य की मानवतावादी परंपरा से होता है। इस प्रकार बालकों के चित्र केवल व्यक्तिक अभिव्यक्ति नहीं, अपितु एक सांस्कृतिक प्रस्तुति भी होती है। बाल–कला में निहित साहित्यिक प्रवृत्तियां हमें बालक के व्यक्तित्व, व्यवहार, भावनाओं, और मनोस्थितियों को समझने में भी मदद करती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बाल–कला केवल सौंदर्यात्मक रचना ही नहीं, बल्कि बालक के आंतरिक मन में छिपे साहित्यिक संस्कारों, भावनात्मक गहराईयों और कल्पनाशीलता का मूर्तीकरण होता है।

## संदर्भ

1.प्रसाद, देवीः शिक्षा का वाहन कला, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, षष्ठम संस्करण, 2009, पृ. सं.–77

2.अग्रवाल, गिर्राज किशोरः कला–निबंध, अशोक प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, पृ. सं.–170

3,सिंह, विद्यासागरः कला और साहित्य का परस्पर संबंध और प्रभाव, (2002), दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृ.सं.– 92

4.तिवारी, प्रगतिः बाल कलारू एक मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन (विशेष संदर्भ वनस्थली विद्यापीठ), (2015), विजुअल आर्ट डिपार्ट मेंट, ललित कला संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, पृ. सं.–176

5.बर्वे, प्रभाकरः 'कला में आकार, अर्थ, और मर्म', (हिंदी अनुवाद, सत्यदेव त्रिपाठी), समकालीन कला, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, (अंक.46–47) 2015, पृ. सं.–44

6.प्रसाद, देवीः शिक्षा का वाहन कला, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, षष्ठम संस्करण, 2009, पृ. सं.–20

7.अग्रवाल, गिर्राज किशोरः कला–निबंध, अशोक प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, पृ. सं.–177

8.प्रसाद, देवीः शिक्षा का वाहन कला, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, षष्ठम संस्करण 2009, पृ. सं.–28

**SAHITYAYAN**
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

6

# समकालीन साहित्य एवं कला में अन्तः सम्बन्ध

**दिनेश कुमार मौर्य**
असिस्टेंट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
आगरा कॉलेज आगरा
मो0नं0 7897862468
dineshart686@gmail.com
**प्रोफेसर मीना कुमारी विभाग**
अध्यक्ष चित्रकला विभाग
आगरा कॉलेज आगरा
डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय आगरा

**सारांश**
साहित्य किसी समाज के वास्तविक परिवेष का आर्थिक, सामजिक, सांस्कृतिक ताने, बाने को अपने शाब्दिक, आंलकारिक, काव्यात्मक माध्यम से कि गयी प्रस्तुतीकरण का माध्यम है। साहित्य (काव्य) एवं कला के अन्तःसम्बन्ध को दोनों विद्याओं की सृजनषीलता की प्रक्रिया से स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। पौराणिक आख्यानों पर आधारित प्राचीन भारतीय कला कि समृद्विषाली वैभव इसका प्रमाण है। भारत को विभिन्न धर्मो बौद्ध, जैन, हिन्दू, सिख, इस्लाम आदि से सम्बधिंत साहित्यक एवं धार्मिक कथानक ही भारतीय कला का प्रमुख स्तोत्र रहा है।
आधुनिक काल में भी अनेक भारतीय कलाकार जिन्होंने अपने कला सृजन की प्रेरणा समकालीन साहित्य काव्य से ली है। रवीन्द्र नाथ टैगोर, जगदीष स्वामीनाथन, अर्पणा कौर, जी0 एम0 शेख, एम0 एफ0 हुसैन, मंजीत बाबा की कला कृतियों में काव्यात्मक, भाव को स्पष्टतया महसूस किया जा सकता है।
जहाँ एक ओर कलाकारों ने काव्य रस की अभिव्यक्ति अपने चित्र सृजन से की है, वही चित्रों के मोहपास से अभिभूत होकर साहित्यकारों ने भी चित्राकृति के रसाभूभित से विभोर होकर काव्य सृजन किया, जिसमें अषोक वाजपेयी, विनोद खेतान, प्रयाग षुक्ल, सौमित्र मोहन एवं विनोद भारद्वाज प्रमुख है।

**बीज शब्द–** काव्यात्मक, परिपेक्ष्य, रुपात्मक, सृजनशीलता, समकालीन, रसानुभूति, अर्न्तसम्बन्ध।

**प्रस्तावना**
साहित्य किसी समाज के वास्तविक परिवेश का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक ताने–बाने को अपने शाब्दिक अंतःकालिक काव्यात्मक माध्यम से की गई प्रस्तुतीकरण है।
चित्रकला, काव्य दोनों का माध्यम कोमल होने के कारण उनका अर्न्तसम्बन्ध अत्याधिक गहरा है
**''काव्य बोलता हुआ चित्र है, तो चित्र मूक काव्य''**
इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कविता हो या साहित्य इन सबमे एक रुपात्मक स्वरूप की अनुभूति चित्र के समान ही होती है। चित्रकार, कवि, साहित्यकार, अध्यात्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, युद्ध, विनाश, मानवता आदि सभी पक्षो पर व्यापक संवाद को आसानी से देखा जा सकता है। नरेंद्र नागदेव एक कवि के साथ चित्रकारी में भी हस्तक्षेप रखते है, आपकी कविता ''एक दिन भीम बैठका में'' लगता है कि कवि और चित्रकार की आत्माएँ एकाकार हो गयी है। एकाकार होना कवि और चित्रकार की विशेषता होती है कवि भले ही चित्र ना बनाये और चित्रकार भले ही काव्य सृजन ना करे पर फिर दोनों में एकाकार रहना होता है कवि चित्रकार होता है और चित्रकार कवि।
समकालीन साहित्य हो या कला दोनो ही एक ही समय चेतना से परस्परिक सम्बन्ध रखते है, बस प्रस्तुती के माध्यम भिन्न–भिन्न हो सकते हैं दोनों ही सदैव, समाज, राजनीति सांस्कृतिक पहचान संघर्ष, बाजार तकनीक और वैषविकता को संदर्भित करते है।

भारत में साहित्य एवं कला का सम्बन्ध व्यापक रहा है। आरम्भ में जितने भी साहित्यिक रचनाओं का सृजन हुआ उसके पीछे धार्मिक भावनाएँ प्रबल रही है। बौद्ध–त्रिपिटक, जातक कथाएँ, जैन–कल्पसूत्र,

कथासरित्सागर, तिषष्टीश्लाका पुरुषचरित्र, हिंदू साहित्यिक ग्रन्थों में, रामायण, महाभारत, गीतगोविंद, रागमाला, रसिकप्रिया आदि के कथनको से कलाकारों ने प्रेरणा ली और अपने भावाव्यक्ति को व्यक्त किया। मुगलकाल की समृद्ध कलाथाती के लिए अनेक साहित्यिक रचनाएँ प्रेरणा स्रोत रही जिसमें अमीरहम्जा, रज्मनामा, शाहनामा आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक काल में भी अनेक भारतीय कलाकार जिन्होंने अपने कला सृजन की प्रेरणा समकालीन साहित्य एवं काव्य से ली है। रविंद्र नाथ टैगोर के साहित्य सृजन से अनेक कलाकारों ने एकात्मकता दिखाई। जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों में जहाँ आदिमता के साथ प्रकृति के तत्वों का उभार प्रमुख है। दुसरा पहाड़ और पक्षी के काव्यात्मक सृजन चित्रमय में है। अर्पणा कौर के चित्र, कबीर वाणी, गुरु साहब एवं साहित्य से अभिप्रेरित है गुलाम मोहम्मद शेख कला एवं साहित्य दोनों विधाओं पर बराबर हस्तक्षेप के लिए जाने जाते है।

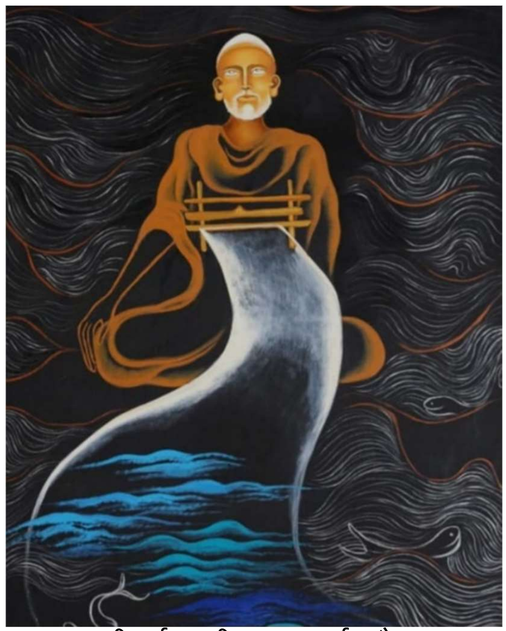

**शीषर्क–कबीर, –अपर्णा कौर**

''**गुलाम मोहम्मद शेख और मेरी लिटरेचर**'' नामक लेख जिसमें उनके साहित्यिक एवं चित्रकला दृष्टि का विश्लेषण है।

**शीषर्क–पासिंग ऐनजैलः ए लाईफ सुमेयर डायरी – जी0एम0 शेख**

एफ.एम. हुसैन के चित्रों के विषय समकालीन साहित्य से प्रेरित है भारत माता, लोक नायिकाएँ व्यक्तिगत स्मृति, मायाजाल पंढ़रपुर की महिला, चित्र का ग्रामीण मूल जीवन, स्त्री मधुर्ष पर और ग्रामीण परिवेश को एक प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया।

जहाँ एक ओर कलाकारों ने काव्य से अभिभूत होकर चित्रों का सृजन किया वहीं चित्रों के मोहपास से साहित्यकारों ने भी काव्य सृजन किया। अशोक वाजपेई के काव्य संग्रह ''वृक्ष की पत्नियों की तरह रेखाएँ'' विनोड खेतान की –''पॉटैटो इट्र्स'', प्रयाग शुल्क की –''देखने का अनुभव'', विनोद भारद्वाज की –''अमृत शेरगिल'' आदि के सृजन का आधार चित्रों की मूक भाषा रही है।

कलाकार और साहित्यकार, दोनों ही अपने मनोभावों को अपने माध्यम से रेखांकित करने की कोशिश करते हैं जिसमें मानवीय, संवेग, जनजागरण, स्त्री के मनोदैहिक की भावनाएँ हो या ज्ञान दर्शन, आध्यात्म, राष्ट्रीयता, पर्यावरण सब पर अपना महत्व एवं प्रभावी अभिव्यक्ति प्रमुख है, जहाँ एक ओर ओमप्रकाश वाल्मीकि के दलित साहित्य में उठे आत्मसम्मान और संघर्ष के स्वर को साहित्य के माध्यम से उठाया वही सुभाष वर्मा और जी0के0 मलकानी जैसे कलाकारों ने अपने तूलिका से विषयवस्तु के प्रसांगिकता को अर्थ प्रदान किया। इस क्रम में महाश्वेता देवी, कृष्णा सोबती ने साहित्य में प्रभावी समकालीन नारीवाद को लिपिबद्ध किया तो अर्पित सिंह और मधु दत्त के कार्यों में सहजता से इस प्रभाव को देखा जा सकता है।

**शीषर्क–पोटैटो ईटर्स – विसेन्ट वॉन गॉग**

विनोद खेतान के काव्य संग्रह ''**पोटैटो ईटर्स**''

''विन्सेंट, तुम्हारी स्टडीज भी अपने आप में मुकम्मल थी''
जब तुम्हारे एक हाथ में कूची और दूसरे हाथ में उबले हुए आलू थे
तुम मेज के ईद गिर्द बैठे तमाम लोगों में शामिल थे
सब कुछ अति साधारण था उनमें
उनके चेहरे क्रांतिकारी नहीं
उनकी भूख हर रोज की तरह
लैंप की मध्यम रोशनी में उनके चेहरे और भी गंदुली और लिबास स्याह ही रखते थे
पर तुम्हारी आंखों ने देखा
उनकी दृढ़ आंखों को उनके खुरदरे हाथों के कसाव को उनके सीमित साधनों के बीच तृप्ति की रेखाओं को और सबसे बढ़कर उनके सहचर्य को –
ये कैसी तलाश थी दोनों की तुम्हें विसेन्ट वॉन गॉन जो न्यूनेन के पोटैटो ईटरर्स से लेकर आर्ल के पोस्टमैन शॉलिन तक ले जाती थी।
और कैसे टैरिस पर बैठ रातों को तुम तो तारों भरे आसमान में दोस्तों के साथ
एक बड़े कुनबे को रंगते थे अक्सर

ख्यालों में भी और कैनवस में भी
एक जोड़ी जूते वैसे ही संजीव है
जैसे गुलदान में खेले सूरजमुखी
यह चित्र स्थिर बेशक हो
पर बातें करते हैं
रंगों और आकृतियां का लिबास ओठे और भी मौजूद हैं
अक्सटर्डम के तुम्हारे म्यूजियम में
हां
पोटैटो ईटर्स में शामिल
दो आकृतियां और भी दिखाई दी मुझे
एक तुम्हारी
और एक मेरी खुद की
य़कीन मानो!

प्रस्तुत काव्य संग्रह में विसेन्ट वॉन गॉग के चित्रों की व्यापक शाब्दिक वर्णन निहतार्थ है। जिसमें कलाकार जीवन के विभिन्न सजृनखण्डो में किए गये कला को उजागर किया है।

**निष्कर्ष**

समकालीन साहित्य और कला के बीच सम्बन्ध अर्थ तंत्र का है ना कि मानव रूप तन्त्र का, दोनों मनुष्य के अस्तिवगत अनुभव को सामान संवेदना के साथ अभिव्यक्त करते हैं। साहित्य जहां विचार और भाषा के द्वारा चेतना का निर्माण करता है, वही कला उसी चेतना को दृष्य प्रतीकात्मक रूप प्रदान करता है। अतः कह सकते हैं कि साहित्य मनुष्य की सोच को शब्द देता है और कला उसी सोच को रूप और शब्द अनुभव प्रदान करती है।

## संदर्भ सूची

1. अभिषेक कश्यप – कला की दुनिया में प्रयाग शुक्ल अनन्य प्रकाशन संस्करण 2019 आई एस बी एन 9789389191073 नई दिल्ली।
2. कौशिक माधव – समकालीन भारतीय साहित्य – साहित्य अकेदमी की द्विमासिक पत्रिका, जुलाई–अगस्त 2025, नई दिल्ली।
3. अग्रवाल जी0 के0 – कला सौंदर्य और समीक्षाशास्त्र 1999 संजय पब्लिकेशन आगरा
4. जोशी ज्योतिष–समकालीन कला और कविता का एकाग्र संग्रह–ललित कला अकादमी 1995 नई दिल्ली।
5. कौशिक माधवन समकालीन भारतीय साहित्य साहित्य अकादमी की द्विमासिक पत्रिका मार्च अप्रैल 2025 नई दिल्ली।

# 7
# समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत और हिंदी कविता का अंतर्संबंध

**कुमार दिव्यांशु शेखर**
भारतीय भाषा विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गयाजी।
ईमेल : kumardivyanshushekhar@gmail.com

**शोध-सार**
हिंदी सिनेमा के गीत और हिंदी कविता दोनों ही भारतीय हिंदी जनमानस की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं। कविता जहाँ शब्द और लय के माध्यम से अभिव्यक्ति को गहराई प्रदान करती है, वहीं सिनेमाई गीत उसी अभिव्यक्त को दृश्य, संगीत और भावनात्मक विस्तार के साथ जनसामान्य तक पहुँचाते हैं। वस्तुतः दोनों माध्यमों के बीच की सीमारेखा अत्यंत क्षीण है। दोनों विधाओं का अंतर्संबंध इतना गहरा है कि कई बार ये काफी आसानी से एक दूसरे के क्षेत्र में आवाजाही करते रहते हैं। किसी भी भाषा का सिनेमा बुनियादी रूप से वहाँ के साहित्य की नींव पर ही खड़ा होता है। निश्चित रूप से हिंदी सिनेमा भी इससे अछूता नहीं है। हिंदी सिनेमा को उसके आरंभिक दौर से ही ऐसे प्रतिभासंपन्न गीतकार मिलते रहे हैं जो न सिर्फ अच्छी साहित्यिक पृष्ठभूमि से आते थे बल्कि सिनेमाई गीत को साहित्य अथवा कविता का ही एक रूप मानकर कवि-कर्म का निर्वाह करते थे। समकालीन दौर में हिंदी सिनेमा के गीतकारों की बात की जाए तो गुलज़ार, प्रसून जोशी, स्वानंद किरकिरे, वरुण ग्रोवर, इरशाद कामिल, मनोज मुंतशिर, अमिताभ भट्टाचार्य, राजशेखर आदि प्रतिभा के धनी गीतकारों ने हिंदी कविता की भाषा और भावभूमि को सिनेमा के जन-सांस्कृतिक मंच पर पुनर्स्थापित किया है। ये गीतकार साहित्यिक परंपरा से आए हैं और सिनेमाई गीत और कविता की जरूरतों को भी समझते हैं और उनके बीच के अति महत्वपूर्ण संबंध को भी। प्रस्तुत आलेख में समकालीन हिंदी सिनेमाई गीतों और हिंदी कविता के पारस्परिक अंतर्संबंध का अध्ययन व विश्लेषण किया गया है जिसमें विषय, भाषा, संवेदना और सामाजिक दृष्टिकोण के साझा तत्त्वों की पहचान की गई है।

**बीज शब्द:** हिंदी सिनेमा, हिंदी कविता, सिनेमाई गीत, समकालीन, अंतर्संबंध, संवेदना, समकालीन प्रवृत्तियाँ आदि।

## मूल आलेख
हिंदी कविता और हिंदी सिनेमाई गीत दोनों एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं। कविता का पक्ष जहाँ शुद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति है, वहीं सिनेमाई गीत उस कविता का जनरूप हैं। दोनों की जड़ें भारतीय लोक और परंपरा में निहित हैं। तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो सिनेमा एक नई विधा है; किंतु वास्तव में यह हमारी प्राचीन नाट्य-परंपरा से जुड़ती है। "सिनेमा नाटक का ही उन्नत रूप है"1 और नाटक के लिए हमारे यहाँ गीत-संगीत आरंभ से ही अनिवार्य भूमिका निभाते रहे हैं। हिंदी नाटक हिंदी साहित्य की एक स्वीकृत विधा है। इसे देखने के अतिरिक्त पढ़ा भी जाता रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि हिंदी नाटकों के गीत और हिंदी कविता में कोई विशेष उल्लेखनीय अंतर नहीं है; किंतु हिंदी सिनेमा ने कविता की संवेदना को संगीत, दृश्य और अभिनय के साथ इस तरह जोड़ा है कि वह जनसाधारण के अनुभव का हिस्सा बन गई है।

प्रायः यह माना जाता रहा है कि हिंदी सिनेमा के आरंभिक चार-पाँच दशकों तक के गीत अधिक साहित्यिक हैं क्योंकि उस समय के फिल्मी गीतकारों का सीधा संबंध हिंदी-उर्दू साहित्य से था जबकि बाद के दशकों में यह प्रवृत्ति घटी है और धीरे-धीरे आज के समय तक आते-आते नगण्य हो गई है। वास्तव में यह धारणा समकालीन हिंदी सिनेमा के गीतों को सतही दृष्टिकोण से देखने पर आधारित है। आज भी जो गीतकार हिंदी सिनेमा में गीत लिख रहे हैं वे कहीं-न-कहीं साहित्य से जुड़े हैं और देशकाल के अनुसार सिनेमा की माँग के अनुरूप लिखते हुए भी अपनी साहित्यिकता को बचाए हुए हैं। समकालीन

हिंदी सिनेमाई गीतों के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक इरशाद कामिल ने हिंदी कविता पर पी-एच. डी. की है। वे समकालीन हिंदी सिनेमाई गीतों के विषय में कहते हैं कि "पिछले 90 वर्षों से गाने बन रहे हैं, लाखों गाने बन चुके हैं लेकिन रेडियो स्टेशनों पर गोल्डन एरा के ही लगभग 200 गाने ही कई वर्षों तक बार-बार रिपीट करते रहे हैं। इसलिए लोग इन गानों पर ही वाह-वाह करते रहे। आज के समकालीन गीतकारों के गीत भी सुनाए जाने चाहिए उनको भी उतना समय दिया जाना चाहिए ताकि जो समय की छलनी है वो अच्छे 200 गीत आपके सामने पेश कर देगी।"2

वस्तुतः समकालीन समय में (विशेषकर 21वीं सदी में) हिंदी सिनेमाई गीत और कविता के बीच का संबंध और भी गहरा हुआ है। आधुनिक गीतकारों ने न केवल काव्यात्मक भाषा को जीवित रखा है बल्कि उसे नई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं से भी जोड़ा है। यही कारण है कि समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत आधुनिक कविता का लोकप्रिय और श्रव्य रूप बन गए हैं।

हिंदी सिनेमा भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना का एक जीवंत दस्तावेज है। फिल्मों के गीत न केवल मनोरंजन का माध्यम रहे हैं बल्कि उन्होंने समय-समय पर समाज की भावनाओं, संघर्षों, आकांक्षाओं और विचारों को भी स्वर दिया है। ठीक जिस प्रकार हिंदी कविता भी जनमानस की संवेदनाओं का कलात्मक रूपांतरण रही है। यदि हम सम्यक दृष्टि से देखें तो हिंदी फिल्मी गीतों और हिंदी कविता के बीच गहरा अंतर्संबंध दृष्टिगोचर होता है। दोनों ही शब्द, लय और भाव के माध्यम से मनुष्य के भीतर की अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं और उसे सार्वभौमिक बनाते हैं।

समकालीन युग में, जब साहित्य और जनसंचार के बीच की सीमाएँ धुँधली होती जा रही हैं, तब यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है कि क्या हिंदी सिनेमाई गीत हिंदी कविता के समानांतर कोई काव्य-परंपरा निर्मित कर रहे हैं?

**ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य**

हिंदी सिनेमाई गीतों की जड़ें हिंदी काव्य-परंपरा से सीधे जुड़ती हैं। स्वतंत्रता-पूर्व 1930 के दशक में जब हिंदी सिनेमा का आरंभ हुआ, तब उसकी भाषा, शिल्प और संवेदना पर तत्कालीन कविता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और निराला आदि कवियों के युग में संवेदना का जो परिष्कार हुआ उसी की अनुगूँज हमें शैलेन्द्र, कवि प्रदीप, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी आदि गीतकारों के गीतों में मिलती है। मैथिलीशरण गुप्त की 'साकेत' और 'भारत-भारती' जैसी रचनाओं ने देशभक्ति गीतों की भाव-धारा को जन्म दिया। निस्संदेह इनसे प्रभाव ग्रहण कर तत्कालीन हिंदी फिल्मों में देशभक्ति गीत लिखे गए। आगे चलकर 'साकेत' पर आधारित नाट्य और डॉक्यूमेंट्री फिल्मों में इसके पदों का उपयोग किया गया। छायावाद के प्रमुख चारों स्तंभों के गीतों का प्रयोग तत्कालीन सिनेमा में किया गया। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' को कई फिल्मों और रेडियो नाटकों में प्रेरक गीत के रूप में गाया गया। 1940 के दशक में हिंदी सिनेमा को कवि प्रदीप के रूप में एक महान गीतकार मिला जिन्हें राष्ट्रकवि कहकर भी सम्मानित किया गया, इन कवि प्रदीप पर माखनलाल चतुर्वेदी का गहरा प्रभाव था।

हिंदी साहित्य के इतिहास में थोड़ा और पीछे जाकर देखें तो हम पाएँगे कि कबीर, मीरा, तुलसी, रैदास आदि कितने ही संत और भक्त कवियों की कविता का प्रयोग हिंदी सिनेमा ने अपने गीत के रूप में किया है और आज भी कर रहा है। यह एक बात सिनेमाई गीत और कविता के अंतर्संबंध को दिखाने के पर्याप्त मानी जा सकती है।

ऊपर हमने शैलेन्द्र, कवि प्रदीप, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी आदि हिंदी सिनेमा के गीतकारों का जिक्र किया। वस्तुतः ये सभी गीतकार मूलतः कवि थे। शैलेन्द्र के लिखे बहुतेरे सिनेमाई गीत जीवन-दर्शन की उस लोक-भावना से जुड़े हैं जो 'प्रगतिवाद' और 'नई कविता' के मूल में निहित है। उदाहरण के तौर पर हम "जीना इसी का नाम है"3 या "काँटों से

खींच के ये आँचल, तोड़ के बंधन बाँधी पायल"4 जैसे गीतों को देख सकते हैं। वहीं साहिर की पंक्तियाँ "ये दुनियाँ अगर मिल भी जाए तो क्या है"5 सीधे-सीधे समाजवादी दृष्टि का उद्घाटन करती हैं।

आज लगभग यह बात सर्वस्वीकृत है कि हिंदी सिनेमा के आरंभिक दशकों (1930–60) में गीतकारों का सीधा संबंध हिंदी अथवा उर्दू साहित्य से था। शैलेन्द्र, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, भरत व्यास, कवि प्रदीप आदि रचनाकारों ने छायावादी, प्रगतिवादी, नई कविता आदि के तत्वों को फिल्मी गीतों में रूपांतरित किया। "जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला"6, "हम मेहनतकश इस दुनिया से जब अपना हिस्सा माँगेंगे"7 आदि गीतों में कविता की संवेदना, सामाजिक चेतना और जनवादी दृष्टि स्पष्ट रूप से झलकती है। 1970–90 के दशक तक आते-आते गीतों में जनभावना के साथ ही प्रेम की रूमानियत और संघर्ष का स्वर प्रमुख हुआ। गुलज़ार जैसे गीतकारों ने कविता को सिनेमाई भाषा में अनूदित किया। नई शताब्दी में प्रसून जोशी, स्वानंद किरकिरे, वरुण ग्रोवर, सईद कादरी, इरशाद कामिल, मनोज मुंतशिर आदि गीतकारों ने कविता को आधुनिक शहरी अनुभव, राजनीति और आत्मसंघर्ष से जोड़ा।

**विषयगत समानता**

समकालीन हिंदी कविता और हिंदी सिनेमाई गीत दोनों ही समान भावभूमि से उपजे हैं। प्रेम, विरह, अस्मिता, समाज और संघर्ष की चेतना इनमें समान रूप से विद्यमान है।

**प्रेम और मानवीय संवेदना :**

समकालीन गीतों में प्रेम केवल रोमांस नहीं, बल्कि आत्म-पहचान और संवाद का माध्यम है। यह वही भाव है जो नई कविता में निहित है। उदाहरणार्थ "चल घर चलें मेरे हमदम"8, "मेरी हर मनमानी बस तुम तक"9 आदि रचनाएँ व्यक्तिगत भाव को सार्वभौमिक बनाती हैं।

**विरेचन की क्षमता :**

हम जानते हैं कि साहित्य का एक उद्देश्य विरेचन करना भी है। इस आलोक में यदि हम हिंदी फिल्मी गीतों को देखें तो यह पाएँगे कि इन गीतों में विरेचन की क्षमता शुद्ध साहित्यिक कविता से अधिक है। इसका कारण यह नहीं है कि कविताएँ विरेचन करने में कमजोर हैं या अशक्त हैं। कारण केवल इतना है कि सिनेमाई गीतों की पहुँच कविताओं से अधिक है। 'साहित्य और संस्कृति' पुस्तक की भूमिका में कुँवर पाल सिंह लिखते हैं कि "आम आदमी का साहित्य से उतना संबंध नहीं है जितना फिल्म का है।"10 इस बात को और पुष्ट करने के लिए राही मासूम रज़ा के कथन को भी उद्धृत किया जा सकता है जब वे कहते हैं कि "सिनेमा की पहुँच छपे हुए शब्दों से अधिक है।"11
वास्तविक जीवन से ही हम इसके लिए उदाहरण ले सकते हैं। जब सुदूर किसी गाँव में कोई युवा प्रेम में निराश होता है तो वह निराला, प्रसाद अथवा किसी छोटे-बड़े साहित्यिक कवि की कविताएँ नहीं पढ़ता-सुनता है, वह सुनता है "मैं फिर भी तुमको चाहूँगा"12 या "ऐ दिल है मुश्किल।"13 निस्संदेह इन्हें सुनकर उसके भावों का विरेचन होता है।

**सामाजिक चेतना :**

हिंदी कविता की तरह समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत भी सामाजिक असमानताओं, स्त्री-दृष्टि और अस्तित्ववादी प्रश्नों को उठाते हैं। "मन कस्तूरी"14, "सपनों से भरे नैना"15, "पिंजरा तोड़ के"16 आदि गीतों में स्व-चेतना और अस्मिता की आवाज़ है। समकालीन हिंदी कविता ने जहाँ आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, अस्तित्व-बोध, स्त्री-विमर्श, पर्यावरण और अस्मिता जैसे विषयों को अपनाया, वहीं समकालीन हिंदी सिनेमाई गीतों ने भी इन्हीं विमर्शों को लोकप्रिय माध्यम में ढाला। उदाहरण के लिए फिल्म 'रंग दे बसंती' के गीत "मस्ती की पाठशाला"17 और "रूबरू"18 में युवा अस्मिता और विद्रोह की वही चेतना है जो समकालीन कविताओं में अभिव्यक्त होती है।

फिल्म 'तारे ज़मीं पर' का गीत "मैं कभी बतलाता नहीं"19 आधुनिक शहरी जीवन में संवेदना की तलाश और पारिवारिक बिखराव के दर्द को उसी तरह रूपायित करता है, जैसा कि समकालीन कवियों की कविताओं में दिखता है।
इस प्रकार समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज और व्यक्ति के जटिल संबंधों की कविता भी हैं।

### भाषा एवं सौंदर्य

हिंदी कविता और गीत दोनों में भाषा का सौंदर्य और प्रतीकात्मकता समान रूप से विद्यमान हैं। दोनों में लोकभाषा, बिंब और लय का संयोजन देखने को मिलता है।
आधुनिक गीतों की भाषा कविता के अधिक निकट है। कविता की तरह गीतों में भी प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग होता है। "कजरा रे कजरा रे"20 अथवा "बीड़ी जलइले जिगर से पिया"21 में लोकभाषा और छंद की सहजता वही आकर्षण पैदा करती है जो लोकगीत या गीतिकाव्य में होती है। इसी प्रकार हम "फिर ले आया दिल"22 या "अगर तुम साथ हो"23 में भाव की सूक्ष्मता और भाषिक सौंदर्य का सुंदर संतुलन देख सकते हैं।
समकालीन सिनेमाई गीतों ने कविता की भाषिक गहराई को लोकप्रिय माध्यम में रूपांतरित किया है। कविता और गीत दोनों ही भाव-संप्रेषण के माध्यम हैं। यदि कविता को 'शब्दों की नाद-सृष्टि' कहते हैं तो फिल्मी गीतों को 'संगीत के साथ शब्दों की भाव-सृष्टि' कहना उचित होगा। हम पहले देख चुके हैं कि समकालीन गीतकार जैसे गुलज़ार, जावेद अख़्तर, प्रसून जोशी, स्वानंद किरकिरे, वरुण ग्रोवर, इरशाद कामिल, मनोज मुंतशिर आदि मूलतः कवि हैं। उनकी रचनाओं में कविता की गहराई और गीत की सहजता एक साथ मिलती है। उदाहरण के लिए प्रसून जोशी का लिखा गीत "झटक कर जुल्फ जब तुम तौलिए से बारिशें आजाद करती हो"24 साधारण प्रेमगीत लग सकता है; परंतु इसकी संरचना और लय में वही भाव-संयम और प्रतीकात्मकता है जो श्रेष्ठ गीतिकाव्य में मिलती है। वहीं इरशाद कामिल का गीत "तेरे होने से घर भरा-सा लगे"25 मानवीय प्रेम-संवेदना का वह गान है जो हिंदी कविता की परंपरा को आगे बढ़ाता है।
इसी प्रकार हिंदी कविता और सिनेमाई गीतों में शिल्पगत स्तर पर निम्नलिखित कई समानताएँ हैं।

- प्रतीक, बिंब और रूपक का प्रयोग
- लय और ध्वन्यात्मकता का संतुलन
- भाषा की लोकधर्मी प्रवृत्ति
- भावों की बहुस्तरीय अभिव्यक्ति

### संवेदनात्मक और दार्शनिक निकटता

कविता का मूल लक्ष्य मनुष्य की संवेदना को अभिव्यक्त करना है। फिल्मी गीत भी यही करते हैं; पर अधिक जनसंवेदनात्मक स्तर पर। दोनों माध्यमों में अंतर्मन की अभिव्यक्ति और जीवन के अर्थ की खोज प्रमुख है। कविता जहाँ आत्म-चेतना का माध्यम है, वहीं गीत सामूहिक चेतना का; परंतु दोनों के मूल में मानवीय करुणा, प्रेम, और जीवन की जटिलता का सौंदर्य निहित है।

### समकालीन गीतों में वैचारिकता और विमर्श

21वीं सदी के गीतों में व्यक्ति, समाज, राजनीति, स्त्री आदि से जुड़े गहरे विमर्श दिखाई देते हैं। इसकी कुछ चर्चा हम ऊपर भी कर आए हैं। 'नीरजा' और 'चक दे इंडिया' के गीत नारी शक्ति और आत्मनिर्भरता का संदेश देते हैं। 'स्लमडॉग मिलिनेयर' या 'गली बॉय' के गीतों में शहरी गरीब तबके की आवाज़ और अस्मिता का स्वर है। वहीं 'थ्री इडियट्स' का गीत "ऑल इज़ वेल"26 या 'ज़िंदगी ना मिलेगी दोबारा' के गीतों में अस्तित्ववादी दृष्टिकोण की झलक है।
इन गीतों में वही चेतना है जो समकालीन कविता में व्यक्त हो रही है— मानव की संघर्षशीलता, उसकी स्वतंत्रता की चाह और सामाजिक संरचनाओं के विरुद्ध प्रश्न उठाने की प्रवृत्ति।

**भिन्नता के बिंदु**

| पक्ष | हिंदी कविता | हिंदी सिनेमाई गीत |
|---|---|---|
| उद्देश्य | आत्म-अभिव्यक्ति, विचारों की गंभीरता | जनभावना का सांगीतिक रूपांतरण |
| माध्यम | पाठ (पुस्तक, मंच) | दृश्य, संगीत, अभिनय |
| स्वतंत्रता | रचनात्मक रूप से पूर्ण स्वतंत्र | कथानक, निर्देशक और संगीत की सीमाओं में आबद्ध |
| प्रभाव | गूढ़ और चिंतनशील | तात्कालिक और भावनात्मक |

इन भिन्नताओं के बावजूद दोनों की दिशा एक ही है— मानव की अंतःचेतना और समाज की अनुभूति को प्रकट करना।

**समकालीन परिप्रेक्ष्य में अंतर्संबंध**

21वीं सदी के हिन्दी सिनेमा में गीत और कविता के बीच का अंतर्संबंध और अधिक सक्रिय हुआ है। गीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक विमर्श का साधन भी बन गए हैं। हिंदी कविता अब सिनेमा और संगीत दोनों में जीवंत संवाद के रूप में उपस्थित है।

**जनसंचार और काव्य का सेतु**

समकालीन हिंदी फिल्मी गीतों का श्रोता-वर्ग हिंदी कविता के पाठक-वर्ग की तुलना में अधिक व्यापक है। इस दृष्टि से फिल्मी गीत 'लोकप्रिय कविता' का रूप बन गए हैं। वे उन भावनाओं और विचारों को जन-जन तक पहुँचाते हैं जो प्रायः केवल साहित्यिक मंचों अथवा पुस्तकों तक सीमित रह जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि हिंदी सिनेमाई गीत आधुनिक समय में कविता के जन-संस्करण के रूप में कार्य कर रहे हैं।

**निष्कर्ष**

उपर्युक्त अध्ययन द्वारा हमने देखा कि समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत और हिंदी कविता का संबंध मात्र विषयगत समानता तक सीमित नहीं है बल्कि यह एक गहरा सांस्कृतिक और सौंदर्यगत संवाद है। कविता ने गीतों को संवेदना और विचार की गहराई दी, वहीं गीतों ने कविता को व्यापक जनपाठक प्रदान किया। दोनों माध्यमों ने मिलकर हिंदी भाषा और जन-संवेदना को नई अभिव्यक्ति दी है। कविता जहाँ चिंतन है, वहीं गीत उसका गान है।

समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत और हिंदी कविता के बीच संबंध केवल प्रेरणा या प्रभाव का नहीं, बल्कि संवाद का है। फिल्मी गीतों ने कविता को लोक में पहुँचाया है, वहीं कविता ने गीतों को विचार और गहराई दी है। आज जब समाज तेजी से बदल रहा है, तब यह अंतर्संबंध भारतीय संस्कृति की जीवंतता का प्रमाण है। यह दर्शाता है कि शब्द और संगीत मिलकर भी विचार का औज़ार बन सकते हैं। समकालीन गीतों में वही मानवीय करुणा, विद्रोह और संवेदना विद्यमान है जो समकालीन कविता का मूल स्वभाव है।

इस प्रकार समकालीन हिंदी सिनेमाई गीत और कविता मिलकर एक ऐसे साहित्य की रचना कर रहे हैं, जिसमें शब्द, संगीत और अर्थ तीनों का समन्वय मानव-जीवन के सौंदर्य और संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। हिंदी फिल्मी गीत और हिंदी कविता दोनों मिलकर आधुनिक भारतीय मानस की सामूहिक आत्मा का दस्तावेज़ बन जाते हैं।

**संदर्भ**

1. नागर, अमृतलाल। फिल्मक्षेत्रे रंगक्षेत्रे, डॉ. शरद नागर द्वारा संपादित। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 39
2. शर्मा, नवीन। फिल्मी गीतों का सफर। नोशन प्रेस, पृ. 326
3. शैलेन्द्र। "जीना इसी का नाम है।" अनाड़ी, एलबी लछमन द्वारा निर्मित, 1959
4. शैलेन्द्र। "आज फिर जीने की तमन्ना है।" गाइड, नवकेतन स्टूडियो, 1965
5. लुधियानवी, साहिर। "ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है।" प्यासा, गुरु दत्त फिल्म्स, 1957

6. लुधियानवी, साहिर। “जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला।” प्यासा, गुरु दत्त फिल्म्स, 1957
7. कमाल, हसन। “हम मेहनतकश इस दुनिया से जब अपना हिस्सा माँगेंगे।” मजदूर, बी. आर. फिल्म्स, 1983
8. कादरी, सईद। “चल घर चलें मेरे हमदम।” मलंग, लव फिल्म्स, टी-सीरीज और नॉर्दर्न लाइट्स एंटेरटेंनमेंट, 2020
9. कामिल, इरशाद। “मेरी हर मनमानी बस तुम तक।” राँझणा, इरोस इंटेरनेशनल और कलर येलो प्रोडक्शन्स, 2013
10. रज़ा, राही मासूम। “कला और साहित्य का साझा संसार।” सिनेमा और संस्कृति, प्रो. कुँवर पाल सिंह द्वारा संपादित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
11. रज़ा, राही मासूम। “सिनेमा, साहित्य और पाठ्यक्रम।” सिनेमा और संस्कृति, प्रो. कुँवर पाल सिंह द्वारा संपादित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 19
12. मुंतशिर, मनोज। “मैं फिर भी तुमको चाहूँगा।” हाफ गर्लफ्रैंड, बालाजी मोशन पिक्चर्स और एएलटी एंटरटेंनमेंट, 2017
13. कामिल, इरशाद। “ऐ दिल है मुश्किल।” ऐ दिल है मुश्किल, धर्मा प्रोडक्शन्स, एडीएचएम फिल्म्स और फॉक्स स्टार स्टूडियोज, 2016
14. ग्रोवेर, वरुण। “मन कस्तूरी।” मसान, दृश्यम फिल्म्स, मैकासर प्रोडक्शन्स, फैंटम फिल्म्स और सिख्या एंटरटेंनमेंट, 2015
15. अख्तर, जावेद। “सपनों से भरे नैना।” लक बाय चांस, एक्सेल एंटरटेंनमेंट, 2009
16. सरैया, प्रिया। “पिंजरा तोड़ के।” सिमरन, टी-सीरीज़, परमहंस क्रिएशन्स एंटरटेनमेंट और आदर्श टेलीमीडिया, 2017
17. जोशी, प्रसून। “मस्ती की पाठशाला।” रंग दे बसंती, यूटीवी मोशन पिक्चर्स, 2006
18. जोशी, प्रसून। “रूबरू।” रंग दे बसंती, यूटीवी मोशन पिक्चर्स, 2006
19. जोशी, प्रसून। “मैं कभी बतलाता नहीं।” तारे ज़मीं पर, आमिर खान प्रोडक्शन्स, 2007
20. गुलज़ार। “कजरा रे।” बंटी और बबली, यशराज फिल्म्स, 2005
21. गुलज़ार। “बीड़ी जलइले जिगर से पिया।” ओंकारा, शेमारू वीडियो प्राइवेट लिमिटेड, बिग स्क्रीन एंटरटेंनमेंट और एनएच स्टूडियोज़, 2006
22. कादरी, सईद। “फिर ले आया दिल।” बर्फ़ी, यूटीवी मोशन पिक्चर्स और ईशाना मूवीज, 2012
23. कामिल, इरशाद। “अगर तुम साथ हो।” तमाशा, नाडियाडवाला ग्रैंडसन एंटरटेंनमेंट, 2015
24. जोशी, प्रसून। “अच्छा लगता है।” आरक्षण, प्रकाश झा प्रोडक्शन्स, 2011
25. कामिल, इरशाद। “तेरे होने से घर भरा-सा लगे।” शिकारा, विनोद चोपड़ा फिल्म्स और फॉक्स स्टार स्टूडियोज, 2020
26. किरकिरे, स्वानंद। “ऑल इज वेल।” थ्री इडियट्स, विनोद चोपड़ा फिल्म्स, 2009

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

# 8
# समकालीन साहित्य और कला पर राजनैतिक प्रभाव

**जितेन्द्र जांगिड़**
सहायक आचार्य-चित्रकला
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

**प्रस्तावना**

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य और कला का योगदान अमूल्य रहा है। ये दोनों माध्यम केवल मनोरंजन अथवा सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं हैं, बल्कि समाज की चेतना, चिंतन और सामूहिक अनुभव को व्यक्त करने के सबसे सशक्त साधन हैं। इतिहास गवाह है कि प्रत्येक युग में राजनीति ने साहित्य और कला को प्रभावित किया है और साहित्य व कला ने भी राजनीति को दिशा देने में भूमिका निभाई है। समकालीन संदर्भ में जब वैश्वीकरण, लोकतंत्र, सामाजिक असमानता, पर्यावरणीय संकट और मानवाधिकार जैसे प्रश्न अत्यधिक प्रासंगिक हैं, तब इनका परिलक्षित होना साहित्यिक और कलात्मक अभिव्यक्तियों में स्वाभाविक है।

राजनीति केवल सत्ता-व्यवस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संस्कृति, समाज और मानवीय व्यवहार का भी अंग है। इसलिए साहित्य और कला राजनीति से अलग होकर अस्तित्व में नहीं रह सकते। आधुनिक समय में सत्ता संरचना, नीतियाँ, अनुदान, पुरस्कार, सेंसरशिप तथा विचारधारात्मक दबाव इन दोनों विधाओं पर गहरा प्रभाव डालते हैं। भारत के पहले आधुनिक कला ग्रुप' कलकत्ता ग्रुप (1948) के कलाकारों ने अपनी चित्र कृतियों में राजनीतिक पक्षों को दर्शाया है । स्वतंत्रता संग्राम से लेकर समकालीन लोकतंत्र तक, भारतीय कलाकारों ने अपनी रचनाओं में सत्ता, समाज और राजनीति के बीच के द्वंद्व को दर्शाया है।
**यह शोध-पत्र इन्हीं संबंधों और अंतःक्रियाओं का विश्लेषण करने का प्रयास है।**

1. वैश्वीकरण और सांस्कृतिक बहुलता – आर्थिक उदारीकरण और वैश्विक संपर्कों ने साहित्य और कला के नए आयाम खोले हैं। अंतर्राष्ट्रीय विचारधाराओं, प्रवासी अनुभवों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान ने रचनात्मकता को व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है। किंतु वैश्वीकरण के साथ सांस्कृतिक वर्चस्व और बाज़ारवाद की चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

2. लोकतांत्रिक मूल्य और सामाजिक विमर्श – लोकतंत्र ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रोत्साहन दिया है। समकालीन लेखक और कलाकार दलित विमर्श, स्त्री-विमर्श, पर्यावरणीय चेतना और मानवाधिकार जैसे मुद्दों को प्रमुखता से उठा रहे हैं। राजनीति इन विमर्शों को अवसर भी देती है और कभी-कभी अवरोध भी उत्पन्न करती है।

3. नई मीडिया तकनीक – डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म ने साहित्य और कला को व्यापक दर्शकवर्ग तक पहुँचाया है। सोशल मीडिया, ऑनलाइन प्रदर्शनियाँ, ई-पुस्तकें और ब्लॉग राजनीति और समाज पर त्वरित प्रतिक्रिया देने के साधन बने हैं। इसके साथ ही राजनीतिक प्रचार और डिजिटल नियंत्रण की चुनौतियाँ भी मौजूद हैं।

राजनीति और साहित्य

1. राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव – समकालीन साहित्य में राष्ट्रवाद, समाजवाद, उदारवाद और पूँजीवाद जैसी विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। उपन्यास, कविता और नाटक में इन विचारधाराओं की आलोचना और समर्थन दोनों मिलते हैं।
2. सामाजिक प्रश्नों की अभिव्यक्ति – आज का साहित्य विस्थापन, पलायन, बेरोजगारी, जातीय हिंसा, भ्रष्टाचार और युद्ध जैसे मुद्दों को प्रमुखता से उठाता है। अरुंधति रॉय, महाश्वेता देवी और भीष्म साहनी जैसे साहित्यकारों की कृतियों में राजनीति के प्रभाव और समाज की पीड़ा का यथार्थ चित्रण मिलता है।

3. सेंसरशिप और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता – राजनीतिक सत्ता कई बार असहज करने वाली रचनाओं पर प्रतिबंध लगाती है। समकालीन समय में कुछ उपन्यासों, कविताओं और फिल्मों को वैचारिक दबाव का सामना करना पड़ा है। यह दर्शाता है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति किस हद तक राजनीति से प्रभावित होती है।

कला और राजनैतिक प्रभाव

भारतीय समकालीन कला की दिशा 1970 के दशक में राजनीतिक उथल-पुथल, आपातकाल, गरीबी, वैश्वीकरण, और धार्मिक उग्रवाद जैसी घटनाओं से तय हुई। इस दौर में कलाकारों ने 'सुंदर' की परंपरागत परिभाषा से हटकर 'सत्य' और 'वास्तविकता' को दिखाना प्रारंभ किया। राजनीति यहाँ विरोध, विमर्श और व्यंग्य के रूप में उभरती है — जैसे साहित्य में प्रगतिवाद और समकालीन लेखन में हुआ।

1. राजनीतिक प्रतीक और विचार – समकालीन चित्रकार, मूर्तिकार , व्यंग्य चित्रकार और परफ़ॉर्मेंस आर्टिस्ट सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं। युद्ध-विरोधी चित्र, स्त्री अधिकारों पर आधारित कलाकृतियां और पर्यावरण संकट पर आधारित इंस्टॉलेशन आर्ट आदि  इसके उदाहरण हैं।

2. राज्य की सांस्कृतिक नीतियाँ – कला संस्थानों को मिलने वाले अनुदान, पुरस्कार और प्रदर्शनियों की नीतियाँ राजनीतिक निर्णयों से प्रभावित होती हैं। कई बार कलाकारों को सरकारी मंच पर सम्मान मिलता है, तो कई बार उन्हें वैचारिक मतभेदों के कारण हाशिए पर डाल दिया जाता है।

3. अभिव्यक्ति की सीमाएँ – कुछ राजनीतिक परिस्थितियों में कलाकारों को अपनी कला पर रोक-टोक का सामना करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, चित्रकारों ,कार्टूनिस्टों और ग्रैफ़िटी कलाकारों पर कानूनी कार्यवाही यह दर्शाती है कि कला कितनी संवेदनशील और प्रभावकारी है।

4. भारतीय आधुनिक कला के इतिहास में कोलकाता समूह (Calcutta Group) ने सामाजिक और राजनैतिक चेतना को नई दिशा दी। 1943 में गठित इस समूह में परितोष सेन, कमरुल हसन, सुभो टागोर आदि प्रमुख कलाकार थे, जिन्होंने अपने चित्रों के माध्यम से द्वितीय विश्व युद्ध, बंगाल अकाल और विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटनाओं की राजनीतिक पृष्ठभूमि को गहराई से चित्रित किया। इन कलाकारों ने परंपरागत धार्मिक या पौराणिक विषयों से हटकर जनजीवन, शोषण, अन्याय और वर्ग-संघर्ष जैसे विषयों को अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया। उनकी कला में मार्क्सवादी विचारधारा और सामाजिक यथार्थवाद की स्पष्ट झलक मिलती है। तीव्र रेखांकन, विकृत आकृतियाँ और मद्धिम रंग उनके चित्रों की विशेषताएँ थीं, जो समाज में व्याप्त असमानता और राजनीतिक उपेक्षा को प्रतीकात्मक रूप से दर्शाती हैं।

जैसा कि प्रदोष दास गुप्ता कहते हैं: "देवी-देवताओं में खुद को व्यस्त रखने का समय समाप्त हो गया था। कलाकार अब अपने युग, परिवेश, अपने लोगों और समाज के प्रति अंध नहीं रह सकता था।"

प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के कलाकार एफ.एन. सूजा की रचनाएँ धर्म और सत्ता के पाखंड की आलोचना करती हैं। जैसे "Birth" और "The Crucifixion" जैसी रचनाओं में उन्होंने सत्ता, धर्म और नैतिक पतन पर तीखा प्रहार किया। एम.एफ. हुसैन ने आम भारतीय स्त्री, ग्रामीण भारत और लोकतांत्रिक समाज की विविधता को अपने चित्रों में प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया।वहीं दूसरी और गांधी सीरीज महात्मा गांधी के विचारों और स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित रही है , मदर टेरेसा सीरीज समाज में करुणा, सेवा और धार्मिक एकता का संदेश; साथ ही धार्मिक राजनीति के विरोध का प्रतीक रही हैं। तैयब मेहता की "Trussed Bull" जैसी कृतियाँ व्यक्ति की राजनीतिक और सामाजिक जकड़न का प्रतीक हैं। विभाजन और हिंसा के साक्षी रहे मेहता की चित्रकला में मानव की राजनीतिक और अस्तित्वगत पीड़ा का स्वर है। Falling Figure (1969) में उन्होंने समाज में गिरते नैतिक मूल्यों और सत्ता द्वारा कुचले जा रहे आम नागरिक का रूपक रचा। भूपेन खखर (Bhupen Khakhar) की कृतियां : You Can't Please All, Man in Pub, Death in the Family राजनैतिक समाज से सरोकार रखती है। गुजरात से जुड़े खखर ने मध्यमवर्गीय समाज, यौनिकता और राजनीतिक दमन को अपने चित्रों

में ईमानदारी से चित्रित किया। You Can't Please All में उन्होंने सामाजिक दोहरेपन और नैतिकता के नाम पर सत्ता द्वारा लगाए गए नियंत्रणों की आलोचना की।

बड़ौदा स्कूल ने 1970–80 के दशकों में राजनीतिक असंतोष, आपातकाल (Emergency), धार्मिक उग्रवाद और लोकतांत्रिक विडंबनाओं को केंद्र में रखा। नलिनी मलानी ने स्त्री के राजनीतिक संघर्ष और हिंसा को अपनी वीडियो इंस्टॉलेशन और पेंटिंग्स में रूपायित किया। इसकी रचना मदर इंडिया में भारत का विभाजन और 2002 के गुजरात दंगे इस इंस्टॉलेशन में संदर्भित केंद्रीय घटनाएँ हैं, [क्योंकि इन अवधियों में महिलाओं के खिलाफ हिंसा में तेज़ी से वृद्धि हुई थी।

यूरोपीय कलाकारों में आधुनिक चित्रकला के जनक और प्रमुख घनवादी कलाकार पाब्लो पिकासो के द्वारा स्पेनिश गृहयुद्ध और नाजी बमबारी प्रभावित होकर अपना सर्व प्रमुख चित्र गवेर्निका की रचना की जो कला इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वही रोमांस वाद के एक प्रमुख कलाकार ओजे न डेलाक्रा ने फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित होकर स्वतंत्रता और लोकतंत्र का प्रतीक चित्र " लिबर्टी लीडिंग द पीपल ( Liberty Leading the People) बनाया।

वैश्वीकरण और तकनीकी युग में जितिश कल्लाट, सुबोध गुप्ता, अतुल डोडिया, चित्तरंजन महापात्र जैसे कलाकारों ने राजनीति को रूपक (metaphor) और व्यंग्य (satire) के माध्यम से प्रस्तुत किया। अतुल डोडिया की श्रृंखला "The Father" और "Bapu" गांधीवादी आदर्शों और समकालीन राजनीति के द्वंद्व को दर्शाती है। जितिश कल्लाट ने मुंबई की भीड़, राजनीति और अस्तित्व के संघर्ष को अपने कार्यों में विषय बनाया वहीं एक तरफ सुबोध गुप्ता ने रोज़मर्रा के बर्तनों, प्रतीकों और उपभोक्तावादी वस्तुओं के माध्यम से आर्थिक असमानता और राजनीतिक स्थिति पर टिप्पणी की। उन्होंने परमाणु शक्ति, उपभोक्तावाद और सत्ता के प्रदर्शन को 'स्टेनलेस स्टील' की घरेलू वस्तुओं में बदलकर प्रतीकात्मक व्यंग्य में ढाला। Line of Control में भोजन की थालियों से बना बम राष्ट्रवाद और हिंसा के मेल का प्रतीक है।

भारत के प्रमुख व्यंग्य चित्रकार में आर. के. लक्ष्मण, के. शंकर पिल्लई, आबू अब्राहम, रंगा, मारियो मिरांडा, सुधीर तैलंग, और असीम त्रिवेदी जैसे कई प्रसिद्ध कलाकार शामिल हैं। ये चित्रकार अपने कार्टूनों के माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर तीखी टिप्पणी करते रहे हैं। प्रमुख व्यंग्य-चित्रकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त रासीपुरम कृष्णस्वामी लक्ष्मण यानी आर. के. लक्ष्मण 24 अक्टूबर 1921 कर्नाटक राज्य के मैसूर में पैदा उन्होंने अपने कार्टूनों के ज़रिए आर. के. लक्ष्मण ने आम आदमी को एक व्यापक स्थान दिया और उसके जीवन की मायूसी, अँधेरे, उजाले, ख़ुशी तथा ग़म को शब्दों एवं रेखाओं की मदद से समाज के सामने रखा। असाधारण व्यक्तित्व के धनी आर. के. लक्ष्मण ने वक़्त की नब्ज को पहचान कर देश, समाज और स्थितियों की अक्कासी की। लक्ष्मण के कार्टूनों की दुनिया व्यापक है और इसमें समाज का चेहरा तो दिखता ही है, साथ ही भारतीय राजनीति में होने वाले बदलाव भी दिखाई देते हैं। के. शंकर पिल्लई: "शंकर" के नाम से भी जाने जाते हैं, ये एक प्रमुख व्यंग्य चित्रकार थे जिन्होंने कई राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर काम किया। असीम त्रिवेदी: यह एक समकालीन व्यंग्य चित्रकार हैं जो भ्रष्टाचार और सामाजिक मुद्दों पर अपनी टिप्पणियों के लिए जाने जाते हैं।

मंजुल, सुरेंद्र, सतीश आचार्य, हेमंत मोरपंखी (डिजिटल युग के व्यंग्यकार) 21वीं सदी में डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म (Twitter, Instagram, Cartoons by Manjul आदि) पर समाज और राजनीति पर त्वरित व्यंग्य प्रस्तुत करते हैं। इनकी चित्रकला अब सोशल मीडिया साहित्य की तरह कार्य करती है — दृश्य और शब्द दोनों के मेल से जन-चेतना को झकझोरती है। उदाहरण: COVID-19, चुनाव, मीडिया ट्रायल, और लोकतांत्रिक विडंबनाओं पर ये व्यंग्य चित्र साहित्यिक स्तंभों के समान लोकप्रिय हुए।

**निष्कर्ष**

समकालीन कला और साहित्य में राजनीतिक प्रभाव एक जटिल, बहुआयामी और अपरिहार्य तत्व के रूप में विद्यमान है। राजनीति, समाज और संस्कृति — तीनों के बीच का यह अंतर्संबंध रचनात्मकता को सीमित भी करता है और समृद्ध भी

बनाता है। साहित्य और कला केवल सत्ता के विरोध या समर्थन के उपकरण नहीं हैं, बल्कि वे समाज के भीतर छिपी हुई उन संवेदनाओं, द्वंद्वों और यथार्थों को उजागर करते हैं जिन्हें राजनीतिक भाषण अक्सर अनदेखा कर देता है।

स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज के वैश्वीकरण और डिजिटल युग तक, भारतीय कलाकारों और साहित्यकारों ने अपनी अभिव्यक्तियों में सामाजिक असमानता, हिंसा, भ्रष्टाचार, धर्म और राजनीति के गठजोड़, पर्यावरणीय संकट, स्त्री और मानवाधिकार जैसे मुद्दों को निरंतर उठाया है। इन रचनाओं में कभी प्रतिरोध का स्वर है, कभी व्यंग्य की धार, और कभी मानवीय करुणा की संवेदना। कला के क्षेत्र में कोलकाता समूह से लेकर प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप, बड़ौदा स्कूल और समकालीन कलाकारों — जितिश कल्लाट, सुबोध गुप्ता, अतुल डोडिया, नलिनी मलानी आदि तक — ने यह सिद्ध किया कि कला केवल सौंदर्य की खोज नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक विमर्श का भी सशक्त माध्यम है। इसी प्रकार साहित्य में अरुंधति रॉय, महाश्वेता देवी, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, और अनेक समकालीन लेखकों ने राजनीतिक संरचनाओं की पड़ताल कर समाज की विवेकशीलता को जगाया है।

राजनीति का प्रभाव कभी प्रेरक तो कभी सीमित करने वाला होता है, किंतु यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि राजनीति के बिना कला और साहित्य अधूरे हैं, और कला-साहित्य के बिना राजनीति दिशाहीन। समकालीन परिप्रेक्ष्य में जब लोकतंत्र, असमानता, सेंसरशिप और डिजिटल नियंत्रण जैसे प्रश्न गहराते जा रहे हैं, तब कला और साहित्य को केवल सौंदर्य की खोज नहीं बल्कि सामाजिक चेतना का वाहक बनना होगा।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि —"समकालीन कला और साहित्य राजनीति के प्रभाव से प्रभावित होकर भी अपनी स्वतंत्र रचनात्मकता बनाए रखते हैं। वे समाज के दर्पण मात्र नहीं, बल्कि परिवर्तन के साधन भी हैं। राजनीति जहाँ यथार्थ दिखाती है, वहीं कला और साहित्य उस यथार्थ में संवेदना, प्रतिरोध और आशा का रंग भरते हैं।"

**संदर्भ सूची**

1. रॉय, अरुंधति. The Ministry of Utmost Happiness
2. देवी, महाश्वेता. हज़ार चौरासी की माँ
3. नंदी, अशीस. The Intimate Enemy
4. कुमार, रवि. साहित्य और राजनीति
5. दास, गगन. Art and Politics in Contemporary India
6. समाचार-पत्रीय लेख और ऑनलाइन जर्नल्स (2020–2025)
7. Paritosh Sen, The Narrative of an Artist, Oxford University Press, 1999.
8. R. Siva Kumar, Indian Art: The Modern Era, NGMA, 1997.
9. भारत में समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य', प्राण नाथ मागो, 2001, पृष्ठ 63-67।
10. https://share.google/Imh8wsSWibTMhOXNk,Legend News, 26 January 2024
11. NCERT, An Introduction to Indian Art – Class XII, Chapter 7, "Modern Indian Art".
12. Indian Express Archives: "The Political Vision of India's Cartoonists" (2021)
13. Vadehra Art Gallery Archives (New Delhi, 2018)

**9**

# किशनगढ़ शैली और समकालीन कविता में बिंब एवं रूप-संरचना का तुलनात्मक अध्ययन

**1.** हेमन्त धवल,
शोधार्थी, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान
ई–मेल : hdhawal9@gmail.com

**2.** डॉ. जगदीश प्रसाद मीणा
सहायक आचार्य, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

**सारांश (Abstract)**
भारतीय कला परंपरा में लघुचित्रकला की अनेक शैलियाँ विकसित हुईं, जिनमें किशनगढ़ शैली अपनी सूक्ष्मता, भावप्रवणता और काव्यात्मक दृष्टि के कारण अत्यंत विशिष्ट स्थान रखती है। सावंत सिंह (नागरीदास) और कलाकार निहालचंद के सहयोग से यह शैली न केवल राधा–कृष्ण की भक्ति और प्रेम के आदर्शों को दृश्य रूप में प्रस्तुत करती है, बल्कि साथ ही साथ चरित्र–चित्रण, कथानक–निर्माण और प्रतीकात्मकता के स्तर पर भी गहन कलात्मकता का परिचय देती है। किशनगढ़ चित्रकला का प्रत्येक चित्र केवल सौंदर्य–बोध का उदाहरण नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत दृश्यात्मक कथा भी है जिसमें प्रकृति, पात्र और वस्तुएँ सामूहिक रूप से किसी प्रसंग या भाव का संप्रेषण करती हैं।

दूसरी ओर, समकालीन हिंदी कहानी लेखन में दृश्यात्मक बिंबों का प्रभावशाली प्रयोग देखा जाता है। आज की कहानियाँ केवल कथानक–केंद्रित नहीं रह गई हैं, बल्कि वे ष्देखे जाने योग्यष कथाएँ बन गई हैं। कहानीकार पात्रों के मनोभाव, परिवेश और घटनाओं को इस प्रकार रचते हैं कि पाठक उन्हें शब्दों के साथ–साथ एक चित्र या दृश्य की तरह अनुभव कर सके। यह प्रवृत्ति किशनगढ़ चित्रकला की उस परंपरा से साम्य रखती है जिसमें चित्र के प्रत्येक तत्वकृपात्र की दृष्टि, नेत्रों की लंबाई, परिधान की रेखाएँ, वृक्ष, पशु–पक्षी और आकाश की स्थितिकृपूरे कथानक को गढ़ते हैं।
इस शोध में किशनगढ़ चित्रकला और समकालीन कथा साहित्य के बीच दृश्यात्मक बिंबों की समानताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें यह पाया गया है किकृ

• भावनात्मक सूक्ष्मता रू जैसे किशनगढ़ चित्रों में राधा के नेत्र और भाव सम्पूर्ण कथा कहते हैं, वैसे ही कहानियों में पात्रों के छोटे–छोटे संकेत गहरे अर्थ संप्रेषित करते हैं।

• प्रतीक और अमूर्तन रू चित्रकला की वस्तुएँ (बाँसुरी, वृक्ष, कमल) कथानक का आधार बनती हैं, वैसे ही कहानियों में प्रतीकात्मक वस्तुएँ भाव और विचार की परतें खोलती हैं।

• दृश्यात्मकता रू दोनों ही माध्यम केवल ष्पढ़नेष या 'देखने' का अनुभव नहीं देते, बल्कि वे पाठकध्दर्शक को एक फ्रेम–बद्ध दृश्य के भीतर ले जाते हैं।

समकालीन कहानी लेखन और किशनगढ़ चित्रकला, दोनों ही अपने–अपने समय के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों से प्रेरित होकर विकसित हुए हैं, किन्तु इन दोनों में दृश्यात्मक बिंबों और चरित्र–निर्माण की समान प्रवृत्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि भारतीय कला और साहित्य मूलतः अंतर्विषयक और परस्पर प्रभावकारी रहे हैं।
अतः यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि किशनगढ़ चित्रकला और समकालीन हिंदी कथा साहित्य के बीच न केवल सौंदर्यपरक साम्यता है, बल्कि दृश्यात्मक बिंबों और चरित्र–चित्रण के स्तर पर एक गहन अंतर्संबंध विद्यमान है। यह अंतर्संबंध भारतीय कला और साहित्य के निरंतर संवाद, उसकी परंपरा और समकालीन पुनर्सृजन की प्रक्रिया को समझने में सहायक है।
प्रमुख शब्द रू किशनगढ़ चित्रकला, समकालीन कहानी, दृश्यात्मकता, बिंब, कथानक, चरित्र, भारतीय कला परंपरा।

## प्रस्तावना

कला और कविता मानव अनुभव की अभिव्यक्ति के दो प्रमुख माध्यम हैं, जो व्यक्ति की संवेदनाओं, विचारों और अनुभूतियों को विशिष्ट रूप में संप्रेषित करते हैं। इन दोनों माध्यमों में 'बिंब' (Imagery) का प्रयोग अनुभव को दृश्य और प्रतीकात्मक रूप देने का प्रमुख साधन है। बिंब केवल बाह्य वस्तु या दृश्य का अनुकरण नहीं करता, बल्कि वह भाव, अनुभूति और दर्शन का रूपांतरण है, जो कला और साहित्य को जीवंत और अर्थपूर्ण बनाता है। जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है — ''कला का उद्देश्य केवल बाह्य रूप का अनुकरण नहीं, अपितु अंतर्मन की छाया को व्यक्त करना है ।''
भारतीय कला में किशनगढ़ शैली (18वीं शताब्दी) ने बिंब की संवेदनशील और काव्यात्मक अभिव्यक्ति को चरम सीमा तक पहुँचाया। राजा सावंत सिंह (नागरीदास) और चित्रकार निहालचंद के सृजनात्मक सहयोग से विकसित यह शैली राधा—कृष्ण के माध्यम से प्रेम, भक्ति और अध्यात्म का दार्शनिक संदेश देती है। किशनगढ़ की 'बणी—ठणी' (राधा) चित्रमाला में रेखाओं की लय, रंगों की सूक्ष्मता और आकृतियों की कोमलता केवल दृश्य सौंदर्य नहीं, बल्कि आंतरिक भाव और आत्मिक अनुभूति का दृश्य रूप प्रस्तुत करती है ।

समकालीन हिंदी कविता में भी बिंब का कार्य इसी प्रकार संवेदनात्मक और प्रतीकात्मक है। आधुनिक कवियों ने जीवन की जटिलताओं, विस्थापन, सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों को बिंबों के माध्यम से व्यक्त किया। केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण और मंगलेश डबराल जैसी कविताओं में बिंब केवल दृश्य का प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि मनुष्य की भीतरी चेतना, समाज और अस्तित्व की गहनता का प्रतीक बनते हैं । डॉ. नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी के अनुसार, समकालीन कविता में बिंब शब्द से अधिक संवेदना और अनुभव उत्पन्न करता है, जिससे कविता और चित्रकला के बीच एक समान सौंदर्यात्मक धारा का निर्माण होता है।

इस शोध—पत्र का उद्देश्य किशनगढ़ शैली की चित्रकला और समकालीन हिंदी कविता में बिंब और रूप—संरचना के समानांतर और अंतरसंबंधों का विश्लेषण करना है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि दोनों माध्यमों में बिंब केवल सौंदर्य का उपकरण नहीं, बल्कि संवेदना, अनुभूति और जीवन—दर्शन का सेतु है। चित्रकला में रंग, रेखा और प्रकाश की लय, और कविता में शब्द, छंद और प्रतीक, दोनों ही माध्यम मानव अनुभव को दृश्य और रूपांतरित भाषा में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार यह अध्ययन कला और साहित्य के मूलभूत अंतर्संबंध और बिंब की बहुआयामी भूमिका को उजागर करता है ।

## शोध समस्या एवं उद्देश्य

भारतीय साहित्य और चित्रकला के बीच गहरे संबंध होने के बावजूद, किशनगढ़ शैली और समकालीन कविता के बिंबात्मक साम्य पर सीमित शोध हुआ है।
यह अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों पर केंद्रित है रू

1. किशनगढ़ शैली में प्रयुक्त बिंबों और प्रतीकों का विश्लेषण करना।
2. समकालीन हिंदी कविता में दृश्यात्मकता और रूप—संरचना की पड़ताल करना।
3. दोनों माध्यमों के बीच समानताओं, भिन्नताओं और अंतर्संबंधों की पहचान करना।
4. यह समझना कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना दोनों कलाओं में किस प्रकार अभिव्यक्त होती है।

## सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

चित्रकला और कविता दोनों ही मानव—अभिव्यक्ति की संवेदनात्मक विधाएँ हैं, जिनमें 'बिंब' संवेदना को आकार देने का प्रमुख माध्यम है। बिंब न केवल दृश्य को प्रस्तुत करता है, बल्कि वह भाव, विचार और अनुभूति का भी रूपांतरण है। जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है — ''कला का उद्देश्य केवल बाह्य रूप का अनुकरण नहीं, अपितु अंतर्मन की छाया को व्यक्त करना है ।'' इस दृष्टि से देखा जाए तो किशनगढ़ शैली और समकालीन हिंदी कविता, दोनों में बिंब का कार्य दृश्य से अधिक भावात्मक और प्रतीकात्मक हो जाता है।

किशनगढ़ चित्रकला शैली (18वीं शताब्दी) में राधा–कृष्ण की मूर्तियाँ केवल लौकिक प्रेम का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि वे भक्ति, करुणा और आत्मानुभूति के बिंब बन जाती हैं। यहाँ राधा के मुख की अलौकिक कोमलता, लम्बे नेत्र, नुकीली ठोड़ी, और निस्तब्ध पृष्ठभूमि कृ सब मिलकर एक अध्यात्मिक सौंदर्यबोध का निर्माण करते हैं । किशनगढ़ के सुप्रसिद्ध चित्रकार निहालचंद ने अपने चित्रों में राधा को 'बानी ठाकुरानी' के रूप में चित्रित करते हुए भक्ति–रस की अनुभूति को दृश्य रूप दिया। कला इतिहासकार स्टेला क्रामरिश के अनुसार, ''भारतीय चित्रकला में बिंब का अर्थ केवल दृश्य रूप से नहीं, बल्कि उस आत्मिक प्रतीक से है जो अनुभूति को दृश्य बनाता है ।'' इस प्रकार, किशनगढ़ शैली का बिंब दृश्यता से अधिक भावनात्मक अमूर्तन का माध्यम है।

समकालीन हिंदी कविता में भी बिंब विचार और अनुभव की गहराई को अभिव्यक्त करने का सशक्त साधन बन गया है। कवि केदारनाथ सिंह अपनी कविता "बाघ" में बिंब के माध्यम से यथार्थ और प्रतीक के बीच एक सेतु रचते हैं – यहाँ 'बाघ' केवल वन्य जीव नहीं, बल्कि मनुष्य की भीतरी बेचौनी और अस्तित्व–संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। बाघ का शहर में आना, मनुष्य के भीतर के भय और असुरक्षा का रूपक है। इस प्रकार बिंब बाह्य यथार्थ को आंतरिक सच्चाई से जोड़ देता है।

इसी प्रकार कुंवर नारायण की कविताओं में बिंब आत्मसंवाद के रूप में उभरते हैं। उनकी कविता "आत्मजयी" में युद्ध, मृत्यु और आत्मा के बिंब किसी बाहरी दृश्य का नहीं, बल्कि अंतर्मन के संघर्ष और प्रश्नों का प्रतीक हैं। आलोचक विजय बहादुर सिंह के शब्दों में, ''कुंवर नारायण की चित्रात्मकता वस्तु से अधिक विचार की ऊर्जा से उपजती है ।'' यहाँ बिंब आत्म–विश्लेषण का उपकरण बन जाता है, जो मनुष्य को अपनी आंतरिक गहराइयों में उतरने का अवसर देता है।

इस प्रकार, किशनगढ़ चित्रकला और समकालीन कविता दोनों में बिंब का कार्य संवेदनात्मक संप्रेषण का है। चित्रकला में जहाँ रेखा, रंग और रूप के माध्यम से भाव को व्यक्त किया जाता है, वहीं कविता में शब्दों के माध्यम से वही भावात्मक बिंब रचे जाते हैं। दोनों विधाएँ अपने–अपने स्तर पर अदृश्य को दृश्य और अनुभूत को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करती हैं। जैसा कि पॉल वलेरी ने कहा है – ''कला वह है जहाँ दृश्य और अदृश्य का मिलन होता है ।'' इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि बिंब न केवल कलात्मक उपकरण है, बल्कि वह एक संवेदनात्मक सेतु है जो दृश्य और विचार, बाह्य और आंतरिक, कला और जीवन के बीच गहन संवाद स्थापित करता है। किशनगढ़ की राधा में जो प्रेम और भक्ति का बिंब है, वही समकालीन कवि के शब्दों में अस्तित्व और आत्मसंवाद का बिंब बन जाता है। दोनों ही माध्यमों में बिंब अनुभव की भाषा है – जो मनुष्य की संवेदना को सजीव, रूपायित और शाश्वत बनाती है।

### किशनगढ़ शैली का बिंब एवं रूप–संरचना विश्लेषण

किशनगढ़ शैली भारतीय लघुचित्र परंपरा की सबसे सुसंवेदनशील और काव्यात्मक शैलियों में से एक है। यह 18वीं शताब्दी में राजा सावंत सिंह (नागरीदास) और उनके दरबारी चित्रकार निहालचंद के सृजनात्मक सहयोग से विकसित हुई। सावंत सिंह स्वयं कृष्ण–भक्त कवि थे, जिन्होंने 'नागरीदास' नाम से राधा–कृष्ण की भक्ति पर अनेक पदों की रचना की। उनके काव्य में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा के मिलन की अनुभूति व्यक्त होती है, वही संवेदना निहालचंद की तूलिका में रंगों और रेखाओं के रूप में व्यक्त होती है।

किशनगढ़ शैली में निर्मित ''बणी–ठणी'' चित्र केवल एक स्त्री की आकृति नहीं, बल्कि भक्ति–सौंदर्य का अमूर्तन है। कला–इतिहासकार स्टेला क्रामरिश के अनुसार, ''भारतीय चित्रकला में स्त्री–मुख केवल भौतिक सौंदर्य का नहीं, बल्कि अदृश्य आत्मिक चेतना का प्रतीक होता है''। इस दृष्टि से 'बनी–ठनी' के लम्बे नेत्र और मृदुल मुस्कान राधा के आध्यात्मिक रूप को मूर्त करते हैं कृ वह प्रेम, भक्ति और ध्यान की एकीकृत प्रतीक बन जाती हैं।

कला–चिंतक आनंद कुमारस्वामी ने भारतीय कला के संदर्भ में कहा है कि ''भारतीय कलाकार वस्तु को नहीं, उसके भीतर निहित आत्मा को चित्रित करता है''। किशनगढ़ शैली में यह विचार पूर्णतः मूर्त होता है। यहाँ कृष्ण और राधा लौकिक पात्र नहीं हैं, बल्कि जीव और ब्रह्म के मिलन का दार्शनिक प्रतीक हैं ।

चित्र संख्या 01 : कृष्ण राधा को पुष्प अर्पित करते हुए

रूप–संरचना की दृष्टि से, किशनगढ़ शैली अत्यंत लयबद्ध, रेखामय और भावप्रधान है। रेखाओं की तरलता और आकृतियों की सुकोमलता इस शैली को विशिष्ट बनाती है। कपिला वात्स्यायन ने कहा है – ''भारतीय चित्रकार रेखा को संगीत की तरह साधता है, और किशनगढ़ की रेखाएँ मानो राग 'यमन' की लय में बहती हैं'' । इस प्रकार, किशनगढ़ की रेखाएँ केवल संरचना नहीं, बल्कि काव्यात्मक लय का दृश्य अनुवाद हैं।

रंग–संयोजन इस शैली का दूसरा विशिष्ट पक्ष है। निहालचंद ने रंगों का प्रयोग अत्यंत सूक्ष्म मनोभावों के साथ किया – जैसे हल्का नीला कृष्ण की दैवी शांति का प्रतीक, गुलाबी प्रेम और करुणा का, और सुनहरा अध्यात्मिक प्रकाश का संकेत देता है। कला–इतिहासकार सी. सिवराममूर्ति का मत है कि ''राजस्थान की लघुचित्र परंपरा में किशनगढ़ शैली रंगों के भावनात्मक प्रयोग की दृष्टि से सर्वाधिक परिपक्व है'' ।

इस शैली की संरचना में लय और संतुलन प्रमुख है। प्रत्येक चित्र में आकृतियों की स्थिति, दृष्टि की दिशा, और पृष्ठभूमि का विन्यास एक संगीतात्मक सौंदर्यशास्त्र को जन्म देता है। पृष्ठभूमि में झीलें, पहाड़ और कोमल वृक्ष – एक ध्यानमग्न वातावरण का निर्माण करते हैं, जो कृष्ण–भक्ति के ''अहं–लय'' को दर्शाता है। यह वही भाव है जिसे कवि नागरीदास अपने पदों में ''प्रेम–समाधि'' के रूप में चित्रित करते हैं।

कला–विश्लेषक ए.एन. त्रिपाठी के अनुसार, ''किशनगढ़ शैली में रेखा और रंग, दोनों मिलकर एक ऐसी सौंदर्य–भाषा रचते हैं जो शब्दातीत है – यह कविता नहीं है, पर कविता की तरह अनुभव की जाती है'' । वास्तव में, किशनगढ़ के चित्रों में वही सौंदर्य–लय मिलती है जो केदारनाथ सिंह या कुंवर नारायण की कविताओं के बिंबों में अनुभव की जाती है – जहाँ दृश्य और भाव एक–दूसरे में घुल जाते हैं।

इस प्रकार, किशनगढ़ शैली का बिंब और रूप–संरचना दोनों ही कला और दर्शन का संगम हैं। यहाँ चित्र केवल दृश्य नहीं, बल्कि एक भाविक अनुभव है – एक ऐसा अनुभव जो भक्ति के भाव को रूप और रंग में मूर्त करता है। किशनगढ़ की कला में राधा और कृष्ण न केवल दैवी प्रेम के प्रतीक हैं, बल्कि वे मनुष्य की अंतः चेतना, उसकी करुणा और उसके अस्तित्व के गूढ़ प्रश्नों के भी प्रतीक हैं। यही कारण है कि यह शैली आज भी सौंदर्य, अध्यात्म और काव्यात्मकता की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति मानी जाती है ।

**समकालीन कविता में बिंब एवं रूप–संरचना**

समकालीन हिंदी कविता में 'बिंब' की भूमिका अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। आधुनिक कवियों ने जीवन की जटिलताओं, विस्थापन, उपभोक्तावाद, और अस्मिता के प्रश्नों को अभिव्यक्त करने के लिए नये बिंबों और प्रतीकों का सृजन किया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, ''समकालीन कविता का बिंब अब केवल सौंदर्य नहीं रचता, वह जीवन के यथार्थ की विडंबनाओं को भी दृश्य बनाता है ।'' अर्थात् अब बिंब केवल दृश्यात्मक उपकरण नहीं, बल्कि चेतना और अनुभव का रूपांतरण है।

केदारनाथ सिंह की कविताएँ इस बिंब–विन्यास की जीवंत मिसाल हैं। उनकी कविता "बाघ" में 'बाघ' केवल जानवर नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर के भय, असुरक्षा और अस्मिता–संघर्ष का प्रतीक है। कवि स्वयं कहते हैं – ''मैं बिंब को वस्तु से नहीं, उसकी गंध और स्पर्श से पहचानता हूँ ।'' उनके यहाँ 'गाँव', 'पेड़', 'बारिश' और 'खेत' जैसे बिंब किसी रोमानी भाव नहीं रचते, बल्कि संवेदनात्मक यथार्थ की सजीव उपस्थिति बनाते हैं। आलोचक अशोक वाजपेयी का मत है कि – ''केदारनाथ सिंह की कविता में बिंब शब्द से अधिक चित्र हैं और चित्र से अधिक अनुभव। '' यह अनुभव–केंद्रितता किशनगढ़ शैली की चित्रात्मकता से भी जुड़ती है, जहाँ दृश्य के पीछे भावनात्मक गहराई प्रमुख है।

कुंवर नारायण की कविताओं में बिंब–संरचना दार्शनिक चेतना से जुड़ती है। उनके यहाँ बिंब विचार का रूप लेते हैं – जैसे ''आत्मजयी'' में युद्ध, मृत्यु और आत्मा के बिंब जीवन के आंतरिक संघर्ष को उद्घाटित करते हैं। आलोचक विजयदेव नारायण साही लिखते हैं – ''कुंवर नारायण की कविताएँ दार्शनिकता का चित्रमय रूप हैं, जहाँ दृश्य वस्तु नहीं, विचार का प्रतीक होता है ।'' स्वयं कुंवर नारायण कहते हैं – ''मेरे लिए कविता दृश्य का नहीं, दृष्टि का निर्माण करती है।'' इस प्रकार उनके बिंब अंतर्दृष्टि का विस्तार करते हैं।

मंगलेश डबराल की कविता ''पहाड़ पर लालटेन'' में बिंब लोकजीवन, प्रकृति और श्रमशीलता से संवाद करते हैं। 'लालटेन' यहाँ केवल प्रकाश–स्रोत नहीं, बल्कि मानव संघर्ष और आशा का प्रतीक है। आलोचक रमेशचंद्र शाह के अनुसार, ''मंगलेश डबराल ने बिंब को स्मृति और प्रतिरोध का माध्यम बनाया – जहाँ प्रकृति और मनुष्य का रिश्ता पुनः खोजा जाता है ।'' उनके यहाँ बिंब की संवेदना सामाजिक यथार्थ से जुड़ती है – यह कविता को लोकधर्मी और मानवीय बनाती है।

इन कविताओं में बिंब की रूप–संरचना खुली, बहुस्तरीय और प्रतीकात्मक है। समकालीन कवि पारंपरिक स्थिर बिंबों की जगह गतिशील और रूपांतरशील बिंबों का प्रयोग करते हैं, जो पाठक की चेतना में अर्थ के कई स्तर रचते हैं। डॉ. केदारनाथ सिंह ने कहा था–''आधुनिक कविता में बिंब अब एक स्थिर दृश्य नहीं, बल्कि गतिशील अनुभव की प्रक्रिया है। ''

कला–आलोचक कपिला वात्स्यायन का मत है कि – ''भारतीय कलाएँ रूप और भाव के अंतः संबंध से अपनी शक्ति ग्रहण करती हैं। जब रूप में भाव प्रवाहित होता है, तभी वह बिंब बनता है ।'' यही विचार समकालीन कविता में भी लागू होता है – जहाँ शब्द केवल ध्वनि नहीं, बल्कि अनुभूति का रंग धारण करते हैं। केदारनाथ सिंह की कविता में वही संवेदनात्मक रंग दिखाई देता है जो किशनगढ़ शैली के चित्रों में – दोनों में ही रूप और भावना का संगम है।

अशोक वाजपेयी आगे लिखते हैं – ''समकालीन कवियों ने शब्दों को रंगों में, और संवेदना को प्रकाश में बदल दिया है – यही आधुनिक कविता का चित्रात्मक सौंदर्य है ।'' यह विचार किशनगढ़ की 'बणी–ठणी' की तरह कविता के बिंबों में भी झलकता है – जहाँ सूक्ष्मता, कोमलता और भाव की गरिमा एक साथ उपस्थित हैं।

अतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता में बिंब और रूप–संरचना केवल सौंदर्यबोध का साधन नहीं, बल्कि मनुष्य और समाज के अंतःसंवाद का माध्यम हैं। इन कविताओं में बिंब जीवन के बहुआयामी अनुभवों – प्रेम, पीड़ा, विस्थापन, स्मृति और संघर्ष – को इस तरह दृश्य बनाते हैं कि वे शब्द से आगे बढ़कर चित्र का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार, समकालीन कविता और किशनगढ़ चित्रकला दोनों ही बिंब के माध्यम से संवेदना की दृश्य भाषा का निर्माण करती हैं।

**किशनगढ़ शैली और समकालीन कविता में बिंब–संवेदनाः एक तुलनात्मक विश्लेषण**

किशनगढ़ शैली और समकालीन हिंदी कविता – दोनों में 'बिंब' केवल बाह्य रूप या दृश्य प्रभाव नहीं, बल्कि आंतरिक भाव, संवेदना और आत्मानुभूति का प्रतीक है। किशनगढ़ चित्रकला में राधा–कृष्ण का बिंब प्रेम, विरह और भक्ति का दार्शनिक रूपक है। कला–विदुषी डॉ. कपिला वात्स्यायन ने स्पष्ट किया है कि – ''भारतीय चित्रकला में बिंब केवल दृश्य अनुभव नहीं, बल्कि भाव और विचार की संयुक्त अभिव्यक्ति है। जहाँ रंग आत्मा की भाषा बन जाते हैं। '' इसी भावभूमि पर किशनगढ़ की प्रसिद्ध राधा (बणी–ठणी) चित्रमाला प्रेम और भक्ति को इस प्रकार मूर्त करती है कि दृश्य सौंदर्य आत्मिक अनुभव का प्रतीक बन जाता है। एन.सी. मेहता ने त्रेंजींदप च्पदजपदह (1957) में उल्लेख किया है कि – ''किशनगढ़ चित्रों की रंग–योजना और रेखांकन आध्यात्मिक लय का आभास कराते हैं, जहाँ भौतिक रूप में दैवीय चेतना की झलक मिलती है ।''

कला–इतिहासकार अचल पांडेय का मत है कि किशनगढ़ शैली में रेखाओं की कोमलता और नयनों की लंबाई किसी भावावेशित कविता की पंक्तियों जैसी प्रतीत होती है । इस प्रकार चित्रकला और कविता, दोनों में रूप–लय और भाव–लय एक–दूसरे से गहरे जुड़ते हैं। जहाँ चित्र में रंग, रेखा और प्रकाश भाव की लय रचते हैं, वहीं कविता में वही लय शब्द, ध्वनि और छंद के माध्यम से पुनः साकार होती है।

समकालीन कविता में भी यही बिंब–संवेदना शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है। डॉ. नामवर सिंह ने कहा है कि – ''समकालीन कविता का बिंब केवल सौंदर्य का उपकरण नहीं, बल्कि यथार्थ की व्याख्या का माध्यम है ।'' केदारनाथ सिंह की कविता ''बाघ'' में 'बाघ' केवल पशु नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर के भय और संघर्ष का प्रतीक बनता है। अशोक वाजपेयी के अनुसार, ''केदारनाथ सिंह के बिंब शब्दों से अधिक दृश्य हैं और दृश्यों से अधिक संवेदनाय वे कविता को चित्र में रूपांतरित कर देते हैं ।'' कुंवर नारायण के यहाँ बिंब आत्म–संवाद और विचार की अभिव्यक्ति बनते हैं – उनके शब्दों में ''कविता दृष्टि का निर्माण करती है, दृश्य का नहीं ।'' वहीं मंगलेश डबराल की कविता ''पहाड़ पर लालटेन'' में लालटेन का बिंब संघर्ष और आशा का रूपक है, जिसे रमेशचंद्र शाह ''स्मृति और प्रतिरोध का प्रतीक'' कहते हैं ।

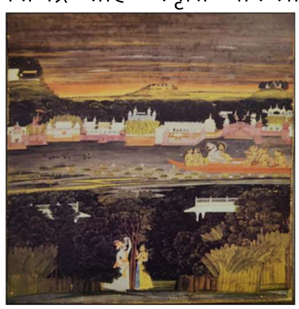

चित्र संख्या 02 : नौकाविहार

कला–आलोचक अनामिका ने 'कविता और स्त्री–संवेदना' (2008) में लिखा है कि ''आधुनिक कवि चित्र की तरह शब्दों से दृश्य रचते हैं – उनका शब्द रंग है, लय रेखा है और बिंब उनका कैनवस ।'' यह विचार किशनगढ़ चित्रकला की तकनीक से साम्य रखता है, जहाँ  दृश्य और भावना एक दूसरे में घुल–मिल जाते हैं। इसी क्रम में डॉ. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं – ''भारतीय कला और कविता का उद्देश्य बाह्य यथार्थ नहीं, अंतः प्रकाश की अनुभूति है ।'' अतः किशनगढ़ की चित्रकला और समकालीन कविता दोनों में 'बिंब' वस्तु या घटना का नहीं, बल्कि अंतरचेतना के संवाद का प्रतीक है।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि किशनगढ़ शैली में जहाँ रंग आत्मिक प्रेम का दार्शनिक रूपक हैं, वहीं समकालीन कविता में वही बिंब सामाजिक–राजनीतिक अस्तित्व, स्मृति और मानवीय संवेदना के रूपक बन जाते हैं। दोनों ही माध्यमों में रंग और शब्द संवेदना को मूर्त रूप देते हैं। चित्रकला की रेखाएँ और रंग जिस लय में प्रवाहित होते हैं, कविता में वही लय शब्दों, ध्वनियों और प्रतीकों के माध्यम से पुनः साकार होती है। इस प्रकार चित्रकला और कविता दोनों उस बिंदु पर मिलते हैं जहाँ कला केवल दृश्य या श्रव्य नहीं, बल्कि अनुभव का साक्षात् रूप बन जाती है।

## निष्कर्ष

किशनगढ़ शैली की चित्रकला और समकालीन हिंदी कविता दोनों में 'बिंब' केवल दृश्य का प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि आंतरिक भाव, संवेदना और आत्मानुभूति का प्रतीक है। किशनगढ़ चित्रकला में राधा–कृष्ण के बिंब प्रेम, भक्ति और अध्यात्म का दर्शन कराते हैं, जबकि समकालीन कविता में बिंब सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत अस्तित्व के अनुभवों को व्यक्त करते हैं। दोनों ही माध्यम रंग और शब्द के माध्यम से संवेदना को मूर्त रूप देते हैं, जहाँ चित्रकला में रेखाएँ, रंग और प्रकाश भाव की लय रचते हैं, वहीं कविता में वही लय शब्द, ध्वनि और प्रतीकों के माध्यम से पुनः साकार होती है।

कला–विद्वान जैसे कपिला वात्स्यायन, एन. सी. मेहता, अचल पांडेय, अनामिका और विद्यानिवास मिश्र ने स्पष्ट किया है कि भारतीय कला और कविता का उद्देश्य केवल बाह्य यथार्थ का चित्रण नहीं, बल्कि अंतः प्रकाश और अनुभव का दृश्यात्मक रूप प्रस्तुत करना है। इस दृष्टि से किशनगढ़ चित्रकला और समकालीन कविता दोनों बिंब के माध्यम से भावनात्मक, दार्शनिक और संवेदनात्मक संवाद स्थापित करती हैं।

इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बिंब कला का सेतु है – जो दृश्य और विचार, बाह्य और आंतरिक, कला और जीवन के बीच गहन संवाद रचता है। किशनगढ़ में राधा–कृष्ण के बिंब में जो प्रेम और भक्ति है, वही समकालीन कविता में शब्दों में अस्तित्व और आत्मसंवाद के रूप में प्रकट होता है। अतः कहा जा सकता है कि बिंब केवल सौंदर्य उपकरण नहीं, बल्कि संवेदना, अनुभव और चेतना का रूपांतर है, जो मानव अनुभव को दृश्य और शब्द दोनों माध्यमों में जीवंत करता है।

## संदर्भ सूची


- शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. वाराणसीः नागरी प्रचारिणी सभा. 1940.
- द्विवेदी, एच.पी. भारतीय कला और संस्कृति. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. 2005.
- सिंह, केदारनाथ. अकाल में सारस. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. 1984.
- शाह, रमेशचन्द्र. मंगलेश डबराल की कविता में स्मृति और प्रतिरोध. आलोचना. अंक 42. 2011.
- शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. वाराणसीः नागरी प्रचारिणी सभा. 1940.
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद. भारतीय कला और संस्कृति. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.
- क्रैमरिच, स्टेला. द आर्ट ऑफ इंडिया. लंदनः फेडोन प्रेस. 1954.
- सिंह, विजय बहादुर. कुंवर नारायणरू कविता का दूसरा संसार. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन. 2008.
- वैलेरी, पॉल. कला पर विचार. पैंथियन बुक्स. न्यूयॉर्क. 1958.
- सिंह, केदारनाथ. अकाल में सारस. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984.
- Coomaraswamy. Ananda K. The Transformation of Nature in Art. Harvard University Press. Cambridge. 1934.
- शास्त्री, हजारीलाल. वैष्णव भक्ति और राधा–कृष्ण तत्त्वज्ञान. चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, 1998.
  वात्स्यायन, कपिला. भारतीय चित्रकला के आयाम. इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स, नई दिल्ली, 1992.
- Sivaramamurti, C. Indian Painting. New Delhi : National Museum. 1970.
- Tripathi, A.N. Rajasthani Painting: An Interpretation of Form and Spirit. Delhi: Motilal Banarsidass. 2008.
- Joshi, R.P. Rajasthani Miniature Painting: Kishangarh School. New Delhi: Abhinav Publications. 2010.

- सिंह, नामवर. कविता के नये प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983.
- सिंह, केदारनाथ. कविता और समय. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
- वाजपेयी, अशोक. कविता का सौंदर्यशास्त्र. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.
- साही, विजयदेव नारायण. कविता का समाजशास्त्र. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1981.
- शाह, रमेशचंद्र. "मंगलेश डबराल की कविता में स्मृति और प्रतिरोध।" आलोचना, अंक 42, 2011.
- सिंह, केदारनाथ. अकाल में सारस. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984.
- वात्स्यायन, कपिला. भारतीय चित्रकला के आयाम. नई दिल्लीः इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स. 1992.
- वाजपेयी, अशोक. कविता और समय का रंग. साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2006.
- वात्स्यायन, कपिला. भारतीय चित्रकला के आयाम. नई दिल्लीः इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स. 1992.
- Mehta, N.C. Rajasthani Painting. Bombay : The Times of India Press. 1957.
- पांडेय, अचल. भारतीय चित्रकला की परंपरा. नई दिल्ली : भारतीय कला परिषद. 2005.
- सिंह, नामवर. कविता के नये प्रतिमान. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. 1983.
- वाजपेयी, अशोक. कविता का सौंदर्यशास्त्र. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन. 2002.
- साही, विजयदेव नारायण. कविता का समाजशास्त्र. दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. 1981.
- शाह, रमेशचंद्र. मंगलेश डबराल की कविता में स्मृति और प्रतिरोध. आलोचना, अंक 42, 2011.
- अनामिका. कविता और स्त्री–संवेदना. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2008.
- मिश्र, विद्यानिवास. भारतीय सौंदर्यबोध. नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ. 1

# 10

# भारतीय डाक टिकटों में कला और साहित्यिक प्रतीकों का अंतर्संबंधः राजा रवि वर्मा के चित्रों के विशेष संदर्भ में

शोधार्थी : हन्नी चौहान
चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
ई–मेलः
hunnychouhan272@gmail.com
शोध निर्देशकः प्रो.(डॉ.) आई.यू.खान
(चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

**सार:**
यह शोध–पत्र "राजा रवि वर्मा के चित्रों के सन्दर्भ में भारतीय डाक टिकटों में कला और साहित्यिक प्रतीकों का अंतर्संबंध" विषय पर आधारित है। डाक टिकट केवल संचार का माध्यम भर नहीं रहे, बल्कि उन्होंने भारत की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और कलात्मक धरोहर को सूक्ष्म रूप में विश्व पटल पर प्रस्तुत करने का कार्य किया है। प्रत्येक टिकट भारत की विविधता, परंपरा, और उसके कलात्मक–साहित्यिक भावों का लघुरूप बनकर सामने आता है। इस प्रकार, डाक टिकटों के माध्यम से भारत की लघु परंतु सजीव सांस्कृतिक झलक प्राप्त होती है, जो राष्ट्र की सामाजिक चेतना, प्रमुख व्यक्तित्वों, कला–प्रवृत्तियों और आध्यात्मिक संवेदनाओं को एक सूत्र में पिरोती है। बदलते समय और तकनीकी विकास के साथ भारतीय डाक टिकटों का स्वरूप भी विस्तृत होता गया है। इन टिकटों ने समय–समय पर भारतीय कला की विविध धाराओं जैसे शिल्प, चित्रकला, स्थापत्य, साहित्य और लोकसंस्कृति को लघु आकार में अत्यंत सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है। इनमें विशेष रूप से चित्रकला को वह स्थान प्राप्त हुआ है जो भारतीय कलात्मक विरासत का गौरव बढ़ाता है। इसी क्रम में, उन्नीसवीं शताब्दी के महान चित्रकार राजा रवि वर्मा का योगदान सर्वाधिक उल्लेखनीय है। राजा रवि वर्मा ने भारतीय चित्रकला को केवल तकनीकी दृष्टि से समृद्ध नहीं किया, बल्कि उन्होंने भारतीय संस्कृति और साहित्य को भी अपनी कला के माध्यम से पुनर्जीवित किया। उन्होंने देवी–देवताओं, महाकाव्यों और पुराणों से प्रेरित पात्रों को मानवीय रूप में चित्रित कर उन्हें लोकानुरंजन के साथ–साथ धार्मिक संवेदनाओं से भी जोड़ा। उनके चित्रों में रंग, भाव, और विषयवस्तु का ऐसा संयोजन दिखाई देता है जो भारतीय लोककथाओं, पौराणिक प्रसंगों और सांस्कृतिक मूल्यबोध को एक ही फ्रेम में समेट लेता है। उनके चित्रों में निहित भावनात्मकता और सौंदर्यबोध भारतीय साहित्यिक परंपरा के गहन संबंध को प्रकट करते हैं। राजा रवि वर्मा की कला भारतीय लोक कथाओं से परिपूर्ण है, डाक टिकटों पर अंकित उनके चित्रों व कला को जन संचार तथा सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बना दिया इस शोध पत्र के माध्यम से यह समझना है कि राजा रवि वर्मा की चित्रकला में प्रयुक्त रूप रंग भाव और केवल विषय वस्तु तक सीमित नहीं है भारतीय साहित्य पुराण कथाओं और सांस्कृतिक मूल्यों को भी अभिव्यक्त करते हैं।

शब्दकोशः डाक टिकट, भारतीय संस्कृति, राजा रवि वर्मा

## परिचय
डाक टिकट मात्र जनसंचार का स्रोत ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति, धरोहर, इतिहास, परंपरा को विश्व स्तर पर प्रदर्शित करने का एक सर्वश्रेष्ठ माध्यम है यह अपने छोटे–छोटे आकारों में भारत की विभिन्न क्षेत्र, राज्यों की उपलब्धियां तथा प्रौद्योगिकी विकास, प्रकृति, खान– पान, संगीतकार, प्रमुख व्यक्तित्व को विषयों के रूप में संजोए रखता है। डाक टिकटों में अंकित विशेषकर चित्र और प्रतीक राष्ट्र की कलात्मक चेतना को परिलक्षित करते हैं। भारतीय डाक टिकटों को भारतीय कलाकारों की प्रमुख कलाकृतियां द्वारा सृजन किया गया है। कालान्तर में मुद्रण तकनीक में हुए निरंतर विकास में भारतीय डाक टिकटों पर भारतीय चित्रकला को अत्यंत सुंदर और सजीव रूप में प्रस्तुत करने में अहम भूमिका निभाई है इसके अंतर्गत पहले एक या दो रंगों में डाक टिकटों की छपाई होती थी लेकिन मुद्रण विकास के द्वारा

दो से अधिक रंगों में छपाई संभव हो पाई है। भारतीय कलाकारों में एमएफ हुसैन, अमृता शेरगिल, जमीनी राय, नंदलाल बोस शामिल है जिनके कलाकृतियों पर भारत सरकार द्वारा डाक टिकट जारी किए गए है। प्रस्तुत शोध पत्र में राजा रवि वर्मा के संदर्भ में भारतीय डाक टिकटों में कला और साहित्य प्रतीकों का अंतर्संबंध पर अध्ययन किया जाएगा। राजा रवि वर्मा जिन्हें भारतीय कला के जनक कहा जाता है, 19वीं के भारत के सबसे प्रभावशाली चित्रकारों में से माने जाते थे, उन्होंने भारतीय कला जगत में अभूतपूर्व योगदान दिया विशेष रूप से हिंदू देवी देवताओं को मानवीय आकृतियां के साथ चित्र करने वाले पहले व्यक्ति के रूप में थे उनके द्वारा चित्र दिव्या आकृति कई लोगों के लिए विशेष रूप से निम्न जातियों के लोगों के लिए जिन्हें अक्षर मंदिरों में प्रवेश से वंचित रखा जाता था अत्यंत महत्वपूर्ण बन गई। राजा रवि वर्मा की कला भारतीय लोक कथाओं से परिपूर्ण है डाक टिकटों पर अंकित उनके चित्रों व कला को  जनसंचार तथा सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बना दिया। राजा रवि वर्मा की कलाकृतियों पर मुख्य 3 डाक टिकट जारी किए गए थे–1971 में भारत सरकार द्वारा उनके 65 पुण्यतिथि पर जारी हंस दमयंती का चित्र है। इसके अंतर्गत रवि वर्मा की पेंटिंग दमयंती और हंस में, हंस एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रतीक है, जो कई अर्थों का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय पौराणिक कथाओं और साहित्य में, प्रतीकों से जोड़ा जाता है। इस पेंटिंग में हंस मुख्य रूप से एक संदेशवाहक के रूप में कार्य करता है। यह राजा नल के गुणों का वर्णन करके दमयंती के मन में उनके प्रति प्रेम जगाता है, जिससे वे दोनों पहली बार मिले बिना ही एक–दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। पवित्रता और ज्ञानरू हंस को पवित्रता, सुंदरता और ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। यह अक्सर देवी सरस्वती का वाहन होता है, जो ज्ञान की देवी हैं। प्रेम और निष्ठा हंस को एकपत्नीत्व और दांपत्य जीवन में समर्पण का आदर्श प्रतीक भी माना जाता है। यह नल और दमयंती के गहरे प्रेम और वफादारी की कहानी के लिए एक आदर्श प्रतीक है।

कवि कालिदास की स्मृति में 1960 दो कलाकृतियों पर डाक टिकट जारी हुए पहला शकुंतला दुष्यंत को पत्र लिख रही है, दूसरा मेघदूत से यक्ष बादलों से विनती कर रहा है। राजा रवि वर्मा' की उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है, जिसमें 'शकुंतला' को अपने साथियों के साथ दर्शाया गया है। दृश्य में वह जमीन पर बैठी है और एक काँटा निकालने का बहाना करती है, पर वास्तव में वह पीछे मुड़कर दुष्यंत को देखने का प्रयास कर रही है। यह चित्र और टिकट भारतीय साहित्य (विशेषकर कालिदास के नाटक "अभिज्ञानशाकुंतलं") से प्रेरित है। शकुंतला भारतीय साहित्य में नारी की सौम्यता, शील और भावनात्मक गहराई का प्रतीक है। राजा रवि वर्मा ने उसे कोमलता और लज्जा के रंगों में चित्रित किया है। यह साहित्य में वर्णित नायिका की मानवीय संवेदना को दृश्य रूप में प्रकट करता है। काँटा निकालने का बहाना भीतर छिपे प्रेम का प्रतीक माना गया है, यह क्रिया प्रच्छन्न प्रेम का प्रतीक है जो कालिदास के काव्य में लज्जा और प्रणय के बीच का सूक्ष्म भाव है। यह श्रृंगार रस का अत्यंत सुंदर उदाहरण है। शकुंतला की दोनों सखियाँ अनसूया और प्रियम्वदा यहाँ उपस्थित हैं। वे उसकी भावनाओं की साक्षी हैं और साहित्य में नायिका की मनोदशा को अभिव्यक्त करने का माध्यम हैं। कला में उनका चित्रण स्त्री–संवेदना के सामूहिक स्वर को दर्शाता है। पृष्ठभूमि में दिखाई देने वाला जंगल, हिरण, वृक्ष और शांत वातावरण प्रकृति और मानवीय भावनाओं के ऐक्य का प्रतीक हैं। कालिदास की रचनाओं में प्रकृति नायिका के भावों की प्रतिध्वनि होती है। रवि वर्मा ने भी इस दृश्य में वही प्रतीकात्मक सामंजस्य दिखाया है। दूसरी तरफ कालिदास द्वारा रचित मेघदूत से लिया गया एक दृश्य पर राजा रवि द्वारा बनी कलाकृति मेघ और यक्ष में मेघ सिर्फ एक बादल नहीं है, बल्कि यह आशा, प्रेम, विरह और भावनाओं का प्रतीक है। यह विरह में व्याकुल यक्ष और उसकी पत्नी के बीच संदेशवाहक का काम करता है। संदेशवाहक मेघ दो बिछड़े हुए प्रेमियों के बीच दूरी को पाटता है, उनकी भावनाओं और प्रेम के संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। आशा और प्रेम मेघ, जो वर्षा और जीवन का प्रतीक है, यक्ष की पत्नी के लिए आशा का प्रतीक बन जाता है। यह दिखाता है कि दूरी और समय के बावजूद प्रेम को जीवित रखा जा सकता है। प्रकृति और मानवीय भावनाएं कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति को मानवीय भावनाओं से जोड़ा है। मेघ को एक दयालु और बुद्धिमान प्राणी के रूप में दिखाया गया है जो मानवीय भावनाओं को समझ सकता है। अतः इन डाक टिकटों ने राजा रवि वर्मा की कला को जनसामान्य तक पहुँचाया, जिससे उनकी चित्रकला राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीयता की पहचान बन गई। इस प्रकार, उनके चित्रों पर आधारित डाक टिकट कला और साहित्य के अंतर्संबंध का सशक्त माध्यम बनकर, भारत की सांस्कृतिक चेतना को अमर रूप में प्रस्तुत करते हैं।

उद्देश्य

• भारतीय डाक टिकटों में कला और साहित्य के प्रतीकों के अंतर्संबंध का अध्ययन करना। इस उद्देश्य के अंतर्गत यह समझना प्रमुख है कि भारतीय डाक टिकट केवल डाक सेवा के साधन नहीं बल्कि सांस्कृतिक दूत हैं। इन टिकटों पर अंकित चित्र, मूर्तियाँ, या दृश्य भारतीय कला और साहित्य की आत्मा को कैसे व्यक्त करते हैं। उदाहरण के तौर पर, जब किसी साहित्यिक कृति (जैसे शकुंतला, मेघदूत, हंस दमयंती) से प्रेरित चित्र किसी डाक टिकट पर आते हैं, तो वे साहित्यिक प्रतीकों (पात्र, कथा, भाव, प्रतीकात्मकता) को दृश्य कला में रूपांतरित करते हैं। इस प्रकार, शोध का यह उद्देश्य दोनों विधाओं जैसे कला और साहित्य के बीच मौजूद सांस्कृतिक संवाद को उजागर करता है।

• राजा रवि वर्मा के चित्रों पर आधारित डाक टिकटों में निहित साहित्यिक प्रतीकों की पहचान करना। राजा रवि वर्मा की चित्रकला की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उनके विषय साहित्यिक और पौराणिक दोनों थे। उनके चित्रों में शकुंतला, सीता, दमयंती, सरस्वती, लक्ष्मी जैसी नायिकाएँ केवल कलात्मक रचनाएँ नहीं हैं, बल्कि भारतीय साहित्य की अमर पात्र हैं। इस उद्देश्य के तहत यह विश्लेषण किया जाएगा कि इन पात्रों के माध्यम से कौन–कौन से साहित्यिक प्रतीक उभरते हैं (जैसे प्रेम, त्याग, ज्ञान, सौंदर्य, नारीत्व, धर्म)।

• यह विश्लेषण करना कि किस प्रकार भारतीय डाक टिकटों के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना और कलात्मक सौंदर्य का प्रसार हुआ। इस उद्देश्य का संबंध कला और संस्कृति के जनसंचार से है। राजा रवि वर्मा की कलाकृतियाँ जब डाक टिकटों के रूप में देशभर में पहुँचीं, तब उन्होंने कला को केवल संग्रहालयों या राजमहलों तक सीमित नहीं रहने दिया। इसके अतिरिक्त इस डाक टिकटों के आकार, रंग, संरचना और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति गुणों का अवलोकन करना।

• राजा रवि वर्मा की कलाकृतियों के माध्यम से भारतीय पौराणिक और साहित्यिक विषयों की लोकमानस में स्वीकृति को समझना। यह उद्देश्य भारतीय कला और समाज के भावनात्मक संबंध को समझने का प्रयास करता हैराजा रवि वर्मा ने भारतीय पौराणिक और साहित्यिक पात्रों को इस तरह चित्रित किया कि वे हर वर्ग के व्यक्ति के लिए सुलभ और प्रिय बन गए।

• भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण में डाक टिकटों की भूमिका का विश्लेषण करना, राजा रवि वर्मा की कला भारतीय परंपरा और आधुनिकता के संगम का प्रतीक है। यह उद्देश्य यह जानने का प्रयास करेगा कि डाक टिकटों के माध्यम से उनकी कला ने भारतीय संस्कृति, मिथक और साहित्य को कैसे वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत किया तथा भारतीय अस्मिता को सशक्त किया।

• डाक टिकटों के माध्यम से कला–साहित्य के शैक्षिक और सौंदर्यात्मक मूल्य को रेखांकित करना यह उद्देश्य यह भी बताएगा कि डाक टिकट न केवल दृश्य सौंदर्य का अनुभव कराते हैं, बल्कि वे शैक्षिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे विद्यार्थियों, शोधार्थियों और कला–साहित्य प्रेमियों को भारतीय सांस्कृतिक विरासत से जोड़ते हैं।

## निष्कर्ष

भारतीय डाक टिकटों में अंकित राजा रवि वर्मा की कला भारतीय साहित्यिक प्रतीकों और सांस्कृतिक विरासत का जीवंत सेतु है। इन टिकटों के माध्यम से कला और साहित्य का जो समन्वय प्रस्तुत हुआ है, वह भारतीय पहचान की गहराई और उसकी सौंदर्यपरक संवेदना का प्रतीक है जो न केवल भूतकाल की गौरवगाथा को दर्शाता है, बल्कि आधुनिक भारत की सांस्कृतिक चेतना को भी सशक्त बनाता है। राजा रवि वर्मा की कला और भारतीय डाक टिकटों के अंतर्संबंध ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत को नए जीवन के साथ प्रस्तुत किया। उनके चित्रों की डाक टिकटों पर उपस्थिति न केवल कला–संस्कृति को आमजन तक पहुंचाने में सफल रही, बल्कि समाज में साहित्यिक और पौराणिक विषयों की पहचान को भी दृढ़ किया। इन टिकटों ने भारतीय कलात्मक प्रतीकों को सार्वजनिक स्मृति और पहचान का हिस्सा बना।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


- झिंगरन, अनूप कृष्णः हमारे डाक टिकट, प्रकाशन सूचना एवं प्रचारण मंत्रालय 2013
- ठाकर, रमेशः भारत डाक टिकट और उसका इतिहास, प्रकाशन परवीन, 2008
- सिंह, अरविंद कुमार डाक टिकटों में भारत दर्शन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2024
- चावला, रुपिका राजा रवि वर्मा औपनिवेशिक भारत के चित्रकार, प्रकाशन मैपिन पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2017

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

# 11
# लोक जीवन से संबंधित कला और साहित्य का परस्पर संबंध

डॉ. मधु पाराशर
कला शिक्षिका
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक, राजस्थान, पिन कोड 304022
Email : madhusharma-ind20@gmail.com

## लोक कला और लोक साहित्य में संबंध

लोक जीवन की अभिव्यक्ति के तीन मुख्य माध्यम हैं, लोक कलाएं और लोक साहित्य। ये एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और एक ही सांस्कृतिक परंपरा के अंग हैं। लोक कला वह कला है जो आम जनता के जीवन, भावनाओं और परंपराओं को सरल रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें चित्रकला, नृत्य, संगीत, नाटक, मूर्तिकला आदि शामिल हैं। उदाहरणः राजस्थान की फड़ चित्रकला, गवरी नृत्य, मांडना आदि। लोक कलाएं लोक कलाएं लोक कलाकारों द्वारा की जाने वाली विविध कलात्मक विधाएँ हैं जैसे लोकगीत, लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोक नाट्य, हस्तकला आदि। ये कलाएं लोक संस्कृति का जीवंत रूप हैं, जिनमें जनता की भावना, विश्वास और जीवन दर्शन झलकता है।

## लोक साहित्य

लोक साहित्य वह साहित्य है जो जनता द्वारा रचा गया है और जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से आगे बढ़ा है। यह किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक रचना होती है। इसमें सामान्य जनजीवन, उनकी भावनाएँ, मान्यताएँ, रीति–रिवाज, और संस्कृति का सजीव चित्रण मिलता है।

लोक साहित्य में लोकगीत, लोककथाएँ, लोकनाटक, कहावतें, दोहे, पहेलियाँ, और लोकदेवताओं की गाथाएँ शामिल होती हैं। यह समाज के लोक अनुभवों और जीवन दृष्टि का आईना है। लोक साहित्य का कोई लिखित रूप नहीं होता, यह मुँहजबानी पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है।

राजस्थान का लोक साहित्य विशेष रूप से समृद्ध माना जाता है। यहाँ के लोकगीतों में प्रेम, वीरता, भक्ति और त्यौहारों की झलक मिलती है  जैसे "केसरिया बालम", "पधारो म्हारे देश" आदि। लोककथाओं में "ढोला–मारू", "मूमल–महेंद्र", "पाबूजी" और "तेजाजी" की कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

लोक नाटकों जैसे ख्याल, गवरी और भवाई में सामाजिक संदेश और मनोरंजन दोनों होते हैं। वहीं लोक कहावतें और दोहे ग्रामीण जीवन की बुद्धिमत्ता और अनुभव का प्रतीक हैं  जैसे "जैसा करै सो तैसा भरै"। लोक साहित्य न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि यह समाज की ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहर को भी संरक्षित करता है। इसमें जनजीवन की सादगी, प्रेम, भक्ति, संघर्ष और सामाजिक एकता की भावना निहित होती है। लोक साहित्य किसी भी समाज की आत्मा है जो उसकी परंपराओं, विचारों और संस्कृति को जीवंत बनाए रखता है। यह अतीत और वर्तमान के बीच एक सांस्कृतिक सेतु का कार्य करता है।लोक साहित्य मौखिक परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा वह साहित्य है जिसमें लोक जीवन की कहानियाँ, गीत, कहावतें, पहेलियाँ, लोककथाएँ आदि सम्मिलित हैं। तीनों का संबंध लोक कला, लोक कलाएं और लोक साहित्य तीनों मिलकर किसी समाज की लोक संस्कृति का निर्माण करते हैं। लोक साहित्य लोक भावनाओं को शब्द देता है, लोक कला उन्हें रूप और रंग देती है, और लोक कलाएं उन्हें क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार, ये तीनों एक–दूसरे के पूरक हैं  जहाँ लोक साहित्य विचार है, वहाँ लोक कला उसकी अभिव्यक्ति है और लोक कलाएं उसका व्यवहारिक रूप।
लोक साहित्य भावना है, लोक कला उसका स्वरूप है, और लोक कलाएं उसका प्रदर्शन हैं  तीनों मिलकर लोक संस्कृति की आत्मा बनती हैं।

राजस्थान की लोक कला जो लोक जीवन से जुड़ी है। धर्म, समाज, कला व साहित्य क्या समाज के प्रत्येक पक्ष को व्यवस्थित करती है। और साहित्य का मौखिक वाचन हेतु नृत्य, नाटक, गीत– संगीत सभी कलाओं का रस के साथ प्रस्तुतीकरण करती है फड चित्रण में बगड़ावत देव देवनारायण गाथा राजस्थान की एक महान लोकगाथा है जो परम्परागत रूप से अब तक मौखिक प्रचलित थी। यह राजस्थान की लोकगाथाओं में यह एक उच्चकोटि की लोकगाथा है जिसका सदियों से राजस्थान के लोक–जीवन में मौखिक प्रचलन रहा है।

लोकगाथा एक विशिष्ट प्रकार का लोक काव्य है। सामान्यतः इसकी उत्पत्ति किसी प्रेरणादायक अथवा प्रसिद्ध वस्तुगत घटना या जीवन में घटित कार्य–कलाप से होती है। किसी घटना और उसके प्रमुख पात्रों के जीवन, उनकी समस्याएँ, उनके प्रेम, क्रोध, संकट, संघर्ष, बलिदान, पराक्रम बौर मार्मिक भावनाओं के वर्णन से बढ़ते–बढ़ते वह रोचक कथा एक भाव–प्रधान गाथा बन जाती है।

ऐसी लोकगाया का रचयिता कोई एक व्यक्ति विशेष नहीं होता। वर्णन–कारों और श्रोताओं दोनों के हाथों में बलते–ढलते उस गाथा में अनेक अंश जुड़ते जाते है और वह निखरती जाती है। इस रूप में लोकगाथा का रचयिता लोक–माननीय लोक ही होता है। लोकगाथा चूंकि सरल और सहज भावों में प्रकटित अपने जमाने की मान–वीय घटनाओं और जनभावनाओं को अंकित करनेवाला एक सरस साहित्य होता है इसलिए वह लोकप्रिय होता है। विशेषकर देहाती क्षेत्र में लोगों के सांस्कृतिक जीवन में इसकी गहरी छाप होती है। इसीलिए उसमे लोकजीवन की सरल किन्तु गहरी अभिव्यक्ति होती है। यही इसके लोकप्रिय होने का मुख्य कारण है। ऐसी लोकगाथा में उस समाज विशेष के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तौर–तरीको, सम्बन्धी मान्यताओं तथा जीवनादों का सर्वांगीण चित्र प्रतिबिंबित रहता है। गाथा में वर्णित पात्रों की भावनाए। एक हद तक उस समाज की प्रच–लित मान्यताओं का प्रतीक होती है। प्रेम, वात्सल्य, वीरता, बलि–दान मनुष्य जाति की सर्वमान्य भावनाए है लेकिन जिस विशेष रूप से लोक–गाथा के पात्रों के माध्यम से इन्हें प्रदर्शित किया जाता है उनमें ये केवल मात्र वैचारिक मान्यताए न रहकर वास्तविक जीवन की अनुभूतियां बन जाती हैं। यहीं कारण है कि लोकगाथा का पात्र अपने जैसा ही इन्सान लगता है जिसमे अच्छाइयों, बुराइयों, कमियां कमजोरियों सब एक साथ समाई मिलती हैं। इस - दृष्टि से इन लोकगाथाओं को यदि उस जमाने की प्रचलित सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थितियों की सही जानकारी प्राप्त करने का आधार बनाया जाये तो इस कार्य के लिए वे अत्यन्त उपयोगी साबित हो सकती हैं। आम लोगों के सांस्कृतिक जीवन में लगातार प्रचलन होने के कारण और वर्णनकर्ताओं द्वारा उसे और ज्यादा मार्मिक और आकर्षित करने के प्रयत्नों के कारण लोकगाथाओं में कई बार अतिशयोक्ति का समावेश हो जाता है। उस समय की प्रचलित धार्मिक भावनाओं और अन्धविश्वासों के प्रभाव में लोकगाथानों के पात्रों में कई बार दैवी शक्तियां प्रदर्शित की जाती हैं। कई बार इन गाथाओं से विसंगत और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का चित्रण भी मिलता है। इनका मौखिक प्रचलन ही इसका एकमात्र कारण रहा है। इन गाथाओं का मूल्यांकन–मीमांसा करनेवालों को चाहिए कि वे इन कमजोरियों, अतिशयोक्तियों को परखें और उनमें चित्रित मूल जन–भावनाओं को, प्रचलित सामाजिक सम्बन्धों तथा बन्धनों को ही अपने मूल्यांकन का आधार बनाना चाहिए। इस नजर से लोक–साहित्य और लोकगाथा एक उत्कृष्ट अनुभूति की गहराई तक पहुंचने में सहायक होती है। मानव–भावनाओं का चित्रण हर प्रकार के साहित्य का आधार रहा है। परन्तु समकालीन साहित्य लेखक की समझ, उसके विश्व दर्शन से प्रभावित होने के कारण उत्कृष्ट तो हो सकता है पर उस काल की ऐतिहासिक स्थितियों का सही चित्रण करने वाला आधार, वह नहीं रह पाता। लोकसाहित्य और लोकगाथा किसी प्रचलित वास्तविक घटना के सूत्र से निकली हुई होती है, और उसके रचयिता व संशोधनकर्ता भी सामान्य लोग ही होते हैं, इसलिए यह साहित्य कुछ टेढ़े–मेढ़े भागों को छोड़कर मूलतः उस काल की स्थितियों में दिखाई देनेवाले चित्र जैसी तस्वीर प्रस्तुत करता है। इसीलिए वह अत्यन्त रोचकय भी है तो साथ ही सामाजिक अन्वेषण का बहुत, विश्वसनीय आधार भी है। राजस्थान की लोकगाथाओं का जो अध्ययन मैंने किया उसमें शुरुआती दिनों में तो कथाओं की रोचकता, सुन्दर शैली, प्रभावी छन्द, मार्मिक मनोभावनाओं के कारण ही में इनके प्रति आकर्षित हुई। लेकिन जैसे–जैसे यह अध्ययन बढता गया और कथानकों की गहराई में उतरती गई ज्यों–ज्यों यह आभास होने राजस्थान का समाज धार्मिक भावनाओं से अनुप्रमाणित रहा है। यहां की

जीवन सम्बन्धि अनेक संस्थाएं तथा दैनिक नियम और प्रवृत्तियों नैतिक आचरणों से सम्बन्ध रही हैं। चाहे धर्म संस्थान हो या पारिवारिक संस्थायें हो, सभी धर्मानुष्ठान तथा सदाचार की परिधी में क्रियाशील देखी गई हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था संस्कार आदि सामाकिक नियजनों के मूल में धार्मिक आधार ही प्रमुख हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मानव जीवन के विकास और सांस्कृतिक उद्बोधन में धार्मिक प्रवृतियों और परम्पराओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अतः जीवन एक सामूहिक तत्व है, जिसके अन्तगर्त विश्वास, आचार, विधि, अर्चना, धार्मिक मत. सम्प्रदाय, धार्मिक चिन्तन, परिकल्पना, सन्त और उनके उपदेश, धर्म स्थान, यात्रा स्थल आदि समाविष्ट हैं। प्रागैतिहासिक काल से राजस्थान का जन जीवन धार्मिक चेतना के प्रति निष्ठावान रहा हैं। सरस्वती तथा आहड़ आदि नदियों की घाटियों से प्राप्त भग्नविशेष एवं सामग्री उस अतीत काल की धार्मिक स्थिति पर कुछ प्रकाश डालती है। कालीबंगा के किले की चारदीवारी से स्थिति 5–6 चबूतरें तथा कुछ वेदियों की कतारें इस बात की प्रमाण हैं, कि यहां के निवासियों में धर्म तथा उससे सम्बन्धित प्रक्रियाए उनके जीवन के प्रेरक तत्व थे। साधारण बस्तियों के दायरे से प्राप्त पूजागृह तथा वेदियों के अवशेष व्यक्तिगत धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करतें हैं। धार्मिक भावनाओं और प्रतीकों एवं संस्कारों का वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं, कि प्रागैतिहासिक काल में राजस्थान में शिव शक्ति, पृथ्वी, नदीं, अग्नि, जल, पशु, वृक्ष एवं तान्त्रिक प्रतिक्रियाओं को मानव के स्तर से उच्चकोटि के स्तर पर ईश्वरत्व के प्रतीक के रुप में माना जाता था। इस युग का मानव इनमें आस्था रखता था। विविध क्षेत्रीय जातियां एक दूसरे के विचारों से प्रभावित भी थीं। ऐसा भी लगता है कि इन सभी संस्कृतियों में धर्म निरपेक्षता, तान्त्रिक एवं उपासना सम्बन्धि तत्वों का सम्मिश्रण खूब हुआ हैं।

**बगड़ावत**

राजस्थान के सभी भागों में प्रचलित इस विशाल लोकगाथा को गायक भोपा एक–दों घंटे नित्य गाकर 18–20 दिनों में पूर्णा करता हैं। सभी गायक एका सी कथा ही गाते हैं, घटनाओं के क्रम में अन्तर अवश्य हो जाता है। श्रोता के कहने पर गायक इसके अंश भी सुनाते हैं। इस लोकगाथा में चौबीस वीरों की कथा है। बाघजी (बागराव) के पुत्र होने से ये 24 वीर (बगड़ावत) कहलाये। कभी गायक बाघजी के जन्म से गाथा प्रारंभ करता हैं और कभी बाघजी के जन्म को गद्य में कहकर बगड़ावतों के जन्म से गायन आरंभ करता है। भारत के अन्य भागों में इस गाथा का प्रचलन नहीं है, यह राजस्थानी संस्कृति की प्रतिनिधि गाथा है। गाथा का प्रस्तुतिकरण शिल्प इस लोकगाथा के गायक देवजी नारायण के भोपे कहलाते हैं। शीत ऋतु की रात्रियों में ही प्रायः इसका गायन किया जाता है। ग्रीष्म में इसे गाना श्रमसाध्य हैं। गाथा के वीर रस प्रधान होने से गायन करते समय गायक उत्साह से आपूरित हो उठता है परिणाम परिश्रम भी अधिक पड़ता है। गाथा के गायन–आयोजन मे दो गायक भाग लेते है। एक गायक (प्रमुख) राजस्थान की विशिष्ट वेशभूषा–मस्तक पर राजपूती शैली की पगड़ी, शरीर पर जरी के काम वाला लाल जामा तथा पैरों में लाल अथवा श्वेत रंग का चुस्त पायजामा धारण करता है। यह गायक हाथ में बीन (वीणा) रखता है। द्वितीय गायक के हाथ में लकड़ी के सहारे अवलंबित विशाल दीपक रहता है। यह द्वितीय व्यक्ति वस्तुतः सहायक है, गाथा के अग्रसरण में सहयोग में सहयोग देता है। मुख्य गायक अपने साथ एक छड़ भी रखता है जिससे वह गाये गये प्रसंग को फड़ पर संकेत कर दिखलाया है। फड़ 9–10 फुट लंबा तथा 2–3 फुट चौड़ा कपडे का पर्दा होता है। इस पर्दे पर बगड़ावतों द्वारा किये गये –त्यों के रंगीन चित्र बने होते है। गाथा का गायन करते समय गायक इस फड़ के सामने दांये से बांये लययुक्त गति से संचरण करता है। फड़ के दूसरे सिरे पर पहुंचकर कथा को अलाप लेकर गाता है तदनन्तर संबंधित चित्र तक तीव्र गति से जाकर प्रसंग में सतत अभिनयशील रहता है। कथा प्रारंभ करने वे पूर्व तथा समाप्त करने के पश्चात् गायक आरती करता है, सहायक शंख बजाया जाता है। बीन का प्रयोग गायक आलाप लेते समय तथा द्रुतगति से (फड़ पर चित्रित) संबंधित स्थल तक गमन करते हुए ही करता है। लोकगाथा में गद्या तथा पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। गद्य की भाषा मुहावरे तथा लोकोक्तियों से समृद्ध है। हमने गाथा का जो रूप प्राप्त किया है उसमें एक ही पंक्ति की आवृति पूरी गाथा मे नहीं होती किन्तु गाथा के अन्य रूपों में एक ही पंक्ति टेक पद होती है। गाथा की सभी पंक्तियां एक ही धुन में गाई जाती है।

### बाधजी का जन्म

अजमेर के राजा बीसलदेव चौहान के आश्रय में उनका भतीजा वीर हरीसिंह निवास करता था। बाग के शिकार का प्रेमी वीर हरीसिंह एक बाघ (व्याघ्र) मारता था। उन्हीं दिनों अजमेर मे लीला नामकी बाल–विधवा रहती थी। वह अत्यधिक लावण्यमयी स्त्री थी। लीला महीनों उपवास करती. शीत और आतप सहती हई तपस्या द्वारा स्वयं को तपा रही थी। एक रात्रि के अंतिक प्रहर में लीला पुष्कर घाट से स्नानान्तर लौट रही थी। हरीसिंह मृत बाघ को कंधे पर रखकर आ रहा था। लीला की दृष्टि हरीसिंह पर पड़ी और वह दृष्टि–विनिमय मात्र से ही गर्भवती हो गई। न तो हरीसिंह ही इस रहस्य को जान पाया और न लीला ही कुछ समझ पाई। कुछ महीनों के पश्चात लीला की उदरवृद्धि देखकर लोग चर्चा करने लगे। राजा बीसलदेव तक भी बात पहुची। राजा ने लीला को बुलाकर सब कुछ पूछा। लीला ने सिंहधारी पुरुष–दर्शन की कथा बतलाई और वह दिन तथा समय भी कहा जब उसे वह पुरुष मिला था। ज्ञात होने पर राजा से आश्वासित हरीसिंह को बुलाकर लीला को अपने साथ ले जाने की आज्ञा दी। राजा से आश्वासित हरीसिंह लीला को घर ले गया। समय पर लीला ने पुत्र–प्रसव किया। इस शिशु का मुख सिंह का तथा शरीर मनुष्य जैसा था। विचित्र पुत्र देखकर भयभीत पिता ने उसे वन में फेंक दिया। परन्तु शिशु मरा नहीं, अपना अंगूठा चूसने लगा ऊपर से चील ने छाया की तथा धरती पर सर्प ने अपने फन का छत्र किया। राजा के कहने से हरीसिंह पुत्र को घर ले आया। राजा ने इस पुत्र के तीन अपराध तक नित्य क्षमा करने का आश्वासन दिया। बाघ जैसा मुख होने से बालक का नाम बाघसिंह रखा गया।

### बाघजी के बारह विवाह तथा पुत्रोत्पति

बाघजी युवा हो गयें। उन्हें देखकर लोग भयभीत हो जाते थे। एक दिन बाघजी उस उपवन में गये जहां लड़कियां झूला झूलने आया करती थीं। उन्होंने झूले वृक्ष की ऊची शाखा पर अटका दिये जिससे लड़कियों झूल न सकें। लड़कियों आई और अपने प्रिय झूलों को इतना ऊचा देख बाघजी से झूला नीचा करने के लिये याचना करने लगीं। बाघजी ने कहा, ''तुम सब मेरे चारों ओर सात–सात बार परिणमा लगाओं तों मैं झूला नीचा कर सकता हू। ''झूलने को आतुर कन्याओं ने परिणाम की चिन्ता किये बिना ही बाघजी की शर्त स्वीकार करली। संयोगवश उपवन में उस समय एक लैंगडा ब्राह्मण था, उसने वेद पढ़ा और लड़कियों की परिक्रमा कीं। इस प्रकार सात परिक्रमाओं द्वारा विवाह हो जाने पर बाघजी ने झूले नीचे कर दिये। ये विवाह गुप्त ही रहे।

समयनुसार लड़कियां जब युवा हुई तो माता–पिता उनकें विवाह के लिये मुहूर्त शोधने लगे पर बहुत प्रयत्न करने पर भी लग्न न मिले। माता–पिता के पूछने पर लड़कियों ने बाघजी विषयक घटना बतला दी। माता–पिता ने कुद्ध होकर राजा से शिकायत की, पर राजा भी क्या करता, वह तो पहले ही बाधजी के तीन अपराध क्षमा करने का वचन दे चुका था। हार कर माता–पिता उन लडकियों को लेकर बाघजी के पास आये। बाघजी ने इनमें से 13 कन्याएं चुन लीं, शेष को धन देकर लौटा दिया। अवसर देखकर उपवन में वेद पढ़ाने वाला पंगु ब्राह्माण भी आया, उसने दक्षिणा मांगी। बाघजी ने एक कन्या उसे दे दी, 24 शेष बारह अपने पास रखीं। इन बारह स्त्रियों से 24 पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे 1. तेजोजी 2. नियोजी 3. निमोजी 4. बहरावजी 5. बागोरजी 6. मांडाली 7. नेतोजी 8. अदनजी 9. बदनजी 10. मदनजी 11. रूपजी 12. भूड़ोजी 13. उदोजी 14. भूणोजी 15. मांगोजी 16. भोजोजी 17. जगमालजी 18. मोवनजी 19. नानूजी 20. जयपालजी 21. तेलोजी 22. खेतरपालजी 23. हरजी 24. जोरजी। बाघजी के पुत्र होने के कारण यह सम्मिलित रूप से बगड़ावत संज्ञा हुए। राजा ने इन्हें गांव दिये, धन दिया। बगड़ावतों के ग्राम गोठ' कहलाते थे। इनके पास बहुत सी गाएं, भैसें थीं, ये उन्हें चराते और मस्त रहते थे।

### सवाई भोज शिव का वरदान

भोज गो–चारण के समय देखता कि एक गाय नित्य प्रायः आकर उसकी गायों में सम्मिलित होती है और सायंकाल जंगल विलीन हो जाती है। एक दिन भोज ने गाय का अनुगमन किया तो ज्ञात हुआ कि वह भगवान शंकर गाय थी। दुसरे दिन भोज उस समय पहुंचा जब पार्वती दूध दोहने को प्रस्तुत हो रही थीं।

भोज ने भगवान शकर से मजदूरी (चराई) मांगी, तब शंकर भगवान ने एक कढ़ाव में तेल गरम होने के लिये चढ़ाया और भोज को भंडार की चाबी संझलाकर तथा कुछ भी न देखने का निर्देश देकर स्वयं कुछ देर को कहीं चले गये। भोज से न रहा गया, कौतुहलवश उसने शंकर की धूणी उलट दी तों देखा कि उसकें नीचे नरमुंड पड़े हंस रहे हैं। भोज ने पूछा 'क्यों हंसते हो ?''नरमुंडों ने उत्तर दिया, ''तु भी यहीं यहीं आयेगा, यह साधु तुझे में पकाकर खायेगा।

भोज ने धूणी ढंक दी। कुछ समय बाद शंकर लौटे, कढ़ाव में तेल खौल रहा था। शंकर ने भोज से कढ़ाव की परिक्रमा करने को कहा। भोज सावधानी से चक्कर लगाने लगा, ज्योंही शंकर ने उसे पकड़ना चाहा वह बचकर दूसरी ओर चला गया। शंकर ने पुनः पकड़ने का प्रयास किया तब भोज को क्रोध आ गया और उसने शंकर को ही पकड़कर कढ़ाव में पटक दिया। शंकर भगवान भोज के पराक्रम से प्रसन्न हो गये और भोज को वरदान स्वरूप पारसमणि, बूंली घोड़ी, बीजल खड्ग, गजमंगल हाथी, बारह वर्ष की माया तथा बारह वर्ष की काया प्रदान की।

### बगड़ावत लोकगाथा का रचयिता

लोकश्रुति के अनुसार बगड़ावत लोकगाथा का रचयिता छोछू भाट था। डॉ. हरप्रसाद शास्त्री के मत को स्वीकार करते हुए श्री पुरुषोत्तम मेनारिया ने इसके मूल रूप में 1400 श्लोक माने हैं। 1400 श्लोकों वाला यह रूप आज कहीं भी उपलब्ध नहीं है। श्री जावलिया के पास जो डिंगल' बगड़ावत' काव्य है यह भी ज्ञात वह लोकगाथा के आधार पर किसी आभिजात्य कवि की रचना प्रतीत होता है। इस आधार जो भी हो मूल रचयिता छोछू भाट ही माना जाता है। लोकगाथा में इस भाट का उल्लेख हैं।

### लोक कला और लोक साहित्य का निष्कर्षः

लोक कला और लोक साहित्य किसी भी समाज की संस्—ति, परंपरा और भावनाओं का जीवंत प्रतीक होते हैं। ये आम जनता के जीवन, उनकी खुशियों, दुखों, विश्वासों और अनुभवों को सरल भाषा व कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करते हैं। लोक कला चित्र, संगीत, नृत्य और हस्तशिल्प के माध्यम से लोकजीवन की सुंदरता को प्रकट करती है, जबकि लोक साहित्य गीत, कथा, कहावतें और लोककथाओं के माध्यम से लोकमानस की अभिव्यक्ति बनता है।

दोनों मिलकर समाज की संस्—ति को संरक्षित रखते हैं और आने वाली पीढ़ियों तक परंपराओं का संदेश पहुंचाते हैं। इस प्रकार, लोक कला और लोक साहित्य हमारे सांस्—तिक धरोहर के अभिन्न अंग हैं, जो हमें हमारी जड़ों से जोड़े रखते हैं।

12

# भारतीय ज्ञान परंपरा से समकालीनता का संबंध : चित्रकला में परंपरागत चित्रण, काव्य और चित्रकारों का योगदान

**महेन्द्र प्रजापत**
शोधार्थी, चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
mk1998art@gmail.com
मोबाइल नंबर : 7568536637

**शोध सार :**

यह शोध पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा और समकालीन कला के संगम में राजस्थान के कलाकारों के योगदान और विशिष्टता को दर्शाता है। भारतीय परंपरा में कलाएं और रचनाएं आत्मिक अनुभव के विषय हैं और सृजनात्मकता के परिचायक है। रचना के लिए पहले अनुभव आवश्यक है उस अनुभव से संवेदन का विकास होता है। संवेदन से दृष्टि बनती है और उसके पश्चात् वह दृष्टि कलम और लेखनी से कागज या चित्रतल पर उतरती है। भारतीय कलाकारों के लिए कलाएं एक साधना थी। जब हम भारत की बात करते हैं तो कलाओं का एक समृद्ध इतिहास देखने को मिलता है। अजंता, बाघ, पहाड़ी, राजस्थानी इत्यादि कला शैलियाँ विशुद्ध भारतीय कला के उदाहरण प्रस्तुत करती है। अगर गौर किया जाए तो भारतीय कलाओं की सबसे खास विशेषता इनका भावोद्दीपनता है। संगीत जैसे अमूर्त विषयों विशेषकर रागमाला पर भी उनके राग और रागिनियों के विशेषताओं के आधार पर उनके रूप गढ़े गए है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, केशवदास की कविप्रिया, जयदेव का गीतगोविन्द, भानूदत्त की रसमंजरी या चाहे बिहारी लाल का बिहारी सत्सई आदि साहित्यिक ग्रंथों पर बार–बार चित्रण किया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में साहित्य ने वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत किया जबकि चित्रकला ने इन साहित्यिक विचारों को दृश्यात्मक और भावनात्मक रूप में अभिव्यक्ति दी। भाव प्रस्तुतीकरण ही भारतीय रचनाओं की प्रधानता रही। विभावजनित चित्तवृति का नाम भाव है।[1] भारतीय कलाएं लघु चित्रकला के रूप में समृद्ध रही है जो साहित्यिक कृतियों से संबंधित है। कला इतिहास का मध्यकाल साहित्यिक रचनाओं और उन रचनाओं के चित्रण की परंपरा के रूप में समृद्ध रही। इस शोध पत्र का उद्देश्य मुख्य रूप से कला ग्रंथों, काव्य रचनाओं, राजस्थानी लघुचित्रों के शैलीगत विश्लेषण तथा बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के प्रमुख राजस्थानी चित्रकारों की कृतियों पर परंपरागत और आधुनिकता के सामंजस्य को प्रस्तुत करना है।

**मूल शब्द:** भारतीय ज्ञान परंपरा, लघुचित्र, सृजनात्मकता, समकालीनता, कला, साहित्य, राजस्थानी चित्रण शैली।

**शोध प्रविधि :**

जवाहर कला केंद्र की प्रदर्शनी, विभिन्न वेबसाइट, लिंक और पुस्तकों से द्वितीयक डेटा स्रोत एकत्रित किया गया है। डेटा स्रोत का विश्लेषण करने के लिए वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। कलाकार की कला में परंपरा एवं समकालीनता के समन्वय का उल्लेख किया गया है। भारतीय कलाकार (विशेषतः राजस्थान के संदर्भ में) की कलाकृतियों में परंपरागत तत्वों के साथ आधुनिक प्रभावों का परीक्षण करने के लिए अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

**प्रस्तावना :**

भारतीय कला की ज्ञान परंपरा अध्यात्म में निहीत है। भारत के संदर्भ में, कला, अध्यात्म और संस्कृति आज की देन नहीं है अपितु यह हजारों साल पुरानी परंपरा है। कहा जाए तो यह एक ऐसा विशाल वृक्ष है जिसकी जड़े जीवन की गहराई तक समायी हुई है। कला मात्र कुछ बनाना नहीं, अपितु यह जीवन का अभिन्न अंग है। कलाओं में जीवन का सार निहीत है। कला को किसी भाषा की आवश्यकता नहीं है, वरन् यह स्वयं एक ऐसा माध्यम है जो सार्वभौमिक और सर्वकालिक है। चित्रकला और साहित्य जैसी रचनाएँ, अपने स्वरूप से परे, मानव जीवन के इतिहास, दर्शन, संस्कृति, भाव, विचार,

धर्म इत्यादि को व्यक्त करने की सशक्त विधा है। भारतीय रचनाओं ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतम तत्वों का ग्रहण किया है और रसिकों तक उस परम आनंद को पहुंचाया है।

ज्ञान के इस विशाल सागर में, राजस्थानी (भारतीय) चित्रण परंपरा अपना एक सर्वकालिक महत्व रखती है। राजस्थानी चित्रण जिसे प्रायः लघु चित्रकला शैली के नाम से जाना जाता है। इस शैली के चित्र मात्र कौशल के प्रतीक ही नहीं, वरन् साथ ही तत्कालीन युग के साहित्य, संगीत, काव्य, धार्मिक विश्वासों को रचनात्मक रूप में प्रस्तुत करने के माध्यम है। भारतीय कलाकृतियों (विशेषकर राजस्थानी कला के संदर्भ में) का सृजन प्रमुख रूप से रस सिद्धांत (मूल रूप से 8 भावनाएँ भरतमुनि के अनुसार) और षडांग (चित्रकला के छः अंग) जैसे कला सिद्धांतों पर आधारित है।[2]

परंपरा से समकालीनता के इस संगम में यह जानने का प्रयास है कि भारतीय परंपरागत कलाकार जिन्होंने वर्षों से राजदरबारों, मंदिरों, पत्रों इत्यादि पर महान् साहित्यिक रचनाओं भागवतपुराण, रामायण, महाभारत, कविप्रिया, रसिकप्रिया, बिहारी सत्सई इत्यादि का जीवंत रूपांकन कर अपनी असाधारण सृजनात्मकता का अतुलनीय प्रमाण दिया वहीं वर्तमान में कलाकारों की रचनाओं में इस परंपरा का बहुत बड़ा अंश देखा जा सकता है। कालांतर में कलाकरों ने अभिव्यक्ति के तरीके भले ही बदल लिए हो परन्तु उनकी रचनाओं में प्राचीन भारतीय परंपरा की आत्मा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। राजस्थान के कलाकारों ने अपने सृजन में परंपरागत विरासत को नहीं छोड़ा बल्कि आज भी अपनी कलाकृतियों में जीवित बनाए रखा है। समकालीन रचनाओं को देखने पर ऐसा लगता है मानो आज ये कलाकार भारतीय कला को नई दिशा प्रदान कर रहे है जहां परंपरा और समकालीनता का अद्भूत संगम हैं।

**अध्ययन का उद्धेश्यः**

- राजस्थान के कलाकारों ने पारंपरिकता को सहेजते हुए समसामयिक कला तत्वों के साथ कला को नई दिशा दी।
- उन्होंने परंपरा, साहित्य और नवीनता का सहज समावेश कर अपनी कृतियों को विशिष्ट पहचान दिलाई।

**मूल आलेख :**

**भारतीय परंपरा कला और ज्ञान का सैद्धान्तिक आधार :**

भारतीय परिदृश्य मे ंकला की महत्ता अतुलनीय है, जहाँ काव्य और चित्र एक–दूसरे के पूरक माने जाते है। भारतीय कलाओं में भावोद्दीपनता इसकी श्रेष्ठता है। विभिन्न युगों में विशेष रूप से मध्यकाल में कलाकारों ने रसिक के मन विशुद्ध भावों को जागृत करने वाली रचनाएं की है। यहां चित्रकार ने संगीत जैसे अमूर्त विषयों पर भी चित्रण कार्य किया और यही भारतीय कलाओं का मूल सौंदर्य है जहां कलाकार ने अपनी कल्पना शक्ति से राग–रागनियों के आंगिक भेदों के आधार पर रूप गढ़े हैं। षडांग चित्रकला के अंग (रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्ययोजना, सादृश्य, वर्णिकाभंग) जिस पर भारतीय कला खड़ी है, शास्त्रीय चित्रकला के नींव है। चित्रसूत्रम् जैसे प्राचीन ग्रंथों में भी इन अंगों को वर्णित किया गया है जहां भावों की अभिव्यक्ति के साथ–साथ तकनीकी कौशल का उल्लेख है। कला और साहित्य का सुंदर संगम हमें श्रृंगार रस के चित्रण में देखने का मिलता है जो विशेषतया मध्यकालीन रचनाकारों का प्रिय विषय रहा। मध्यकाल का लगभग दो सौ वर्षों का समय रीतिकाल के अंतर्गत आता है जहां भाव मानवीय प्रेम को दिव्य श्रृंगार रसरूप में व्यक्त किया गया है।[3]

रचनाकारों (कवियों और चित्रकारों) ने नायिकाओं के विभिन्न भेद उनकी मनोदशाओं, प्रेम की विभिन्न मनोदशाओं और प्रतीक्षा की व्याकुलता के भावों को दर्शाने के लिए नायक–नायिका की शास्त्रीय व्याख्याओं का सहारा लिया। विप्रलब्धा, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, खंडिता इत्यादि नायिकाओं के भेद माने गए और इन्हीं के आधार पर चित्रकारों ने इनके रूप गढे। चित्रकार 'भाव' जो रचना के हर क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि अंग है के प्रयोग से अक्स को रेखाओं और रंगो की सहायता से धरातल पर उकेरा। यह अंग मात्र चित्र बनाने का एक सिद्धांत नहीं अपितु जीवंत अनुभव प्रदान करते है।[4]

भारतीय कला की वैचारिक पृष्ठभूमि में काव्य और चित्रकला का गहन समामेलन दिखाई पड़ता है। यहां के कला परिदृश्य की बात की जाए तो कलाकारों ने दृश्य अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक कृतियों का सहारा लिया है। ये कृतियाँ सार्वभौमिक और सार्वकालिक मानी जाती है जो अपने रचनाकाल से वर्तमान तक प्रासंगिक है। गौर से देखें तो पाएंगे कि मध्यकाल में भारत में लघु चित्र शैलियाँ (राजस्थानी, पहाड़ी व अन्य लघु चित्र शैलियाँ) भक्ति और श्रृंगार रस (रति भाव) के ही इर्द–गिर्द रहीं। काव्य और साहित्य रचनाकारों ने भगवान कृष्ण को प्रेम व भक्ति (जो दोनों के ही प्रतीक हैं) को केन्द्र मानकर अपनी कविताएं और छंद रचे। वहीं चित्रकारों ने इन्हीं साहित्यिक रचनाओं का आधार लेकर अधिकतर धरातलों को रंगा और उस अमूर्त काव्य रचनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया। चित्रकारों का अन्य प्रिय विषय नायक–नायिका भेद भी रहा।[5]

चित्रकला मात्र एक कहानी का दृश्य वर्णन मात्र नहीं है, बल्कि यह आत्मिक अनुभव को दृश्य आनंद (रस) में प्रस्तुत करती है जो भारतीय परंपरागत कला और साहित्य के गहरे संबंध का प्रमाण है।

**भारतीय कला – परंपरा का समकालीनता से सृजनात्मक संवाद :**

परंपरागत कला से तात्पर्य उस कला विरासत है जो सदियों से चली आ रही है जिसमें राजपूत, मुगल, पहाड़ी, राजस्थानी, लोककलाओं के साथ–साथ भारतीय दार्शनिक और सौन्दर्यशास्त्रीय सिद्धांत और तकनीके भी शामिल हैं। उदाहरणतया भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का 'रस सिद्धान्त' (कला के माध्यम से भावों और आनंद की अनुभूति) और चित्रकला के षडांग जो कलाकृति के अनिवार्य शास्त्रीय नियम है। ये सिद्धान्त भारतीय परंपरागत कला को सौन्दर्य और तकनीकी आधार प्रदान करते हैं।

इसके साथ आधुनिक युग की समकालीन कला (समय के साथ चलने वाली कला) जो कलाकारों की कलात्मक चेतना को दर्शाती है। समकालीन समय में कलाकारों को विषय, माध्यम, तकनीक और शैली का चयन करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। वे किसी पारंपरिक नियम या सिद्धांत को मानने हेतु बाध्य नहीं है तथा कलाकारों ने समकालीन जगत की घटनाओं को अपनी कला स्थान दिया। अतीत को विस्मृत किए बगैर किस प्रकार कलाएं वर्तमान युग में प्रासंगिक बनी रह सकती है यह इस संवाद का प्रमाण प्रस्तुत करता है और यही विशेषता समकालीन भारतीय कला को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर एक ठोस आधार प्रदान करता है।[6]

वर्तमान कला जगत की रचनाओं में परंपरा का समकालीनता से संबंध देखने को मिलता है कलाकरों ने परंपराओं को त्यागने के स्थान पर उन्हें अपने मौलिक तरीके से रूपांतरित किया है जिस कारण कलाकार की कृति मौलिकता सरलता से पहचानी जा सकती है।[7] भारतीय परंपरागत कला मात्र सौन्दर्य का प्रदर्शन नहीं है अपितु 'पुरूषार्थ' प्राप्ति भी माना गया है। वर्तमान में अनेक कलाकारों ने परंपरागत कला प्रतीकों को रूपांतरित करके अपनी कृतियों में प्रयोग किया। इसमें भारत के महान् कलाकार एम.एफ. हुसैन और ए.रामचन्द्रन महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने पौराणिक कथाओं और आख्यानों को समकालीन जीवन और समय के अनुसार रूपान्तरित किया और कला जगत के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके कार्यों में भरतमुनि का रस सिद्धान्त जो समकालीन अमूर्त कला में प्रासंगिक बना हुआ है क्योंकि कलाकार अपनी रचना में किसी न किसी भाव का अमूर्त संचरण करता है जो दर्शक के मन में रस की निष्पत्ति करता है। परंपरागत भारतीय कलाएं वर्तमान में भी कलाकारों का प्रेरणा स्रोत है। आज भी कलाकार कला–साहित्य परंपरा से अपनी निजी अनुभवों को जोड़कर रचनाएँ कर रहे हैं।

20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में विशेषतया बंगाल के कलाकारों ने जडों को तलाशने को अभियान शुरू किया, जिसमें अवनीन्द्रनाथ टैगोर अग्रणी कलाकार थे।[8] जिन्होंने भारतीय कला परंपराओं अजंता, मुगल, राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों से प्रेरणा लेकर 'बंगाल स्कूल' की स्थापना की।[9] इस प्रयास में यामिनी राय जिन्होंने कालीघाट के पट चित्रों और लोककला से प्रेरणा लेकर सशक्त मोटी रेखाकंन वाली मौलिक चित्रण शैली का विकास किया। उनके चित्रों में तत्कालीन काव्य की झलक दिखाई देती है।[10] रॉय को भारतीय लोकपुनर्जागरण के जनक भी माना गया। भारतीय रचना परंपरा में काव्य और चित्रकला का समन्वय हमें रवीन्द्रनाथ टैगोर की कलाकृतियों में भी देखने को मिलता है। टैगोर ने अपनी कलाकृतियों में काव्य और दार्शनिक अनुभवों को रंगों और रेखाओं के सहारे चित्रतल पर

अनगढ़ता के साथ उकेरा। इसके साथ ही वर्तमान कलाकारों के लिए लोककलाएं वरली, मधुबनी, आदिवासी कला शैलियों की प्रतीकात्मकता इत्यादि महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत है जिन्होंने नई तकनीको, विचारों और माध्यमों को मिश्रित करके मौलिक शैली को विकसित किया।

अंततः चित्रकला में परंपरा का समकालीनता से संबंध भारतीय कला की निरंतरता और जीवतंता का प्रमाण है। समकालीन कलाकार जो पश्चिमी कलावादों यथा– पॉप आर्ट, ऑप आर्ट, एब्सट्रैक्ट आर्ट इत्यादि से प्रभावित होते हुए भी भारतीय परंपरा की जड़ों से जुड़े हुए है। कलाकरों ने नई–नई विधाओं, तकनीकों और माध्यमों को अपनाया परंतु इनकी रचनाओं की आत्मा में परंपरा की झलक दिखाई देती हैं।

**प्रमुख राजस्थानी चित्रकारों का योगदान :**

राजस्थान का कला–इतिहास जो अपने आप में परिपूर्ण है। भारत के कला क्षितिज पर, विशेषकर राजस्थान की धरा पर ऐसे कलाकार उदित हुए हैं जिन्होंने परंपरा के आधार पर समकालीनता की एक नई इमारत बनाई है। इन कलाकारों ने विरासत को सहेजते हुए नवीन अभिव्यक्ति का रास्ता खोजा। इनकी कलाकृतियाँ जो परंपरा और समकालीनता का अद्भूत समन्वय प्रदर्शित करती है।

**आधुनिकता और काव्य का समन्वय करती कलाविद् रामगोपाल विजयवर्गीय की कला :**

राजस्थान के प्रथम चित्रकार का गौरव प्राप्त कलाविद् रामगोपाल विजयवर्गीय का जन्म सन् 1905 ई में सवाई माधोपुर में बालेर ठिकाणे में हुआ। विजयवर्गीय जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने चित्रकला समेत कहानी लेखन, साहित्य लेखन, कविता/काव्य लेखन आदि पर अमूल्य कार्य किया। कला जगत में इन्हें इनकी विशिष्ट व मौलिक कला शैली के लिए जाना गया जिसमें इन्होंने राजस्थानी, बंगाल तथा अजंता का मिश्रण कर एक नई विधा में कार्य किया जिसे 'विजयवर्गीय शैली' कहा जाता है।[11] इनके चित्र काव्यों पर और समकालीन (उस समय) जीवन पर आधारित थे। उन्होंने भारतीय काव्य विषयों को आधुनिक कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत किया। विजयवर्गीयजी का चित्र 'रागिनी टोडी'[12] जो भारतीय काव्य और संगीत परंपरा से प्रेरित विषय समकालीन शैली के साथ समन्वय करके प्रस्तुत किया गया है। चित्र के मध्य में एक स्त्री आकृति (रागिनी या नायिका) को हाथ में संगीत वाद्य यंत्र वीणा को पकड़े हुए तथा पृष्ठभूमि में हिरणों और पुष्पों को चित्रण भारतीय साहित्य और राजस्थानी लघु चित्रकला के परिवेश की याद दिलाता है। भारतीय काव्यात्मकता और आध्यात्मिकता ही इस चित्र की विषयवस्तु का आधार है। हालांकि इसकी अभिव्यक्ति का तरीका पूरी तरह से समकालीन है। स्त्री आकृति का सुडौल, लचीला और रेखीय अंकन जहां एक ओर अजंता और राजपूत शैली की याद दिलाता है, वहीं दूसरी ओर इसका साहसिक, सरलीकृत और स्पष्ट रूप इसको समकालीन कला–बोध से जोड़ता है। इस चित्र में चमकीले रंगों का चयन कलाकार की पारंपरिकता से हटकर उसके आधुनिक कला बोध का प्रमाण और मौलिक शैली की परिचायक है।

चित्र सं. 1 रागिनी टोडी

**वेदपाल शर्मा 'बन्नूजी'– एक शैली, एक विरासत :**

स्वर्गीय बन्नूजी भारतीय पारंपरिक चित्रकला के छठी पीढ़ी के कलाकार थे, जिनके पूर्वज जयपुर राज दरबार में अपनी सेवाएँ देते थे। उन्होंने मात्र 17 वर्ष की आयु में अपने करियर आरंभ किया, जिसकी शुरूआत उन्होंने फिल्मी पोस्टरों, माचिस के लेबलों और प्रिंटिग प्रेस के लिए डिजाइन बनाने जैसे कार्यों से कीं। बाद में, उन्हें अपने दादा मोहनलालजी के निर्देशन में पुरानी मिनिएचर पेंटिंग्स के रेस्टोरशन का कार्य मिला। बन्नूजी भारतीय मिनिएचर चित्रों को

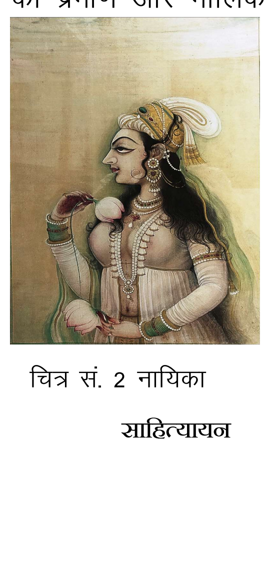

चित्र सं. 2 नायिका

पुनर्स्थापित करने वाले दुनिया के पहले विशेषज्ञ कलाकार बने, क्योंकि उनसे पूर्व यह परंपरा प्रचलित नहीं थी। रेस्टोरेशन कार्य के अपने 10—15 वर्षों के अनुभव के दौरान, उन्होंने मुगल, कांगडा और बसौली जैसी विभिन्न भारतीय शैलियों की बारीकियों, रेखाओं और रंग—योजनाओं का गहन अध्ययन किया। इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने अपनी मौलिक शैली विकसित की, जो आगे चलकर 'बन्नू शैली' के नाम से विख्यात हुई।[13]

बन्नूजी द्वारा बनाया गया यह चित्र जिसमें एक नारी आकृति को कमल धारण किए हुए चित्रित किया गया है, उनकी मौलिक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। जहां पारंपरिक तकनीकें समकालीन संवेदनशीलता के साथ संवाद करती है। चित्र में सूक्ष्म विवरणों की विशेषता किशनगढ़ और जयपुर लघु चित्रकला शैलियों की याद दिलाता है, वहीं चित्र का प्रस्तुतीकरण और भाव में समकालीनता का संबंध दिखाई देता है। बन्नूजी ने पारंपरिक तकनीकों को एक ऐसी निजी और गहन भावात्मक पोट्रेट के उपयोग किया, जिसने शाश्वत सौंदर्य और मानवीय मनोदशा को चित्रित किया, जो समकालीन दर्शकों के लिए भी उतना ही प्रासंगिक और आकर्षक है।

**परंपरागत कला विरासत का वीरेंद्र बन्नू की कला में समकालीन रूप :**

कलाकार वीरेंद्र बन्नू ने लघु चित्रकला की सदियों पुरानी विरासत में एक अभिनव अध्याय जोड़ा है। उनके चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता परंपरागत लघु चित्रकला परंपरा और नवीन समसामयिक विषयों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करते है। वीरेंद्र जी ने अपने चित्रों में मात्र परंपरा को ही नही दोहराया बल्कि परंपरा को समकालीन विचारों और अनुभवों के संगम को प्रस्तुत किया है। कलाकार वीरेंद्र जो जयपुर की लघुचित्रण कला की सातवीं पीढ़ी के कलाकार हैं। कला की शिक्षा उन्हें अपने पिता वेदपाल शर्मा 'बन्नूजी' से प्राप्त हुई। वीरेंद्र जी की कला की खास बात यह है कि वे चित्रण हेतु स्वयं कागज बनाते है और रंगों को स्वयं तैयार करते है। उन्होंने बताया कि चित्रण हेतु वे गिलहरी के बालों की तूलिका का प्रयोग करते है जिनको भी वे स्वयं ही तैयार करते हैं। वीरेंद्रजी की कला को अतीत की विरासत और आज की पहचान के रूप समझा जाता हैं।[14]

चित्र सं. 3 हेजिटेशन

वीरेंद्रजी का यह चित्र जिसमें दो अलग—अलग युगों की महिलाओं का चित्रण हैं। चित्रानुसार दाईं ओर की आकृति, जो पीली पोशाक में बैठी है और वीणा जैसा वाद्य यंत्र पकड़े हुए हैं, का चित्रण परंपरागत लघु चित्रकला शैली के विशेषताओं के अनुरूप किया गया है। वहीं दूसरी ओर, एक अन्य नारी आकृति को नीली जींस और टॉप पहने हुए बनाया गया है जो 21वीं सदी की आधुनिकता की ओर संकेत कर रही है। यह आकृति अतीत को जिज्ञासु और सम्मोहित दर्शक के रूप में देख रही है। यह चित्रकला इस बात की ओर संकेत करती है कि समकालीन परंपरा को मिटाती नहीं हैं अपितु उसे नए परिप्रेक्ष्य में देखती है। यह परंपरा और समकालीनता को समन्वय ही इस कलाकृति को असाधारण बनाता है।

**शास्त्रीय विषयों को दर्शाती ललित शर्मा की समकालीन कलाकृतियाँ :**

कला जगत के प्रसिद्ध नाथद्वारा में जन्मे चित्रकार ललित शर्मा इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि किस प्रकार परंपरा से जुड़े होने के पश्चात् भी कलाकार ने अभिव्यक्ति नए, आधुनिक और मौलिक आयामों में की। लघु चित्रकला शैली के सिद्धहस्त पिता घनश्याम शर्मा से प्रारंभिक कला शिक्षा प्राप्त करने के कारण ललित जी ने मेवाड़ (विशेष रूप से नाथद्वारा) की तकनीकी समझ, कला की बारीकियों और कला की आध्यात्मिकता व शास्त्रीय विषयों की समृद्ध विरासत को प्राप्त किया। हालांकि उनकी कला इतिहास का दोहराव मात्र नहीं है। ललितजी के शब्दों में ''पिछवाई ने हमें बहुत कुछ दिया है हम भी इस कला को आगे बढ़ाकर इसको विश्व में सम्मान दिलाना चाहते है।[15]

ललित जी ने परंपरागत नियमों को अपनी कला अभिव्यक्ति में नया रूप दिया। इन्होंने लघु चित्रों को छोटे प्रारूप की अपेक्षा बड़े कैनवास पर जलरंग, तैलरंग, टेम्परा जैसे विविध माध्यमों में सृजित किया।

उदयपुर के स्थापत्य, लोक–जीवन के चित्रण और पौराणिक कथाओं के पुनर्सृजन में भारतीय साहित्य व लोक संस्कृति का गहरा प्रभाव झलकता है जो उनकी कला को समकालीन संवेदनशीलता से जोड़ता है। ललितजी पारंपरिक शैली के मूल तत्वों को यथावत् रखते हुए बहुबिन्दु परिप्रेक्ष्यों के साथ आकृतियों को आधुनिकतावादी बदलावों के साथ प्रस्तुत करते है।

ललित शर्मा की प्रसिद्ध कृति 'कालिया दमन' परंपरा और समकालीनता की गहन व्याख्या प्रस्तुत करती है। चित्र दृश्य के अनुसार विषय सीधे तौर पर भारतीय भक्ति साहित्य और पुराणों से प्रेरित है। पारंपरिक कथानक को पूर्णतः नवीन और समकालीन आलेखन के साथ पुनर्रचित किया गया है। चित्र विषय ललित जी के नाथद्वारा की पारंपरिक जड़ों से जुड़ाव को प्रदर्शित करती है। वहीं चित्रण तकनीक उनके समकालीनता के प्रमाण प्रस्तुत कर रही है। चित्र में भगवान कृष्ण को नीले रंग में और उनके पीले वस्त्र लघु चित्रकला की विशिष्ट शैली और उनकी प्रतीकात्मक रंग योजना के प्रति कलाकार की परंपरा के प्रति निष्ठा को दर्शाती है परंतु अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जहाँ उन्होंने पारंपरिक रूप को आधुनिक संदर्भ में गढ़ा।

चित्र सं. 4. कालिया मर्दन

चित्र के उपरी भाग में एक विशाल, सपाट और अपरिष्कृत लाल रंग का क्षेत्र है, जिसे गहरे नीले रंग का जल क्षेत्र स्पष्ट रूप से विभाजित करता है। यह जल और आकाश का विभाजन मात्र भौतिकता का प्रतीक नहीं है अपितु यह चित्र की प्रतीकात्मकता को भी प्रदर्शित करता है। लाल रंग दिव्य शक्ति या जीवन ऊर्जा, वहीं नीला रंग शांत और अतल गहराई को दर्शाता है। यह विभाजन समकालीन न्यूनवाद व भारतीय लघु चित्रकला के सपाट रंग योजना के समन्वय को प्रदर्शित करता है।[16]

### लघु चित्रकला में समकालीनता के सृजक डॉ. नाथूलाल वर्मा :

राजस्थान के वरिष्ठ लघु चित्रकार नाथूलाल वर्मा को परंपरा के संरक्षक और समकालीन कला के सेतु के रूप में भी जाना जाता है। गुरू कृपालसिंह शेखावत से शिक्षा प्राप्त वर्मा जी एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जिन्होंने राजस्थान की लघु चित्रकला को आगे बढाया और साथ ही इस कला को मौलिकता के साथ आधुनिक संदर्भ में भी प्रस्तुत किया। नाथूलाल वर्मा की कलाकृतियाँ राजस्थानी कला विरासत के प्रति उनके गहरे सम्मान को दर्शाती है और उन्होंने विभिन्न कला शैलियों के तत्वों को आत्मसात् कर अपनी मौलिक कला शैली विकसित की। डॉ. वर्मा की कलाकृतियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह केवल अतीत को ही दर्शाती बल्कि वर्तमान को भी बड़े सौंदर्यपूर्ण तरीके से व्यक्त करती है और अपने चित्रों में मेवाड़, मारवाड़ तथा अजन्ता भित्तिचित्रों की शैली का संश्लेषण करते है।[17] वर्माजी की कलाकृतियों की विशेषता यह है कि उन्होंने लघु चित्रकला की गहन परंपरा को बनाए रखा किंतु उनमें समकालीन विषयों का समन्वय बेहद सुंदर है।

डॉ. वर्मा ने बडी सहजता से समकालीन जीवन विषयों को गढ़ा है। चित्र दृश्य के अनुसार एक नारी आकृति को कुत्ते के साथ टहलते हुए बनाया है, चित्र की विषय–वस्तु समकालीन है जो इसे पारंपरिक कथाओं से विलग करती है। युवती का पहनावा सलवार–कमीज होने के साथ ही उसे स्पोर्ट्स शूज़ पहने बनाया है जो वर्तमान समय की गतिशीलता को प्रदर्शित कर रहा है। चित्र आधुनिक भारतीय नारी को अपने सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहना दर्शाता है। डॉ. वर्मा ने तकनीक, सौंदर्य और विषयवस्तु के स्तर पर

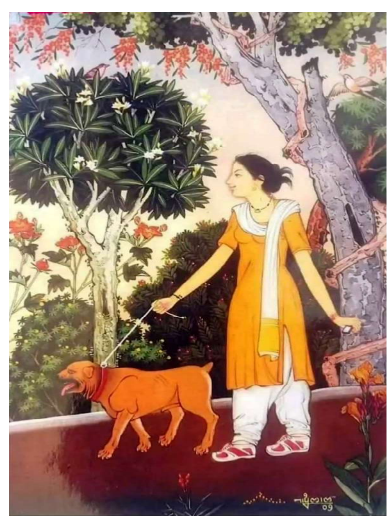
चित्र सं. 5 प्रातः भ्रमण

परंपरा और समकालीनता के बीच एक सफल सेतु का कार्य किया है, जो उनके कलाकार्यों को भारतीय कला में प्रासंगिक बनाता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध इस बात को स्थापित करता है भारतीय चित्रकला मात्र अतीत की धरोहर नहीं है अपितु एक जीवंत और गतिशील धारा है जो वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है। राजस्थानी चित्रकारों ने समकालीनता के साथ परंपरा को भी अपनी कला में जीवित रखा हैं। कलाकारों को भारतीय कला को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए अपने परंपरागत और सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा रहना होगा। यह समन्वय ही कला को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच अपनी पहचान बनाए रखने और अंततः, राष्ट्रीय एवं वैश्विक पटल पर एक अमिट प्रभाव डालने में सक्षम बनाएगा।

**संदर्भ**

1. डॉ. ममता चतुर्वेदी, सौन्दर्यशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2019, पृष्ठ सं. 226
2. वही, पृष्ठ सं. 256
3. डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, वानगो और निराला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2019, पृष्ठ सं. 19
4. डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, किशनगढ़ चित्रशैली, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2020, पृष्ठ सं. 1–2
5. र.वि. सांखलकर, कला कोश, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2023, पृष्ठ सं. 243–244
6. डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, वानगो और निराला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2019, पृष्ठ सं. 126
7. र.वि. सांखलकर, कला के अंर्तदर्शन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2022, जयपुर, पृष्ठ सं. 87
8. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला–एक परिप्रेद्वक्ष्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2023, पृष्ठ सं. 24
9. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ सं. 329
10. डॉ. ममता चतुर्वेदी, समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2021, पृष्ठ सं. 70
11. वही, पृष्ठ सं. 67
12. https://share.google/gEK85basgPlovPk7j
13. वीरेन्द्र बन्नू जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त
14. वही
15. https://theartistofnathdwara.org
16. https://formsofdevotion.org
17. डॉ. ममता चतुर्वेदी, समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2021, पृष्ठ सं. 180

**चित्र स्रोत :**

चित्र संख्या 1–Artistic Narration 2020, Vol. XI, No.1, pp.51-56 https://anubooks.com/?page_id=6863

चित्र संख्या 2 – व्यक्तिगत लिया गया छायाचित्र – जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, 24वां कला मेला, कला मण्डम में प्रदर्शित चित्र, मार्च 2025.

चित्र संख्या 3 – https://www.apnimaati.com/2025/03/blog-post_49.html

चित्र संख्या 4 – https://formsofdevotion.org/artist/lalit-sharma/

चित्र संख्या 5 – – व्यक्तिगत लिया गया छायाचित्र – सुकृति कला दीर्घा, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, सृष्टि आर्ट ग्रुप सोसाइटी, अक्टूबर 2024

13

# पर्यावरणीय संस्थापन कला व कलाकार मुकेश कुमार शर्माः एक अध्ययन

**शोधार्थीः**
**राजेन्द्र प्रसाद मीना**
दृश्य कला विभाग,
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान

**शोध निर्देशकः**
**प्रो० दीपक भारद्वाज**
दृश्य कला विभाग,
राजकीय मीरा महिला महाविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान

**सारांशः**
सम्पूर्ण संसार में यदि किसी भी जीव–जन्तु या प्रकृति के किसी भी तत्व को कम या ज्यादा करने का प्रयास किया तो निश्चित तौर पर मानव का ह्वास है। चूंकि हम ये जानते हैं कि आज हम जिन संसाधनों पर निर्भर हैं या जो भी सुख भोग रहे हैं ये सब प्रकृति की ही देन है। हम यह जानते हैं कि हमारे पूर्वजों नें प्रकृति को बचाये रखने के लिए विभिन्न प्रकार के जादू–टोने व कर्म कांडों का सहारा लिया है। मनुष्य शुरू से ही प्रकृति का उपासक रहा है और जब तक उसनें प्रकृति का सम्मान किया है तब तक प्रकृति ने उसको सहारा दिया है। आज मानव नें प्रकृति का सम्मान करना जैसे जैसे कम किया है वैसे वैसे प्रकृति नें अपने वातावरण में भयानकता दिखाई व उसके दुष्प्रभाव भी हमारे सामनें हैं।

यदि वातावरण को बचाकर रखा जाये और वातावरण का सम्मान किया जाये तो ये हमें भौतिक सुख तो देता ही है, साथ ही साथ इसकी अद्भुत सुंदरता हमे आत्मिक सुख देती है। प्रकृति द्वारा हो रहे क्रिया–कलाप अपने आपमें मौलिक व सौन्दर्य से भरपूर है। इस प्रकृति की मौलिकता व अगाड़ सौंदर्यता के दर्शन कलाकार मुकेश कुमार शर्मा अपनी जिंदा आँखों से देखते हैं व दर्शकों को इससे रूबरू करवाते हैं।

मुकेश कुमार शर्मा एक पर्यावरणीय संस्थापन कलाकार हैं जो संस्थापन के संयोजन में वातावरण को सँजोकर रखने व पर्यावरण का सकारात्मक लाभ देने वाले तत्वों का समावेश करते हैं। कलाकार मुकेश नें अपनी पर्यावरणीय संस्थापन कला को लेकर देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी अलौकिक संदेश भेजनें में सक्षम रहे हैं। इन्होने संस्थापन कला में मौलिक विचार, आलौकिक वातावरण तथा प्राकृतिक विषय–वस्तु का प्रयोग कर वातावरण के प्रति दर्शकों का झुकाव किया।

शब्दांशः मौलिक, पर्यावरण, अद्भुत, अलौकिक, विचार, टोने–टोटके, भौतिक, संदेश, सौन्दर्य, भयानकता।

**प्रस्तावनाः**
हम सब ये जानते हैं कि संसार में जीवन से पहले कुछ था तो वह प्रकृति ही है। प्रकृति में उपस्थित सभी अवयव जैसे जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, प्रकाश ये सब व्यवस्थित व कलात्मक ढंग से विद्यमान हैं। आश्चर्य की बात तो ये है कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त कोई छोटे से छोटा अणु भी मानव का हितकारी रहा है। हालांकि स्वयं मानव भी प्रकृति का ही एक अभिन्न अंग है। यदि प्रकृति द्वारा कोई घटना होती है तो वह निश्चित रूप से अलौकिक होगी, जो कहीं न कहीं मानव को प्रभावित करेगी। जब मानव ने धरती पर कदम रखा तो वह प्रकृति का ही अनुसरण करता रहा और प्रकृति द्वारा हो रहे क्रिया–कलापों का सम्मान करता रहा। धीरे–धीरे मानव सभ्य होने लगा व गुफाओं से निकालकर अपने आप को कृत्रिम ढांचों में पिरोने का प्रयास करने लगा।

शुरुआती दौर में तो मनुष्य इसका भौतिक सुख भोगता रहा परंतु जब प्रकृति से दूर रहकर प्रकृति को अत्यधिक नुकसान पहुंचाने लगा तो प्रकृति का संयोजन बिखरने लगा और देखते ही देखते प्रकृति नें एक विकराल रूप ले लिया। जिससे तमाम प्रकार के वायरल, भूकंप, बाढ़, अकाल जैसी महाविनाशक क्रियाएँ होने लगी।

यदि देखा जाये तो प्रकृति में हो रहे घटनाक्रम समय के साथ अपना संस्थापन स्थापित करते हैं जो धीरे–धीरे मनुष्य को दर्शन कराता है। मेघ गरजने से पहले बादलों का संस्थापन, सर्दियों में कोहरे का संस्थापन, तपती गर्मी में सड़क पर उठती लपटों का संस्थापन, पहाड़ों की जड़ों से कलकल निकलते

झरने का संस्थापन, गहरी अंधेरी रात में बर्फ से ढ़के चमकते पहाड़ों का संस्थापन इत्यादि। मनुष्य नें भी प्रकृति के सम्मान में विभिन्न टोने–टोटके, त्योहार, उत्सव आदि में अल्पकालीन संस्थापन करके उसका आनंद लिया।

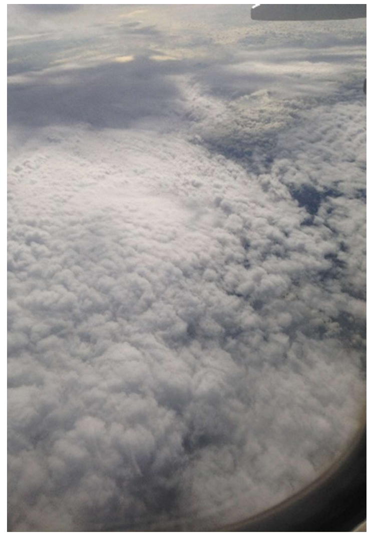

चित्र संख्याः 01. मेरे द्वारा लिया गया प्रकृति प्रदत्त संस्थापन कला का छाया चित्र

धीरे धीरे मनुष्य आधुनिकता की ओर बढ़ा तो आनंद का माध्यम चित्र, मूर्ति व संस्थापन कला के माध्यम से आनंदानुभूति करने लगा। यदि आज के समय की बात की जाय तो मनुष्य प्रकृति व उसके द्वारा तैयार किए

गए अनछुए वातावरण से कोषों दूर है। हम भौतिक सुखों से पूर्ण होने की लालच में मानसिक, आध्यात्मिक व प्रकृति प्रदत्त सुखों का ह्वास कर चुके हैं और भौतिक सुखों की बजाय हम उल्टे अपंग हो चुके हैं।

प्रकृति द्वारा प्रदत्त वातावरण आज हम पुनः चाहते हैं व समाज तथा कलाकार अपने–अपने ढंग से प्रकृति को बचाने हेतु लोगों को जागरूक करते हैं। कलाकार विभिन्न प्रकार के चित्र, मूर्ति, संगीत, नाटक, फिल्म, कविता, लेखन आदि के माध्यम से समाज को जागरूक करने में लगे हुये हैं। परंतु समकालीन समय में कला माध्यमों में क्रांतिकारी बदलाव देखने को मिलते हैं जिसमें से संस्थापन कला प्रमुख रही है। वैसे तो हम देखते आए हैं कि सम्पूर्ण ब्र्हमांड की सृष्टि से ही संस्थापन कला की उत्पत्ति है परंतु औपचारिक रूप से संस्थापन कला का नामकरण 1969 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय नें दिया जिसके बाद पश्चिमी संस्थापन कलाकारों ने इसे आगे बढ़ाया। संस्थापन कला के प्रथम नमूने की बात करें तो संस्थापन कला के नामकरण से पहले मर्सेल धुंशा द्वारा 1917 में कला वीथिका में रखी गयी टायलेट शीट है। जिस पर आरमट नाम के हस्ताक्षर कर फाउंटेनध्फव्वारा शीर्षक दिया गया।

### संस्थापन कला क्या है?

दरअसल संस्थापन कला को यदि हम परिभाषा में बांधना चाहें तो हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि मौलिक विचार, वातावरण और उचित विषय–वस्तु का वह संयोजन है जिसके माध्यम से दर्शक तक एक सृजनात्मक और विशिष्ट विचार जागृत हो। एक ऐसा विचार जो दर्शक को अल्प समय में झकझोर कर के रख दे। संस्थापन कला में विशिष्ट विचार की मुख्य भूमिका होती है जिसकी वजह से इसे वैचारिक कला में गिना जाना उचित होगा।

अभी तक कलाकार किसी एक धरातल से जुड़कर अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त कर रहे थे जिसमें द्विआयामी या त्रिआयामी कार्य तक ही सीमित थे, परंतु चूंकि संस्थापन कला में विचार व स्थान पर

अधिक बल होने के कारण अतिरिक्त आयामों में गिना जाता है, इसीलिए कुछेक कलाकार इसे बहुआयामी कला कि संज्ञा भी देते हैं। संस्थापन कला के मुख्यतः दो रूप हो सकते हैं– 1. स्थायी व 2. अस्थाई। स्थायी संस्थापन में विचारानुरूप वातावरण से कृति को संस्थापित किया जाता है। अस्थाई संस्थापन कला में विचार के अनुरूप तत्वों को संयोजित कर वातावरण में सृजनात्मक विचार जागृत किया जाता है। ऐसे संस्थापन में दर्शक भी कला का भाग हो सकता है। जहां तक की कलाकार भी उस कृति का भाग बन सकता है।

संस्थापन कला में आज के समय में बहुत सारे नित नए प्रयोग हो रहे हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के तत्वों को संगठित कर नए वातावरण का निर्माण कर रहे हैं। परंतु कुछ कलाकार ऐसे भी हैं जो तत्वों के रूप में पर्यावरण को सृजनात्मक बनाने हेतु पर्यावरणीय अवयवों का ही प्रयोग करते हैं जिनमें से युवा कलाकार मुकेश कुमार शर्मा भी एक विशिष्ट संस्थापन कलाकार के रूप में उभरे हैं।

**कलाकार मुकेश कुमार शर्मा परिचयः**

पर्यावरणीय मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने और कला के माध्यम से समाज में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए संस्थापन कला एक प्रभावी माध्यम बन चुकी है। भारत के उभरते कलाकारों में से एक, मुकेश कुमार शर्मा इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। यह शोधपत्र उनकी कलात्मक यात्रा, शिक्षा, रूचि और पर्यावरणीय संस्थापन कला में उनके योगदान के साथ–साथ उनके दृष्टिकोण और विचारों को भी सम्मिलित करता है।

**कलात्मक यात्रा और शिक्षाः**

मुकेश कुमार शर्मा का बचपन कला के प्रति गहरी रुचि के साथ बीता। उन्होंने चित्रकला, मूर्तिकला, और अन्य कला गतिविधियों में भाग लिया और उनके माता–पिता ने उनकी इस प्रतिभा को प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपनी औपचारिक कला शिक्षा मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के दृश्य कला विभाग से प्राप्त की, जहाँ उन्होंने मास्टर डिग्री और शोध कार्य किया। इस दौरान उन्होंने विभिन्न प्रकार की कला तकनीकों और सामग्रियों का अध्ययन किया, जिन्होंने उनकी कलात्मक शैली को आकार दिया।

संस्थापन कला में रुचि और विशेषज्ञताः

संस्थापन कला के प्रति उनकी रुचि कला शिक्षा के दौरान विकसित हुई। उन्होंने संस्थापन कला के इतिहास, तकनीकों, और विविध रूपों का गहन अध्ययन किया। उनके अनुसार, ''शुद्ध संस्थापन कला'' का अर्थ ऐसी कला से है जो प्राकृतिक सामग्रियों और संसाधनों का उपयोग करके बनाई जाती है और जिससे पर्यावरण को किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं होता। उनकी कलाकृतियों में पत्ते, टहनियाँ, मिट्टी, और पत्थर जैसी सामग्री का उपयोग किया जाता है।

चित्र संख्याः 02. माई सर्कलः मुकेष कुमार षर्मा, 2022

**संस्थापन कला के उद्देश्यः**

पर्यावरणीय संस्थापन कला (म्दअपतवदउमदजंस प्देजंससंजपवद ।तज) एक ऐसी कला विधा है, जिसमें पर्यावरण और प्रकृति को केंद्र में रखकर कलाकृतियाँ बनाई जाती हैं। इसका उद्देश्य केवल सौंदर्यशास्त्र तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक, और पर्यावरणीय मुद्दों पर जागरूकता फैलाने का प्रयास करती है।

मुकेश कुमार शर्मा एक प्रमुख भारतीय कलाकार हैं, जो पर्यावरणीय संस्थापन कला में विशेष रुचि रखते हैं। उनकी कलाकृतियाँ पर्यावरणीय मुद्दों पर एक गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। उनके कार्यों के मुख्य उद्देश्य निम्न हैंः —

1. प्रकृति का संरक्षण और संवर्धनः उनके कार्यों में पर्यावरण को बचाने का संदेश प्रमुख होता है। उदाहरण के लिए, उनकी कलाकृतियों में सूखे वृक्षों, गिरे हुए पत्तों, और मिट्टी का उपयोग देखा गया है, जो प्रकृति के महत्व को उजागर करता है।

2. आधुनिकता और प्रकृति के बीच संतुलनः उन्होंने अपनी कला के माध्यम से शहरीकरण और पर्यावरण के बीच तालमेल बैठाने का प्रयास किया है।

उनकी कलाकृतियाँ बताती हैं कि आधुनिक जीवनशैली के साथ प्रकृति की सुरक्षा संभव है।

3. पुनर्चक्र सामग्री का उपयोगः वे अपनी कलाकृतियों में कचरे, प्लास्टिक, और लोहे जैसी सामग्रियों का उपयोग करते हैं।यह संदेश देते हैं कि बेकार वस्तुओं को उपयोगी बनाया जा सकता है।

4. स्थानीय समुदाय की भागीदारीः उनकी कला में स्थानीय समुदायों को जोड़ने का प्रयास होता है। वह कलात्मक प्रक्रियाओं में गांवों और स्थानीय निवासियों को शामिल करते हैं।

5. पर्यावरणीय समस्याओं पर जागरूकताः उनकी कलाकृतियाँ पर्यावरणीय समस्याओं जैसे प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और वनों की कटाई की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं।

उदाहरणः उनकी एक प्रसिद्ध कलाकृति में उन्होंने गिरी हुई लकड़ियों और सूखे पत्तों से एक संस्थापन बनाया, जो वनों की कटाई के कारण उत्पन्न संकटों की ओर इशारा करता है। यह कलाकृति इस संदेश को स्पष्ट करती है कि हमें प्रकृति के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझना चाहिए।

मुकेश पर्यावरणीय कला के क्षेत्र में विगत आठ वर्षों से चित्तौड़गढ़ सहित अन्य जगह की वन्यजीव अभयारण्य  में पर्यावरणीय आर्टिस्ट रेसीडेंसी चित्तौड़गढ़ आर्ट सोसायटी व राजस्थान सरकार के साथ आयोजन प्रतिवर्ष करते हैं, जिसमें सीतामाता वन्यजीव अभयारण्य, बस्सी वन्यजीव अभयारण्य, रणथंबोर राष्ट्रीय उद्यान अरावली व विंध्याचल की पहाड़ियों में पर्यावरणीय कला की विधाओं पर देश —विदेश के जाने माने कलाकारों के साथ सृजन करते हैं ।

मुकेश कुमार शर्मा के अनुसार, संस्थापन कला का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण की रक्षा और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण है। इसके अतिरिक्त, यह कला समाज में जागरूकता बढ़ाने, सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करने, और समाज में एकता व सामंजस्य लाने का माध्यम भी है।

**संस्थापन कला का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यः**

मुकेश मानते हैं कि संस्थापन कला की शुरुआत भारत में प्राचीन भारतीय संस्कृति और वास्तुकला से जुड़ी है। सिंधु घाटी सभ्यता के नगर नियोजन और वैदिक काल के वास्तुकला सिद्धान्त इस बात के प्रमाण हैं कि संस्थापन कला का विकास भारतीय परंपरा में गहराई से जुड़ा हुआ है।

**संस्थापन कला का संरक्षण और विकासः**

मुकेश का मानना है कि संस्थापन कला को पारंपरिक तकनीकों, प्राकृतिक सामग्रियों, और शिक्षण—प्रशिक्षण के माध्यम से संरक्षित किया जा सकता है। इसके साथ ही, सांस्कृतिक और सामाजिक समर्थन भी इस कला को जीवित रखने में सहायक हो सकता है।

चित्र संख्याः 03. अलाइवः मुकेश कुमार शर्मा, 2024

**भविष्य में संस्थापन कला की संभावनाएँः**

संस्थापन कला में भविष्य में कई संभावनाएँ हैं। इसे डिजिटल रूप में विकसित किया जा सकता है, जिससे यह वैश्विक स्तर पर पहुँच सके। इसके अलावा, इसे स्थायी विकास और आर्थिक उन्नति के साथ जोड़ा जा सकता है, जिससे यह कला पर्यावरण और स्थानीय अर्थव्यवस्था के लिए फायदेमंद हो।

मुकेश के अनुसार, संस्थापन कला की तुलना मूर्तिकला, वास्तुकला, और प्रिंटमेकिंग जैसी ललित कला की विधाओं से की जा सकती है। यह त्रि–आयामी कला की विधाएँ हैं, जो सामग्री का उपयोग करके आकार या संरचना बनाती हैं।

चित्र संख्याः 04. प्रदूषणः मुकेश कुमार शर्मा, 2024

**संस्थापन कला का आर्थिक महत्वः**

वैश्विक और भारतीय दृष्टिकोण से संस्थापन कला का आर्थिक महत्व महत्वपूर्ण है। पर्यटन उद्योग, कला बाजार, और स्थानीय अर्थव्यवस्था पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, मूर्तिकला और सार्वजनिक कला पर्यटन के आकर्षण का केंद्र बन सकती हैं।

**संस्थापन कला के क्षेत्र में चुनौतियाँः**

मुकेश कुमार शर्मा का मानना है कि संस्थापन कला के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा, आर्थिक अस्थिरता, और तेजी से बदलती प्रौद्योगिकी के कारण कलाकारों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

**उपसंहारः**

मुकेश कुमार शर्मा ने पर्यावरणीय संस्थापन कला को अपनी पहचान बनाया है। उनकी कला में पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता और सामाजिक जिम्मेदारी झलकती है। उनकी सोच और कार्यों से स्पष्ट है कि संस्थापन कला न केवल एक रचनात्मक अभिव्यक्ति है, बल्कि समाज और पर्यावरण के लिए एक प्रभावशाली माध्यम भी है।

पर्यावरणीय संस्थापन कला मानव और प्रकृति के बीच के अनूठे संबंध को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है। यह कला हमें सिखाती है कि प्रकृति के प्रति हमारे कर्तव्यों को कैसे समझा जाए और उसे संरक्षित रखने के लिए प्रभावी कदम उठाए जाएं। वर्तमान समय में, जब पर्यावरणीय संकट गहराता जा रहा है, इस कला ने न केवल समाज को जागरूक किया है, बल्कि हमें प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता पर भी बल दिया है।

संस्थापन कला का उद्देश्य केवल कलात्मक सौंदर्य प्रस्तुत करना नहीं है, बल्कि यह हमारे पर्यावरण से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर करने और उनके समाधान के प्रति प्रेरित करने का भी एक प्रभावी माध्यम है। कलाकारों द्वारा प्राकृतिक और पुनर्चक्रण योग्य सामग्रियों का उपयोग यह दिखाता है कि कैसे हम अपने परिवेश को बेहतर बना सकते हैं। यह कला हमें यह अहसास दिलाती है कि पर्यावरण को संरक्षित करना केवल सरकारों या संगठनों का कर्तव्य नहीं है, बल्कि हर व्यक्ति की जिम्मेदारी है।

संस्थापन कला में प्रयोग की जाने वाली सामग्री और तकनीकें एक स्पष्ट संदेश देती हैं कि हम अपनी पारिस्थितिकी में सामंजस्य बनाकर भी रचनात्मक और स्थायी निर्माण कर सकते हैं। कलाकारों की यह पहल हमें सिखाती है कि सौंदर्य, संदेश, और संरक्षण एक साथ जुड़कर समाज और पर्यावरण के लिए एक बेहतर भविष्य की नींव रख सकते हैं।

इस कला ने न केवल कलाकारों को अपनी रचनात्मकता व्यक्त करने का एक अनूठा मंच प्रदान किया है, बल्कि समाज में सकारात्मक बदलाव लाने का माध्यम भी बनाया है। यह हमें यह सिखाती है कि कला केवल सृजन का नाम नहीं है, बल्कि एक आंदोलन है, जो हमारी सोच और जीवनशैली को प्रभावित करता है।

पर्यावरणीय संस्थापन कला का विस्तार और उसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि हम इसे किस दृष्टिकोण से देखते हैं और इसे अपनाने के लिए कितना प्रयास करते हैं। इस कला ने हमें यह समझने का अवसर दिया है कि पर्यावरण केवल एक विषय नहीं है, बल्कि हमारे अस्तित्व का आधार है। इस दिशा में कलाकारों के प्रयास और उनके संदेश हमें प्रेरित करते हैं कि हम अपने पर्यावरण को बचाने और इसे बेहतर बनाने के लिए छोटे–छोटे कदम उठाएं।

अंततः पर्यावरणीय संस्थापन कला एक ऐसी विधा है, जो हमें पर्यावरण के प्रति हमारी जिम्मेदारियों को समझने और उनके समाधान की दिशा में कार्य करने की प्रेरणा देती है। यह हमें सिखाती है कि प्रकृति का संरक्षण न केवल हमारी आवश्यकता है, बल्कि यह हमारी पहचान और अस्तित्व का आधार भी है। इस कला का हर पहलू हमें पर्यावरण से जुड़ने और उसे संरक्षित रखने के लिए प्रेरित करता है, जिससे न केवल वर्तमान पीढ़ी बल्कि आने वाली पीढ़ियाँ भी इसका लाभ उठा सकें।

संदर्भ ग्रंथ:

1. file:///C:/Users/Hp/Downloads/UIHameedInstallationArts.pdf
2. https://artinfoindia.com/paper-showman-vinay
3. https://www.jetir.org/papers/JETIR1907C75.pdf.
4. Aesthetics of Installation Art by Juliane Rebentisch; paperback 2012.
5. Installation Art and the Museum by Vivian van Saaze; ISBN: 9789048517510, Publication Date: 2013.
6. Art, Community and Environment by Glen Coutts; Timo Jokela; ISBN: 9781841502588, Publication Date: 2008.
7. कलाकार मुकेश कुमार शर्मा का व्यक्तिगत साक्षात्कार, 31 दिसंबर 2024.
8. Installation Art between Image and Stage; Anne Ring Petersen, Copenhagen: Museum Tusculanum Press, 2015.
9. Art and Visual Culture in India; Gayatri Sinha, Marg publication, 2009.
10. Public Notice 3 (Jitish kallat); Madhuvanti Ghose (Author), Homi K. Bhabha, Art Institute of Chicago, 2011.
11. Installation Art (Paperback); Claire Bishop, Tate Publishing, 2011.
12. https://artfervour.com/installation-art-revolutionising-our-perception-of-space-art/

# 14
# साहित्य से प्रभावित क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कला

**मिन्टू भारद्वाज**
पूर्व अभ्यार्थी चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**सारांश:** क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार को बंगाल स्कूल की उस पीढ़ी के प्रतिनिधि कलाकारों में गिना जाता है जिन्होंने भारतीय सांस्कृतिक परम्परा, भक्ति काव्य आरै पौराणिक कथाओं को अपनी चित्रकला का आधार बनाया था। भारतीय अग्रणी कलाकार अवनीन्द्रनाथ टैगारे के शिष्य होने के नाते उन्होंने वॉश–तकनीक, लयात्मक रेखाकं न तथा संतुलित रंग–योजना को गहराई से आत्मसात किया। उनकी कलाकृतियों में वैष्णव भक्ति की भावना, राधा–कृष्ण लीला, गगां अवतरण तथा पौराणिक कथाओं का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। मजूमदार की कला पर पहाड़ी लघुचित्र, अजंता के भित्तिचित्र परम्परा और जापानी जलरंग शैली का भी स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इन विविध स्रातें से प्रेरणा लेकर उन्होंने भारतीय पस्रंग को आधुनिक सौन्दर्यबोध के साथ पुनर्परिभाषित किया। उनके चित्र केवल कथात्मक न होकर भावनात्मक संवदे नशीलता और आध्यात्मिक अनुभव का अनूठा संगम प्रस्तुत करते हैं। रंगों की कामे लता, आकृ तियों का लयात्मक संयाजे न और रिक्त स्थान का प्रयागे उनकी कलाकृतियों को काव्यात्मक सौंदर्य प्रदान करता है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि साहित्य उनके लिए केवल विषय नहीं था, बल्कि कलात्मक संरचना, अभिव्यक्ति और शैलीगत बाधे का मुख्य प्रेरक साधन था। इस प्रकार मजूमदार की चित्रकला साहित्य और दृश्य–भाषा के रचनात्मक समन्वय का उदाहरण है, जिसने आधुनिक भारतीय कला को सास्ंकृतिक पहचान आरै आध्यात्मिक गहराई प्रदान की।

## भूमिका

भारतीय आधुनिक कला के इतिहास में 20वीं सदी का प्रारंभ एक ऐस`परिवर्तन काल के रूप में देखा जाता है, जब देश की कलात्मक चते ना सम्बंधी प्रभावों से मुक्त होकर अपनी सांस्कृतिक जड़ों की आरे वापस आने लगी। इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण के केद्रं में बंगाल स्कूल की कला रही, जिसने न केवल भारतीय परम्परा को पुनर्स्थापित किया, बल्कि भारतीयता के सौन्दर्यबोध को भी नये सिरे से परिभाषित किया। कला भवन शातिनिकते न के प्रमुख शिल्पकारों में क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है। मजूमदार की कला मुख्यतः भारतीय साहित्य, भक्ति–काव्य और पौराणिक कथाओं से प्रेरित रही है। उन्होंने साहित्य को केवल विषय–स्राते के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे कलात्मक अभिव्यक्ति का मलू माध्यम माना। उनकी कलाकृतियो में भक्ति, सौन्दर्य आरै आध्यात्मिकता का वह संगम दिखाई देता है जो भारतीय काव्य–परम्परा की आत्मा है। उनकी चित्रशैली में वॉश तकनीक की कामे लता, रेखाओं की लयात्मकता और रंगों की संतुलित योजना के माध्यम से साहित्यिक भावों का दृश्य–रूपातं रण हुआ है।

## अध्ययन का उद्देश्य

इस शोधपत्र के अध्ययन का उद्दश्ेय क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कला पर साहित्य, भक्ति और पौराणिक आख्यानों के प्रभाव का विश्लेषण करना है। शाधे का लक्ष्य यह समझना है कि मजूमदार ने साहित्यिक भावभूमि को अपनी चित्रकला में किस प्रकार आत्मसात किया आरै उसे दृश्य–भाषा में रूपातं रित किया। उनके चित्रों में न केवल कथात्मकता, बल्कि भक्ति, संवदे ना और आध्यात्मिकता का वह काव्यात्मक सौन्दर्य दिखाई देता है, जो भारतीय काव्य परम्परा की आत्मा है। अध्ययन का प्रयाजे न यह भी है कि मजूमदार की शैलीगत विशेषताऐं जैसे–वॉश तकनीक, रंग–संयोजन और रेखाओं की लयात्मकता के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाए कि साहित्य उनके लिए केवल विषय नहीं, बल्कि कलात्मक प्ररे णा और अभिव्यक्ति का मूल स्राते रहा, साथ ही यह शाधे आधुनिक भारतीय कला में उनके यागे दान को सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय सौन्दर्यबोध की दृष्टि से देखने का प्रयास करता है।

## परिकल्पना

इस शाधे की परिकल्पना यह है कि क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कला का मलू स्राते साहित्यिक और काव्य प्ररेणा है, जिन्होंने उनकी चित्रकला को विषय, भाव और शैलीगत तीनों स्तरों पर प्रभावित किया। उन्होंने साहित्य को केवल विषयवस्तु के रूप में स्थान नहीं दिया, बल्कि उसे अपनी कलात्मक संवदेना का आधार बनाया है। उनकी कृतियों में राधा–कृष्ण लीला, गंगा–अवतरण और वैष्णव भक्ति जैसे साहित्यिक प्रतीक दृश्य–रूप में एक नयी काव्यात्मक भाषा का निर्माण करते हैं। अतः इस शाधे की परिकल्पना यह स्थापित करती है कि मजूमदार की चित्रकला में साहित्य और दृश्य–भाषा का ऐसा रचनात्मक सौन्दर्य विद्यमान है, जिसने भारतीय आधुनिक कला को सांस्कृतिक आरै राष्ट्रीय पहचान दिलाई है। क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार का जीवन और कला का विकास ''पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद ज़िले के जगतई गाँव के निवासी क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार को अक्सर एक संत–शिल्पी के रूप में स्मरण किया जाता है, जिन्होंने कला को भक्ति का साधन माना। 15वीं शताब्दी के संत चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित वैष्णववाद से गहन रूप से प्रभावित मजूमदार ने भजन–गायन का प्रशिक्षण प्राप्त किया, भारतीय महाकाव्यों से सम्बद्ध कथाओं की व्याख्या की और अपने पिता के स्वामित्व वाली नाट्य–समिति के नाट्य्–प्रदर्शनों में अभिनय भी किया।''[1]

''सन् 1891 में मुर्शिदाबाद के निमटिया क्षेत्र में जन्मे क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार ने कला की प्रारम्भिक शिक्षा कलकत्ता आर्ट कॉलेज से प्राप्त की और आगे 6 वर्ष तक शांतिनिकते न में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य मे ं अध्ययन किया। कम आयु में ही उनकी प्रतिभा को पहचान मिली, काले काता में आयोजित सामूहिक प्रदर्शनी में उनके चित्रों को देखकर वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज तथा लेडी हार्डिंग्ज ने आश्चर्य व्यक्त किया और सभी कृतियाँ खरीद ली। शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त उन्होंने अध्यापन को जीवन का लक्ष्य बनाया आरै 'इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट्स' में दीघर्क ाल तक अध्यापन के साथ प्राचार्य पद भी सम्भाला। तदापे रांत सन् 1942 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ललित कला विभाग में अध्यक्ष रहे तथा

22 वर्षों तक कला शिक्षा के क्षत्रे में योगदान दिया।''[2] बंगाल स्कूल की विचारधारा 'स्वदेशी चते ना' और भारतीय आध्यात्मिक मल्यों पर आधारित थी। अवनीन्द्रनाथ का उद्देश्य केवल ब्रिटिश अकादमिक यथार्थवाद का विरोध नहीं था, बल्कि भारतीय कला मे ं निहित 'आत्मानुभूति' को पुनर्जीवित करना था। मजूमदार ने इस उद्दश्े य को अपने कार्य में न केवल ग्रहण किया, बल्कि उसे गहनता और परम्परा दिया।

उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ अजंता भित्तिचित्रों और पहाड़ी लघुचित्रों से प्रभावित हैं। धीरे–धीरे उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली विकसित की जिसमें सूक्ष्म रेखांकन, धुंधले रंगों की परते और भावात्मक गहराई दिखाई देती है। उनके चित्र जैसे गगां अवतरण, राधा–माधव, सती, आरै सीता–हरण भारतीय पौराणिक आख्यानो को नयी दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं। साहित्यिक स्रोत और प्रेरणाएँ मजूमदार की कला की सबसे महत्वपर्णू विशेषता उसका साहित्यिक आधार है। उन्होंने भक्ति–साहित्य, पौराणिक कथाओं और लाके काव्य से वह भावनात्मक संवदे ना ग्रहण की जो उनकी कला की आत्मा बनी।

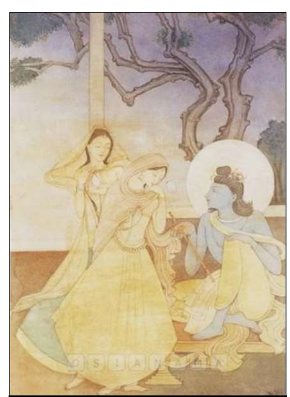

चित्र :1 राधा-कृष्ण और मीरा

- **भक्ति साहित्य का प्रभाव**

''मजूमदार सन् 1905 से 1920 के बीच कलकत्ता कला विद्यालय का एक प्रभावशाली व्यक्तित्व थे।''[3] वैष्णव भक्ति आंदोलन ने बंगाल की सांस्कृतिक चते ना को गहराई से प्रभावित किया, जिस कारण उनका झुकाव वैष्णव धर्म की आरे प्रभावित होने लगा। आगे चलकर संत चतै न्य महाप्रभु की राधा–कृष्ण भक्ति परम्परा ने जिस प्रमे और विरह की भावभूमि तैयार की, वही मजूमदार की कलाकृतियों में प्रत्यक्ष है। उनके राधा–कृष्ण विषयक चित्रों में दैहिकता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रमे की अभिव्यक्ति है। राधा का मुखमंडल, झुकी हुई दृष्टि और कृष्ण के सजीव नेत्र ये सब मिलकर

श्रृंगार–रस आरै भक्ति–रस के अद्‌भुत संयागे का निर्माण करते हैं।

''वैष्णव भक्ति धारा के अन्तर्गत मध्यकालीन साहित्य आरै चित्रकला में अनेकों रचनाएँ देखने को मिलती है लेकिन जिस प्रकार क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार ने उन्हें चित्रित किया है वह एक संत कलाकार की अपनी अन्तर्दृष्टि है जो सर्वथा नवीन है।''[4] मजूमदार द्वारा बनाया गया एक चित्र 'राधा–कृष्ण और मीरा' है जिसमें उनके द्वारा सृजित भक्ति भावना स्पष्ट दिखाई देती है। इस कलाकृति को उन्होंने सन् 1940 में निर्मित किया था। इस कृति में 'राधा–कृष्ण और मीरा' जो जलरंग एवं वॉश तकनीक से कागज पर निर्मित है, भक्ति–परम्परा की कलात्मक व्याख्या का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस चित्र में कृष्ण शातं एवं माधुर्यपूर्ण मुद्रा में बाँसुरी वादन करते हुए दिखाई देते हैं, जबकि उनके सम्मुख राधा और मीरा खड़ी हैं। यहां राधा सांसारिक प्रमे तथा मानवीय समर्पण की प्रतीक के रूप में चित्रित है, वहीं मीरा आध्यात्मिक भक्ति और ईश्वरीय आत्मनिवेदन

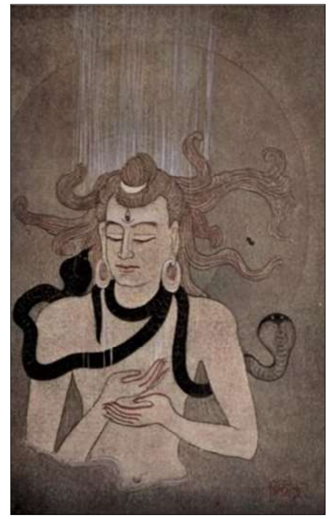

चित्र सख्या–2. गगां अवतरण

का रूप धारण करती हैं। इस प्रकार, चित्र प्रमे और भक्ति के द्वैत आयामों चित्र सख्या–1. राधा–कृष्ण और मीरा को एक ही दृश्य में रूपायित करता है। कलाकार ने सूक्ष्म रेखाकं न, मृदुल रंग–संयोजन आरै वॉश तकनीक का उपयोग कर सम्पूर्ण रचना को आध्यात्मिक गहनता और भावनात्मक सौन्दर्य से परिपूर्ण किया है। पृष्ठभूमि में प्रकृति का सौम्य निरूपण दृश्य को संतुलन प्रदान करता है, जबकि कृष्ण का नीला रंग उनकी दिव्य सत्ता का द्योतक है। इसके विपरीत राधा और मीरा के हल्के पीले वस्त्र स्त्री–हृदय की निर्मलता और शुद्ध भावनाओं को उद्‌घाटित करते हैं। यह चित्र भारतीय भक्ति आंदोलन की सौन्दर्य–दृष्टि और भाव–चेतना को दार्शनिक तथा कलात्मक धरातल पर सार्थक रूप में प्रस्तुत करता है।

- पौराणिक कथाओं का प्रभाव

''मजूमदार के गुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति अनुराग होने पर भी उन्हाने ें उनकी शैली की अनुकृति नहीं की बल्कि अपनी मौलिक शैली खोजी। उनके द्वारा निर्मित अनेक चित्र बगांल के जीवन से प्रेरित हैं उनके द्वारा रामायण तथा महाभारत जैसे पौराणिक महाकाव्यों के पीछे की मूल भावना को व्यंजना प्रदान की गई है। उनके व्यक्तित्व का सच्चा प्रतिबिम्ब राधा के रूप में मिलता है। उन्होंने अन्य नारी पात्रों में भी राधा की ही झाँकी देखी है जो उनके द्वारा सृजित रामलीला नामक चित्र में पूर्ण रूप से स्पष्ट है।''[5] मजूमदार ने इनके अलावा अन्य चित्रों में गंगा अवतरण, सती, सीता–हरण जैसे विषयों के माध्यम से पारै ाणिक कथाओं की प्रतीकात्मक व्याख्या की। उनके लिए ये कथाएँ केवल धार्मिक आख्यान नहीं थीं, बल्कि धर्म, त्याग और मुक्ति के प्रतीक थे।

गगां का अवतरण उनके चित्रों में केवल जल का प्रवाह नहीं, बल्कि आत्मा की पवित्रता का प्रतीक बन जाता है। गगां अवतरण पौराणिक आख्यान और कलात्मक संवदे नशीलता का अद्‌भतु संगम है। इस चित्र में भगवान शिव ध्यानमग्न मद्रा में खड़े हैं और उनकी जटाओं से गंगा प्रवाहित हातेी हुई दिखाई देती है। गगां के तीव्र अवतरण को अपने केशों में धारण कर शिव उसे नियंत्रित करते हैं, जिससे उसकी प्रचंड धारा पृथ्वी पर सहज रूप से प्रवाहित हो सके कलाकार मजूमदार ने जलरंग और वॉश तकनीक का प्रयागे कर रंगों की मृदुलता और सौम्यता को उभारा है। शिव का शांत चहे रा और बंद नेत्र गहरी अध्यात्मिकता का बाधे कराते हैं। उनके गले में सर्प का अंकन उनके तप, शक्ति और यागे मय स्वरूप को रेखांकित करता है। पृष्ठभूमि का धूसर रंग चित्र में गभींरता और गहनता जोड़ता है। यह कृति केवल धार्मिक कथा का पुनरुत्पादन नहीं है, बल्कि उसमें निहित दार्शनिक अर्थ, त्याग, नियंत्रण और ब्रह्मांडीय संतुलन को भी व्यक्त करती है। समग्र रूप से यह चित्र भारतीय कला में पौराणिक अध्यात्म का सशक्त उदाहरण है।

• कविता और लयात्मकता का प्रभाव मजूमदार का रेखाकं न आरै रंग–योजना कविता के छंदों की तरह प्रवाहपूर्ण दिखाई देती है। उनकी रेखाएँ लयात्मक, संतुलित और भावनापर्णू काव्य की पंक्तियो के समान

सृजित की गई है, इसलिए उनकी कला निर्मिती को 'कविता की दृश्य भाषा' के रूप भी जाना जाता है। ''जया अप्पास्वामी के अनुसार क्षितिन्द्रनाथ मजूमदार के रंग एवं रेखाओं में मध्यकालीन कवियों की कविता का आभाष होता है।''[6] क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कृति रास–लीला 20वीं शताब्दी में निर्मित भारतीय भक्ति और सौन्दर्य परम्परा का सजीव चित्रण है। वॉश और टेम्परा तकनीक में निर्मित यह चित्र कृष्ण और गोपियों के दिव्य रासोत्सव को अभिव्यक्त करता है। रचना के केंद्र में स्थित कृष्ण, प्रेम और माधुर्य के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत हैं जिनके चारों ओर गोपियों की गतिशील मुद्राएँ लय और संगीतात्मकता का वातावरण रचती हैं कलाकार ने हल्के और कोमल रंगों और रेखाओं का प्रयोग कर चित्र को आध्यात्मिक आभा प्रदान की है, जबकि वृक्ष और रात्रि का वातावरण इसे और अधिक अलौकिक बनाता है। गोपियों के भाव उनके पूर्ण समर्पण और भक्तिभाव को उजागर करते हैं, जो व्यक्तिगत प्रेम से ऊपर चित्र सख्या–3. रास–लीला उठकर ईश्वरीय मिलन की अनुभूति कराते हैं। कृष्ण का गाढ़ा नीला रंग उनकी दिव्य सत्ता का प्रतीक है, जबकि गोपियों के विविध रंगीन परिधान दृश्य को उत्सवमय बना देते हैं। यह कृति केवल पौराणिक प्रसंग का चित्रण नहीं, बल्कि भारतीय भक्ति आंदोलन की भाव–चेतना और सांस्कृतिक गहराई का कलात्मक रूपांतरण है।

### शैलीगत विशेषताएँ एवं तकनीकी प्रयोग

''क्षितीन्द्रनाथ का रेखाकंन अद्वितीय है। चित्र प्रायः अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा आविष्कृत वॉश टेकनीक में बनाये गये हैं। कागज पर रेखाकंन करने के उपरान्त स्थान–स्थान पर आवश्यकतानुसार रंगों के हल्के–गहरे बल पतले–पतले वॉश के रूप में लगाये गये हैं। सूखने के उपरान्त चित्र को एक चौड़े पात्र में थोडी देर तक भिगो दिया गया है। तत्पश्चात् चित्र को हल्का सुखाने के उपरान्त पुनः रंग लगाये गये हैं। कई बार ऐसा करने से रंगों में कोमलता तथा सम्पूर्ण चित्र में एक मिश्रित जैसा वातावरण बन गया है। अन्त में कोमलता से चित्र को पूर्ण कर दिया गया है। ये चित्र लघु आकार में हैं और किसी कमरे में बैठकर सुने जाने वाले संगीत के समान ही आस्वादनीय है। चित्रों का संयोजन प्रायः ऊर्ध्व और असम्मात्रिक है।

सरल पृष्ठ–भूमि के आगे आकृतियाँ प्रायः सम्मुख स्थितियो में दिखायी गयी हैं जो कोमल, भावपर्णू तथा लम्बी है। केश तथा वस्त्र काल्पनिक और सुन्दर फहरान–युक्त हैं अत्यधिक विवरणात्मकता से बचा गया है। उनके सर्वोत्तम चित्र चैतन्य सीरीज के हैं। उनके चित्रों में वृक्षों तथा लताओं की शाखाओं के घुमाव संयोजनों को एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य प्रदान करते है। वृक्ष–लताओं के अत्यन्त टेढ़े–मेड़े रूपों से उनके मन की आकुलता सजीव हो गयी है। यमुना, अभिसारिका, गीत गोविन्द, चैतन्य, लक्ष्मी तथा पुष्प–प्रचायिका आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।''[7] मजूमदार की तकनीक बंगाल स्कूल की बारीकियों को आत्मसात करते हुए भी विशिष्ट है। उन्होनें पारम्परिक वॉश तकनीक को जापानी 'सुमी–ए–शैली के साथ जोड़ा, जिससे उनके चित्रों में एक स्वप्निल कोमलता आई। उनकी सूक्ष्म और लहरदार रेखाएँ भावनाओं के उतार–चढ़ाव को व्यक्त करती हैं वे प्रायः हल्के, धूमिल और संतुलित रंगों का प्रयोग करते हैं जैसे नीला, मटमैला, हरित और सुनहरा आदि जो आध्यात्मिक शांति का अनुभव और अहसास कराते हैं। उन्होंने अपनी कलाकृतियों के मध्य खाली स्थान छोड़ दिया है, जो अपने आप में कलाकृति के संतुलन को बनाऐ रखने में विशेष भूमिका निभाता है।

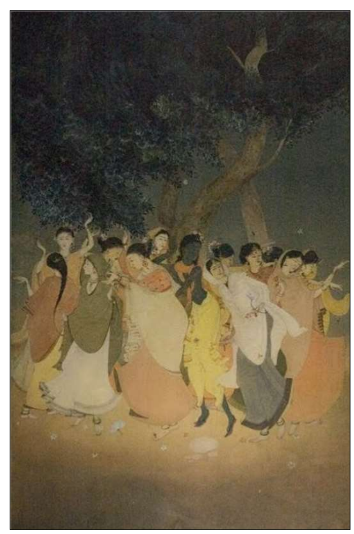
**चित्र सं. 3 रास-लीला**

जिसे उन्होंने अपनी कलाभिव्यक्ति का माध्यम बना लिया था। यह भारतीय पूर्वी क्षेत्रों के सौन्दर्यशास्त्र की महत्वपर्णू विशेषताओं में से एक है, जहां शून्य में भी गहन अर्थ निहित होता है। उनके द्वारा बनाई गई स्त्री कलाकृतियों के चेहरे की कोमलता, नयनाभिराम, मुद्रा और रंगों के प्रयोग में पहाड़ी लघुचित्र कला और अजंता की कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है उनकी बनाई गई ये कलाकृतियां अजंता भित्ति चित्रण परम्परा की याद दिलाता है। साहित्य और चित्रकला का अंतर्सम्बंध क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार का कला–जगत यह प्रमाणित करता है कि साहित्य और चित्रकला के बीच एक गहरा अंतर्संबंध है। उनकी

चित्रकला में कथा का बाह्य स्वरूप गौण है, एवं भावात्मक गहराई स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, राधा–माधव शृंखला में काई जटिल कथा नहीं, केवल दृष्टि आरै मद्रा के माध्यम से विरह और मिलन की अनुभूति कराई गई है। उनके चित्रों में काव्यात्मकता प्रमुख है। दृश्य एक 'पद्य' की तरह नदविसक होता है, धीरे–धीरे भाव का विकास, रंगों की पुनरावृत्ति और प्रतीकात्मक अर्थ–विस्तार। इस प्रकार, मजूमदार की कला को साहित्य का दृश्य–रूपांतरण कहा जा सकता है, जहाँ शब्द रंग बन जाते हैं और छंद रेखाओं में रूपातं रित हो जाते हैं। कला समीक्षक जया अप्पास्वामी के अनुसार– ''क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार बंगाल स्कूल में एक बड़े पंटेर थे, भले ही वे बहुत गत्यात्मक या ग्रहणशील नहीं थे। परम्परागत शिल्पियों की तरह उन्होंने भक्ति–मार्ग चुना। प्रेम की एक मीठी उदासी उनकी कला में है।''[8]

भारतीय कला में योगदान क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार ने भारतीय आधुनिकता की एसी परिभाषा दी जो पाश्चात्य आधुनिकता से भिन्न थी। उनकी कला 'आधुनिक' इसलिए थी क्योंकि उसमें आत्मा की खाजे थी, न कि केवल रूपात्मक प्रयोग। उन्होंने भारतीय परम्परा को अंधानुकरण नहीं, बल्कि नव–व्याख्या के माध्यम से पुनर्जीवित किया। उनके चित्रों में भारतीय तत्व जैसे– धर्म, भक्ति, करुणा, और आत्मा की साधना, आधुनिक संवदे ना के साथ सम्मिलित हुए। उनका यागे दान केवल कलात्मक नहीं, सांस्कृतिक भी था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि भारतीय संस्कृति में निहित सौन्दर्यदृष्टि स्वयं में आधुनिक है, यदि उसे संवदे ना और तकनीकी परम्परा के साथ प्रस्तुत किया जाए। चित्रकला संग्रह ''क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार के चित्र देश–विदेश के विभिन्न संग्रहालयों एवं कला दीर्घाओं एवं निजी संग्रहों, जैसे काले काता संगह्रालय, भारत कला भवन, भापोल, वाराणसी, नेशनल गैलरी ऑफ माडर्न आर्ट, नई दिल्ली, कोलकाता के आशुतोष संग्रहालय आदि में देखे जा सकते हैं। आप मलू साधक होते हुए भी आधुनिक भारतीय कला के श्रेष्ठ प्रतिभाशाली कलाकारों में थे, जिनकी कलात्मक उपलब्धियाँ आज भी गरिमामय एवं मुखर दृष्टिगत हार्ती है।''[9]

**भविष्य में अध्ययन के लिए सुझाव**

भविष्य के अध्ययन के लिए यह सुझाव दिया जा सकता है कि क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कला को केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सास्कृतिक, समाजशास्त्रीय और तुलनात्मक दृष्टिकाणेों की गहराई से भी परखा जाए। आने वाले शाधेों में उनके समकालीन कलाकारों जैसे नंदलाल बासे, असित कुमार हल्दार और शरदचंद्र राय के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करके यह समझा जा सकता है कि मजूमदार की चित्रशैली भारतीय आधुनिकता के निर्माण में किस प्रकार विशिष्ट रही। इसके अतिरिक्त, उनकी कृतियों में नारी–प्रतिनिधित्व, धार्मिक प्रतीकों और रंग–संवदे ना के माध्यम से विकसित 'आध्यात्मिक आधुनिकता' पर भी शाधे की व्यापक सम्भावनाएँ हैं। निष्कर्ष क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की कला साहित्य और चित्रकला के रचनात्मक संलयन का अद्‌भतु उदाहरण है। उन्होंने भक्ति–साहित्य की आध्यात्मिक गहराई, पारै ाणिक कथाओं की प्रतीकात्मकता आरै कविता की लयात्मकता इन तीनों को अपनी दृश्य–भाषा में रूपातं रित किया। उनकी कला में साहित्य केवल कथा नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभव है। यही कारण है कि उनके चित्र आज भी दर्शक को एक 'भाव–लाके' में ले जाते हैं, जहाँ रंग और रेखाएँ शब्दों की तरह बाले ती हैं। उन्होंने भारतीय आधुनिक कला को न केवल सौन्दर्यबोध, बल्कि सांस्कृ तिक पहचान प्रदान की आरै यह सिद्ध किया कि परम्परा और आधुनिकता का संगम ही भारतीय कला की वास्तविक दिशा है।

## संदर्भ सूची

1- वेबसाईट dagworld.com, दिनांक 15.10.2025 समय 15:30 लिंकः–

https://dagworld.com/kshitindranathmajumdar.html

2- प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, 18वां संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपरु, 2014, पृ.सं.–333.

3- मुखर्जी, राधाकमल, भारतीय कला का विकास, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1964, पृ.सं.–28–29.

4- गागुंली, ओ. सी., इण्डियन आर्ट एण्ड हेरीटेज, ऑक्सफोर्ड बकु एण्ड स्टेशनरी कम्पनी, कलकत्ता, 1957, पृ. सं.–21–22.

5- प्रदीप, किरण, कला दशर्न एव ं आधुनिक भारतीय चित्रकला, आकृति–3, कृष्णा प्रकाशन इण्डिया, प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ, 2020, पृ.सं.–49.

6- प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, 18वां संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपरु, 2014, पृ.सं.–335.

7- अग्रवाल, गिर्राज किशोर, आधुनिक भारतीय चित्रकला, संजय पब्लिकेशनन्स, आगरा, पृ.सं.–44.

8- भारद्वाज, विनोद, बृहद आधुनिक कला कोश, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण, नई दिल्ली, 2021, पसृ –334.

9- चतुर्वेदी, ममता, समकालीन भारतीय कला, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, 2016, पृ.सं.

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

15

# जनजातीय अंचल की सांस्कृतिक धरोहर मांडना : पारंपरिक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य

**मुखराज मीणा**
शोधार्थी, चित्रकला
राजकीय कलामहाविद्यालय, कोटा
(कोटा विश्वविद्यालय)
Mailid: mukhrajmeena263@gmail.com

**डॉ. सविता वर्मा**
आचार्य चित्रकला विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय,कोटा
(कोटा विश्वविद्यालय)

**सारांश -** ग्रामीण अंचल के आदिम समुदाय में लोक कलाओं की अनूठी परम्परा सदियों से रही है जो आज भी अपनी संस्कृति को जीवंत रखे हुए हैं। इन्हीं लोक कलाओं में मांडना कला भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह मुख्यतः राजस्थान, मध्यप्रदेश और गुजरात के जनजातीय समुदाय की कला है जो अपनी संस्कृति को एक अलग पहचान प्रदान करती हैं।

यह कला प्रमुख रूप से वैवाहिक, मांगलिक एवं धार्मिक उत्सवों पर महिलाओं द्वारा अपने कच्चे घरों के दरवाजों, भित्तियों व आंगन में अंकित की जाती रही है, जिसमें गेरू, पीले, सफेद खनिज रंगों को उपयोग में लिया जाता है। मांडना कला में पशु–पक्षी, फूल–पत्ती के साथ ज्यामितीय आकृतियों का सुंदर अंकन किया जाता है। लयात्मक रेखाओं के माध्यम से सौंदर्यमय रूपों में आकर्षण देखते ही बनता है। महिलाएं चित्रण अंकन के साथ ही लोकगीतों को भी दर्शाने का प्रयास करती रही है जिनमें मयूर पक्षी अंकन अतिप्रिय रहा है।

समकालीन युग में मांडना कला की तकनीकी युग के कारण दयनीय स्थिति बनी हुई है। लोक कला धरोहर को जीवंत बनाए रखने में कलाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जो इस कला को कागज, कपड़ा, कैनवास के माध्यम से वैश्विक स्तर तक पहुंचाने में सफल रहे है। अतः मांडना कला उत्थान में प्रशासनिक स्तर पर अनेक लोक कलाकार प्रोत्साहन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना अति आवश्यक है ताकि अपनी संस्कृति को संरक्षित रखा जा सके।

**मुख्य शब्द - ज्यामितीय आकृति, जनजातीय संस्कृति, पारंपरिक महत्व, मांडना कला, सौंदर्य अंकन, मांगलिक परंपरा।**

**साहित्य समीक्षा -** लोक कला मांडना पर साहित्य रचना प्राचीन काल से समृद्ध रही है जो ग्रामीण अंचल में जनजातीयो से जुड़ी हैं। प्रारंभिक कार्यों में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की "हिंदी साहित्य की भूमिका" में लोक कलाओं का विस्तारपूर्ण उल्लेख हुआ है, जहाँ मांडना लोक कला को मांगलिक एवं वैदिक यज्ञ वेदियो से जोड़ा गया है। यह लोक कला मुख्यतः मीणा जनजातीय समुदाय की प्राचीन काल से चली सांस्कृतिक परंपरा है जो मध्यप्रदेश, राजस्थान के आदिम समुदायों में प्रचलित हैं। यह शोध लेख तकनीकी माध्यम एवं ज्यामितीय मांगलिक एवं प्राकृतिक चिन्हों पर विस्तार से चर्चा करता है।

समकालीन साहित्य में मांडना कला को राजस्थान की विरासत के रूप में चित्रित किया गया है, जहाँ पर भौगोलिक विस्तार में पूर्वी प्रदेशो (जयपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर) व दक्षिणी जनजातीय बाहुल्य प्रदेश (उदयपुर, डुंगरपुर, बांसवाड़ा) के आस–पास अपनी अलग पहचान बनाए हैं। साहित्यकार मांडना कला के मांगलिक व धार्मिक पर्वों पर अंकित चित्रों व माध्यमों का उल्लेख करते हैं, साथ ही नगरी करण से लोक कलाओं को जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है उन पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं, साथ ही भील जनजातियां जो प्रकृति के निकट हैं उनके योगदान पर ध्यान आकर्षित करता है, जहाँ मांडना को प्रकृति एवं दैनिक जीवन की दिनचर्या से जुड़े होने का बतलाया गया है।

इस शोध पत्र में पारंपरिक एवं समकालीन परंपरा तथा साहित्यिक भूमिका का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए माध्यम, उपयोग एवं वर्तमान स्थिति को दर्शाने का प्रयास किया गया है। जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र का सर्वेक्षण करते हुए लोक कला से जुड़े तथ्यों को एकत्रित किया गया है, साथ ही अनेकों पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व वेबसाइट से तथ्यों को जुटाने का अथक प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र मांडना कला के लिए एक विश्वसनीय स्रोत साबित होगा।

**प्रस्तावना** – माण्डना लोक कला जनजातीय अंचल की एक समृद्ध, सांस्कृतिक और कलात्मक धरोहर है जो देश के विभिन्न क्षेत्रों मुख्यतरू राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और अन्य जनजातीय समुदाय में प्रचलित है। यह सदियों से चली आ रही पारंपरिक लोक कला न केवल सौन्दर्य अंकन का माध्यम है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों का प्रतीक भी है जो जनजातीय समुदायों को एक सूत्र में पिरोहे हुए हैं जो हर क्षेत्र में एक अलग नाम से पहचानी जाती है और चित्रण अंकन विषयों में भी भिन्नता दिखाई देती है। माण्डना कला में ज्यामितीय आकृतियों, प्राकृतिक तत्वों और धार्मिक प्रतीकात्मक चित्रों का अधिकांश अंकन देखने को मिलता है जो प्राचीन काल से चली आ रही परंपराओं का एक अनोखा तालमेल है, जो जनजातीय समुदाय की जीवनशैली, धार्मिक आस्था एवं प्रकृति के साथ गहरे लगाव को प्रदर्शित करता है। जब से मानव की उत्पत्ति हुई हैं तब से लोक कलाएं अनेको रूपों में समुदायो के साथ चली आ रही हैं जो समुदाय की एक अलग पहचान है, ऐतिहासिक कला एवं कहानियों को जीवंत रखे हुए हैं।

समकालीन युग में मांडणा कला का स्वरूप बदल रहा हैं। नगरीकरण, वैश्विक स्तर व तकनीकी युग के प्रभाव से यह पारंपरिक कला समकालीन सन्दर्भों में नए आयाम प्राप्त करने में कुछ हद तक सफल रही है। वर्तमान में मांडणा कला को न केवल ग्रामीण अंचल में बल्कि शहरों में भी लोक कला से जुड़े लोग अपने घरों में स्थान प्रदान करने लगे हैं। साथ ही कला प्रदर्शनियों, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मंचों एवं वस्त्रों पर भी देखा जा सकता है जो मांड़ना लोक कला को विश्व स्तर पर पहचान दिलाने में अहम भूमिका निभाएगा। हालांकि इन परिवर्तनो के साथ ही कला को अनेकों नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे की पारंपरिक ज्ञान का लुप्त होना, पर्यावरणीय संसाधनों की विलुप्तता, वर्तमान जीवनशैली के दुष्प्रभाव। इन चुनौतियों का सामना करते हुए मांडणा कला जनजातीय समुदायो की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने और इसे नवीन पीढ़ी तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

**पारंपरिक मांडना : उत्पत्ति, तकनीक एवं सांस्कृतिक महत्व :–**

**उत्पत्ति एवं क्षेत्रीय विस्तार -** मांडणा कला की उत्पत्ति वैदिक युग से मानी जाती है जहाँ इसकी प्रेरणा यज्ञ वेदिकाओं एवं वास्तु पुरुष मंडलों से ली गई है। यह लोक कला जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रों में प्रचलित रही है। मीणा, भील, सहरिया, श्रीमाली ब्राह्मण समुदायों में यह मातृसत्तात्मक रही है जो इन्हें अपने सुख–दुख, मांगलिक अवसरों पर महिलाएं अपने घर–आंगन में सृजित करती हैं। यह कला प्राचीन काल में पर्यावरणीय सामंजस्य बनाए हुए रही हैं जिसमें हर एक माध्यम प्रकृति से जुड़ा रहा है।

चित्र सं. 1

**सामग्री एवं तकनीकी विस्तारण -** पारंपरिक मांडना कला की शुरुआत प्रमुखतः प्राकृतिक सामग्रियों पर आधारित रही है जिन्हें आदिवासी महिलाएं अपने आसपास से आसानी से एकत्रित कर लेती थीं जिसमें प्राकृतिक धरातल तैयार करने के लिए गाय के गोबर में मिट्टी मिलाई जाती थी और अपने आशियाने की

भित्ती व आंगन को नया रूप प्रदान करती थी। मांडना अंकन के लिए गेरू, खड़िया एवं चूने का प्रयोग रंगाकन के लिए किया जाता था। चित्रण अंकन के लिए खजूर की टहनियों, पशुओं की पूँछ के बाल एवं हाथ की अंगुलियों का प्रयोग प्रमुखतः किया जाता था। यहाँ सफेद रंग को शुद्धता एवं गेरू को उर्वरता एवं प्रेम का प्रतीक माना जाता रहा है।

यह राजस्थान में आंगन, भित्ती व दरवाजों पर अंकित की जाती है, मध्यप्रदेश में मुख्यतः फर्श पर अधिकांश चित्रण देखने को मिलता है जहाँ ज्यामितीय अनुपात की अपेक्षा बनावट प्रधानतः रही है। समकालीन युग में मांडना अंकन को कपड़ा, कागज, लकड़ी के बोर्ड, वस्त्रों पर भी अंकित किया जाने लगा जिसमें कृत्रिम माध्यमों का प्रयोग किया जाने लगा है। डिजीटल, रंग, ब्रश, छापाकंन प्रमुख हैं जो इसके मूल स्वरूप से अलग पहचान प्रदान कर रहा हैं।

**प्राकृतिक एवं ज्यामितीय अंकन -** शुभ मांगलिक अवसरों पर आस्था से प्रेरित जनजातीय समुदाय होने को प्राकृतिक व ज्यामितीय चित्रों का अंकन करता रहा है जिसमें हर एक चित्रण का अवसर के अनुसार अलग महत्व रहा है और प्रत्येक चित्र का एक स्थान निश्चित होता है जैसे पग्लया मांडना अंकन दरवाजे पर किए जाते थे, ओम, स्वास्तिक को मांगलिक अवसरों पर अंकित करते थे। ज्यामितीय चित्रों का अंकन आंगन के मध्य भाग में फूल–पत्ती एवं पशु–पक्षियों को भी दरवाजों पर सजावट के रूप में अंकित करते थे जो सजीवता एवं मानव का प्रकृति के प्रति प्रेम को दर्शाता रहा है।

नृत्य चित्रण भी भील जाति की महिलाएं भित्तियों पर अंकित करती रही हैं जो सामूहिक मेलजोल एवं एकता को प्रदर्शित करता है। साथ ही अपने लोक देवी–देवताओं के चित्रण को भी मांडना अंकन में दर्शाने का प्रयास किया जाता रहा है। मुख्यतः राजस्थान, मध्यप्रदेश में ये कला दीपावली, होली, रक्षाबंधन, श्रावण तीज एवं गणगौर पर अंकित की जाती है जिसमें अवसर के अनुसार ज्यामितीय एवं प्राकृतिक चित्र को शामिल कर लिया जाता है।

यह लोक कला जनजातीय संस्कृति के साथ ही मानव का प्रकृति के प्रति प्रेम को भी दर्शाती रही है जिसके प्रमाण हमें देखने को मिलते रहे हैं। मांड़ना लोक कला जनजातीय जीवन का दर्पण कही जाती है जिससे उनकी आस्था एवं मानसिक विचारों का पता लगाया जा सकता है। जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रो

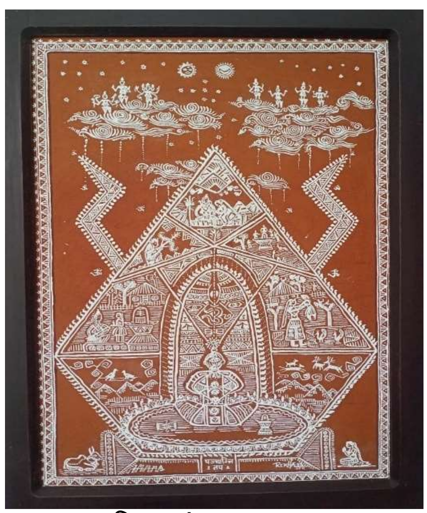

चित्र सं. 2

में वर्तमान युग में भी यह लोक कला देखने को मिल जाती है। कुछ कलाकार इस कला को प्रदर्शनियो में भी प्रदर्शित करते रहे हैं जो कला की अपनी लोकप्रियता को बनाए रखने का काम कर रही है।

**समकालीन परिप्रेक्ष्य : कलात्मक रूप-रूपांतरण एवं अनुकूलन -** समकालीन युग में नगरीकरण के कारण लोक कलाएं संकट की स्थिती में हैं। हर क्षेत्र में विकास के नाम पर प्राचीन काल से चली आ रही कलात्मक परंपराओं को पीछे छोड़ आगे बढ़ने की होड़ लगी हुई है जिसके कारण लोक कलाओं पर

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

भी आधुनिकता की मार पड़ी है और वर्तमान में जनजातीय लोक कलाओं को संरक्षित रखना चुनौती बनता जा रहा है।

कच्चे आशियानो की जगह पक्के महलों ने ली जहाँ मिट्टी का प्रयोग नहीं होकर कंक्रीट को उपयोग में लिया जा रहा है जिसमें लोककला को अंकित करना पहले की अपेक्षा कठिन हो गया है और मानव रंग–रोगन की चमक में उलझ कर अपने अतीत को भुलता जा रहा है। इसके साथ ही डिजिटल युग के कारण नारी जीवन भी मोबाइल एवं अन्य कार्यों में व्यस्त हो गयी है जो लोक कलाओं को अंकित करने का कार्य करती थी। आज शिक्षित वर्ग के कारण समय की अपर्याप्तता भी एक बड़ा कारण बनता जा रहा है।

चित्र सं. 3

जनजातीय समुदायो में भी अब विकास की होड़ लगी है जिसकी वजह से इस कला को समय नहीं दे पाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी ह्रास होता जा रहा है। फिर भी कुछ समकालीन लोक कलाकारों के माध्यम से इस कला को जीवंत रखने के अथक प्रयास किए जा रहे हैं। कला प्रदर्शनियो, पर्यटन स्थलों, सांस्कृतिक मंचों एवं डिजिटल दुनिया के माध्यम से लोक कला का प्रचार–प्रसार करने के अथक प्रयास किए जा रहे हैं।

**वैश्विक प्रसार एवं कलात्मक अनुकुलता -** समकालीन लोक कला मांडना, कपड़ा, कैनवास, हार्डबोर्ड पर स्थानांतरित हो गया है जिसमें अंकन के लिए प्रशिक्षित कलाकार तुलिका के माध्यम से खनिज रंगों के स्थान पर तेल रंगों को प्रयोग में लेने लगे हैं। चित्रण अंकन में भी पारंपरिक विषयों के स्थान पर आधुनिक विषयों को अंकित करने लगे हैं। जनजातीय क्षेत्रों में कला प्रदर्शनिया एवं शिविर आयोजित कर लोक कला से जुड़े समुदायों को प्रशिक्षित किया जा रहा है। उन्हें स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर प्रदान किए जा रहे हैं ताकि वे अपनी परंपरा से जुड़े रहे।

चित्र सं. 4

प्रशासनिक स्तर पर भी अनेक लोकिक जीवन उत्थान के लिए प्रयोजनाएं चलाई जा रही हैं ताकि इस कला को देश–प्रदेश के साथ ही वैश्विक स्तर पर भी पहचान प्रदान की जा सके। कलाकार नई डिजिटल मीडिया तकनीकी का अनुप्रयोग कर कला उत्थान में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं जिससे कला का पुनरुद्धार हो सके और विश्वपटल पर अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान बना सके।

**निष्कर्ष -** जनजातीय अंचल की सदियों से चली परंपरा में मांडना कला सांस्कृतिक धरोहर का जीवंत प्रतीक है जो प्राचीन काल से वर्तमान अनुकूलता की यात्रा को प्रदर्शित करती है। यह लोक कला न केवल सौन्दर्यबोध को दर्शाती हैं बल्कि सामुदायिक एकता, पर्यावरण के प्रति प्रेम को भी प्रतिबिंबित करती हैं। समकालीन चुनौतियों के बावजूद आज भी कैनवास, वस्त्र, डिजिटल मीडिया रूपांतरण ने नई पीढ़ी को आकर्षित किया है।

लोक कला संरक्षण के लिए प्रशासनिक नीतियों के माध्यम से वैश्विक मंचों पर लोक कला को प्रदर्शित करने का प्रयास किया जा सकता है। अतः यह शोध पत्र पारंपरिक एवं समकालीन लोक कला में परिवर्तन को दर्शाने का प्रयास करेगा, साथ ही मांडना कला में भविष्य में नए अवसर प्रदान करेगा। जिससे सांस्कृतिक धरोहर मांडना को सदियों तक जीवंत रखा जा सकेगा। युवाओं और शोधार्थियों के लिए अति ज्ञानवर्धक रहेगा। इससे आदिम लोक कला का ज्ञान अर्जन किया जा सकेगा।

**संदर्भ**

1. पाण्डे, डॉ. राम, "राजस्थान के भित्ति चित्र", प्रकाशक : पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, उदयपुर, 2005, पृ.सं. 24.
2. पांडेय गया, "भारतीय जनजातीय संस्कृति", प्रकाशक : कसैप्ट पब्लिसिटी कंपनी, नई दिल्ली, 2001, पृ.सं. 276.
3. कुमार विजय, "समकालीन लोक कला", प्रकाशक : जवाहर कला केंद्र, जयपुर, 2013, पृ.सं. 60.
4. शर्मा, प्रो. भवानी शंकर, "लोक कला में मांडणे", प्रकाशक : नवजीवन पब्लिकेशन, 2011, पृ.सं. 72.
5. सक्सेना, डॉ. अनीता, "मांडना मालवा की एक लोक कला", प्रकाशक : इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल, 2017, पृ.सं. 65.
6. भानावत, डॉ. महेंद्र, "लोक कलाओं का आजादीकरण", प्रकाशक : मुक्ता प्रकाशन, उदयपुर, राजस्थान, 2002, पृ.सं. 246.
7. गोस्वामी, प्रेमचंद्र, "भारतीय कला के विभिन्न स्वरूप", प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1997, पृ. सं. 42.
8. अग्रवाल, श्याम बिहारी, "भारतीय चित्रकला, काव्य एवं संगीत", प्रकाशक : डॉ. ज्योति अग्रवाल, रूपशिल्प, इलाहाबाद, 2020, पृ.सं. 77.
9. शर्मा, लोकेश चंद्र, "भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास", प्रकाशक : गोयल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2022, पृ.सं. 169.
10. अग्रवाल, डॉ. आर. ए. "भारतीय चित्रकला का विवेचन", प्रकाशक : इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2011, पृ.सं. 219.
11. सुमहेंद्र, "आकृति 80", प्रकाशक : राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, 1982, पृ.सं. 28.
12. नीरज, डॉ. जयसिंह, "खुले आकाश के नीचे चित्र वीथि", प्रकाशक : राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, 1982, पृ.सं. 40.
13. शर्मा, डॉ. निधि, "ग्रामीण अंचल के लुभावने प्रतीक मांडना", प्रकाशक : दृश्यकला विभाग, मेरठ, 2015, पृ.सं. 145.
14. कोठारी, गुलाब, "राजस्थान की ग्रामीण कलाएं व कलाकार", प्रकाशक : जवाहर कला केंद्र, जयपुर, 1997, पृ.सं. 82.

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

16

# राजस्थान की लोककला में कथानक चित्रण एवं सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा का अन्तर्सम्बन्ध

**पिंकी सैनी**
शोधार्थी, दृश्य कला विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर
Pinky30jaipur@gmail.com
**डॉ. मनीषा चौबीसा**
प्रोफेसर, चित्रकला विभाग मीरा
कन्या महाविद्यालय, उदयपुर
Manisha.chobisa@gmail.com

**शोध सार** :– संसार में जहाँ कही भी विज्ञान अविष्कार या तकनीक नहीं पहुँच है, वहाँ लोक कला ने जीवन को गतिशील एवं चैतन्य बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोक कला लोक मन का दर्पण है। यह ऐसी गतिशील परम्परा है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मान्यताओं, रिवाजो और मूल्यो ं को हस्तान्तरित करती है। लोक चित्रण में रंग और रेखाओं की भाषा से आन्तरिक अभिव्यक्ति होती है जिसका सीधा सम्बन्ध संस्कृति से रहा है। लोक चित्र प्रकृति और संस्कृति का मिलाजुला रूप हैं। कथानक चित्रण में लोक कथाओं, आख्यानों का चित्रण एवं मंचन के माध्यम से प्रस्तुतिकरण/मंचन करना होता है। फड़, कावड़, गवरी तथा कठपुतली आदि में लोक कथाओ के आधार पर चित्रण कर इस संस्कृति को जनमानस तक पहुँचाया जाता है। आवश्यकता है इन लोक कथानकों को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित करने एवं बदलते सामाजिक परिवेश के अनुरूप पुर्नव्याख्यायित करने की। ये कथानक राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराओ का वृहत स्वरूप है। ये कथानक पौराणिक होने के साथ–साथ ज्ञानवर्धक तथा जीवनोपयोगी भी है अतः ये केवल सुख प्राप्ति के लिए ही नहीं वरन् सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी है। लोक परम्परा को यहाँ की विभिन्न जनजातियों जैसे भील, बंजारे, गरासिया, लगां मांगणियार, सहरिया आदि वर्षों से संजोये हुए है और निरंतर इसे आगे बढ़ा रहे है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में लोककलाओं का सामाजिक अन्तः क्रियाओं पर अत्याधिक प्रभाव है। वर्तमान में लोककला का व्यवसायिक पक्ष उभर कर सामने आ रहा है तथा यह लोक कलाएँ अर्थाजन में भी सहयोग कर रही है। अतः कला का अपना लोक है एवं लोक की अपनी कला है। फड़, कावड़, कठपुतली, गवरी, गणगौर–तीज, ढोला–मारु की कथा मांडना एवं साँझी आदि कलाएँ राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में लोक एवं जनजातीय कला किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर करती है। राजस्थान की लोककला में सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा का अन्तर्सबन्ध समाहित है। यहाँ  का कलाकार समाज और उनके स्थानीय कथानको के बीच गहरे सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। लोककला में वह लोच है जो जीवन की सहज अभिव्यक्ति को समाज के लिए प्रस्तुत करती है। यह संस्कृ .ति का श्रृंगार है, परम्परा का निर्वाहन है और लोक का कल्याण है। यहाँ विषय वस्तु का धार्मिक उत्सवों, संस्कारों व लोकोक्तियों व कथानको का अन्तसम्बन्ध शास्वत एवं स्थायी है, यह जनमानस के रग–रग में रचा बसा है। इसे स्त्रियों द्वारा घर आंगन, मांगलिक अवसरों, सौन्दर्य, अंलकरण, सूखत सुख समृद्धि को आगिककर निष्ठाभाव से समाज एवं संस्कृति के लिए आदर्श प्रस्तुति का महत्वपूर्ण मार्ग है। अतः लोककला जन–जन की, जन–जन द्वारा प्रस्तुत आदर्श कला है।

**बीज शब्द** :– लोककला, कथानक चित्रण, सामाजिक, अवधारणा

कला मानव के साथ इतनी रची बसी है कि कला और मानव को पृथक करना सम्भव नहीं है। मानव हृदय के भावों का प्रादुर्भाव रंग रेखाओं के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करता रहा है। होमेस ने उचित ही लिखा है कि ''मनुष्य ही एक मात्र प्राणी है जिसने केवल शरीर की मांग को ही नही वरन् मस्तिष्क की मांग को भी पूरा करता है। यदि ऐसा न होता तो शायद मानव के लिए पशु–स्तर से ऊंचा उठ

पाना आजा भी संभव न होता'' कला की उत्पत्ति का रहस्य इसी में निहित प्रतीत होता है। कला एक सौदर्य दृ ष्टि है जिसमें आत्मपरक, आलौकिक, दार्शनिक आनन्द व्याप्त है। कला शब्द का सबसे प्रमाणिक प्रयोग भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है–

''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न या कला''

अर्थात ऐसा कोई ज्ञान कोई शिल्प कोई विद्या नहीं है जो कला न हो। राजस्थान की लोक कलाए स्वयं में गीतात्मकता और लयात्मकता लिये हुए है जो कि वैदिक काल से ही चली आ रही है। इसमें समाज की सादगी लोकमंगल की भावना एवं आत्म प्रदर्शन की इच्छा को भलीभांति अपनाया गया है।

**लोककल–**

लोक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ ''संसार'' है। साहित्य की भांति सभी कलाओं का उदगम स्थल लोक है। लोक कला जन–जन की जन जन द्वारा प्रस्तुत आदर्श कला है। लोक कला लोक मन का सादा सरल दर्पण है। राजस्थान की कला लोकोन्मुखी है। हमारे ग्रंथों शास्त्रों में जो कुछ भी चित्रित होता रहा है उसके बीज लोक में ही है। लोक कला के प्रति आकषर्ण का कारण कला का आदिम अवस्था से न होकर इसकी अकृत्रिमता ,सरलता और प्रारम्भिक प्रेरणा है। इसमें जन मानस का प्रकृति से जुडाव, सौन्दर्य तथा सामाजिकता की भावना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लोककला की उत्पत्ति का कोई वैज्ञानिक अध्ययन उपलब्ध नहीं है अतः संसार में जहाँ कही भी विज्ञान अविष्कार या तकनीक नही पहुँची, वहाँ लोक कला ने जीवन को गतिशील एवं चौतन्य बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया है। जहाँ धुन है वही शब्द है और वही नाटक व रंगमंच है जहां रंगमंच है वही लोकगाथाएं है तथा लोकगाथाओं के साथ लोकसंगीत जुडा है और लोकसंगीत से ही लोक कला की उत्पत्ति हुई है।कला का अपना लोक है एवं लोक की अपनी कला है। कठपुतली फड़, कावड, गवरी, गणगौर तीज, मौलेला, मांडणा, साँझी ,ढोला मारु की कथा आदि कलाएँ राजस्थान के विभिन्न हिस्सो में किसी न किसी रूप में दृ ष्टिगोचर होती है। यह आम आदमी की कला प्राय अत्यधिक स्वाभाविक, विशुध्द सरल, निष्कपट तथा प्रकृति के समीप रही है ।यही कारण है कि लोककलाएँ जनमानस की आत्मिक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक विचारो से पोषित रही है। लोककलाओं को कला तत्वों, माधुर्य युक्त अंलकरण, ऊर्जावान, स्वाभाविक विचारों से सुसज्जित बनाया गया है। जिन्हें अध्ययन की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है –

1. कपडे पर निर्मित चित्र फड़ या पिछवाई
2. मानव शरीर पर गुदना, मेहंदी
3. लकड़ी पर बनने वाले कावड, खिलौने, कठपुतली
4. गाथाए एवं कथाए ढोला मारु की कथा, गवरी, कच्छी घोडी
5. धरातल पर माडं ना व साँझी

उपर्युक्त कलाओं का राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रीय परिवेश, वातावरण व संस्कृति एवं सामाजिक स्थिति के अनुसार लोक जन द्वारा सहदयपूर्ण अंगीकरण तथा वर्णन किया गया है।

**कथानक चित्रण :–**

कथानक चित्रण में लोक कथाओं, आख्यानों का चित्रण एवं मंचन के माध्यम से प्रस्तुतिकरण/मंचन करना होता है। यह ऐसी परम्परा है जो निरन्तर पीढ़ी–दर–पीढ़ी मान्यताओं रिवाजों और मूल्यो को हस्तान्तरित करती है। राजस्थान की लोककला में कथानक चित्रण केवल मनोरंजनात्मक प्रदर्शन/मंचन नहीं है अपितु यह स्मृति धर्मोपदेश, शिक्षा का सरल माध्यम है अतः जितना महत्व चित्रण का है उतना ही महत्व मंचन /कथाओं का भी है। लोक चित्र प्रकृति और संस्कृति का मिलाजुला रूप है। लोक चित्रण में रंग और रेखाओं की भाषा से आन्तरिक मन की अभिव्यक्ति होती

रही है तथा  गाथाओं के गायन द्वारा लोक कला को पूर्णता प्राप्त हुई है। जिसका सीधा सम्बन्ध सस्कृति से रहा है।

कथानक चित्रण में प्रमुख रूप से धार्मिक और पौराणिक कथाएँ (कृष्ण लीलाए, पिछवाई), रामायण–महाभारत की कहानियाँ तथा स्थानिय गाथाए (मूमल महेन्द्र, ढोला मारु कथाए) आदि विषयों सम्मिलित किया गया है।फड़, कावड, गवरी तथा कठपुतली आदि में लोक कथाओ के आधार पर चित्रण कर तथा मंचन/प्रस्तुतिकरण कर इस अनमोल संस्कृति को सर्वसाधारण जनमानस तक पहुँचाया जाता है। आवश्यकता है कि इन लोक कथानकों को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित किया जाये तथा सामाजिक परिवेश के अनुरूप पुर्नव्याख्यायित किया जाये। राजस्थान में कथानक चित्रण प्राय विभिन्न आदिम जनजातियो जैसे भील, बंजारे, गरासिया, लगां मांगणियार, सहारिया आदि वर्षों से इन्हे संजोये हुए है। आदिवासी समुदाय द्वारा एक गाँव से दूसरे गाँव जाकर समूह में मंचन/प्रस्तुतिकरण किया जाता है। जिस कथा अथवा नाटक का मंचन किया जाना होता है, उसी का चित्र बनाकर आरम्भिक स्वरूप तैयार किया जाता है। लोक गाथाओं को आकार प्रदान करने का कार्य चित्रण (चित्रकला) द्वारा पूर्ण होता है।

**राजस्थान में प्रचलित कुछ प्रमुख कथानक चित्रण**

**फड़ चित्र** :– फड़ चित्रकला राजस्थान की प्रमुख लोककला है राजस्थान के उत्तरी–पूर्वी भाग भीलवाडा व शाहपुरा कस्बे में छीपा जाति दवारा बनाए जाते है फड़ शब्द पट् फिर पड़ के अपभ्रंश नाम से फड़ बन गया है। वर्तमान मे इसे शाहपुरा फड़ शैली के नाम से जाना जाता है। पाबू जी की फड़ और देवनारायण (बगड़ावत) की फड़ मुख्य है तथा पाबू जी फड़ को भोपा एवं भोपण रावण हत्या के साथ गाते है किन्तु देव नारायण की फड़ को केवल भोपा जन्तर मंत्र के द्वारा गाता है। भोपे लम्बे फड़–चित्र को लकड़ी में लपेटकर गावं –गांव जाकर पारम्परिक वस्त्रों, वाद्ययंत्र की धुनो पर थिरककर वाचन करते है।

फड़ चित्रकारी में सर्वप्रथम दुर्गेश कुमार जोशी को राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा इन्हीं के बाद इनके भाई शान्ति लाल जोशी तथा उनके परिवार ने पारम्परिक रुप से फड़ का चित्रण करते आ रहे है। फड़ के सम्पूर्ण कथानक को खड़ी–आडी रेखाओ द्वारा पशुआकृतियों, मानवाकृतियों, प्रकृति चित्रो में विभाजित किया जाता है। फड़ में रंग, बुश जो काम में आते है वे सब हाथ से बनते है। हाथ से बने कपडे पर कलप लगाया जाता है। कलप चावल, अखरोट व नीला थोथा से बनता है।फिर घुटाई कि जाती है तथा घुटाई के बाद फड़ पर चाका किया जाता है। फड़ तैयार होने पर भोपे को अच्छे मुहरत में संभला दी जाती है।

कलात्मक दृष्टि से फड़ चित्रण ग्रामीणो के सरल एवं सुन्दर जीवन के कथानक है जिनको प्रतीकों के माध्यम से विशेष बनाया जाता है। पाबू जी कि कीर्ति कथा, प्रतिज्ञा पालन, चमत्कार और गो रक्षा को आकर्षक ढंग से दर्शाते फड़ चित्र जन–जन में लोकप्रिय रहे है। शाहपुरा के फड़ शैली में कलात्मक व प्रयोगात्मक चित्रांकन का विषय पाबू की फड़, रामायण, महाभारत, रानी पद्मनी, हल्दी घाटी, संयोगिता हरण, पृथ्वीराज – गौरी, हाडी रानी आदि के साथ संजोये हुए है।

**गवरी** :– राजस्थान के मेवाड क्षेत्र के भीलों द्वारा इस लोक संस्कृति में रंगमंच पर प्रस्तुतिकरण किया जाने वाला लोकनृत्य/लोकगाथा गवरी है। यह कलात्मक तथा सामुदायिक पहचान का अद्वितीय संगम है। गवरी प्रतिवर्ष मानसून की समाप्ति पर लगभग 40 दिन तक खेला जाता है। इसमें नृत्य, संगीत, नाट्य और धार्मिक अनुष्ठानों को एक जीवित सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। गवरी 40 दिन तक देवी को प्रसन्न करने तथा उनकी शक्ति उपासक के रूप में खेला जाता है। इसमें 20 लोग भागीदारी करते है। प्रत्येक भागीदार द्वारा व्रत, ब्रह्मचर्य और सात्विकता जैसे कठोर नियमों का पालन किया जाता है। सर्वप्रथम देवी की पूजा की जाती है उस पश्चात ही यह दल गवरी रमने जाते है। 40 दिन तक अपने गाँव नहीं लौटते है। ये भीलो का भेरु नाट्य है इसकी सम्पूर्ण कहानी शिव को केन्द्र बनाकर की कही जाती है। इसमें शिव का रूप भस्मासूर का प्रतीक राईबूड़िया, मोहिनी तथा पार्वती की प्रतिमूर्ति दोनो राइंया, कुटकडिया तथा पाट भोपा ये पांचो गवरी के प्रमुख नायक होते है जो माजी कहलाते है। मेवाड के उत्कृष्ट कला नृत्यों में गवरी का विशिष्ट स्थान है। कलात्मक दृष्टि

से गवरी स्वदेशी प्रदर्शन परम्परा है। इसमें तात्कालिकता तथा रंगीन वेशभूषा और सहभागी कथानक प्रमुख है। जो कलाकार और दर्शक के बीच की सीमाओं को धुंधला कर देते है। कलाकार विशिष्ट वेशभूषा पहनते है जो विभिन्न देवताओं, जानवरों और पौराणिक पात्रों को सम्बोधित करती है। मुखौटे गवरी का एक केन्द्रीय हिस्सा है जो पात्रों की पहचान को दर्शाता है।

**कावड :–** कावड काष्ठकला के रूप में प्रसिध्द है। बस्सी गाँव इसका प्रमुख स्थल है। खेरादी जाति के लोग इसके प्रमुख चित्रकार माने जाते है। कावड मुख्य रूप से लकड़ी के कपाटों से बना हुआ मन्दिर होता है। प्रत्येक कपाट पर चित्रण कार्य किया जाता है तथा इन चित्रों का मुख्य विषय रामायण तथा राम के जीवन से सम्बन्धित होता है इसलिए इन्हें राम जी की कावड़ भी कहा जाता है। कावड़ की कथा रामायण, महाभारत, कृष्ण– लीला, एवं जनमानस की लोक कथाओं पर आधारित होती है। ये कथानक पौराणिक होने के साथ साथ ज्ञानवर्धक तथा जीवनोपयोगी भी है। कावड लकड़ी का बना होता है। कावड के कपाट खोलने पर इसमें कई पैनल होते है जिसमें लोक कथाएँ एवं पौराणिक कथाए  क्रमबद्ध रूप से चित्रित होती है। कावड़िया भाट ही इन कावड की कथाओं को एक गाँव से दूसरे गाँव सुनाते हुए घुमते है। इन्हें खोलकर एवं बन्द करके कावड की कथाओं को क्रमबद्ध रूप से प्रारम्भ से अन्त तक सुनाया जाता है यह कला दृश्य तथा प्रदर्शन कला तथा धर्म प्रचार का मिश्रण है। कावड न केवल धार्मिक शिक्षा प्रदान करती है बल्कि यह खेरादी और भाट के मध्य पारम्परिक सम्बंध स्थापित करती है जो समाजोपयोगी भी है।

### कथानक चित्रण में सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

पारम्परिक वैभव एवं सांस्कृतिक नवीनता, मौलिकता और स्वतंत्रता लिए कथानक चित्रण निरन्तर समाज पर अपनी एक विशिष्ट छाप छोड़ रहे है। ये कथानक पौराणिक होने के साथ–साथ ज्ञानवर्धक तथा जीवनोपयोगी भी है। अतः ये केवल सुख प्राप्ति के लिए नहीं वरन् सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी है। आदिवासी लोककलाओं का कलात्मक आध्यात्मिक गहनता, ऐन्द्रिय विलक्षणता और सामूहिक विचारधारा का द्योतक है। यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक नियमों का स्वेच्छा से पालन करती है। यहाँ अभिव्यक्ति को रहस्यवाद, श्रध्दा, तथा प्रार्थना के रूप में कुशलता से प्रतिस्थापित किया गया है। इन कथानकों में ईर्ष्या, भेदभाव व तिरस्कार के स्थान पर भाईचारा, एकरसता देखी जा सकती है। जो समाज को सफल सुदृढ बनाती है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में लोककलाओं का सामाजिक अन्तः क्रियाओं पर अत्याधिक प्रभाव है। वर्तमान में लोककला का व्यवसायिक पक्ष उभर कर सामने आ रहा है तथा यह लोक कलाएं अर्थाजन में भी सहयोग कर रही है। अतः कला का अपना लोक है एवं लोक की अपनी कला है। लोक कला में वह लोच है कि जो जीवन की सहज अभिव्यक्ति को समाज के लिए प्रस्तुत करती है। यह संस्कृति का श्रृंगार है, परम्परा का निर्वाहन है और जन मानस का कल्याण है। यह सर्वसाधारण लोगों के भी रग–रग में गहराई तक रचा बसा है। लोकवार्ताओं एवं लोक कथाओं पर आधारित चित्र सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित एवं सवं र्धित करने की महत्वपूर्ण कड़ी है। इनमें श्रुतियाँ, पौराणिक आख्यान, धार्मिक आस्था आदि सांस्कृतिक स्वरूपो को पुनरुत्थान कर नवीनीकरण करके प्रस्तुत करने एवं मूल रूप को जीवित रखते हुए आधुनिक स्वरूप में महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन होता है।

### लोककलाओं का व्यवसायीकरण एवं भविष्य की चुनौतियां

हमारी पारम्परिक दस्तकारी, लोकचित्र, पटचित्र, फुलकारी, मधुबनी, मांडना, यहाँ तक कि गणगौर तीज आदि भी टेबल की सजावट में दिखाई पड़ती है। लोक कलाओ का उपयोग बडे–बडे भूमि– भवन, होटल, शादी समारोह अंलकरण, परिधानों की सजावटी सामग्री के रूप में व्यवसायिक संस्थानों में लगा दी जाती है। वर्तमान में कलाकारों के समक्षा यह चुनौती बनी हुई है की बदलते परिवेश में बहते पानी के समान नवीन निर्मल, निरन्तर आगे बढ़ते हुए प्रवाहित होती रहे अन्यथा ये कलाएँ अपना अस्तित्व और उपयोगिता खो देगी। लोक कलाएँ आज अपनी देहरी से निकलकर विस्तुत हुई है जिससे इसका सामाजिक मेलमिलाप बढ़ा है तथा इनका विस्तार देश–विदेश में शीघ्रता से हो रहा है किन्तु लोककला की निश्छलता, सरलता, सहजता, प्राकृतिक की नियमावली, मूलता ,इसकी प्रेरणा में संक्रमण फैलने लग गया है। इस प्रकार तो यह केवल व्यवसायिक सामान बन कर रह जायेगी।

अतः लोककला को उसकी महत्वता उसके गुण तथा सामाजिक उद्देश्य के प्रति एकनिष्ठ रहकर ही विकास की सीढ़ी पर कदम रखने चाहिए तभी लोककलाओ, गाथाओं की महत्ता बनी रहेगी

## संदर्भ


1. आशा, जनजातीय सांस्कृतिक अस्मिताः राजस्थान की लोककला एवं लोक संगीत, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2004.

2. डॉ.दलवी अश्विन एम./व्यास, राजेश. लोक आलोक. राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर.

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

17

# समकालीन कलाकार, साहित्य और कलाओं का संबंध

विजय पाल दित्य जांगिड़
राजस्थान विश्वविद्यालय चित्रकला विभाग
ई मेल– vijaypaldityajangid@gmail.com

**शोध सारांश**

प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न बाह्य संस्कृतियों को आत्मसात किया है एवं उनकी कला इत्यादि गुणों की अपनाया है। जैसे विभिन्न माध्यमो में कला व चित्रण पद्धति , बाह्य नियम व परिपेक्ष्य संबंधि छाया प्रकाश दर्शाने के विज्ञान व बाह्य शैली का यथार्थवादी होने के गुण को भी अपने में आत्मसात किया है। भारतीय साहित्य में पहले से ही बहुतायत ग्रंथो में कला का विस्तार से वर्णन हमे प्राप्त होता है। समकालीन लेखको एवं कवियों ने भी कला के बारे मे अपने विचार प्रस्तुत किस रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भी कहा था कि प्रेम से अधिक सुंदर यहां कुछ भी नहीं है। भारतीय कला दर्शन तथा सौदर्य दृष्टि का मूल तत्व ही सत्यं शिवम् सुंदरम् है। उपनिषदों के अनुसार सौदर्य की विशुद्ध आध्यात्मिक परिपेक्ष्य अनुसार देखा और सौंदर्य का बाहरी पक्ष को गौण कर दिया किंतु भरतमुनि ने कहा काव्यार्य वह होता है जो हृदय संवादी प्रिय सुंदर हो। भारतीय साहित्य में कला की 64 विद्याओ का वर्णन किया है। समस्त विश्व की रचना एवं विधान में समता एवं समरसता के सनातन सत्यो की शास्वत प्रतिष्ठा है। भारतीय कला के मूल में भी इसी अपरिहार्य यथातथ्यता का उद्घोष है। कला की आत्मा रस है रस सृष्टि भारतीय कला का प्रमुख उद्देश्य रहा है। समकालीन लेखक जयशंकर प्रसार ने अपनी कविता कामायनी में लिखा है ''भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान''

महादेवी वर्मा के ''यामा'' कविता संग्रह मे कविता के साथ उन्होने चित्र भी बनाए है जो उनके काव्य के भावो की गहराई से व्यक्त करते हैं। उनके चित्र कविता के भावो को दर्शाते है।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार कला को समाज व राष्ट्र के लिए ओज, उत्साह व चेतना का संचार किया जाना चाहिए उन्होने कला के माध्यम से सामाजिक पूर्वाग्रही का खंडन किया और लोगो में राष्ट्रीय भावना जागृत करने पर जोर दिया।

रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में भी लेखन कला के बारे में बताया गया है।पणिनी जिन्होने उपयोगी कला व ललित कला को चारू व कारू के नाम से सम्बोधित किया, उनका वर्णन भी इस पुस्तक में किया गया है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने कला को जीयो और जीने दो'' माना। यह संगीतकार भी थे इन्होंने गीतिका में संगीत रचनाओं का संग्रह किया। निराला जी ने कला को केवल सौदर्य बोध का माध्यम नहीं माना, बल्कि इस सामाजिक चेतना, मानवीय मूल्यो और क्रांति के साथ जोडने वाली एक शक्तिशाली विधा के रूप में देखा।कवि, लेखक और चित्रकार सभी कला को अपने–अपने नजरिये से देखने का प्रयत्न करते रहते है किंतु कला परिवर्तनशील है।

एक कथन है – beauty lies in the eyes of the beholder-

किसी को कमल का फूल और किसी को सूर्यमुखी का फूल सुंदर लग सकता है। इसी तरह कला सभी को अलग–अलग लग सकती है।लेखक कवि और कलाकार सादृश्य की सहायता से लेख, कविता और चित्र की रचना करते है ।अपितु उनसे तुलना करते हैं और वास्तव में वह होने में बहुत अंतर है। लेकिन सुंदरता की कसौटी पर खरा उतरने के लिए तुलना और उसके जैसा बताना आवश्यक होता है इसलिए सभी कला आपस में जुडी होती हैं।

**बीज शब्द**

समकालीन साहित्य, कला, कलाकार,इंस्टॉलेशन, आनंद, आधुनिकता, अभिव्यक्ति

## मूल आलेख

समकालीन साहित्य और कला के बीच संबंध प्राचीन और गहरे हैं। यह दो अलग–अलग विधाएं ना होकर एक ही रचनात्मकता के दो भाग हैं जो एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक दूसरे की प्रेरणा उद्देश्य को प्रभावित करते हैं। मनुष्य तथा प्रकृति की रचनाओं में सबसे सशक्त माध्यम साहित्य व कला है। जिस प्रकार प्रकृति दिन प्रतिदिन नए रंगों में रंगी होती है इस प्रकार मनुष्य के मन में नए–नए रचनात्मक उपाय कला के रूप में प्रस्तुत होते रहते हैं चाहे वह चित्र काव्य या साहित्य का माध्यम ही हो।
साहित्य और कल का संबंध पेड़ और फल की भांति ही होता है पेड़ की पहचान उसके फल से ही होती है उसे प्रकार कला और साहित्य को लोगों को स्वयं के व्यक्तित्व के अनुसार और अपने समझ के अनुसार ही समझा जा सकता है। दोनों का मूल उद्देश्य मानवीय अनुभवो को एक सौंदर्य रूप प्रदान करना है।

## साहित्य आधारित कला

सर्वप्रथम देव मूर्ति निर्माण के साक्ष्य कुषाण काल की मूर्तियां को देखकर ही पता चलता है इस आधार पर देवी देवताओं के चित्रों का निर्माण भारत में सर्वप्रथम राजा रवि वर्मा ने किया। वेदों, वेदांगो ,रामायण ,महाभारत आदि ग्रंथो की कथाओं में जो भी वर्णन मिलता है इस आधार पर देवी देवताओं के चित्रों का निर्माण किया गया।
जहां उपन्यास या कहानी एक रैखिक या गैर रैखिक आख्यान प्रस्तुत करती है वहीं चित्रकला या मूर्ति कला भी एक कहानी कह सकती है। जिस प्रकार कत्थक का अर्थ है कथा कहना उसी को जोड़ते हुए नाट्यशास्त्र में भी भरत मुनि ने भी आठ रस व भाव बताएं हैं जिन्हें आधुनिक काल के चित्रों तथा समकालीन कलाओं में भी दर्शाया जाता रहा है।

## समकालीन कलाकार व साहित्यकार के कलाकर्मो का संबंध

कलाकार भूपेन खक्कर के चित्रो में मध्यमवर्गीय परिवार के जीवन को देखा जा सकता है जो निर्मल वर्मा के कथा साहित्य को जीवंत करतें है।
यह सबसे प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कलाकृति किसी लेखक के लिए प्रेरणा बन सकती है और एक साहित्य कथा, कविता, लेख किसी चित्रकार, मूर्तिकार को प्रेरित कर सकता है।
'राजा नाटक जो रविन्द्र नाथ टैगोर ने 1910 में लिखा था उसी आधार पर के. जी सुवमण्यम ने "किंग ऑफ द डार्क चेम्बर'' नामक म्यूरल की रचना की ।''राजा'' नाटक को अंग्रेजी अनुवाद में द किंग ऑफ द डार्क चेम्बर कहा गया है।
विस्थापना प्रवास और पहचान का संकट जैसे विषय अंग्रेजी लेखक सलमान रुश्दी के उपन्यास और अनीश कपूर की कलाकृतियों में देखने को मिलते हैं।कथा से अधिक मनोदशा और मन की संवेदना पर आधारित है उसी प्रकार अमूर्त कला में संवेदना व रंग आकृति से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है।
अनीश कपूर की कलाकृतियों मे मे शून्यता का बोध है उसी प्रकार सलमान रुश्दी अपने उपन्यासों में लिखतें है।
गीताजली श्री का उपन्यास ''रेत समाधि'' मे देशो की इंसानो की, यर्थाथ व कल्पाना की सीमा टूट जाती है। यह अनुभव रेखिक कथा को पढ़ने जैसा नहीं है बल्कि विवान सुंदरम के इंस्टालेशन को समझने जैसा है जिसमे उन्होंने रामकिंकर बैज के कार्यों जैसे संधाल परिवार की नकल की जिसमें मोटर कार के पूर्जो, रबर पाइप व साइकिल जैसी सामग्रीयों का उपयोग किया।
अब अतीत के अवशेषों और वर्तमान की वस्तुओं को मिलाकर एक नया बहुआयामी अर्थ रचा जाता है। यहीं से समकालीन साहित्य और कला के नए रिश्ते बनते है। यह रिश्ता केवल एक दूसरे से प्रेरणा लेने तक ही सीमित नहीं रहा साहित्यकार केवल लिख नहीं रहा है वह भी चित्र बना रहा है और कलाकार केवल चित्र या मूर्ती नहीं बना रहा वह कविता कह रहा है लेख लिख रहा है। दोनों ही समय की जटिलताओं को पकड़ने के लिए एक दूसरे के माध्यमों और तकनीकों को अपना रहे है।
रामगोपाल विजयवर्गीय केवल चित्रकला के धनी नहीं थे वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कलाकार के द्वारा काव्य व कला के सामंजस्य से ऐसी कला धारा प्रवाहित की जो "सत्यम् शिवम सुंदरम" के रूप में प्रकट हुई। उनके द्वारा लिखा गया है कि जो अवस्था कवि की है वह चांदनी रात में रजत पूर्ण सुंदर मुखो में कमल व लता वृक्षो में लावण्या खोजना है इस प्रकार चित्रकार भी उषा ,संध्या, बसंत व पतझड़

में अलौकिक आनंद की मंदाकिनी को बहते हुए देखा है। उनका प्रकाशित काव्य संग्रह "चिंगारियां" भी कवि की अनंत वेदना की मार्मिक अभिव्यक्तिहै। इसके अलावा "अभिसार निशा" खंडकाव्य में राधा कृष्ण के प्रेम की दिव्य अनुभूति को व्यक्त किया है उन्होंने परंपरागत काव्यात्मक पहलुओं को अपनी शैली माध्यम से आधुनिक परिवेश में चित्रित कर सामान्य जन को काव्य चित्र के सहयोग से उपजे मर्म से परिचित कराया है। महाकवि कालिदास के "अभिज्ञानशकुंतलम", कुमारसंभव व मेघदूत के प्रसंग को चित्रों द्वारा प्रस्तुत कर साहित्य और कला अद्‌भुत संगम दिखाया गया है।
समकालीन कला : एक सक्षिप्त परिचय में जूलियन स्टालब्रास ने कहा है कि कलात्मक अभिव्यक्तियां लोगों को अपने अनुभवो व वैश्विक दृष्टिकोणों को व्यवस्थित करने और समझने की आवश्यकता से उत्पन्न होती है।
मार्क रोथको ने कहा कि मुझे रंग व रूप या किसी अन्य चीज में रुचि नहीं है मुझे केवल बुनियादी मानव भावनाओं को व्यक्त करने में रुचि है।

## सार

समकालीन लेखो में कलाकारो, चित्रकला मूर्तिकला व दृश्यशिल्प का गहरा अंतसंबध देखने को मिलता है।कविता न केवल कला का वर्णन करती है बल्कि भाव संवेद्ना सौदर्य व सामाजिक अवधारणा को भी साहित्य के साथ जोड देती है। कई कवियों ने चित्रों रंगों को अपने काव्य विम्वों में ढालकर कलात्मकता और कलानुभवो को शब्दो के माध्यम से से बखान किया है। सैयद हैदर रजा के बिंदु पर लिखने वाले अशोक वाजपेयी हो या रामधारी सिंह दिनकर जिन्होंने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्यायो में ऋगवेद, तथा पाणिनी का वर्णन किया है। जहां साधारण मनुष्य चित्रों के बाहरी रूप, आकार, रंग आदि को देखकर आनंदित होता है वहीं कलाकार उस  चित्र के भीतर छिपे शब्दो को सुनने की कोशिश करता है उसके रंगो में घुले मौन को पढ़ने का प्रयास करता है तथा अपने अनुभव को लेख के द्वारा नया जीवन देता है। कला, साहित्य का रिश्ता एक निरंतर चलने वाली जुगलबंदी की तरह है। कभी साहित्य मुख्य गायक होता है, और कला संगत करती है तो कभी कला केन्द्र में होती है और शब्द उसे पृष्ठभूमि देते है। कला और और साहित्य हवा में पैदा नहीं होते हैं वे अपने समय की उपज होते हैं। कला में साहित्य की प्रेरणा लेकर लिखना या क्रिएट करना एकफ्रासिस कहलाता है।

## संदर्भ

1.चतुर्वेदी, डॉ ममता – '' सौदर्यशास्त्र", राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर 2017 पृष्ठ संख्या–230, 256
2. प्रताप, रीता – भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर 2014 पृष्ठ संख्या – 408
3. सिंह, डॉ अनिल कुमार – '' रंगों और रेखाओं की परिणतीयांः–शमशेर की कविता और चित्रकला का अंतर्सम्बंध शोध पत्र
4. श्री, गीतांजली – रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन  2018
5. कल्ला, अमित – अमूर्त कला का आध्यात्मिक उन्मेष, आलेख, अपनी माटी. 2024
6 .मीणा, सुनिता – रामगोपाल विजयवर्गीय के चित्र सृजन में नारी सौन्दर्य का रूपांकन, शोध आलेख अपनी माटी–2024
7.https://en-wikipedia-org/wiki/Raja_(play)
8. दिनकर, रामधारी सिंह– संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या –30,35

18

# डिजिटल एनिमेशन और साहित्य में दृश्य तत्व की अंतर्क्रियाः अभिव्यक्ति और अर्थ-निर्माण के नए आयाम

**ज़ाकिर ख़ान**
शोधार्थी, चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
एवं सहायक आचार्य,
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर
zk9636426460@gmail.com

**डॉ. लोकेश जैन**
सहायक आचार्य (सेवानिवृत), चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

## अमूर्त (Abstract)

यह शोध–पत्र डिजिटल एनिमेशन और पारंपरिक साहित्य में दृश्य तत्व (visual element) की उपस्थिति, भूमिका और उनके परस्पर संबंधों का अकादमिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साहित्यिक परंपरा में दृश्य तत्व मुख्य रूप से पाठ के माध्यम से प्रकट होते रहे हैं– बिम्ब, रूपक और वर्णनात्मक शैली के द्वारा पाठक के मानस में दृश्य–प्रस्तुति निर्मित की जाती है। दूसरी ओर, डिजिटल एनिमेशन दृश्य तत्व को अपने मूलभूत साधन के रूप में ग्रहण करता है, जहाँ रंग, गति, प्रकाश, ध्वनि और चरित्र–डिज़ाइन (character design) के माध्यम से कथा को जीवंत किया जाता है। इस प्रकार दोनों ही माध्यम– पाठाधारित व दृश्याधारित मानव कल्पना और अनुभव को संरचित करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह समझना है कि डिजिटल तकनीकों के आगमन ने साहित्यिक दृश्यात्मकता को किस प्रकार रूपांतरित और विस्तारित किया है। साहित्यिक अनुकूलन (literary adaptation) की प्रक्रिया में एनिमेशन केवल कथानक का पुनःप्रस्तुतीकरण ही नहीं करता, बल्कि वह साहित्य के अमूर्त विचारों और मनोवैज्ञानिक गहराइयों को 'शो, डोंट टेल' (Show, Don't Tell) जैसी तकनीकों के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान करता है। इस परिप्रेक्ष्य में रामायण, महाभारत, कालिदास के काव्य और आधुनिक हिंदी साहित्य की कृतियाँ जैसे उदाहरण यह दर्शाते हैं कि शब्दों से निर्मित दृश्यात्मक कल्पनाएँ डिजिटल माध्यम में पुनःरचित होकर नई व्याख्या और संवेदनाओं को जन्म देती हैं।

शोध कार्य में साहित्यिक ग्रंथों/पुस्तकों तथा उन पर आधारित एनिमेटेड रूपांतरणों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। यह भी स्पष्ट हुआ कि भारतीय एनिमेशन व्यवसाय ने न केवल पंचतंत्र, पौराणिक आख्यानों व शास्त्रीय कृतियों को बच्चों तक पहुँचाने का सशक्त साधन निर्मित किया है, बल्कि भारतीय साहित्यिक धरोहर को वैश्विक मंच पर भी स्थापित करने का सशक्त प्रयास किया है। आँकड़े यह संकेत करते हैं कि डिजिटल तकनीकों के प्रसार के साथ साहित्यिक सामग्री का दृश्यात्मक रूपांतरण निरंतर बढ़ रहा है तथा इस प्रक्रिया ने साहित्य की ग्रहणशीलता को बहुआयामी बना दिया है।

इस शोध में यह निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि साहित्य और एनिमेशन का संगम एक सहजीवी (symbiotic) संबंध निर्मित करता है। साहित्य जहाँ एनिमेशन को गहन विषयवस्तु और सांस्कृतिक संदर्भ प्रदान करता है, वहीं एनिमेशन साहित्य की दृश्यात्मकता को सजीव, संवेदी और सार्वभौमिक बना देता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि डिजिटल एनिमेशन और साहित्य का अंतःसंबंध भविष्य की सांस्कृतिक संरचना, शिक्षा तथा वैश्विक संवाद के नए आयाम प्रस्तुत करता है तथा

नई पीढ़ी के पाठकों व दर्शकों के लिए साहित्यिक अनुभव को और अधिक जीवंत व प्रभावशाली बनाता है।

**प्रमुख शब्दावली–** डिजिटल एनिमेशन, साहित्यिक अनुकूलन, दृश्य संस्कृति, तुलनात्मक विश्लेषण, पार–माध्यम अध्ययन, भारतीय साहित्य, कथात्मक दृश्यांकन

## समस्या कथन (Problem Statement)

डिजिटल युग के आगमन के पश्चात्, साहित्य और एनिमेशन दोनों माध्यमों में दृश्य तत्वों की परिभाषा, प्रयोजन और ग्रहणशीलता में मौलिक परिवर्तन आया है। साहित्य जहाँ शब्दों की दृश्यात्मकता पर आधारित है, वहीं एनिमेशन दृश्य संकेतों के माध्यम से अर्थ का संचार करता है। इस शोध का केंद्रीय प्रश्न यही है कि क्या इन दोनों माध्यमों की दृश्य भाषाएँ अब एक–दूसरे में अंतःक्रियाशील (interacting) हो गई हैं? और यदि हाँ, तो यह अंतर्क्रिया अर्थ–निर्माण की प्रक्रिया को किस प्रकार परिवर्तित करती है?

## शोध पत्र के उद्देश्य (Objectives)

- साहित्य में बिम्बों, प्रतीकों और वर्णनात्मक संरचनाओं के माध्यम से दृष्य तत्व की उपस्थिति को परिभाषित करना।
- डिजिटल एनिमेशन में रंग, गति (motion) और फ्रेम संरचना जैसे तकनीकी घटकों की भूमिका का विश्लेषण करना।
- साहित्यिक पाठों के एनिमेटेड रूपांतरणों में दृश्य तत्वों के सफल या असफल संक्रमण (Successful/Unsuccessful Transference) का मूल्यांकन करना।
- 

## शोध प्रश्न (Research Questions)

- साहित्य में निहित दृश्य तत्वों का कौन–सा भाग एनिमेशन में अक्षुण्ण (intact) रहता है और कौन–सा रूपांतरित होता है?
- डिजिटल एनिमेशन किस प्रकार शाब्दिक रिक्तताओं (verbal gaps) को दृश्य संकेतों के माध्यम से भरता है?
- 

## शोध पत्र की रूपरेखा (Structure of the study)

यह शोध–पत्र छह प्रमुख खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड परिचयात्मक है, जो दृश्यता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और समस्या कथन को प्रस्तुत करता है। दूसरा खंड साहित्य समीक्षा पर आधारित है, जिसमें दृश्य संस्कृति, रूपांतरण सिद्धांत और माध्यम सिद्धांत की व्याख्या की गई है। तीसरा और चौथा खंड क्रमशः साहित्य और डिजिटल एनिमेशन में दृश्य तत्वों की उपस्थिति का विश्लेषण करते हैं। पाँचवाँ खंड दो केस स्टडी– Kabuliwala – Man from Kabul (Paperboat Studios) और Punyakoti (2020) पर केंद्रित विश्लेषणात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करता है। अंतिम खंड में निष्कर्ष, शोध का योगदान और भविष्य की संभावनाएँ सम्मिलित की गई हैं।

## 1. प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य और दृश्य कला का संबंध मानव सभ्यता की आरंभिक चेतना से जुड़ा हुआ है। जब मनुष्य ने शब्दों के माध्यम से अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करना प्रारंभ किया, उसी क्षण से दृश्य कल्पना का जन्म हुआ। प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने "मिमेसिस" (Mimesis) के सिद्धांत के माध्यम से कला को वस्तु या विचार के अनुकरण (imitation) के रूप में परिभाषित किया था, जहाँ दृश्यात्मकता ज्ञान और सत्य की अभिव्यक्ति का साधन थी। भारतीय परंपरा में भी भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर आधुनिक काव्यशास्त्र तक, 'दृश्य' को सौंदर्य अनुभव का केंद्रीय तत्व माना गया है। यह दृश्यता न केवल

देखने का क्रियात्मक अनुभव है, बल्कि अर्थ–निर्माण की एक बौद्धिक प्रक्रिया भी है, जो शब्दों और चित्रों के बीच सेतु का कार्य करती है।

बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी में जब डिजिटल माध्यमों ने अभिव्यक्ति के नए आयाम खोले, तब दृश्य तत्वों की परिभाषा और भूमिका में गहरा परिवर्तन आया। एनिमेशन, जो मूलतः गतिशील चित्रों (moving images) की कला है, आज साहित्य की व्याख्या और पुनःसृजन का एक प्रमुख माध्यम बन चुका है। डिजिटल एनिमेशन के माध्यम से साहित्यिक पाठों में निहित बिम्ब, रूपक और भावनात्मक संरचना दृश्यात्मक रूप में साकार हो रही हैं। इस परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न उठता है कि क्या अब साहित्य की दृश्यता का स्वरूप वही है जो पारंपरिक युग में था अथवा डिजिटल माध्यमों ने उसे एक नई सृजनात्मक भाषा प्रदान की है?

## 2. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

साहित्य अपने भीतर बिम्बों (imagery) और प्रतीकों (symbols) के माध्यम से दृश्यता का सृजन करता है, जबकि डिजिटल एनीमेशन इस दृश्यता को तकनीकी रूप में मूर्त कर देता है। आधुनिक युग में जब दृश्य संस्कृति ने मानव अनुभव के केंद्र को परिभाषित किया, तब साहित्यिक अध्ययन में भी दृश्यात्मकता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई।

### बिम्ब–विधान एवं दृश्यात्मकता (Imagery and visual culture)

W.J.T. Mitchell ने Picture Theory (1994) में यह प्रतिपादित किया कि "प्रत्येक चित्र एक व्याख्या का स्थल है" अर्थात् चित्र व शब्द दोनों ही अर्थ–निर्माण के माध्यम हैं। साहित्यिक पाठ में बिम्ब केवल अलंकार नहीं, बल्कि वे पाठक के मस्तिष्क में एक दृश्य संसार का निर्माण करते हैं।

इसी विचार को Scott McCloud ने Understanding Comics (1993) में आगे विकसित करते हुए कहा कि दृश्य माध्यम अपनी "दृश्य व्याकरण" के माध्यम से विचारों और भावनाओं को व्यक्त करते हैं। रंग, आकृति, गति और स्पेस जैसे तत्त्व न केवल दृश्य सौंदर्य रचते हैं, बल्कि अमूर्त विचारों को ठोस रूप में प्रस्तुत करते हैं।

### माध्यम सिद्धांत (Medium theory)

Marshall McLuhan के "Medium is the Message" सिद्धांत (1964) ने यह स्पष्ट किया कि संदेश की प्रकृति माध्यम पर निर्भर करती है। साहित्य एक शब्द–आधारित माध्यम है जो कल्पना को सक्रिय करता है, जबकि एनिमेशन दृश्य और श्रव्य दोनों संकेतों का प्रयोग कर प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करता है। माध्यम सिद्धांत इस अध्ययन में इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि जब साहित्य को डिजिटल रूप में रूपांतरित किया जाता है, तो उसकी अर्थ–संरचना (semantic structure) भी परिवर्तित होती है। इस परिवर्तन में दृश्य संकेत, रंग योजना और गति जैसे तत्त्व साहित्यिक भावों को नई दृश्य भाषा प्रदान करते हैं।

### अनुकूलन सिद्धांत (Adaptation theory)

Linda Hutcheon (2013) के अनुसार, "अनुकूलन दोहराव नहीं बल्कि पुनर्सृजन है।" अर्थात् जब कोई साहित्यिक कृति किसी नए माध्यम में प्रस्तुत की जाती है, तो वह अपने मूल से भिन्न होते हुए भी उसके भावनात्मक सार को बनाए रखती है।

इसी प्रकार Julie Sanders (2006) ने निष्ठा (fidelity) के स्थान पर मध्यवर्तीता (intermediality) की अवधारणा प्रस्तुत करती हैं– अर्थात् विभिन्न माध्यमों के बीच अर्थ का अंतःसंवाद। एनिमेशन में यह प्रक्रिया विशेष रूप से स्पष्ट होती है, जहाँ साहित्य के शब्द दृश्य और ध्वनि में परिवर्तित हो जाते हैं।

Kabuliwala – Man from Kabul (Paperboat Studios) और Punyakoti (2020) जैसे उदाहरण दर्शाते हैं कि डिजिटल एनीमेशन साहित्य की भावनात्मक गहराई को दृश्य रूप में जीवंत कर नई सांस्कृतिक संवेदनाओं का सृजन करता है।

### 3. साहित्य में दृष्य तत्वः आंतरिक संरचना (Visual Elements in Literature: The Internal Structure)

- बिम्ब–विधान और मानसिक चित्रण

बिम्ब (image) साहित्य की दृश्य चेतना का मूल तत्व है। यह शब्दों के माध्यम से दृश्य संसार की रचना करता है और पाठक के मन में अनुभव की छवि उत्पन्न करता है। प्रेमचंद की कहानियों में गाँव का जीवन, मिट्टी की गंध और किसान की थकान इतनी सजीवता से उभरते हैं कि पाठक दृश्य को "देख" सकता है। जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा में प्रकृति और मानवीय भावों का संगम दृश्यात्मकता का उत्कृष्ट उदाहरण है। आधुनिक आलोचक इसे "Mental Picturing of Text" कहते हैं अर्थात् शब्दों के माध्यम से मन में चित्र का निर्माण।

- रूपक, प्रतीक और दृश्य अर्थ

रूपक (metaphor) और प्रतीक (symbol) अमूर्त विचारों को दृश्य रूप प्रदान करते हैं। "अंधकार" केवल प्रकाश का अभाव नहीं, बल्कि भय या अज्ञान का प्रतीक है, जबकि "प्रभात" आशा और नवीनीकरण का बिम्ब बन जाता है। रवींद्रनाथ ठाकुर की काबुलीवाला में 'मिनी' का चेहरा और 'काबुलीवाले' की दृष्टि मानवता और वियोग के दृश्य प्रतीक हैं। छायावादी कवियों ने चंद्र, पवन और वसंत जैसे प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग प्रतीकात्मक अर्थों में किया, जिससे साहित्य में दृश्य सौंदर्य और भावनात्मक गहराई दोनों उत्पन्न हुए।

- वर्णन, वातावरण और पृष्ठभूमि

साहित्य की दृश्यता का एक महत्वपूर्ण पहलू उसका वर्णनात्मक ढाँचा है। वातावरण, स्थान और दृश्य–परिदृश्य का विस्तार पाठक को दृश्य के भीतर ले जाता है। गोदान में गाँव की सड़कें, खेत और घर केवल परिवेश नहीं, बल्कि कथा की आत्मा हैं। रंग, ध्वनि और गति जैसे तत्त्व वातावरण का निर्माण करते हैं। लेखक कभी ध्वनि से दृश्य रचता है (उदा.– सन्नाटा जैसे जम गया हो) और कभी रंग से भावना व्यक्त करता है (उदा.– पीला आसमान उदासी में डूबा था) ।

- पाठक की सक्रिय भूमिका

साहित्य की दृश्यता केवल लेखक पर नहीं, पाठक की कल्पना पर भी निर्भर करती है। प्रत्येक पाठक अपने अनुभव और संवेदना से दृश्य की पुनर्रचना करता है। Reader–Response Theory के अनुसार, यह प्रक्रिया साहित्य को जीवंत बनाती है जहाँ लेखक संकेत देता है और पाठक उसे दृश्य रूप में अनुभव करता है। यही लेखक–पाठक का सौंदर्यात्मक सहयोग (aesthetic collaboration) है।

- निष्कर्षात्मक अवलोकन

साहित्य की दृश्यता केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि अर्थ–निर्माण का प्रमुख उपकरण है। जब शब्द दृ श्य बनते हैं, तो वे अनुभूति की गहराई को मूर्त रूप देते हैं। यही दृश्यात्मकता आगे चलकर साहित्य और डिजिटल एनिमेशन के बीच सहजीवी सेतु (symbiotic bridge) का निर्माण करती है, जहाँ भाषा और दृश्य मिलकर नए अर्थ संसार की सृष्टि करते हैं।

### 4. डिजिटल एनिमेशन में दृश्य तत्वः तकनीकी और कलात्मक अभिव्यक्ति

डिजिटल एनिमेशन आधुनिक दृश्य संस्कृति का सबसे प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। यह केवल गतिशील चित्रों (moving images) का संयोजन नहीं, बल्कि दृश्य, ध्वनि, और समय का एक जटिल समन्वय है। एनिमेशन की दृश्यता इस तथ्य पर आधारित है कि यह तकनीक और कला दोनों का संतुलन बनाकर कथा को जीवंत रूप देती है। जहाँ साहित्य शब्दों से दृश्य उत्पन्न करता है, वहीं एनिमेशन उन दृश्यों को मूर्त और गतिशील बनाता है।

### (1) तकनीकी घटक (Technical Components)

डिजिटल एनिमेशन की दृश्य अभिव्यक्ति का प्रथम आधार उसकी तकनीकी संरचना है–

(क) फ्रेम दर (frame rate)– एनिमेशन का प्रवाह इसी पर निर्भर करता है। उच्च फ्रेम दर (24–60 fps) गति को स्वाभाविक बनाती है, जबकि धीमी दर भावनात्मक गहराई उत्पन्न करती है।

(ख) पिक्सेल घनत्व (pixel density) और रेज़ोल्यूशन (resolution)– यह दृश्य की स्पष्टता को निर्धारित करते हैं। उच्च रेज़ोल्यूशन का उपयोग पात्रों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति को सटीक रूप में प्रस्तुत करता है।

(ग) 3D मॉडलिंग और CGI (computer generated imagery)– एनिमेशन में वस्तुओं और पात्रों को त्रि–आयामी रूप देता है, जिससे गहराई और यथार्थ का अनुभव मिलता है।

(घ) प्रकाश और छाया (lighting and shadow)– प्रकाश एवं छाया का नियंत्रण भावनात्मक वातावरण निर्माण का प्रमुख तकनीकी उपकरण है।

इन तकनीकी पहलुओं के समुचित उपयोग से एनिमेशन केवल दृश्य नहीं रहता, बल्कि संवेदना और विचार का माध्यम बन जाता है। Punyakoti (2020) में CGI और पारंपरिक 2D शैली का मिश्रण इस बात का उदाहरण है कि तकनीक किस प्रकार कथा को सांस्कृतिक यथार्थ से जोड़ सकती है।

### (2) कलात्मक घटक (Artistic Components)

तकनीकी ढाँचे के समानांतर, एनिमेशन की आत्मा उसके कलात्मक तत्वों में निहित होती है।

(क) रंग सिद्धांत (color theory)– रंग भावनाओं के संप्रेषण का सबसे शक्तिशाली माध्यम हैं। लाल रंग ऊर्जा और संघर्ष का प्रतीक बनता है, जबकि नीला रंग शांति और स्मृति का। Kabuliwala – Man from Kabul में हल्के भूरे और नीले रंगों का संयोजन कथा की करुणा और वियोग को गहराई देता है।

(ख) चरित्र और पृष्ठभूमि डिजाइन (character and background design)– पात्रों का आकार, पोशाक, और गति उनके मनोविज्ञान को व्यक्त करते हैं। पृष्ठभूमि कथा के सांस्कृतिक और भावनात्मक संदर्भ को दर्शाती है।

(ग) गति और समय (motion and timing)– एनिमेशन में "गति" भावना की भाषा है। धीमी गति आत्मचिंतन या शोक को दर्शाती है, जबकि तीव्र गति ऊर्जा और संघर्ष का संकेत देती है।

(घ) मोंटाज और संपादन (montage and editing)– दृश्य क्रम कथा के अर्थ–निर्माण में निर्णायक होता है। उचित संपादन दर्शक के भावनात्मक प्रवाह को दिशा प्रदान करता है।

## 5. अंतर्क्रिया का विश्लेषण– तुलनात्मक केस स्टडी (Analysis of Interaction- Comparative Case Study)

साहित्य और डिजिटल एनिमेशन के बीच संबंध केवल रूपांतरण का नहीं, बल्कि अर्थ के पुनर्निर्माण का है। एनिमेशन माध्यम में कथाएं न केवल दृश्य रूप लेती है, बल्कि ध्वनि, रंग और गति के माध्यम से नए अर्थ भी अर्जित करती है।

### केस स्टडी 1– Kabuliwala – Man from Kabul (Paperboat Design Studios)

रवींद्रनाथ ठाकुर की काबुलीवाला (1892) एक भावनात्मक कथा है जो मानवता, वियोग और पितृत्व की भावना पर केंद्रित है। कहानी का मुख्य आकर्षण एक अफ़ग़ान व्यापारी और एक छोटी लड़की 'मिनी' के बीच निर्मल भावनात्मक संबंध है।

**एनिमेटेड रूपांतरण**– Paperboat Design Studios द्वारा निर्मित Kabuliwala – Man from Kabul (2016) में इस कथा को 2D डिजिटल एनिमेशन में रूपांतरित किया गया। हल्के भूरे, नीले और नारंगी रंगों का प्रयोग कथा के भावनात्मक स्वर को बनाए रखता है। काबुलीवाला का सादा परंतु भावनात्मक चेहरा मानवीय करुणा का प्रतीक है। धीमी गति और विराम का प्रयोग कथा में शांति और वियोग का वातावरण निर्मित करता है।

| तत्व | साहित्यिक रचना | एनिमेटेड रूपांतरण | परिवर्तन / प्रभाव |
|---|---|---|---|
| मनोवैज्ञानिक गहराई | आंतरिक एकालाप, वर्णनात्मक भाषा | चेहरे की सूक्ष्म भंगिमा, क्लोज़–अप, धीमा कैमरा | वाचिक से दृश्य की ओर संक्रमण |
| भावनात्मक तनाव | "मिनी अब बड़ी हो गई है"– शब्दों का दुःख | मिनी को देखकर काबुलीवाला का चेहरा बदलना | शब्दहीन दृश्य–संकेतों द्वारा संप्रेषण |
| सांस्कृतिक फ्रेमिंग | बंगाली घर, समाज, पिता–पुत्री संबंध | पारंपरिक कपड़े, बैकग्राउंड डिज़ाइन | सांस्कृतिक बिंबों का रूपांतर |

### केस स्टडी 2– **Punyakoti** (2020)

कन्नड़ लोक / नीति–कथा Punyakoti सत्य, करुणा और धर्मपरायणता पर आधारित है, जिसमें पुन्यकोटि नामक गाय अपनी सत्यनिष्ठा के लिए स्वयं को बलिदान करने तैयार होती है। कथा में प्रतीकों का प्रयोग (गाय = सत्य, बाघ = शक्ति) और नैतिक शिक्षा का पाठ है।

**एनिमेटेड रूपांतरण–** भारत की प्रथम संस्कृत एनिमेटेड फिल्म Punyakoti (2020) पारंपरिक कथा को 3D एनिमेशन के माध्यम से प्रस्तुत करती है। पारंपरिक लोकशैली और CGI का संयोजन सांस्कृतिक गहराई प्रदान करता है। स्वर्णिम और हरित रंग नैतिक शुद्धता और प्राकृतिक पवित्रता का प्रतीक हैं। संस्कृत संवाद और पारंपरिक ध्वनि प्रभाव दृश्य अनुभव को आध्यात्मिक बनाते हैं।

| तत्व | लोककथा | एनिमेटेड रूपांतरण | परिवर्तन |
|---|---|---|---|
| प्रतीकात्मकता | गाय = सत्य, बाघ = भय | रंग, प्रकाश और संवाद से प्रतीक उकेरे गए | प्रतीकों को दृश्य रूप देना |
| नैतिक शिक्षा | कथात्मक मोड़ और संवाद | अंतिम दृश्य में बैकग्राउंड संगीत, कैमरा पैन | संवेदनशीलता को दृश्य माध्यम से गहराया गया |
| भाषा का प्रयोग | कन्नड़ या मौखिक संस्कार | संस्कृत भाषा और उपशीर्षक | भाषा और संस्कृति का समावेशीय रूपांतरण |

### दोनों केस स्टडी का विश्लेषण

| विश्लेषणात्मक पैरामीटर | काबुलीवाला | पुण्यकोटि |
|---|---|---|
| मूल कथा शैली | यथार्थपरक (Realist Fiction) | उच्च आत्मबलिदान और नैतिकता |
| भावनात्मक गहराई | उच्च आंतरिक पीड़ा पर केंद्रित | अंतिम दृश्य में बैकग्राउंड संगीत, कैमरा पैन |
| प्रमुख दृश्य तकनीक | स्लो पैन, क्लोज़–अप, म्यूट रंग | रंग प्रतीक, फ्रेम–लेयरिंग, चढ़ाव |
| कथानक का दृश्यात्मक अनुवाद | शब्दहीन भाव और दृश्य | नैतिकता का दृश्य रूपांतरण |
| दर्शक वर्ग | वयस्क / किशोर | बालक + पारिवारिक |
| माध्यमीय चुनौती | न्यूनतम संवाद में भाव–संचार | धार्मिक / नैतिक प्रतीकों का दृश्य अनुवाद |

## 6. निष्कर्ष (**Conclusion**)

साहित्य और डिजिटल एनिमेशन के बीच संबंध केवल रूपांतरण का नहीं, बल्कि अर्थ–निर्माण के नए मार्ग तक है। साहित्य शब्दों के माध्यम से दृश्य संसार रचता है, जबकि डिजिटल एनिमेशन उन्हीं दृश्यों को रंग, गति और प्रकाश के माध्यम से जीवंत बना देता है। इस शोध में स्पष्ट करने का प्रयास

किया गया है कि दोनों माध्यमों में दृश्य तत्व अर्थ–संवहन का मूल आधार हैं, जो संवेदना को दृश्य अनुभव में रूपांतरित करते हैं।

Kabuliwala – Man from Kabul और Punyakoti (2020) जैसे उदाहरण सिद्ध करते हैं कि एनिमेशन साहित्य की आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए उसे नए दृश्य–संकेतों और सौंदर्यबोध से समृद्ध करता है। प्रथम उदाहरण भावनात्मक करुणा को मूर्त करता है, जबकि दूसरा नैतिकता और धर्म को दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। साहित्य और एनिमेशन की यह अंतर्क्रिया एक सहजीवी संबंध बनाती है, जहाँ शब्द दृश्य में और दृश्य संवेदना में परिवर्तित होता है। भविष्य में यह संगम ट्रांसमीडिया कथा–वाचन और इंटरएक्टिव डिजिटल साहित्य के रूप में नए सांस्कृतिक प्रतिमान स्थापित करेगा।

इस प्रकार, दृष्य तत्व दोनों ही माध्यमों की आत्मा हैं– साहित्य उन्हें शब्द प्रदान करता है, और एनिमेशन उन्हें जीवन।

## 7. संदर्भ ग्रंथ सूची


### पुस्तकें (Books):

- Hutcheon, Linda. A Theory of Adaptation. Routledge, 2013.
- McCloud, Scott. Understanding Comics: The Invisible Art. HarperCollins, 1993.
- Mitchell, W. J. T. Picture Theory: Essays on Verbal and Visual Representation. University of Chicago Press, 1994.
- Sanders, Julie. Adaptation and Appropriation. Routledge, 2006.
- Verma, Ramkumar. Sahitya aur Kala. Lokbharti Prakashan, 2018.

### शोध लेख एवं पत्रिकाएं (Journals, Articles):

- Sharma, Archana. "Digital Madhyam Mein Bimb Vidhan." Bhartiya Sahitya Patrika, vol. 15, no. 2, 2021, p. 45–60.
- Chaudhary, Sunil. "Rang aur Drishya Sanrachna: Animation ke Sandarbh Mein." Drishya Kala Samiksha, vol. 7, no. 1, 2022, p. 33–47.

### ऑनलाइन स्रोत (Web Sources):

- "Kabuliwala – Man from Kabul." Paperboat Design Studios, 2016, www.paperboatdesigns.com/kabuliwala.
- Punyakoti. Directed by Ravi Shankar V. S., Puppetica Media, 2020. www.punyakoti.in.
- Chaudhary, Sunil. "Animation Mein Rang Siddhant ka Prayog." Drishya Kala Sansar, 10 Aug. 2023, www.drishyakalasansar.org/rang-siddhant.

### भारतीय संदर्भ (Indian Literary References):

- Premchand. Godan. Saraswati Press, 1936.
- Prasad, Jaishankar. Kamayani. Lokbharti Prakashan, 1953.
- Tagore, Rabindranath. Kabuliwala. Visva Bharati Publications, 1892.

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

19

# भारतीय संविधान में कला और साहित्य

अमित वर्मा
शोधार्थी, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
प्रो. आई. यू. खान
शोध निर्देशक, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

**सारांश :**

भारतीय संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज ही नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की सांस्कृतिक, कलात्मक और साहित्यिक परंपराओं का भी जीवंत प्रतीक है। इसमें जहाँ एक ओर मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख है, वहीं दूसरी ओर यह कला और साहित्य को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भारतीय संविधान कला और साहित्य की रक्षा, संवर्द्धन एवं विकास के लिए किस प्रकार कार्य करता है और इसके निर्माण में कला एवं कलाकारों का योगदान क्या रहा।

## 1. परिचय

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही कला और साहित्य की दृष्टि से समृद्ध रहा है। वैदिक साहित्य, रामायण–महाभारत जैसे महाकाव्य, अजंता–एलोरा की गुफाऐ, मंदिरों की मूर्तिकला और लोक साहित्य इसकी प्रामाणिक गवाही देते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब संविधान का निर्माण हुआ, तब इसके निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य की रक्षा और संवर्द्धन किया जाए। संविधान केवल शासन व्यवस्था का आधार नहीं है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर का भी रक्षक है।

## 2. भारतीय संविधान और संस्कृति का सबंधं

संविधान सभा के अनेक सदस्य स्वयं साहित्य, कला और संस्कृति से गहराई से जुडे. हुए थे। डॉ. भीमराव अंबेडकर, पं. नेहरू, मौलाना आजाद और अन्य नेताओं ने यह माना कि भारत की विविध सांस्कृतिक धारा को संरक्षित करना अत्यंत आवश्यक है। इसीलिए संविधान में अनेक ऐसे प्रावधान किए गए जो कला और साहित्य की उन्नति में सहायक हैं। साथ ही, संविधान की मूल प्रति को सजाने के लिए महान कलाकारों को भी जिम्मेदारी दी गई।

## 3. मौलिक अधिकारों में कला और साहित्य

- अनुच्छेद 19 (1) (ए)–अभिव्यक्ति की स्वतंत्रताः यह प्रावधान साहित्य और कला की आत्मा है। लेखक, कवि, चित्रकार, संगीतकार एवं कलाकार अपनी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकते हैं।
- उदाहरण– विभिन्न साहित्यकारों और कलाकारों ने सामाजिक मुद्दों पर अपनी कला के माध्यम से आवाज उठाई है।

- अनुच्छेद 29 और 30 – संस्कृति और शिक्षा के अधिकार : यह अनुच्छेद अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी भाषा, लिपि और सस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार देता है। उदाहरण– उर्दू साहित्य, तमिल साहित्य या अन्य प्रांतीय भाषाओं के संरक्षण में यह अनच्छेद सहायक रहा है।

## 4. राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व और कला–साहित्य

- अनुच्छेद 49 : इसमें राज्य को प्राचीन स्मारकों, ऐतिहासिक स्थलों और कलात्मक महत्व की वस्तुओं की रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया है। उदाहरण : ताजमहल, अजंता–एलोरा, सूर्य मंदिर आदि का सरंक्षण।

- अनुच्छेद 51 ए (एफ और एच) : नागरिकों के मौलिक कर्तव्य : इसमें नागरिकों से अपेक्षा की गई है कि वे भारत की समृद्ध विरासत को संजोएं और वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद तथा कला के प्रति सम्मान विकसित करें।
- अनुच्छेद 351 : इसमें हिंदी भाषा के विकास और भारतीय संस्कृति के तत्वों को समाहित करने का प्रावधान है। यह साहित्यिक एकता को बढ़ावा देता है।

**5. भारतीय संविधान और भाषायी विविधता**

भारतीय संविधान ने आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता दी है। यह साहित्यिक विकास और भाषाई गौरव को संरक्षित करता है।
उदाहरण : संस्कृत, हिंदी, उर्दू, तमिल, कन्नड़ आदि ।
इससे क्षेत्रीय साहित्य और कला को राष्ट्रीय पहचान मिली है।

**6. संविधान और शिक्षा में कला–साहित्य**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और संविधान के अनुच्छेद 21 ए (शिक्षा का अधिकार) ने बच्चों में साहित्यिक और कलात्मक चेतना विकसित करने का मार्ग प्रशस्त किया है। शिक्षा संस्थानों में साहित्य, संगीत, नाटक और ललित कलाओं को शामिल कर एक सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील पीढ़ी का निर्माण किया जा रहा है।

**7. संस्कृति, कला और साहित्य के संरक्षण हेतु संस्थान**

संविधान के प्रावधानों के आधार पर भारत सरकार और राज्य सरकारों ने अनेक संस्थाओं की स्थापना की है।
साहित्य अकादमी : विभिन्न भाषाओं के साहित्य को प्रोत्साहन।
ललित कला अकादमी : चित्रकला, मूर्तिकला और अन्य ललित कलाओं का संरक्षण।
संगीत नाटक अकादमी : संगीत, नृत्य और नाटक की परंपरा को जीवित रखना।
नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा : नाट्य कला का संवर्द्धन।

**8. संविधान और लोक कला**

भारतीय संविधान केवल शास्त्रीय कला और साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि लोक साहित्य, लोक नृत्य और लोक संगीत को भी संरक्षण देता है। राज्य सरकारें लोक कलाकारों को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष योजनाएँ चलाती हैं।
उदाहरण : राजस्थान का गेर नृत्य, महाराष्ट्र का लावणी, बंगाल का बाउल संगीत।

**9. संविधान और चित्रकला**

संविधान की मूल प्रति को केवल लिखित दस्तावेज के रूप में नहीं रखा गया, बल्कि उसे कलात्मक रूप दिया गया।
इस कार्य का नेतृत्व प्रसिद्ध कलाकार नंदलाल बोस ने किया। शांति निकेतन के उनके शिष्यों ने भी इस कार्य में भाग लिया। संविधान के प्रत्येक भाग की शुरुआत भारतीय परंपरा, संस्कृति और इतिहास को दर्शाने वाले चित्रों से की गई।

**10. संविधान में योगदान देने वाले कलाकार**

- नंदलाल बोस – संविधान की मूलप्रति को सजाने का कार्य प्रत्येक अध्याय के आरंभ में भारतीय संस्कृति को दर्शाने वाली कलाकृतियाँ बनाई।
- बेजाराम दास – सीमा रेखांकन और सजावट में योगदान।
- राममनोहर सिन्हा – सज्जा और रेखांकन कार्य।
- शांति निकेतन के अन्य कलाकार – भारतीय परंपरा, लोक कला और ऐतिहासिक दृश्यों को चित्रित किया।

इन कलाकारों के कारण संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि कला और संस्कृति का जीवंत प्रतीक बन सका।

### 11. आधुनिक चुनौतियाँ और कला–साहित्य

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बनाम धार्मिक –सामाजिक भावनाएँ।
- बाजारवाद और कला का व्यवसायीकरण।
- भाषायी राजनीति और साहित्यिक असमानताएं।
- डिजिटल माध्यम पर साहित्य और कला की मौलिकता का संकट।

### 12. संविधान के आलोक में भविष्य की संभावनाएं

भारतीय संविधान में निहित मूल्यों के अनुरूप कला और साहित्य भविष्य में और अधिक समृद्ध होंगे। डिजिटल क्रांति, नई शिक्षा नीति और वैश्विक संवाद के चलते भारतीय कला और साहित्य को विश्व पटल पर नई पहचान मिल रही है। साथ ही, संविधान में कला और साहित्य को दिए गए संरक्षण के कारण भविष्य की पीढ़ियाँ अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रख पाएँगी।

### 13. निष्कर्ष

भारतीय संविधान केवल राजनीतिक या प्रशासनिक ढांचा नहीं है, बल्कि यह भारत की आत्मा का दर्पण है। इसमें निहित प्रावधान कला और साहित्य को संरक्षण, संवर्द्धन और स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। संविधान ने भारतीय समाज की बहुलता और विविधता को आत्मसात कर कला और साहित्य की नई धारा को जन्म दिया है। संविधान की मूलप्रति में कलाकारों के योगदान ने इसे विश्व का सबसे सुंदर और कलात्मक संवैधानिक दस्तावेज बना दिया।

### संदर्भ सूची


- अंबेडकर भीमराव, भारत का संविधान (संविधान सभा वाद–विवाद)।
- ऑस्टिन ग्रैनविल, इंडियन कंस्टीटूशन कॉर्नस्टोन ऑफ नेशन।
- राव सुब्बा, ऑवर कंस्टीटूशन ।
- भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय – आधिकारिक वेबसाइट।
- साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी की वार्षिक रिपोर्ट।
- शांति निकेतन और नंदलाल बोस पर प्रकाशित लेख।

20

# शिक्षा में चित्रकला का महत्व

**संतराम (विद्यार्थी)**
**मंगल दीप (शोधार्थी)**
**चित्रकला विभाग**
**राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर**

**सारांश :–**

शिक्षा केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि ये बालक के सर्वांगीण विकास का माध्यम भी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो शिक्षा का उद्देश्य बालक की भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक एवं रचनात्मक क्षमताओं का समुचित विकास करना है। चित्रकला इस उद्देश्य की पूर्ति में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल अभिव्यक्ति का सरल माध्यम है, बल्कि अवचेतन, भावनाओं, विचारों और अनुभूतियों को प्रकट करने का भी माध्यम है। चित्रकला के माध्यम से विद्यार्थी अपनी कल्पनाशक्ति, अवलोकन क्षमता और सृजनशीलता का विकास कर पाते हैं। साथ ही यह मानसिक संतुलन, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होती है।

यह शोध बच्चों, शिक्षकों तथा शिक्षा–प्रणाली पर चित्रकला के प्रभाव का विश्लेषण करता है। जिसके लिए विद्यार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों से साक्षात्कार, प्रश्नावली सर्वेक्षण द्वारा डाटा प्राप्त कर आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में चित्रकला का महत्व बहुआयामी है। यह न केवल रचनात्मकता और सौंदर्यबोध को विकसित करती है, बल्कि विद्यार्थियों के बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में भी सहायक है। आज के समय में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रखकर उसे सृजनात्मक और व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है, जिसमें चित्रकला एक प्रभावी उपकरण है।

मनोवैज्ञानिक शोध यह दर्शाते है कि चित्रकला गतिविधियां बालक के तनाव को कम करने, सीखने की रूचि बढाने तथा आत्म अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने में सहायक होती हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए भी चित्रकला एक चिकित्सात्मक साधन के रूप में कार्य करती है। इस प्रकार शिक्षा में चित्रकला का समावेश विद्यार्थियो के बौद्धिक ही नहीं बल्कि भावनात्मक और सामाजिक विकास को भी सुनिश्चित करता है। इसके द्वारा बालक में सृजनात्मक कौशल का विकास होगा जिसका उपयोग वह रोजगार उपलब्धता के लिए आसानी से कर सकता है। चित्रकला आधुनिक शिक्षा प्रणाली का अनिवार्य अंग हैं।

**मुख्य शब्द** :– सर्वांगीण विकास, रचनात्मक अभिव्यक्ति, समावेशी शिक्षा ।

## प्रस्तावना

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक गठन है। कला की शिक्षा का तात्पर्य किसी कला विशेष से नहीं होता बल्कि यह उन इन्द्रियों की शिक्षा है जिन पर हमारी चेतना वृद्धि तथा व्यक्ति की परख का गुण निर्भर करता है। मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का बाहरी दुनिया से पूर्ण सम्बंध स्थापित हो सके। शिक्षा इस कल्पना शक्ति से रचनात्मक अभिव्यक्ति को जन्म देती है। शिक्षा की सहायता से मनुष्य अपने भावों को विभिन्न इन्द्रियों द्वारा अभिव्यक्त कर सकता है। सही तरीके से व्यक्त किये गये भावों में सौंदर्य का आ जाना स्वाभाविक है। कला का उद्देश्य ऐसे व्यक्ति को संस्कारित करना है जिसकी कल्पना शक्ति व सृजनात्मक रूप को प्रेरणा मिले। कला शिक्षा से व्यक्ति में जन्मजात सृजनात्मक शक्ति के विकास का द्वार खुल जाता है। वह प्रत्येक वस्तु में छिपे सौंदर्य को उजागर कर सकता है। इसमें बिखरे हुऐ विचारों को स्वरूप मिल जायेगा। पहले जनसामान्य में कला या सृजनात्मक शक्ति को प्रेरणा देने का कार्य त्यौहारों आदि पर आयोजित मेले, नाटक, नृत्य व अन्य धार्मिक कृत्य में किया करते थे। हमारी सभी परम्परागत कलाएँ त्यौहारों व धार्मिक कृत्यों में संबंधित थी जिनमें सृजनात्मक कार्य करने का अवसर मिलता था। चित्रकला ऐसी ही एक विधा है जो बालक के अंदर छिपे हुए रचनात्मक भावों को उजागर

करती है। भारतीय परंपरा में कला और शिक्षा का घनिष्ठ संबंध रहा है। प्राचीन गुरुकुलों में भी आचार्य विद्यार्थियों को चित्र बनाना, रंगों का प्रयोग और प्रतीकों के माध्यम से विचार अभिव्यक्ति करना सिखाते थे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी चित्रकला को शिक्षा के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं, कि दृश्य आधारित अधिगम विद्यार्थी पर गहरी और स्थाई छाप छोड़ता है। "ब्रूनर (Bruner, 1966) ने अपनी पुस्तक 'टूवर्ड ए थ्योरी ऑफ इंस्ट्रक्शन' में अधिगम के तीन चरण बताए – क्रियात्मक अवस्था, प्रतिबिम्बात्मत्क अवस्था और संकेतिक अवस्था। " (म. कुमार)

**प्रतिबिम्बात्मत्क अवस्था** :– चित्रात्मक प्रतीकों के माध्यम से सीखना, सबसे प्रभावी और स्थायी माना गया। जिसमें बालक चित्र बनाकर अपने विचारों को विषय के साथ जोड़कर आसान तरीके से उस वस्तु को ग्रहण कर सकता है और वह कठिन से कठिन विषय वस्तु को सरल बनाने में सक्षम होगा, क्योंकि बच्चा प्रारंभिक काल से ही अपने विचारों को चित्रों के माध्यम से ही अभिव्यक्त करता आया है और उसकी अभिव्यक्ति का सरलतम माध्यम ही चित्र माना जाता है।

चित्रकला इसी प्रक्रिया को सुदृढ़ करने का एक प्रभावी उपकरण है। जब पाठ्यपुस्तक को चित्र, आलेख, रंगों और प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो यह न केवल विषय को स्पष्ट करती है बल्कि विद्यार्थियों की जिज्ञासा और रचनात्मक सोच को भी प्रेरित करती है। आज के समय में शिक्षा के तरीकों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है, पहले शिक्षा मौखिक और पाठ्य पुस्तकों पर आधारित थी लेकिन अब इसमें विविधता आई है। विशेष रूप से चित्रकला शिक्षा को प्रभावी और रोचक बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन बन गई है। चित्रकला के माध्यम से छात्र जटिल विषयों को सरल रूप से समझ सकते हैं। दृश्य माध्यम हमेशा स्मृति में अधिक समय तक रहते हैं। उदाहरण के लिए यदि गणित या विज्ञान के कठिन सिद्धांत को चित्रों और आरेखों के साथ जोड़कर समझाएं जाएं तो विद्यार्थी उन्हें लंबे समय तक याद रखते हैं। 'टॉल्सटॉय' के अनुसार, "कला की महत्ता का ज्ञान भावों की सफल अभिव्यक्ति और कलाकार के मन पर पड़े हुए प्रभावों का सफलतापूर्वक संप्रेषण है।" (कासलीवाल 2)

कला मात्र कौशल ही नहीं है बल्कि ये बालक के मनोभावों को अभिव्यक्त करने का सरलतम माध्यम है। जिसमें बालक संकोच रहित होकर अपने मन में उत्पन्न भावों को सरल माध्यम से अभिव्यक्त कर सकता है, इसका उपयोग वह शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक रूप में भी करता है। इसी चरण में महात्मा गांधी ने भी बुनियादी शिक्षा के द्वारा शिक्षा में कला और शिल्प का समावेश करके शिक्षा को जीवन उपयोगी आत्मनिर्भर और रचनात्मक बनाया है। गांधी जी के शब्दों में "मैं भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्त हो दृढ़ता पूर्वक मानता हूं । मैं यह भी मानता हूं कि इस लक्ष्य को पाने का सिर्फ यही एक रास्ता है कि हम बच्चों को कोई उपयोगी उद्योग सिखायें और उसके द्वारा उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शात्तियों का विकास सिद्ध करें।" (स. कुमार 122)

बुनियादी शिक्षा में बालक के सर्वांगीण विकास के लिए उसे शिक्षा के साथ–साथ कलात्मक कौशल, रचनात्मक कौशल इत्यादि में भी कुशल किया जाता है, जिससे वह बालक अपने बाल्यकाल में ही शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक शिक्षा को भी ग्रहण कर सके और भविष्य में अपने रोजगार के सृजन हेतु तत्पर रहकर कार्य कर सकें। बुनियादी शिक्षा पर चर्चा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में की गई है। जिसके अनुसार बालक के सर्वांगीण विकास में जितना शिक्षा का महत्व है, उससे कहीं अधिक बच्चे को रचनात्मक और क्रियात्मक बनाने के लिए कला का महत्व है। इसीलिए इसमें शिक्षण पद्धति व शिक्षण विधियों में कला के महत्व को जोड़ते हुए खेल–खेल में सीखें को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया गया हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कला को शिक्षण में जोड़ा जाए तो वह बालक के विकास में अधिक सहायक सिद्ध होती है, जिससे बालक अपने कलात्मक, रचनात्मक कौशल को विकसित करता है। कला को शिक्षण में शामिल करने से अध्यापक, कठिन से कठिन विषय वस्तु को सरल से सरल माध्यम से व रचनात्मक तरीके से समझा सकेगा। जिस प्रकार एक बालक अपने पसंदीदा खेल को अधिक रुचि के साथ खेलता है उसी भांति यदि बालक के कठिन विषय को भी चित्रकला के माध्यम से आसान बनाया जाए तो वह उसे अपने पसंदीदा विषय की भांति ही सीखेगा और उसके परिणाम अत्यधिक लाभकारी होंगे।

नई शिक्षा नीति के अनुसार पाठ्यचर्या में भी कला को शामिल करने के निर्देश दिए गए हैं। जिसके द्वारा विद्यालय का वातावरण कलात्मक और रचनात्मक होगा और बालक अपने समय का सदुपयोग सृजन में कर सकेगा। इसमें विशेष आवश्यकता वाले बालक भी अपनी ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से जिसमें यदि बालक बोल नहीं सकता या देख नहीं सकता तो भी वह चित्रकला के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को आसान तरीके से अभिव्यक्त कर सकता है और इसे अपने व्यावसायिक कौशल के रूप में विकसित करने में सहायक होंगे। शिक्षा में चित्रकला का योगदान एक अतुलनीय है क्योंकि बालक अपने शैशवकाल से ही शारीरिक क्रियाओं के द्वारा ही सिखता आया है और मनोवैज्ञानिकों ने भी इसकी पुष्टि की है कि बालक यदि अपनी इंद्रियों का प्रयोग सीखने में करता है तो वह अत्यधिक सक्रिय रहकर सीख सकेगा और लंबे समय तक उसे याद रहता है।

## रचनात्मकता अभिव्यक्ति

सृजन से तात्पर्य है रचना या निर्माण करना। ईश्वर ने मनुष्य का सृजन किया और उसे अपनी सृजन शक्ति प्रदान की। मनुष्य के सर्जन भी मनुष्य की अनंत शक्ति के समान ही अनगिनत है । इस देश के उपनिषद और भागवत पुराण, कादंबरी और पंचतंत्र  अनुपम कृति कालिदास जैसे महान लेखक इसी भांति विदेश में शेक्सपियर का रोमियो जूलियट इत्यादि महत्वपूर्ण काव्य कृतियां हैं। ये सब मनुष्य के हृदय से प्रकट हुए सृजन है। साहित्य एक सर्जन है, चित्रकला दूसरा सर्जन है। मनुष्य को विभिन्न प्रकार की सृजनशीलता प्राप्त है जिसका उपयोग वह अपने मनोभावों को सरलतम रूप में अभिव्यक्त करने में करता है। लिओनार्दो दा विंची की अनुपम कृति मोनालिसा पूरे विश्व की सुप्रसिद्ध कृति मानी जाती है।

किसी भी कलाकृति का निर्माण यूं ही नहीं होता उसके बनने के पीछे कलाकार के अनेक भाव, मन की तरंगों का उतार–चढ़ाव होता है।  जिसे वह अपनी कृति में उतारता है। कल्पना वह मानसिक क्रिया है, जिसके द्वारा हमें किसी संपूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्ष बोध,  एक ही साथ एक साकार अथवा मूर्तिमान रूप में होता है और इसी के आधार पर कलाकार अपनी नवीन सृजन को रूप प्रदान करता है। इसीलिए 'कल्पना' को कलाकार की सृजनात्मक शक्ति मानी जा सकती है। यदि कोई बालक अपने चित्र में सूर्य का मुस्कुराता रूप और  फूलों का खिलना इत्यादि खुशनुमा चित्र बना रहा है तो वह मात्र केवल एक चित्र ही नहीं बल्कि उस बालक के उन भावों की अभिव्यक्ति है जो वह बोल कर अभिव्यक्त नहीं कर सकता। कलाकृति आत्माभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम है। आत्माभिव्यक्ति अर्थांत हृदय की बेचैनी की अभिव्यक्ति, एक स्वस्थ व मानसिक बैचेनी की पूर्ति है और इस प्रकार की 'आत्माभिव्यक्ति' द्वारा कलाकार अपनी मानसिक वेदना से मुक्ति पाता है, वह तनाव मुक्त हो जाता है। अतः कलाकृति मानव मस्तिष्क की वह सृजन प्रक्रिया है, जहां वह अपने अनुभवों को निश्चित कला–तत्वों एवं सौंदर्य सिद्धांतों के आधार पर अभिव्यक्त करता है।

मनुष्य ने आनन्द की प्राप्ति और ज्ञान के लिए जितने उपायों का विकास किया है, उनमें भाषा का विशेष स्थान है। साहित्य, दर्शन, विज्ञान और प्रकृति के विभिन्न विषयों की चर्चा भाषा को माध्यम बनाकर ही की जाती है। साहित्य मनुष्य को आनन्द देता है, पर उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित होता है। उसके उस अभाव की पूर्ति ललित कलाएँ करती हैं – नृत्य, संगीत एवं दूसरी कलाएँ। जैसे भाषा की अभिव्यक्ति की अपनी विशिष्टता है, वैसे ही नृत्य, संगीत एवं ललित कलाओं की भी। मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा बाह्यजगत की समस्त वस्तुओं का स्थूल ज्ञान एवं उनके प्रति रसानुभूति का अनुभव करता है और उसे ही कला के माध्यम से दूसरों के सामने प्रस्तुत करता है। बालक जिन बातों को बोल कर अभिव्यक्त नहीं कर सकता उन भावों को भी सरल रूप में चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में कला की चर्चा के कारण मनुष्य की अवधारणा एवं रसानुभूति, दोनों उत्कर्ष को प्राप्त करती हैं और उसे कलात्मक अभिव्यक्ति पर अधिकार प्राप्त होता है। जिस प्रकार आँख का काम कान द्वारा नहीं हो सकता, उसी प्रकार चित्रकला, संगीत या नृत्य की शिक्षा केवल लिखने–पढ़ने से नहीं हो सकती। उसका भौतिक रूप से समझना होगा और बालकों को रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित करना होगा।

## सर्वांगीण विकास

यदि हमारी शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास है तो हमारे पाठ्यक्रम में कला का स्थान भी अन्य विषयों के समान होना चाहिए, क्योंकि कला के बिना अन्य किसी विषय का अध्ययन सम्भव नहीं है। कला समस्त विषयों का आधार है। इसलिए एक बालक को कला से पृथक नहीं रख सकते। कला शिक्षण का उद्देश्य कलाकार का निर्माण नहीं बल्कि कलाबोध और कलात्मक व्यवहार को विकसित करना है। इसके लिए अलग से कला विषय की जरूरत नहीं है बल्कि हर विषय के शिक्षण में, शाला की साज–सज्जा में, और दैनिक व वार्षिक गतिविधियों में कलात्मकता को समाहित करना अधिक उपयोगी है। हमारे देश में विद्यालयों की ओर से अब तक जो व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त है। इसका एक कारण सम्भवतः यह है कि हमारे यहाँ अनेक लोगों की मान्यता है कि कला–साधना मात्र पेशेवर कलाकारों का काम है, साधारण आदमी को उससे कुछ लेना–देना नहीं है। इसी वजह से लोग इसमें रूचि कम लेते हैं। कला केवल कलाकारों तक सीमित नहीं है बल्कि ये तो हर एक मनुष्य के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। "प्लेटो का मत था कि, "बच्चों की सौंदर्य भावना को विकसित करने के लिए उन्हें प्राकृतिक ढंग से शिक्षा दी जानी चाहिए।" अतः कला शिक्षा को रंग और तूलिका की सीमाओं में ना बांधकर, बल्कि कला में सृजनात्मक प्रवृत्तियां तथा मौलिक चिंतन की प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के तत्व अधिक क्रियाशील और महत्वपूर्ण होने चाहिए, क्योंकि इन्हीं से संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास संभव है। इसीलिए प्रत्येक कलाकार में सृजनात्मकता जागृत करना तथा सृजनात्मक प्रवृत्तियों के द्वारा सौंदर्य अनुभूति करना अधिक महत्वपूर्ण बात है।" (कासलीवाल 55)

एक कलाकार के लिए सृजनात्मकता एक वह शक्ति है जिसके विकास से शारीरिक, मानसिक और ज्ञानेंद्रियों का विकास होता है। इसी के द्वारा कलाकार के आंतरिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति हो सकती है, क्योंकि किसी भी कला को देखते समय उसमें जो अनुभव होता है वह एक कलाकार की सौंदर्य भावना का ही एक प्रतिरूप है, जिसमें उसकी अभिव्यक्ति का सौंदर्य पक्ष और आत्मिक पक्ष निष्ठा पूर्ण प्रदर्शित होता है। जिस प्रकार रविन्द्र नाथ टैगोर ने कहा है कि सत्यम, शिवम ,सुंदरम। अर्थात जो सत्य है वहीं सुन्दर है और वही कला है।

**समावेशी शिक्षा**

समावेशी शिक्षा एक ऐसी शिक्षा होती है, जिसमें सामान्य बालक–बालिकाएं और मानसिक तथा शारीरिक रूप से बाधित बालक एवं बालिकाओं सभी एक साथ बैठकर एक ही विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते हैं। समावेशी शिक्षा सभी नागरिकों में समानता के अधिकार की बात करती है। ऐसे संस्थानों में विशिष्ट बालकों के अनुरूप प्रभावशाली वातावरण तैयार किया जाता है और नियमों में कुछ छूट भी दी जाती है, जिसमें विशिष्ट बालकों को समावेशी शिक्षा के द्वारा सामान्य विद्यालयों में सामान्य बालकों के साथ कुछ अधिक सहायता देकर शिक्षा प्रदान की जाती है। "स्टीफन तथा ब्लैकहर्ट के अनुसार– शिक्षा की मुख्य धारा का अर्थ बाधित (पूर्ण रूप से अपंग नहीं) बालकों की सामान्य कक्षाओं में शिक्षण व्यवस्था करना है। यह समान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यक्तिगत योजना के द्वारा उपयुक्त सामाजिक मानकीयकरण और अधिगम को बढ़ावा देती है।" (Hindikeguru)

यदि बच्चों के पास कला की कुछ सामान्य, दुर्गम सामग्री उपलब्ध न हो, तो ऐसे सरल तरीके अपनाएँ जिनसे उन्हें कला का अन्वेषण करने में मदद मिल सके। उदाहरण के लिए, कौन कहता है कि पेंटिंग करने के लिए पेंटब्रश की जरूरत होती है? एक बच्चा बिना ज्यादा मेहनत या पकड़ के खिलौना कार को धकेल सकता है या पेंटब्रश के विकल्प के रूप में स्पंज या हाथों का इस्तेमाल कर सकता है। जिन बच्चों को पारंपरिक पेंटब्रश पकड़ने में दिक्कत होती है, उनके लिए कई तरह के अनुकूल और आसानी से पकड़ में आने वाले ब्रश भी उपलब्ध हैं। "क्रिएटिविटी सिर्फ शारीरिक या सोचने–समझने की काबिलियत तक ही सीमित नहीं है और कला को जाहिर करना एक ऐसी यूनिवर्सल भाषा है जो सभी मुश्किलों से परे है।" (Kumar 11)

कलाएँ आत्म–अभिव्यक्ति का एक माध्यम हैं और यही बात विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए उन्हें बेहद महत्वपूर्ण बनाती है। लेकिन हम सिर्फ रचनात्मक आत्म–अभिव्यक्ति की बात नहीं कर रहे हैं। सुलभ कला संचार, सामाजिकता और यहाँ तक कि शारीरिक गतिशीलता जैसे महत्वपूर्ण जीवन कौशल भी विकसित करती है। दृष्टिबाधित और बहुविध विकलांगताओं वाले बच्चों की शिक्षा में कलाएँ बहुत बड़ी

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

भूमिका निभाती हैं। चाहे संगीत हो, चित्रकारी हो, पेंटिंग हो या कुछ और, ये बच्चों को खुद को अभिव्यक्त करने, सामाजिक और संचार कौशल विकसित करने और अपने साथियों के साथ जुड़ाव बनाने में मदद करती हैं। कलाओं का अक्सर महत्वपूर्ण नैदानिक और चिकित्सीय कार्यों में उपयोग किया जाता है, इसलिए कलाओं को सभी रूपों में अपनाना जरूरी है! लेकिन क्या आप जानते हैं कि हमें कलाओं में सबसे ज्यादा क्या पसंद है? विकलांग बच्चों के लिए कला को सुलभ बनाने के लिए आपको पेशेवर कलाकार होने की जरूरत नहीं है। दरअसल, सभी बेहतरीन कलाओं की तरह, इसे सुलभ बनाने के लिए परिवारों और शिक्षकों की थोड़ी रचनात्मकता की आवश्यकता होती है।

## निष्कर्ष

शिक्षा में चित्रकला का समावेश विद्यार्थियो के बौद्धिक ही नहीं बल्कि भावनात्मक और सामाजिक विकास को भी सुनिश्चित करता है। इसके द्वारा बालक में सृजनात्मक कौशल का विकास होगा जिसका उपयोग वह रोजगार उपलब्धता के लिए आसानी से कर सकता है।

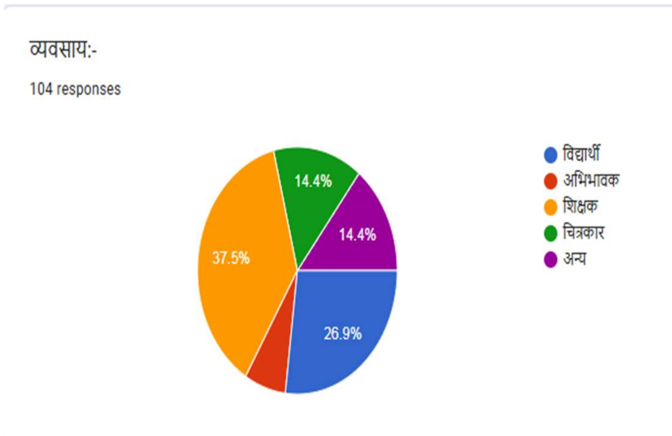


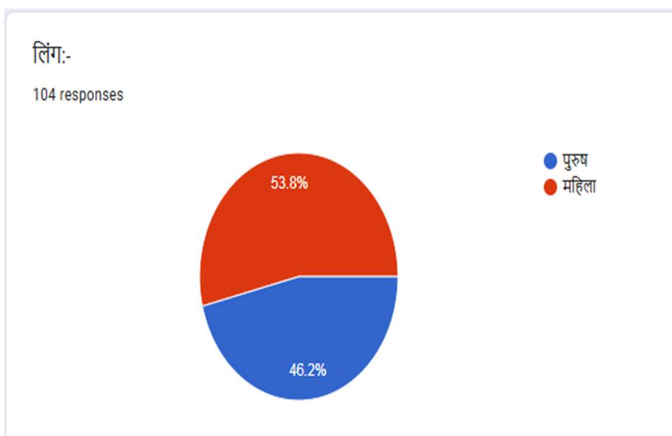


इस पाई चार्ट में शिक्षा में चित्रकला के महत्व संबंधी सर्वेक्षण के 104 प्रतिभागियों से 53.8ः महिला और 46.2ः पुरुष हैं, अतः उत्तरदाताओं की व्यावसायिक श्रेणियों का वितरण दर्शाया गया है। सर्वे में पाँच श्रेणियाँ शामिल हैं! विद्यार्थी, अभिभावक, शिक्षक, चित्रकार और अन्य। सबसे अधिक उत्तरदाता 'शिक्षक' श्रेणी से हैं, जिनकी संख्या 37.5ः है। यह दर्शाता है कि शिक्षकों का इस विषय में विशेष अभिरुचि और भागीदारी रही है। 'विद्यार्थी' श्रेणी में 26.9ः प्रतिभागी शामिल हैं, जो दर्शाता है कि छात्रों की भी पर्याप्त भागीदारी रही। 'अभिभावक' श्रेणी के उत्तरदाताओं की प्रतिशतता 6.8ः है। 'चित्रकार' श्रेणी भी 14.4ः के साथ सम्मिलित है, यह स्पष्ट करता है कि पेशेवर कला से जुड़े लोगों ने भी अपना मत दिया। 'अन्य' श्रेणी में उत्तरदाताओं की संख्या भी 14.4ः है। इस चार्ट से स्पष्ट है कि चित्रकला के महत्व पर विचार

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

हेतु सर्वे में सर्वाधिक शिक्षकों ने भाग लिया, उसके बाद विद्यार्थी, फिर अभिभावक, चित्रकार और अन्य श्रेणी के लोगों ने अपनी सहभागिता दर्ज की। यह विविधता दर्शाती है कि शिक्षा में चित्रकला के महत्व को लेकर समाज के विभिन्न वर्गों में रूचि है।

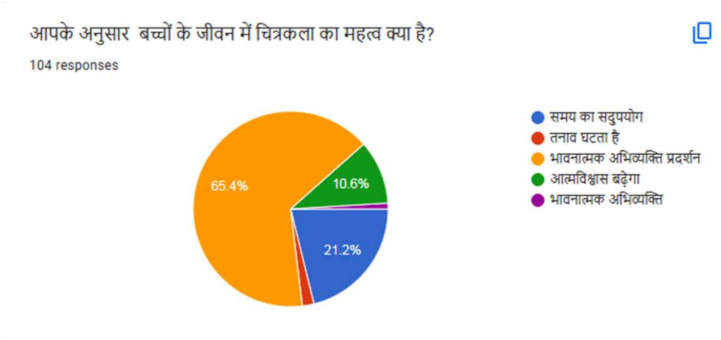


इस पाई चार्ट में शिक्षा में चित्रकला के महत्व पर आधारित 104 प्रतिभागियों की राय का आंकिक वितरण दर्शाया गया है। प्रश्न "आपके अनुसार बच्चों के जीवन में चित्रकला का महत्व क्या है?" के उत्तर में सर्वाधिक प्रतिभागी 65.4ः ने मान्यता दी कि बच्चों के जीवन में चित्रकला का प्रमुख महत्व 'भावनात्मक अभिव्यक्ति प्रदर्शन' है। यह इंगित करता है कि अधिकांश उत्तरदाता मानते हैं कि चित्रकला बच्चों की भावनाओं और अंतःस्थ भावों को व्यक्त करने का मुख्य माध्यम है। दूसरा बड़ा वर्ग 21.2ः ने 'समय का सदुपयोग' को चित्रकला का महत्व बताया, जिससे पता चलता है कि ये लोग चित्रकला को बच्चों के समय प्रबंधन, रचनात्मकता तथा सृजनशीलता के विकास के लिए उपयुक्त मानते हैं। 10.6ः ने 'आत्मविश्वास बढ़ाना' को प्रमुख महत्व माना, जो बताता है कि चित्रकला द्वारा बच्चों का आत्मविश्वास भी बढ़ता है। 'तनाव घटता है' विकल्प को बहुत कम लोगों ने चुना, जिससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश प्रतिभागी चित्रकला को मनोरंजन की बजाय भावनाओं की अभिव्यक्ति और आत्म–विकास का माध्यम मानते हैं। इस चार्ट के अनुसार, बच्चों के जीवन में चित्रकला भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है, उसके बाद समय प्रबंधन तथा आत्मविश्वास वृद्धि के रूप में। यह सर्वेक्षण स्पष्ट करता है कि चित्रकला केवल एक रचनात्मक गतिविधि नहीं, बल्कि बच्चों के समग्र व्यक्तिगत विकास और मानसिक भावनाओं की समझ को भी विस्तार देती है।

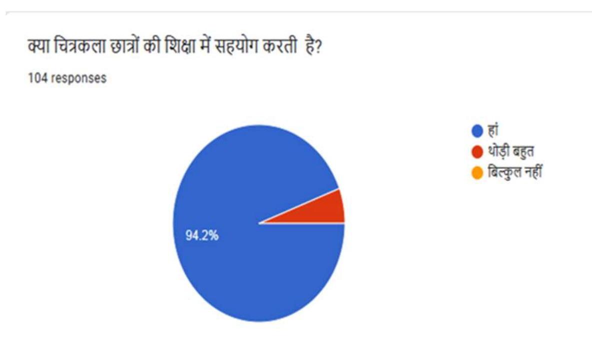

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

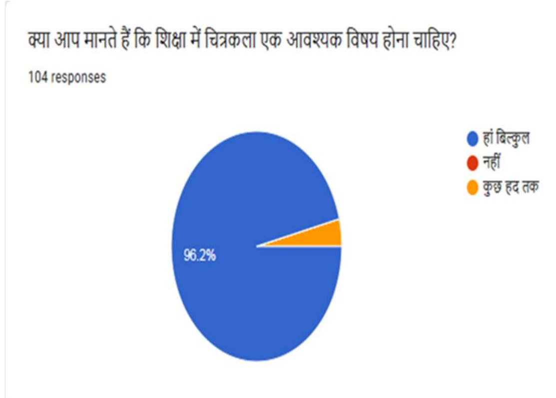


इस पाई चार्ट में शिक्षा में चित्रकला के महत्व विषयक सर्वेक्षण के अंतर्गत 104 प्रतिभागियों से पूछा गया कि क्या चित्रकला छात्रों की शिक्षा में सहयोग करती है। 94.2: प्रतिभागियों ने 'हाँ' विकल्प को चुना, जिससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश लोगों के अनुसार चित्रकला शिक्षा में छात्रों के लिए सहयोगी है। बहुत कम प्रतिभागियों ने 'थोड़ी बहुत' विकल्प को चुना (चार्ट में दिखाए गए छोटे लाल हिस्से के अनुसार)। 'बिल्कुल नहीं' विकल्प को किसी भी उत्तरदाता ने नहीं चुना है। इस चार्ट से स्पष्ट है कि लगभग सभी प्रतिभागी मानते हैं कि चित्रकला छात्रों की शिक्षा में अत्यधिक सहायक है। यह सर्वेक्षण दर्शाता है कि शिक्षा में चित्रकला को आवश्यक और लाभदायक माना जाता है, और समाज के अधिकांश वर्ग इस मत को समर्थन देते हैं।

दूसरे पाई चार्ट में "क्या आप मानते हैं कि शिक्षा में चित्रकला एक आवश्यक विषय होना चाहिए?" सर्वेक्षण के अंतर्गत कुल 104 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इसका उद्देश्य यह जानना था कि लोग शिक्षा में चित्रकला (Art Education) की आवश्यकता के बारे में क्या सोचते हैं। 96.2: प्रतिभागियों ने उत्तर दिया कि "हाँ, बिल्कुल" यानी वे मानते हैं कि शिक्षा में चित्रकला एक आवश्यक विषय होना चाहिए। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अधिकांश लोग कला को शिक्षा का अभिन्न अंग मानते हैं। लगभग 3.8: प्रतिभागियों ने उत्तर दिया "कुछ हद तक", जिससे पता चलता है कि कुछ लोगों का विचार है कि चित्रकला महत्वपूर्ण तो है, पर इसे सीमित रूप से या वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जा सकता है। "नहीं" विकल्प को किसी ने नहीं चुना, जिसका अर्थ है कि किसी भी प्रतिभागी ने चित्रकला को शिक्षा से अप्रासंगिक नहीं माना।

यह परिणाम इस बात को दृढ़ता से स्थापित करता है कि समाज में चित्रकला को केवल मनोरंजन या शौक के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि यह व्यक्तित्व विकास, रचनात्मकता, और भावनात्मक संतुलन का एक अनिवार्य शैक्षिक उपकरण माना जा रहा है। इस सर्वे से यह भी स्पष्ट होता है कि शिक्षार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों के बीच कला आधारित शिक्षा (Art Integrated Learning) की स्वीकृति बढ़ रही है। सर्वेक्षण के अनुसार, शिक्षा में चित्रकला का महत्व सर्वसम्मत रूप से स्वीकार्य है। लोगों का सकारात्मक दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि भविष्य की शिक्षा नीतियों में चित्रकला और रचनात्मक शिक्षण को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


- Hindikeguru. 25 फरवरी 2025. 28 सितम्बर 2025 <https://hindikeguru.com/2025/02/samaveshi-shiksha/>.
- Kumar, Suraj. "Inclusive Arts Education: Fostering Creativity and Expression for All." Global International Research Thoughts 9.1 (2021): 11.
- कासलीवाल, मीनाक्षी. ललित कला के आधारभूत सिद्धांत. 5. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2016.

- कुमार, सुनील. "आधुनिक भारतीय समाज में बुनियादी शिक्षा की उपादेयता एवं निष्कर्ष." International Research Journal Of Management Sociology And Humanities 5.3 (2014): 122.
- महेन्द्र कुमार. Pratiyogita Today. 2 जनवरी 2024. 30 सितंबर 2025 <https://www-pratiyogitatoday-com/2019/09/bruner&theory-html>.

# 21

# लघुचित्र कला की साहित्यिक परंपरा में समकालीन आयाम : वीरेन्द्र बन्नू के चित्रांकन का विश्लेषण

**शेरिल गुप्ता**
शोध छात्रा,
चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान,
Email Id: sherilgupta03@gmail.com
एवं
**प्रो. आई.यू.खान**
शोध निर्देशक,
चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

**शोध सारांश** : पारंपरिक लघुचित्र कला भारतीय साहित्य और सांस्कृतिक कथानकों की एक विशिष्ट दृश्य अभिव्यक्ति रही है। इसमें साहित्यिक ग्रंथों की कथाएँ, भावनात्मक स्थितियाँ ही प्रतीकात्मक रूपक, कलात्मक रेखाओं एवं रंगों के माध्यम से मूर्त रूप लेते हैं। यह कला केवल दृश्य सौंदर्य का साधन नहीं रही, बल्कि भारतीय समाज की दार्शनिक दृष्टि, नैतिक मूल्य और सांस्कृतिक बोध की गहन व्याख्या भी करती रही है। वीरेन्द्र बन्नू जी की कृतियाँ इसी परंपरा की संवाहक होते हुए भी समकालीन जीवन के विविध संदर्भों, सामाजिक यथार्थ और तकनीकी नवाचारों से जुड़कर इसे आधुनिक समय के अनुकूल नया आयाम प्रदान करती हैं। उनके चित्रों में साहित्यिक कथाओं का शास्त्रीय आधार सुरक्षित रहता है, किन्तु साथ ही वे आधुनिक संवेदनाओं को प्रतिबिंबित करते हुए आज के दर्शक के लिए भी प्रासंगिक बन जाते हैं। इस शोध में वीरेन्द्र बन्नू की लघुचित्र कला का अध्ययन विविध विशेषताओं तथा समसामयिक तत्वों के आधार पर किया गया है। विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि वे पारंपरिक रेखांकन और रंग–संयोजन की तकनीकों को जीवित रखते हुए उनमें आधुनिक दृष्टिकोण, दृश्यात्मक प्रयोग तथा भावनात्मक गहराई जोड़ते हैं। उनके चित्र केवल दृश्य आनंद का साधन नहीं रह जाते, बल्कि साहित्यिक कथा और भाव द्वारा मनोवैज्ञानिक संवाद के मध्य एक सेतु बनते हैं। इस प्रकार चित्रकार वीरेन्द्र बन्नू की कला परंपरा और आधुनिकता का संतुलित मिश्रण प्रस्तुत करती है, जहाँ दर्शक कथा, संस्कृति और सौंदर्यशास्त्र के साथ ही समसामयिक बहुआयामी अनुभव से भी जुड़ता है। परिणामस्वरूप यह ज्ञात होता है कि समकालीन लघुचित्र मात्र सजावटी कला तक सीमित नहीं, बल्कि वे साहित्यिक परंपरा के संरक्षण और नवोन्मेष का संयुक्त रूप हैं, जो भारतीय लघुचित्र कला की निरंतरता और परिवर्तन दोनों को सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं।

**बीज शब्द** : भारतीय कला, लघुचित्र परंपरा, राजस्थानी चित्रकला, साहित्यिक अभिव्यक्ति, समकालीन तत्व, नवाचार, आधुनिक दृष्टिकोण।

**शोध उद्देश्य** : इस शोध का मुख्य उद्देश्य लघुचित्र कला की साहित्यिक परंपरा में निहित विशेषताओं का अध्ययन करना और वीरेन्द्र बन्नू की कृतियों में प्रकट समकालीन आयामों का विश्लेषण करना है। विशेष रूप से, यह स्पष्ट करना कि कैसे लघुचित्र कला साहित्यिक संवाद का आधुनिक माध्यम बनती है तथा कला परिप्रेक्ष्य में वीरेन्द्र बन्नू की रचनात्मकता की समकालीन प्रासंगिकता को स्थापित करना।

**शोध प्रविधि** : इस शोध पत्र में गुणात्मक, मौलिक, वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण की पद्धति को अपनाया गया है, जिससे वीरेन्द्र बन्नू के चित्रांकन में परंपरा और समकालीन आयामों का गहन अध्ययन संभव हो सके। इसके अतिरिक्त, शोध की विश्वसनीयता और गहराई बढ़ाने हेतु साक्षात्कार विधि का भी प्रयोग किया गया है।

**मूल आलेख** : भारतीय चित्रकला परंपरा में लघुचित्र एक ऐसी विधा रही है, जिसने साहित्य, संस्कृति, भक्ति और सौंदर्यबोध को एक सूत्र में बांधा है। यह विधा आज भी जीवित है, अभी भी सांसें ले रही है और इसका श्रेय उन समर्पित कलाकारों को जाता है जिन्होंने न केवल इसकी जड़ों को संभाले रखा है, बल्कि आधुनिक समय की जरूरतों और संवेदनाओं के अनुसार इसे पुनः रचने का साहस भी दिखाया है। ऐसे ही एक कलाकार हैं जयपुर के प्रसिद्ध चित्रकार वीरेन्द्र बन्नू, जिन्होंने साहित्यिक विषयों और काव्यों को आधुनिक दृष्टिकोण से लघुचित्रों में रूपांतरित किया है। राजस्थानी समकालीन चित्रकार वीरेन्द्र बन्नू भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा के सातवीं पीढ़ी के प्रतिनिधि कलाकार हैं, जिन्होंने इस कला को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया है। उनका जीवन और कार्य भारतीय लघुचित्र कला की गहराई और विविधता को दर्शाता है। अतएव निश्चित ही कहा जा सकता है कि साहित्यिक कथानक परंपरा तथा काव्य में रसों की विविधता और बिंबों की संपन्नता है, जिन शब्दों को बन्नू जी ने दृश्य में रूपांतरित करने का जो कार्य किया है, वह अत्यंत दुर्लभ है। उनके चित्रों में ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कविता ने ही आकार ले लिया हो। भावों की तरलता, रंगों की लय और संरचना की बारीकी, सब मिलकर एक काव्यात्मक चित्र रचते हैं। यह अध्ययन बन्नू जी के साहित्यिक लघुचित्रों में आधुनिक परिप्रेक्ष्य की उपस्थिति, उसकी विशेषताएँ, परंपरा और नवाचार के समन्वय, तथा उनके लघुचित्रों की समकालीन सांस्कृतिक उपयोगिता का कलात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। [1]

**लघुचित्र कला की वैचारिक पृष्ठभूमि** : भारतवर्ष के साहित्यिक विचार, धर्म, तत्त्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण ही भारतीय कला है। यह केवल सौंदर्याभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बल्कि उन आदर्शों का मूर्त रूप है जो किसी भी युग, स्थान, शैली अथवा प्रविधि के साथ सभ्यता और संस्कृति को आगे बढ़ाते हैं। मानवीय संवेदनाओं और अनुभवों को वर्णों व रेखाओं के माध्यम से सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए लघुचित्र कला एक महत्वपूर्ण साधन रही है। भारतीय लघुचित्र कला की शुरुआत ताड़पत्रों पर चित्रित धार्मिक ग्रंथों से हुई, इसके पश्चात् यह कागज पर भी बनने लगे। लगभग 9वीं से 12वीं शताब्दी के मध्य ही पाल शैली में प्रज्ञापारमिता ग्रंथ के दृष्टांत चित्र लघुचित्र कला के प्राचीनतम उदाहरण हैं।[2] इन लघुचित्रों का आकार भले ही बड़ा हो, किंतु उसमें चित्रकारी अत्यंत लघु होती है, जिस कारण इनमें निहित सौंदर्य उन्हें, प्रतीकात्मकता, कथात्मकता और अद्वितीय बनातें है। यह साहित्यिक लघुचित्र तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझने का एक महत्वपूर्ण साधन भी रहे।[3] क्योंकि इस परंपरा का एक प्रमुख आयाम यह था कि लघुचित्र केवल दृश्य संरचना नहीं थे, बल्कि वे साहित्यिक कथाओं के मूर्त रूप भी थे। बिहारी सतसई व गीतगोविंद के श्रृंगारिक प्रसंग, रसिकप्रिया के प्रेम प्रसंग, भागवत पुराण के कृष्ण लीला प्रसंग और रामचरितमानस की कथा आदि, इन ग्रंथों ने लघुचित्रण परंपरा को जीवंत कथात्मकता दी।[4] इस प्रकार लघुचित्रों के माध्यम से साहित्य और चित्रकला के बीच निरंतर संवाद देखने को मिलता है, क्योंकि लघुचित्रकला ही भारतीय साहित्य की 'दृश्यभाषा' कही जा सकती है। समय के साथ यह परंपरा राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों में अपने उत्कर्ष पर पहुँची। कला–प्रेमी राजाओं और संरक्षकों के संरक्षण में इसने कला–जगत में नई पहचान बनाई। यही साहित्यिक और कलात्मक संवाद आगे चलकर आधुनिक कलाकारों के लिए प्रेरणा बने।[5] इन्हीं से प्रभावित होकर सुप्रसिद्ध राजस्थानी लघुचित्रकार वीरेन्द्र बन्नू आज परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य कर रहे हैं। वे न केवल लघुचित्रों में साहित्यिक परंपरा को जीवित रखते हैं, बल्कि उसमें समकालीन समाज, विचार और संवेदनाओं को भी जोड़ते हैं।

यूँ तो भारतीय लघुचित्र परंपरा विश्व की सबसे समृद्ध एवं विस्तृत चित्र परंपराओं में से एक है, जिसमें साहित्य और चित्रकला का अभूतपूर्व समन्वय मिलता है। विशेषतः श्रृंगार के संयोग और वियोग से उत्पन्न साहित्यिक काव्य रचनाएँ जब लघुचित्रों के माध्यम से दृश्य रूप में प्रकट होती हैं, तब वे कलात्मकता की चरम सीमा को छूती हैं। इसी परंपरा की एक अनुपम कड़ी नायिका–भेद की परिकल्पना है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नायिका के विविध प्रकारों का उल्लेख किया, जिन्हें आगे आचार्यों, कवियों और साहित्यकारों ने और अधिक समृद्ध किया।[6] कालांतर में संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी साहित्य ने वासकसज्जा, विरहिणी, अभिसारिका, खण्डिता, स्वाधीनपतिका एवं चित्रिणी जैसी नायिकाओं के भावों

का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया। साहित्य में वर्णित इन नायिकाओं की भाव–भंगिमा, अलंकरण, शृंगारिक मनोदशा और सौंदर्यपूर्ण मुद्रा भारतीय कला के लिए एक प्रमुख प्रेरणा स्रोत बनी। [7]

इन्हीं नायिकाओं की भावमय छवियों को समकालीन परिप्रेक्ष्य में दृश्यात्मक रूप देने का कार्य जयपुर के सुप्रसिद्ध समकालीन लघुचित्रकार श्रीमान् वीरेन्द्र बन्नू ने किया है। उन्होंने वासकसज्जा नायिका जैसे विशिष्ट भेदों का न केवल चित्रांकन किया, बल्कि साहित्यिक भावों को रेखा, रंग और सुनियोजित संयोजन सिद्धान्त के माध्यम से सजीव रूप में प्रस्तुत कर परंपरा को आधुनिक आयाम भी प्रदान किया। बन्नू जी की चित्र शृंखला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने एक पारंपरिक साहित्यिक ग्रंथ को समकालीन दृष्टिकोण से पुनः चित्रित किया है। इस कार्य में उन्होंने यह दिखाया कि कैसे एक प्राचीन रचना आज के दर्शक को भी उतनी ही गहराई से स्पर्श कर सकती है।

**प्रारम्भिक जीवन और पारिवारिक पृष्ठभूमि** : वीरेन्द्र बन्नू जी का जन्म 25 जनवरी 1964 को जयपुर, राजस्थान में हुआ था। वह एक ऐसे परिवार में जन्मे जहाँ कला का वातावरण पीढ़ियों से संजोया गया था। बन्नू जी जयपुर की प्रसिद्ध 'मुसव्विरों की गली' में निवास करते हैं। उनके पिता, प्रसिद्ध लघु चित्रकार वेदपाल शर्मा बन्नूजी इस परंपरा के छठी पीढ़ी के कलाकार थे, इन्होंने न केवल लघु चित्रकला को संरक्षित किया, बल्कि उसे एक नई ऊँचाई तक पहुँचाया। बन्नू परिवार की कला परंपरा लगभग 150 वर्षों से चली आ रही है। वीरेन्द्र बन्नू जी ने चित्रकला विषय में राजस्थान विश्वविद्यालय से शिक्षा भी प्राप्त की, वर्तमान में बन्नू जी भारत की समृद्ध लघु चित्रकला परंपरा के एक प्रमुख वाहक हैं, जिन्होंने न केवल पारंपरिक शैली को जीवित रखा बल्कि उसमें अपनी विशिष्ट पहचान भी बनाई। उनकी चित्र शैली भारतीय कला जगत के लिए प्रेरणा का स्रोत है, जहाँ परंपरा और आधुनिकता का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। इस प्रकार उन्होंने पारंपरिक राजस्थानी लघु चित्रकला को वैश्विक पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। [8]

उनकी एक खासियत यह रही कि उनके द्वारा निर्मित लघुचित्रों में आधुनिक प्रतीकों और सूक्ष्म विवरणों का प्रयोग इतनी कुशलता से किया कि दर्शक उसमें हर बार नए अर्थ खोज पाता है, जिससे इतिहास के पन्ने जीवंत हो जाते हैं। जहाँ पारंपरिक चित्रकारों ने लघुचित्रों की व्याख्या रीति–परंपरा के भीतर की, वहीं वीरेन्द्र बन्नू ने साहित्यिक काव्य और विचारों के दृश्यात्मक पक्ष को समकालीन दृष्टि से पुनः परिभाषित किया। उनके चित्रों में भाव वहीं है, पर उनकी अभिव्यक्ति में आधुनिकता का समावेश दिखाई देता है। वीरेन्द्र बन्नू जी द्वारा चित्रांकित लघुचित्र 'समकालीन भारतीय लघुचित्र कला' की दिशा में एक सशक्त हस्तक्षेप रखते हैं। इनमें न केवल भारतीय काव्य परंपरा का सौंदर्य समाहित है, बल्कि समकालीन विचारधारा, स्त्री दृष्टिकोण, मनोवैज्ञानिक गहराई और तकनीकी नवीनता का समन्वय भी मिलता है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में देखें तो बन्नू जी के चित्र यह दर्शाते हैं कि भारतीय परंपराएँ जड़ नहीं हैं, वे गतिशील हैं, जो समय के साथ बदलती हैं और पुनः नये रूप में जन्म लेती हैं। अतएव उन्होंने इन लघुचित्रों को केवल पुनर्रचित नहीं किया, बल्कि उसे एक नवीन आयाम दिया है, जिसमें एक ऐसा दृष्टिकोण था, जो समकालीन दर्शक के भीतर भी अनुभूति की लहर जगा सकें। [9]

हालाँकि वीरेन्द्र बन्नू जी जयपुर लघुचित्र परंपरा के प्रतिनिधि समकालीन चित्रकार हैं, जिन्होंने पारंपरिक राजस्थानी चित्रकला को आधुनिक दृष्टिकोण से सजाया, सँवारा और समकालीन कलाजगत में पुनः प्रतिष्ठित किया। वे न केवल रंगों और रेखाओं के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं, बल्कि लघुचित्रों में साहित्यिक संवेदना और भावप्रवणता को भी अनूठे ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। उनका कार्य विशुद्ध शास्त्रीय परंपरा में प्रशिक्षित होते हुए भी व्यक्तिगत शैली और नवीन दृष्टिकोण से युक्त है। उनके द्वारा चित्रांकित लघुचित्र इस बात का प्रमाण है कि कैसे परंपरा और नवाचार एक साथ चल सकते हैं। बन्नू जी के चित्र न केवल परंपरा का पुनरुद्धार हैं, अपितु वे यह भी सिद्ध करते हैं कि लघुचित्र शैली आज भी जीवंत है। उन्होंने पारंपरिक विधाओं को आधुनिक कला बाजार और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर पुनः प्रतिष्ठित किया है। उनके चित्र संग्रहालयों, कला दीर्घाओं और अंतर्राष्ट्रीय नीलामियों में स्थान प्राप्त कर चुके हैं। [10]

**1. परंपरा से आधुनिकता की ओर प्रतीकात्मकता** : समय के प्रवाह के साथ समाज, संस्कृति और उसकी जीवनशैली निरंतर परिवर्तित होती रही है। साहित्यिक परंपरा अनुसार जहाँ संवाद का माध्यम पत्र, दूत

या कबूतर जैसे प्रतीकात्मक पक्षी हुआ करता था, वहीं समकालीन युग में उसका स्थान मोबाइल फोन, वीडियो कॉल और सोशल मीडिया जैसे साधनों ने ले लिया है। इसी प्रकार, जहाँ शास्त्रीय नायिका वीणा, सारंगी या पखावज जैसे वाद्ययंत्रों से संगीत की अभिव्यक्ति करती थी, आज की नायिका गिटार, वायलिन अथवा अन्य आधुनिक संगीत वाद्यों के माध्यम से अपने भाव प्रकट करती है। इसी क्रम में पहले नायिका वन में रात्रि के अंधेरे में नायक का इंतजार करती हुई चित्रित की जाती थी, जो उस समय के समाज और साहित्यिक काव्यशास्त्रीय परंपरा का दर्पण था। किंतु आज वही नायिका किसी रेस्टोरेंट या कैफे में बैठकर प्रिय का इंतजार करती हैं। यह बदलाव केवल दृश्य परिवेश का नहीं, बल्कि जीवनशैली और सामाजिक संदर्भों के परिवर्तन का द्योतक है। इससे ज्ञात होता है कि समकालीन चित्रकार बन्नू जी के लघुचित्रों में प्रेम, मिलन और विरह जैसी भावनाएँ शाश्वत हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति के उपकरण और परिवेश, समय की गति के साथ बदलते रहे हैं, यही परिवर्तन उनकी कला में भी परिलक्षित होता है। समकालीन कलाकारों ने इस तथ्य को गहराई से समझा है। वे परंपरागत लघुचित्र कला की तकनीकी सूक्ष्मताओं और सौंदर्यबोध को अक्षुण्ण रखते हुए उसमें आधुनिक जीवन के उपकरणों, परिवेश और प्रतीकों का समावेश करते हैं। परिणामस्वरूप बन्नू जी के चित्र न केवल अतीत की स्मृति जगाते हैं, बल्कि वर्तमान समाज की धड़कन को भी प्रतिबिंबित करते हैं। यही वह स्थान है जहाँ परंपरा और आधुनिकता का संगम दिखाई देता है— जहाँ प्राचीन भावभूमि, आधुनिक उपकरणों और जीवनशैली के साथ सजीव होकर एक नई कलात्मक दृष्टि का सृजन करती है।

**2. चित्रांकन विशिष्टता :** वर्तमान में वीरेन्द्र बन्नू समकालीन लघुचित्र कला के ऐसे विशिष्ट कलाकार हैं जिन्होंने परंपरा और आधुनिकता के बीच अद्वितीय संतुलन स्थापित किया है। उनके चित्रों में शास्त्रीय परंपरा की गरिमा और आधुनिक समाज की जीवंतता, दोनों समान रूप से परिलक्षित होती हैं। वे मुख्यतः राजस्थानी, पहाड़ी और मुगल लघुचित्र शैली से प्रभावित होकर कार्य करते हैं। इस कारण बन्नू जी के चित्रों में इन शैलियों की सूक्ष्मता, बारीकी और रंग–योजना का सामंजस्य सहज ही दिखाई देता है। उनकी रेखांकन शैली अत्यंत सूक्ष्म है, जिसमें रेखाओं की महीन बुनावट और अभिव्यक्ति का निखार स्पष्ट रूप से झलकता है। आभूषणों और परिधानों का अंकन परंपरागत ढंग से किया जाता है, जो उनके चित्रों को शास्त्रीय स्वरूप प्रदान करता है। उनकी चित्रांकन विशिष्टता में सबसे उल्लेखनीय बात है कि यह अत्यंत बारीक कार्य वह लैंस की सहायता से करते हैं। साथ ही, उन्होंने रंगों के प्रयोग की शास्त्रीय तकनीक को भी जीवंत रखा है। वे पारंपरिक कागज (वसली) बनाने की विधि और प्राकृतिक रंगों की तैयारी की प्रक्रिया तथा लघुचित्रकला में प्रचलित रंग–निर्माण की पद्धतियों, जैसे खनिज पत्थर और प्राकृतिक स्रोतों से बनाए गए रंगों का सावधानीपूर्वक उपयोग करते हैं (चित्र संख्या–1)। रंगों के प्रयोग में वे हल्के और कोमल स्वरों का चयन करते हैं, जिससे चित्रों में माधुर्य और लयात्मकता प्रकट होती है। इस–रंग–विधान में कहीं पारंपरिक गहराई तो कहीं समकालीन सौंदर्यबोध की ताजगी परिलक्षित होती है। यही विशिष्टता उन्हें अन्य कलाकारों से अलग करती है और समकालीन लघुचित्र कला में उनका योगदान विशेष महत्व रखता है।[11]

**चित्र संख्या– 1 : प्रसिद्ध राजस्थानी समकालीन वरिष्ठ लघुचित्रकार वीरेन्द्र**

**3. समकालीन आयाम का महत्व :** वीरेन्द्र बन्नू यह स्पष्ट करते हैं कि परंपरा का आशय केवल अतीत का अनुकरण नहीं, बल्कि उसकी सार्थकता को वर्तमान से जोड़ना है। उनके चित्रों में परंपरागत कौशल और आधुनिक जीवन के संकेत समान रूप से प्रकट होते हैं। यह मिश्रण दर्शाता है कि लघुचित्र कला गतिशील और परिवर्तनशील है, जो समय के साथ नए अर्थ ग्रहण करती है। इस समन्वय से यह कला न केवल सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण करती है, अपितु वर्तमान दर्शकों को भी आकर्षित करती है। इस प्रकार लघुचित्र परंपरा अपनी प्रासंगिकता बनाए रखते हुए नए युग में भी जीवंत बनी रहती है। इस दृष्टि से वीरेन्द्र बन्नू जी के चित्रांकन को लघुचित्र कला की साहित्यिक परंपरा का आधुनिक रूपांतरण कहा जा सकता है, जो समकालीन युग में न केवल कलात्मक रूप से सुंदर हैं, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी प्रासंगिक है। किसी भी परंपरागत कला को आधुनिक समय में जीवित रखना आसान नहीं होता।

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

20वीं सदी के अंत और 21वीं सदी की शुरुआत में जब डिजिटल कला और फोटोग्राफी जैसे नए माध्यम तेजी से लोकप्रिय हो रहे थे, तब लघु चित्रकला जैसी पारंपरिक विधाओं के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया था, वीरेन्द्र बन्नू ने इस चुनौती को अवसर में बदला। उन्होंने परंपरा को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया और यह दिखाया कि लघु चित्रकला आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने विषयों का विस्तार किया, नई तकनीकों को सीखा, लेकिन मूल आत्मा को कभी खोने नहीं दिया।

**चित्रात्मक विश्लेषण** : प्रस्तुत चित्र संख्या– 2 में रसिकप्रिया काव्य की चित्रिणी नायिका का आधुनिक कलात्मक रूप अत्यंत सुंदर और प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है, जिसका उत्कृष्ट अंकन जयपुर के प्रसिद्ध समकालीन लघु चित्रकार वीरेन्द्र बन्नू द्वारा हुआ है। पारंपरिक भारतीय नारी की भाँति यह नायिका पारंपरिक वेशभूषा में है– हरी चोली–घाघरा, पारदर्शी गुलाबी आँचल, घने लम्बे केश विन्यास और सुंदर आभूषणों से सुसज्जित अर्थात् कुन्दन, मोती तथा पन्ना के आभूषण पहने हुए है, जिसमें झूमका, हार, माँग टीका, चूड़ियाँ तथा बाजूबन्द आदि विशिष्ट हैं। परन्तु नायिका की भाव, मुद्रा और साधन पूरी तरह से आधुनिक हैं– वह एक इलेक्ट्रिक गिटार बजा रही है, जिस पर 'India' अंकित है और यह एक Marshall ऐम्प्लीफायर से जुड़ा है। चित्रिणी नायिका रसिकप्रिया में वह नायिका होती है जो विभिन्न कला रूपों में पारंगत होती है और स्वभाव से कलाप्रिय होती है। यह चित्र उसी कला प्रेम की व्याख्या एक समकालीन प्रतीक के माध्यम से करता है। कोमलतम रंग–संयोजन से निर्मित इस चित्र में पारम्परिक तानपुरे या वीणा के स्थान पर आधुनिक गिटार का प्रयोग यह दर्शाता है कि नायिका की कला चेतना समय के साथ आगे बढ़ी है, पर उसकी आत्मा अब भी भारतीयता से जुड़ी है। उसके नेत्रों में आत्मविश्वास और मन में संगीत का उन्माद स्पष्ट झलकता है। यह चित्र परंपरा और आधुनिकता का ऐसा विलक्षण संगम है, जहाँ भारतीय सांस्कृतिक विरासत को पाश्चात्य संगीत उपकरण के साथ जोड़ा गया है। यह दृश्य यह भी संकेत करता है कि नारी केवल सौंदर्य की प्रतीक नहीं, बल्कि रचनात्मकता, संगीत और आत्म अभिव्यक्ति की जीवंत मूर्ति भी है। यह चित्रिणी नायिका नारी सशक्तिकरण और कला की निरंतरता का सशक्त प्रतीक बनकर उभरती है।

चित्र संख्या– 2 : परम्परा में आधुनिकता का सुर : चित्रिणी नायिका, संग्रह स्रोत– निजी संग्रह, जयपुर।

अगले विश्लेषण क्रम में, प्रस्तुत चित्र संख्या– 3 में रसिकप्रिया काव्य की चित्र दर्शन नायिका का आधुनिक भाव रूप में अत्यंत रोचक चित्रण किया गया है। इस दृश्य का अद्भुत व अद्वितीय संयोजन वीरेन्द्र बन्नू जी द्वारा किया गया है। पारम्परिक भारतीय नारी की भाँति यह नायिका सादगी और सौंदर्य का प्रतीक है, जो श्वेत परिधान, पारदर्शी घूंघट और पारम्परिक आभूषणों से सजी है। नायिका के नेत्र नायक के प्रति प्रेम और उत्कंठा से भरे हुए हैं। चित्र का विशेष आकर्षण यह है कि नायिका ने अपने हाथ में मोबाइल फोन पकड़ा हुआ है, जिसमें वह नायक का चित्र देखकर रसान्वित सी प्रतीत हो रही है। यह चित्र आधुनिक युग के प्रेम और तकनीक के संगम को दर्शाता है। रसिकप्रिया में चित्र दर्शन नायिका वह होती है, जो प्रियतम को देखने के लिए व्याकुल होती है। यहाँ पर यह भाव डिजिटल माध्यम से व्यक्त किया गया है, जिससे यह चित्र परम्परा और आधुनिकता का सुंदर समन्वय बनाता है। चित्र में नायिका की झुकी हुई दृष्टि, हृदयस्पर्शी मुस्कान और सजे–धजे रूप से नायिका की सौंदर्य, लज्जा, और प्रेम की गहराई प्रकट होती है। यह चित्र केवल सौंदर्य चित्रण नहीं, बल्कि भावनात्मक जुड़ाव और प्रेम की साहित्यक चिरंतनता का प्रतीक है, जिसे आधुनिक युग की भाषा में दृश्यात्मक रूप से प्रतिबिंबित किया गया है।

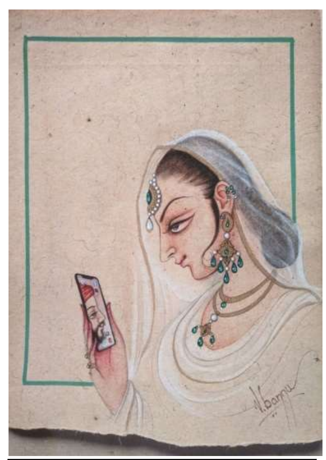

चित्र संख्या– 3 : पारम्परिक प्रेम की आधुनिक झलक : चित्रदर्शन नायिका, संग्रह स्रोत– निजी संग्रह, जयपुर।

अंतिम विश्लेषण हेतु, प्रस्तुत चित्र संख्या– 4 में साहित्यिक ग्रंथ में प्रसिद्ध वासकसज्जा नायिका को अत्यंत भावपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है, जो अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में तन्मय है। चित्र वीरेन्द्र बन्नू जी द्वारा ही किया गया है। चित्र में एक समकालीन शैली में रचित पारम्परिक भारतीय नायिका का चित्रण है, जिसमें श्रृंगार, सौन्दर्य और सांस्कृतिक चेतना का सजीव संगम दिखाई देता है। विशेष रूप से चित्र की पृष्ठभूमि का भाग आधुनिकता और परंपरा का सुन्दर संयोजन प्रस्तुत करता है, नायिका के बायीं ओर पीछे Jaipur Cafe का बोर्ड है, जो चित्र को समकालीन समय से जोड़ता है, इस दृश्य में, स्थापत्यशैली पारंपरिक राजस्थानी हवेली की याद दिलाती है, पारम्परिक समय में यह नायिका प्रियतम से मिलने हेतु महल के भीतर या निकुंज में जाती थी, परन्तु प्रस्तुत चित्र में समकालीन परिप्रेक्ष्य स्वरूप नायिका अपने प्रियतम से मिलने हेतु कैफे गई है। चित्र में दर्शायी गई राधा रूपी नायिका के मोहक चेहरे पर संकोच मिश्रित मुस्कान और नेत्रों में प्रतीक्षारत दृष्टि स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है कि मानो वह बेसब्री से अपने प्रिय के आगमन की बाट जोह रही है इसलिए उसकी मुख मुद्रा अत्यंत अर्थपूर्ण है, जिसमें वह हल्की मुस्कान के साथ पीछे मुड़कर देख रही है, मानो अपने प्रिय की प्रतीक्षा में या उनके मीठे स्मरण में लीन हो। वह एक हाथ से अपनी ओढ़नी को सलीके से थामे हुए है जो उसकी लज्जाशीलता और सजगता का प्रतीक है, वहीं दूसरे हाथ में कमल पुष्प हैं, जो कुछ मुरझाए प्रतीत हो रहे हैं तथा समय के बीतने और प्रतीक्षा की पीड़ा को दर्शाते हैं। चित्र में नायिका पारंपरिक राजस्थानी परिधान पहने है जैसे–घाघरा चोली और ओढ़नी आदि से सजी हुई है। गहरे लाल रंग की चोली, हल्की पारदर्शी ओढ़नी और बहुरंगी घाघरे की सिलवटों में उसकी अभिजात्यता और सौन्दर्यबोध झलकती है। उसके वस्त्रों की कढ़ाई और आभूषण जैसे झुमके, हार, चूड़ियाँ व माँग टीका आदि उसको पूर्णता प्रदान करते हैं। इस नायिका की मुद्राएँ अत्यंत संकोचपूर्ण लज्जा और आकर्षण से भरी होती हैं, पर सुनहरे केश–विन्यास आधुनिक प्रभाव से परिपूर्ण है। इस चित्र में रंगों का संतुलन, भाव–भंगिमा द्वारा रेखांकन की बारीकी और सज्जा की समग्रता वासकसज्जा नायिका की मानसिक अवस्था, प्रेम, प्रतीक्षा गरिमा श्रृंगारिकता और सौंदर्य आदि को प्रभावशाली ढंग से दर्शाती हैं। यह चित्र न केवल एक दृश्य रचना है, बल्कि एक भावनात्मक व साहित्यिक कथा भी कहता है। इस प्रकार यह चित्र नारी सौंदर्य, सांस्कृतिक पहचान, आधुनिक परिवेश और भावनात्मक गहराई का एक सुंदर उदाहरण है, जिसमें पारम्परिक श्रृंगारिक रस और आधुनिक संकेतों का सम्मिलन अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि चित्र की पृष्ठभूमि में आधुनिकता का संकेत है, परन्तु वासकसज्जा नायिका का समग्र रूप पारम्परिकता में रचा–बसा है। यह द्वंद्व बताता है कि यद्यपि युग आधुनिक है, पर भावनाएँ आज भी उतनी ही शुद्ध और गहरी हैं।

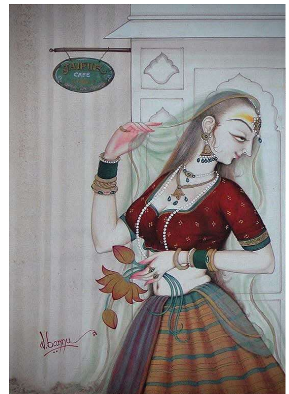

चित्र संख्या– 4 : कैफे के द्वार पर मधुर मिलन की आस में वासकसज्जा नायिका, संग्रह स्रोत– निजी संग्रह, जयपुर।

**निष्कर्ष** : प्रस्तुत शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पारंपरिक लघुचित्र कला केवल अतीत की धरोहर भर नहीं है, बल्कि यह निरंतर विकसित होती हुई वह सांस्कृतिक धारा है, जो साहित्यिक परंपरा और दृश्यात्मक प्रयोगों के संगम से समकालीन सन्दर्भों में भी जीवित बनी हुई है। वीरेन्द्र बन्नू की कला इसका श्रेष्ठ उदाहरण है, जहाँ परंपरागत रेखांकन, रंग–प्रयोग और साहित्यिक कथानकों को सुरक्षित रखते हुए समकालीन जीवन–दृष्टि, सामाजिक यथार्थ और तकनीकी नयापन जोड़ा गया है। शोध परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हुआ कि वीरेन्द्र बन्नू जी ने परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन कायम कर लघुचित्र कला को समकालीन समाज से जोड़ा है। उनकी कृतियों में साहित्यिक स्रोतों की पुनर्व्याख्या और नवीन रंग–संयोजन कला को अधिक जीवंत, सुलभ और दर्शक–केन्द्रित बनाते हैं। इस शोध से यह भी सिद्ध होता है कि समकालीन लघुचित्र कला केवल अतीत का संरक्षण नहीं करती, बल्कि उसमें नए विमर्श, सामाजिक संदर्भ और भावनात्मक संवेदनाएँ जोड़कर एक नवीन आयाम प्रस्तुत करती है। वीरेन्द्र बन्नू की चित्रकला के माध्यम से परंपरा और नवाचार का यह संगम भारतीय लघुचित्र परंपरा को आज के युग में भी प्रासंगिक और प्रभावी बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुआ है।

सन्दर्भ :

1. श्रीमान् वीरेन्द्र बन्नू जी से साक्षात्कार
2. अग्रवाल, श्याम बिहारी और अग्रवाल, ज्योति. भारतीय चित्रकला का इतिहास, मध्यकालीन भाग–2, प्रकाशक : डॉ. श्याम बिहारी अग्रवाल, डॉ. ज्योति अग्रवाल, 'रूपशिल्प', प्रयागराज, 2022, पृ.सं. 13
3. वही, पृ.सं. 3
4. अग्रवाल, राका. कांगड़ा शैली के लघु चित्रों में श्रृंगार रस निरूपण, प्रकाशक : अनुबुक्स, मेरठ, 2022, पृ.सं. 205
5. रानी, अर्चना. पहाड़ी चित्रकला में श्रृंगार एवं सौन्दर्य, प्रकाशक : स्वाति पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 10
6. अग्रवाल, श्याम बिहारी. भारतीय चित्रकला काव्य एवं संगीत प्रकाशक : डॉ. ज्योति अग्रवालः, 'रूपशिल्प', इलाहाबाद, 2020, पृ.सं. 90
7. रानी, अर्चना. पहाड़ी चित्रकला में श्रृंगार एवं सौन्दर्य, प्रकाशक : स्वाति पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 61
8. श्रीमान् वीरेन्द्र बन्नू जी से साक्षात्कार
9. वही
10. वही
11. Jalan, Jyoti and Tiwari, Ujjvala. M. Study of Present-Day Indian Miniature Tradition Through the Paintings of Contemporary Artists Virendra Bannu and Waswo X. Waswo, Shodhkosh Jounal of Visual and Performing Arts. July-December, 2023, Page No. 78-85

22

# मेवाड़ की काष्ठ कला एवं साहित्य का अंतर्सम्बन्ध

**डॉ. बसन्त लाल बामनिया**
(सहायक आचार्य चित्रकला)
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा
राजस्थान।

भारतीय कला का इतिहास, जब से लिपिबद्ध हुआ तब से हम पढ़ते आ रहे है। सभी कलाओं का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारतीय कला एवं संस्कृति अति प्राचीन है, साथ ही हमारा देश भारत धर्म की प्रधानता को महत्व देता रहा है। इस देश की माटी की यह विशेषता रही है कि यहाँ आदिकाल से आदिमानव ने सभ्यता के विकास में देवी-देवताओं की शक्ति को स्वीकारा और इस शक्ति को अपने जीवन में सहायक मानकर इसे पूजा गया। इस पूजा में प्रतीक स्वरूप मूर्तियों का सहारा लिया। मानव सभ्यता में प्रारम्भ में मिट्टी और पत्थरों की मूर्ति बनाई परन्तु मानव सदा से ही जिज्ञासु रहा है। अतः आदिकाल में धातु युग में मूर्तियों को एक नया स्वरूप प्राप्त हुआ। जिनमें कांसा, तांबा, पीतल, सोना, चांदी, लाख, मोम, काँच, गन्धक, हाथी दांत, सींग, लकड़ी और शंख आदि इन वस्तुओं को उनके स्वभावानुसार गढ़ कर, खोद कर, पीट कर, तराश कर और उभार कर उन्हें मूर्ति का रूप दिया गया। यही युग मूर्तिशिल्प कला का इतिहास रहा होगा। मूर्ति युग का इतिहास हडप्पा और मोहन जोदड़ो काल से जाना जा सकता है। हमारे यहाँ की शिल्पकला जगत की अद्वितीय कोष के समान है। जिसके लिए विश्व के कला विद्व दांतों तले अंगुली दबाते हैं। यहाँ की लोक कला व्यवहारिक कला को प्रस्तर शिल्पों में जो समावेश किया गया है। वह अन्यत्र ही कहीं मिलता हो। पत्थरों में जीवन्त भाव भर दिये हैं। हजारों वर्षो बाद भी शिल्प मूर्तियाँ आज भी मुँह बोलती सी लगती हैं। जिन्हें देखकर दर्शकों को असीम शांति प्राप्त होती है। यही वजह है कि पर्यटन क्षेत्रों को भी इस कला ने बार-बार आकर्षित किया है। राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के समकालीन कलाकारों ने इस संस्कृति को पुनः नवीन विस्तार देते हुए यहाँ की माटी से सने नवीन बिम्बों को खोजना शुरू किया और भारतीय समकालीन शिल्पकला जगत के चर्चित हस्ताक्षर बनते हुए यहाँ की पारम्परिक लोक कलाओं को अधुनातन अर्थ देते हुए अपनी कला परम्परा के अस्तित्व को विस्मृत नहीं होने दिया। और यहाँ का शिल्पकार देश के विकास में बराबर भागीदार बना हुआ है। अतः इस क्षेत्र में असीमित आधुनिक विकास किया जाना चाहिए।

भारतीय कला एवं संस्कृति की जड़े जितनी गहराईयो में है उतनी ही सात समन्दर पार चारों दिशाओ में फैली हुई भी है। तभी हर तरह से समृद्ध भारत को सोने की चिड़िया कहा गया था। ऐसे देश की कला की प्रत्येक शाखाओं में नीत नवीन परिवर्तन के साथ विस्तार होना स्वाभाविक हैं यही वजह है कि आज विश्व कला इतिहास में भारतीय कला एवं संस्कृति को इस समसामयिक दौर में विश्व पटल पर देखते है सुनते है और पढ़ते है।

भारतीय चाक्षुष कलाओं की अपनी विद्याये है इनके अनेक रूप है जो मूर्तिकला, चित्रकला, एवं अन्य कलाओं में परिलक्षित होता है। इन सभी कलाओं द्वारा पारम्पैरिक एवं आधुनिक शैलियों में कलाकारो ने अपनी अभिव्यक्ति दी है। स्वतंत्र भारत में कलाकारो ने अपनी कलाओं में एक नई सोच नई दिशा प्रदान की है। राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र की लोक कलाएँ जिनमे काष्ठ से निर्मित कलात्मक वस्तुऐ देश मे नही अपितु विश्वस्तर पर हस्ताक्षरित है। मेवाड़ परिअंचल काष्ठ कला की परम्परा समृद्ध रही है। मेवाड़ के लोगो की एवं जन जाति क्षेत्र की जीवन शैली विचित्र एवं अनोखी है। इनका प्रतिबिम्ब यहाँ की काष्ठ कलाओं में झलकता है।

मेवाड़ क्षेत्र के विभिन्न जिलों व स्थानों जिनमें उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़ या चित्रकुट का दुर्ग मेवाड़ की प्राचीन राजधानी होने के साथ ही वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, एवं बौद्ध व जैन धर्मो का तीर्थ स्थल भी अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है इनमें

बस्सी के साथ-साथ भीलवाडा, प्रतापगढ़, डूंगरपुर (गलियाकोट) तथा बासवाडा आदि स्थानो पर काष्ठ कलाओं में कलाकारो ने अपनी क्षमता एवं रचनात्मकता ने उत्तरोत्तर विकास किया है तथा निरन्तरता को बनोएरखा है मेवाड़ के विभिन्न स्थानो पर बनाये जाने वाले लकड़ी के उपकरण जिनमे खिलौने, कठपुतली, मुखौटे, बाजोट, बेवाण, कावड, झूले, कलात्मक किंवाड़, खिड़कियों, दरवाजे, मोर, चौपड़, मूर्तिया, देवदासिया, एवं कलात्मक, बैलगाड़िया आदि में मेवाड़ क्षेत्र की सांस्कृतिक, झलक इन काष्ठकलाओं में परिलक्षित होती है। इनमें भैगोलिक, एतिहासिक, पारम्परिक तीज त्यौहार पर्व और रीति रिवाज का प्रभाव भी स्पष्ट झलकता है। मेवाड़ क्षेत्र के विभिन्न जिलों व स्थानों जिनमें उदयपुर, राजसमंद, चित्तौड़ या चित्रकूट का दुर्ग मेवाड़ की प्राचीन राजधानी होने के साथ ही वैष्णव,शैव, शाक्त, सौर एवं बौद्ध व जैन धर्मो का तीर्थ स्थल भी अत्यंत प्राचीन काल से रहा है।इनमें बस्सी के साथ-साथ भीलवाडा, प्रतापगढ़, डूंगरपुर (गलियाकोट) तथा बासवाडा आदि स्थानो पर काष्ठ कलाओं में कलाकारो ने अपनी क्षमता एवं रचनात्मकता ने उत्तरोत्तर विकास किया है तथा निरन्तरता को बनौटरखा है मेवाड़ के विभिन्न स्थानो पर बनाये जाने वाले लकड़ी के उपकरण जिनमे खिलौने, कठपुतली, मुखौटे, बाजोट, बेवाण, कावड़, झूले, कलात्मक, किंवाड़, खिड़कियों, दरवाजे, मोर, चौपड़, मूर्तिया, देवदासिया, एवं कलात्मक, बैलगाड़िया आदि में मेवाड़ क्षेत्र की सांस्कृतिक, झलक इन काष्ठकलाओं में परिलक्षित होती है। इनमें भैगोलिक, एतिहासिक, पारम्परिक तीज त्यौहार पर्व और रीति रिवाज का प्रभाव भी स्पष्ट झलकता है।

भारतीय लोक कलाओं का सहजता, सादगी एवं बालसुलभता से सपृक्त परिवेश से जुड़ा अनोखा संसार होता है। हर स्थान की लोक कला की जड़े जमीन से जुड़ी हुई होती है। मेवाड़ क्षेत्र की लोक कलाएँ भी मेवाड़ शैली के चित्रो के समान आकारो में भारीपन, तीखे नाक नक्श, बड़ी आँखे व पुरूष आकृतियां तीखी मूच्छों से सज्जित बनाया है। इस क्षेत्र की लोक कलाओं में पड़, कावड़, मृण, शिल्प व कठपुतलियां प्रमुख है।

पड़ मे कथात्मक चित्रण होता है। इस चित्रात्मक विद्या में खादी एवं कपड़े पर सैकड़ो स्त्री पुरूषो की आकृतियां चटकीली सपाट रंगो में बनायी जाती हैं। पड़ में पाबूजी के जीवन की शक्ति एवं भक्ति से गुंफित चित्रगाथा है। पडो की वर्तमान में पांच सितारा होटलों, सरकारी कार्यालयों एवं निजी भवनों में आंतरिक सज्जा हेतु बहुत मांग है। पड़ में पुरुष प्रधान कथा होते हुए भी नारी आकृतियां को समायुक्त किया है

कावड़ में लकड़ी पर बनी चित्रकथा होती है। कावड़ अडूसे की हल्की कोमल लकड़ी से बनायी जाती है। कावड बनाने वाले स्वयं चित्रकार होते है। छोटे बड़े कई आकारो में कावड़ बनायी जाती है। इसकी बनावट विशिष्ट प्रकार की होती है मुख्यद्वार से दोनो तरफ समान रूप से खुलने वाले कई चित्रित पट होते है। कावड़ पर राम कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित कथाओं पर आधारित सैकड़ो मानवाकृतियां चित्रित होती है। लाल, काली, हरी, गहरी, पृष्ठभूमि में चटकीले रंगो में उभरते आकार होते है। धार्मिक कथानकों पर आधारित चित्रों में स्त्री को कथानुसार ही आदर्श रूप में चित्रित किया जाता है।

भारतीय लोक कलाओं में कठपुतली कला का महत्वपूर्ण योगदान होता है। मेवाड की कठपुतलियां भाव भंगिमा आकार एवं परिधान से ओजस्वी एवं बलवान लगती है। इन कठपुतलियों से ऐतिहासिक एवं पारम्परिक कथाओं पर आधारित रंग मंचीय प्रदर्शन किया जाता है। कठपुतली कला में भी स्त्री पात्रों का महत्व होता है। सभी आकृतियों को सुन्दर, सुडोल, एवं ओजस्वी बनाया जाता है।

कलाओं में जैसे निरन्तरता होती है वैसे ही परिवर्तन भी होता है आज हम वैज्ञानिक युग मे जी रहे है। हर क्षेत्र में उथल पुथल व नये नये प्रयोग देखने को मिलते है। कला के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है। कई आधुनिक चित्रकारो ने अभिव्यक्ति का माध्यम काष्ठ को ही चुना है। मेवाड़ क्षेत्र के कुछ चित्रकार इस माध्यम के चर्चित हस्ताक्षर है। प्रयोगशीलता कलाकार के विकास का आवश्यक अंग है जिसके अध्ययन की कला जगत में अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत है।

वर्तमान में पांच सितारा होटल से लेकर सामान्य आवासीय भवनों में काष्ठ निर्मित वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान हैं। स्वतंत्रता के पश्चात एक देश से दूसरे देश की कलाओं का आदान-प्रदान बड़े पैमाने पर हुआ है। आज मेवाड़ क्षेत्र की पारम्परिक व नवीन निर्मित काष्ठ की कठपुतलिया, कावड, खिलौने, मुखौटे, मूर्तियां, डाईनिंगसेट, किवाड़, खिड़कियां, कलात्मक दरवाजे आदि एवं विभिन्न नाना प्रकार के कलात्मक काष्ठ सामग्री देश-विदेश में भेजी जाती हैं। यही वजह है कि हमारे देश का काष्ठ कला इतिहास वृहद होता जा रहा हैं।

**पर्यटन और विरासत**

किसी भी देश की पहचान उसकी कला एवं संस्कृति से होती है। प्रत्येक देश के इतिहास की गतिशीलता को शब्दांकित कर पाना आसान नहीं है। उस देश का इतिहास केवल विविधतापूर्ण भौगोलिक परिदृश्यों में ही घटित नहीं हुआ, बल्कि धर्म और दर्शन की समृद्ध वैचारिक परम्पराओं, मानव समाज की वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक क्रियाओं, अर्थव्यवस्था, कला एवं साहित्य का अमूल-चूल सर्जनाओं, राजनीतिक परिवर्तन आदि के साथ-साथ उस देश का एक श्रेष्ठ आरम्भिक अधिष्ठान से शुरू होता है। विविध संस्कृति मानव सभ्यता के विकास की संवाहक के रूप में प्रतिष्ठित होती है। शताब्दियों की यात्रा पश्चात् किसी साहित्य एवं संस्कृति की विशेष पहचान कायम होती है। जैसे- हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की संस्कृति। शताब्दियों के धर्म-कर्म से संस्कृति का जन्म होता है। सभी कार्यो में हमारी संस्कृति आईने के रूप में झलकती है। कला, संस्कृति और समाज का गहरा सम्बन्ध रहा है। जिसमें हम रहते हैं। जिसके सृजन और क्रमिक विकास में सदियों के अनुभवों का हाथ रहा है। आदिकाल से ही दार्शनिक, चित्रकार, शिल्पकार आदि हमारी संस्कृति के सृजनकर्ता रहे हैं। इन्होंने समाज को बहुत कुछ दिया है। विशेष कर आनन्द की अनुभूति के लिए और पर्यटन के लिए भी।

पर्यटक अपने भ्रमण काल में जहाँ-तहाँ रचि बसी संस्कृति का हिस्सा बन चलता है। संस्कृति, प्राकृतिक, ऐतिहासिक आदि धरोहर के अन्तर्गत जो कुछ भी आता है। सम्पूर्ण रूप से उसे सांस्कृतिक पर्यटन कहा जा सकता है। समसामयिक दौर में साहित्य एवं संस्कृति का संरक्षण एवं सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देने की महत्ती आवश्यकता है। आधुनिकीकरण के बावजूद सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति मानव का आकर्षण कम नहीं हुआ है। प्राकृतिक विरासत वहाँ की संस्कृति, परम्पराएँ आदि सभी सांस्कृतिक पर्यटन का हिस्सा है। हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ विरासत से जुड़े स्थल प्रकृति एवं वन्य जीवन है। जिसके कारण पर्यटक निरन्तर भ्रमण को आते रहते हैं। यहाँ की स्थापत्य, काव्य और साहित्य, लोक जीवन परम्परायें, नृत्य, रूपंकर और प्रदर्शनकारी कलाएँ, रहन-सहन, वेशभूषा आदि सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति मानव मन आरम्भ से ही आकृष्ट रहा है। पर्यटन स्थल, यहाँ की समृद्ध संस्कृति, एवं वन्य जीवन, लोकगीत, नृत्य, संगीत, खान-पान, संग्राहालय एवं विशेष कर ऐतिहासिक स्मारक, आस्थास्थल, हस्तकलाएँ, त्यौहार, महोत्सव, मेले एवं पर्व हेरिटेज किले, गढ़, दुर्ग आदि सभी पर्यटन की ऐसी धरोहर है, जो पर्यटक के मन को अनायास ही प्रफुल्लित करती है।

भारत का इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति विभिन्न कलाओं में जीवन्तता लिये हुए है। यहाँ के काष्ठशील, धातु के बर्तन, चाँदी के बर्तन, जरी कार्य, हाथी दाँत की वस्तुएँ, पेपरमेशी मिट्टी की मूर्तियाँ, कागज चित्रावली, पत्थर शिल्प, कशीदाकारी, टेराकोटा, चन्द शिल्प, मिट्टी के बर्तन, काष्ठ कलाओं में-कठपुतलियों, कावड, बेवाण, बाजोट, काष्ठ निर्मित अन्य वस्तुओं के साथ-साथ वस्त्रकला, मांडणें, लोकचित्र शैलियाँ आदि पर्यटकों को आकर्षित ही नहीं वरन देखने को मजबूर करती है। नृत्य कलाओं में मणिपुरी, गणगौर घूमर, कथकली, भरतनाट्यम, भागड़ा, गरबा नृत्य आदि पर्यटकों के पसन्द है। हर युग में एक इतिहास बनता चला जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन क्षेत्र में भारत अपनी विशिष्ठ पहचान रखता है। हडप्पा-मोहनजोदड़ो, अजन्ता, एलोरा, एलिफेन्टा की गुफाओं के साथ-साथ किले, दुर्ग, कोट या गढ़, चित्रशालाएँ, कला विधिकाएँ, नदियों, पहाड़ियों, झरने, पर्वत, रेत के टीले, बर्फ, सघन वन ने मनुष्य को प्रायः प्रेरित व आकर्षित किया है। वर्तमान समय के अर्थ जगत में पर्यटन आनन्द व मनोरंजन से सम्बन्धित यात्रा, व्यावसाय आदि का साधन है। विशेष रूप से विदेशी मुद्रा अर्जित करने का स्त्रोत भी।

पर्यटन क्षेत्र से रोजगार के अवसर प्राप्त हुए हैं। पर्यटन के बढ़ते महत्य से राज्य सरकार ने वर्ष 1989 में पर्यटन को उद्योग का दर्जा दिया। 27 सित. 2001 को पर्यटन नीति व जून 2006 में होटल नीति, 30 नव 2007 को पर्यटन इकाई नीति एवं कई प्रकार की योजनाओं को भी घोषित किया गया। वर्ष 2016 में सम्पूर्ण देश में 10-12 प्रतिशत वृद्धि हुई है। पर्यटन क्षेत्र में प्रतिवर्ष 80 लाख से भी अधिक पर्यटक हमारे यहाँ आते हैं। जिससे 144 हजार करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की आय होती है और लगभग 230 लाख प्रत्यक्ष रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। इस पर्यटक क्षेत्र से जिसमें भारतीय कला ,साहित्य एवं संस्कृति का विशेष योगदान रहा है।

**पर्यटन के आधुनिक आकर्षण -**

वैश्वीकरण के इस दौर में अब परम्परागत पर्यटन से नित नये उभरते पर्यटन आयामों के अन्तर्गत राजस्थान ही नहीं देश की पहचान अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर होने लगी है। वास्तव में पर्यटक अब किले, महलों और प्राकृतिक सम्पदा के अवलोकन तक ही सीमित नहीं रहना चाहते, बल्कि वे यात्रा के दौरान अपनी रुचि के वे समी कार्य करना चाहते हैं जो मुद्रा खर्च कर वे कर सकते हैं। पर्यटन का स्वरूप अब तेजी से बदल रहा है। घूमने-फिरने के अन्तर्गत पर्यटक अपनी रुचि की अनुकूलता चाहते हैं। शान्त परिवेश के साथ-साथ वे स्वच्छ पर्यावरण के लिए प्राकृतिक सौन्दर्यानन्द की अनुभूति की सुगन्ध का आनन्द लेना चाहते हैं। तीर्थाटन के माध्यम से देशाटन की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ी है। परम्परागत के विपरीत नये पर्यटन ने जगह लेना आरम्भ किया है। जिससे राजस्थान ही नहीं भारत का इस क्षेत्र में ग्राफ भी तेजी से विश्व पर्यटन मानचित्र पर उभरा है। राजस्थान 'इको ट्यूरिज्म का मुख्य आकर्षण केन्द्र बना है। जिससे विकास गति की रफ्तार तेजी से बढ़ी है। परिस्थितिकी पर्यटन, मेडिकल ट्यूरिज्म, विवाह पर्यटन, साहसिक पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, धार्मिक पर्यटन, ज्योग्राफिक ट्यूरिज्म, पोलो ट्यूरिज्म एवं विन्टेज कार रैली आदि का सफल आयोजन करने में यहाँ के रजवाड़ों एवं धनिक वर्गों का स्थान सर्वोपरी रहा है। राजस्थान के जयपुर में प्रतिवर्ष विन्टेज कार रैली का आयोजन होता है। इस रैली को देखने देश-विदेश से हजारों की संख्या में पर्यटक आते हैं। इस पर्यटन क्षेत्र में आज की तकनीकि मानव सभ्यता को बदल देगी। इसमें कोई शक नहीं, पूरी दुनिया में मोबाईल इंटरनेट से जिन्दगी बदली है। आने वाले वक्त में इस पर्यटन रूपी पेड़ से अनेक शाखाएँ निकलेंगी। बुनियादी टेक्नोलॉजी के तौर पर इसमें अपार सम्भावनाएँ है। पहल की आवश्यकता है। देश-विदेश में स्मार्ट सीटी की योजनाएँ, हवाई सेवाएँ आदि और चारचाँद लगा देगी।

मेवाड़ क्षेत्र के उदयपुर में वैक्स म्यूजियम खोला गया है, जिससे मेवाड़ पर्यटन क्षेत्र में एक सुनहरा अध्याय और जुड़ जायेगा। इस म्यूजियम में देश-विदेश की महान हस्तियों के स्टेच्यू देखे जा सकते हैं। इस प्रकार से पर्यटन के क्षेत्र में विविध तकनीकि विकास से आने वाले समय में यहाँ पर्यटकों की संख्या में वृद्धि होगी। अतः भारत दुनिया के पर्यटन बाजार में सबसे तेजी से वृद्धि दर वाले देशों की सूची में शामिल होगा। यहाँ बहुत से अनछुए पहलु है, जिन्हें उजागर करने की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यहाँ विदेशी पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। आय के स्रोतों में बढ़ोतरी हुई है। इसलिए इस बाजार पर बैंक, वित्तीय संस्थान, बिजनेस डवलपर्स, मनोरंजन कम्पनियों, वैश्विक निवेशक, हेलिकॉप्टर सेवाएँ, रेस्टोरेन्ट, स्पा, योग टूर एवं ट्रेवल्स आपरेटर्स और नागरिक सुविधा देने वाली कम्पनियों को अवसर देकर इस क्षेत्र में अमूल-चूल परिवर्तन किया जा सकता है। जिससे देश के पर्यटन बाजार में क्रांतिकारी बदलाव आयेगा एवं विकास की दिशा को गति मिलेगी और भारत एक विकसित राष्ट्र बन सकेगा।

**2. सम सामयिक कला के काष्ठ –**

दृश्यकलाओं में चित्रकला एवं मूर्तिकला के उन्नत एवं शास्त्रीय स्वरूप के कारण इन कलाओं में विश्व की कलाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। शिक्षा के विस्तार ने कला जगत में भी विलक्षण क्रान्ति ला दी है। कला शिक्षा के माध्यम से कला में बौद्धकला का प्रादुर्भाव कला कौशल पर हावी हो गया। भारत में स्वतंत्रता के आस-पास अन्तर्राष्ट्रीय कला आन्दोलन प्रवेश कर गया। कला की शिक्षा विधिवत दी जाने लगी, "भारत में सर्वप्रथम कला विद्यालयों की स्थापना की गई। मद्रास में 1950 में, कलकत्ता कला विद्यालय की स्थापना 1951 में हुई। मयों कला विद्यालय लाहौर की स्थापना-

1975 में बम्बई कला विद्यालय की स्थापना 1857 में हुई। तत्पश्चात् देश के कई महानगरों जिनमें दिल्ली, बड़ोदा व कई छोटे नगरों में भी कला की शिक्षा विधिवत दी जाने लगी।

देश में विगत कई दशकों से सम सामयिक कलाओं तथा साहित्य का आंदोलन कला क्षितिज की ऊँचाईयों को छू रहा है। सम सामयिक चित्रकारों ने अभिव्यक्ति हेतु आकारों व अवकाश के बीच रचनात्मक संघर्ष अनवरत किया है। इनमें केनवास, चित्रण, रेखांकन, मूर्तिशिल्प, छापाचित्रण, म्युरल, मोजाईक के साथ ही मिक्स मीडिया या मिश्रित माध्यम में भी कई चित्रकारों ने विलक्षण अनवेक्षण खोजकर अद्भूत संसार रचा है। "दृश्यकला वैसे तो सदैव देश काल और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहता है। जब कोई माध्यम बदलता है तो उसके रंगतों में भी अंतर आ जाता है।

वर्तमान में जहां मीडिया विश्व भर की उथल-पुथल को परोसता है व हम एक दूसरे की संस्कृति से अवगत एवं प्रभावित होते है। टीवी में तो फैशन चैनल भी सदैव चलता रहता है। आज स्त्री पुरुष सभी फैशन की दौड़ में लगे रहते हैं। फैशन के साथ नये-नये तरीके, व आभुषणों को भी नये-नये स्वरूप में बनाया जा रहा है। जिसे पहनने की उत्कंठा स्त्री-पुरुषों को रहती है। आभुषण सोना, चांदी, तांबे एवं अन्य धातुओं के बनते हैं। लेकिन इन कीमती आभुषणों में हमें काष्ठ निर्मित आभुषण यदाकदा ही दिखाई देते हैं। आध्यात्मिक प्रवृत्ति में माला जपना भी ईश्वर के निकट जाने का माध्यम है। चित्र सं. 73 मालाएं चन्दन, तुलसी, कंटी एवं अन्य लकड़ियों की बनी होती है। तुलसी एवं चन्दन की मालाएं गले में पहनने का प्रचलन मेवाड़ क्षेत्र में पाया जाता है।" कई प्रवत्ति के लोग कानों में लकड़ी के रिंग पहनते है। स्त्री-पुरुषों में लकड़ी के बटन पोशाकों में लगाने का प्रचलन भी चल पड़ा है।

हर स्थान में ऐसे तो साहित्य और कला की एक व्यापक बिरादरी होती है और सृजनात्मक अभिव्यक्ति एवं विचार के अनेक रूपों में परस्पर संवादिता भी। कलाएँ चाहे शास्त्रीय हो या चाहे पारम्परिक हो चाहे सृजनात्मक हों सबका अपने अस्तित्व और अर्थ के साथ साहित्य में गहरा सम्बन्ध रहा है।

विषय की प्रासंगिकता स्वातंत्रोत्तर मेवाड़ की काष्ठ कला भी इस क्रम में एक दृष्टि एक विचार एवं एक दिशा प्रदान करती है। कलाओं को प्राथमिकता देने वाली कई साहित्यक भी शक्तियां हैं। जिनमें धरातल परिपेक्ष्य, परम्परा एवं अनुभव मेवाड़ की भौगोलिक संरचना के अनुरूप निश्चित है। यह प्रदेश कला एवं साहित्य,संस्कृति का प्रभुत और महत्त्वपूर्ण स्थल है। सारे राजस्थान में मेवाड़ प्राकृतिक सौन्दर्य का केन्द्र है। यहां की ऊँची-ऊँची पहाड़ियां, झीलें, वृक्ष, यहां के उद्यान, भवन और शिल्प वैभव जो अपने में शक्ति एवं भक्ति के साथ मुखर हैं। भारतीय चित्रकला की कई समृद्ध शैलियां रहीं हैं जो विश्वविख्यात है। उदाहरण के लिए कांगड शैली किशनगढ़ शैली की भांति मेवाड शैली का अपना स्थान अलग ही है। इस शैली में मेवाड़ के शौर्यवान व्यक्तित्व की आकृतियों हृष्ट-पुष्ट भाव भंगिमाओं और ओजस्वीता संपूर्ण पर सरल तथा चमकीले रंग वाली संस्कृति एवं परम्परा की द्योतक है।

मेवाड़ भारत के मानचित्र में शक्ति एवं भक्ति के उदय के रूप में जाना जाता है। यहां के चित्रों में वीर रस स्पष्ट रूप से झलकता है। मेवाड़ की धरा में कई मेले, उत्सव तथा अनौखे रीति रिवाज है। साथ ही रंगों की चटकता दृष्टव्य है इन सब के साथ मेवाड़ का सबसे बड़ा गुण सादगी एवं सहजता है। यह तथ्य चाहे चित्र हो, पारम्परिक कला हो या लोक कला हो उनमें परिलक्षित होती है। मेवाड क्षेत्र की लोक कलाएं आज देश के कोने-कोने में फैल चुकी है। चाहे घरों की आंतरिक सज्जा हो, चाहे पांच सितारा होटल हो, सरकारी भवन हो इन सब में मेवाड़ के बढचित्र, मौलेला के टेराकोटा या गेवाड़ के कठपुतलियों या काष्ठ निर्मित (डेकोरेटिय वीश) ही यकायक दिखाई देते है इनका काष्ठ कृतियों में कलाकारों ने अपने आस-पास के वातावरण एवं परम्परा को विश्लेषित किया है। स्थान या भू-भाग से उस लकड़ी को तराशा है जो कोमल हो. मजबूत हो, कार्डिंग में आसान हो तथा चिरकाल तक स्थाई हो।

यहां के कलाकारों ने अपनी साहित्यिक दृष्टि एवं सुझबुझ द्वारा निश्चित रूप से इन कृतियों के निर्माण के पीछे अपना जीवन, अपने अनुभव, अपना कौशल सब कुछ लगा दिया, यहां तक की इनकी अनौखी सुझबुझ से वस्तु आकार के निर्माण के

पश्चात इन्हें रंगों से आच्छादित किया है तथा ये रंग उपयुक्त व सार्थक भी है इन रंगों से हमें गर्व के साथ हमारी संस्कृति परम्परा का पुर्नविस्तार संरक्षण का अहसास होता है।

पारम्परिक कलाओं, लोक कलाओं में ही काष्ठ प्रयोग नहीं हुआ है। वरन रचनात्मक कलाकारों का मन भी काष्ठ के प्रति आकृर्षित, उद्देजित हुआ है। मेवाड़ क्षेत्र के कुछ चित्रकार जो भारतीय समकालीन कला मंच में इन काष्ठ कलाकारों से अपनी पहचान बना चुके है इतना ही नहीं वरन राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी पहचान बना चुके हैं।

काष्ठ कला एवं साहित्य के सम्बन्ध अपने आप में एक विहंगम विषय है। जहां अध्ययन करने पर परत दर परत रहस्य खुलते से लगते है। विषय लेखन में तर्क संगत अध्यायों का विभाजन क्रमानुसार करना नितान्त आवश्यक है मेवाड़ क्षेत्र के काष्ठ कलाकारों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियों का उल्लेख पुरे क्षेत्र को समाहित करते हुए रेखांकित किया है।

वर्तमान में कलाओं एवं साहित्य का जीवन में अभिन्न स्थान है। प्रत्येक समारोह, पर्व इन सभी में साज सज्जा के बिना अधूरी रहती है। छोटे भवन से लेकर बड़े भवन तक हैसियत के अनुसार सज्जा हेतु अवश्य बजट बनाया जाता है। सृजनात्मक कलाओं तथा हस्त कलाओं हेतु अकादमी एवं अन्य पुरस्कार दिये जाते रहे है। निश्चित रूप में कला विकास एवं साहित्य के विस्तार हेतु यहां भी एक पक्ष है। आधुनिक युग में सरकारी स्तर पर या अन्य संस्थाओं द्वारा इन कलाकारों के शिविर में भाग लेने हेतु आमंत्रित किया जाता है। इससे कलाकारों को बाहरी दुनिया देखने, देश के एक कोने से दूसरे कोने की कला को देखने के अवसर मिलते है। यहां कलाकार को अपनी कला एवं माध्यम का व्यवसायिक रूप देखने को मौका भी मिलता है। आधुनिक युग में 'मीडिया' जीवन का अभिन्न अंग है। टेलीविजन, समाचार पत्र, कैटलॉग, आर्टबुक, मेगजिन इन सभी में कलाओं हेतु नियमित नहीं तो कहीं न कहीं कभी न कभी कहीं कोना अवश्य होता है। निश्चित रूप से लोगों तक संदेश पहुंचता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि मीडिया इस हेतु और सघन प्रयास कर सकता है। संचार का महत्वपूर्ण साधन मीडिया है. इसके द्वारा जन मानस में कला की दृष्टि से कला के प्रति अधिक सहिष्णुता पैदा करता है। अतः मीडिया के द्वारा इसका अधिक प्रचार व प्रसार करना चाहिए। कलाओं के व्यावसायीकरण से हमारी परम्परा, संस्कृति कहीं फैलती है तो कहीं विलुप्त भी होती है। उपभोक्ता की मांग के अनुसार कलाकार आकारों का निर्माण करने लगे है। चाहे बस्सी की काष्ठ कला हो चाहे मौलेला का टेराकोटा या बाहुजी की पढ़ हो।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

(1) श्री जगन्नाथ पांडे " काष्ठ परिक्षण" प्रकाशन शाखा सूचना विभाग उ.प्र.-1961
(2) फुलदेव सहाय, "कोयला", प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उ.प्र. 1958
(3) एम एस मावडी, भारत की प्रमुख चित्र शैलियां, ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चंद्रावल जवाहर नगर दिल्ली 1989,पृष्ठ 44
(4) चतुर्भुज मामोरिया, "भारतका बृहद्ध भूगोल, साहित्य भवन हास्पिटल रोड़ आगरा,1960
(5) डॉ. वल्लभ व्यास, मेवाड़ का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन,राजस्थानी ग्रन्थागार सोजती गेट जोधपुर-1989, पृष्ठ सं.263
(6)डा० लाजपतराय भल्ला, " राजस्थान का भूगोल, कुलदीप पब्लिकेशन चन्द्रनगर ब्यावर रोड़, अजमेर- 1996,
(7). वी.एस. भार्गव, राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण रीसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1981, पृष्ठ सं.181
(8) डॉ. गोपीनाथ शर्मा, "मेवाड़ -मुगल संबंध, राजस्थानी हिंदी ग्रंथ अकादमी तिलक नगर जयपुर 1976, पृष्ठ सं.134
(9) प्रो.वरूण दे, प्रो. रामशरण शर्मा, "प्राचीन भारत" राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण श्री अरविन्द मार्ग नई दिल्ली 1977, पृष्ठ सं.86
(10)श्रीदेवीलाल सामर" कठपुतली और समस्याएं" भा० लो० कला मंडल उदयपुर-1970
(11)एलीनर बुक्स, " सपनालीका खेल - भा० लोग मधु-उदयपुर-1970,901
(12) श्री देवीलाल सामर, "कठपुतलियां और मानसिक रोगोपचार " भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर 1970

(13)एलीनर बुक्स, " कठपुतली का खेल" प्रकाशक  लिट्रेसी हाऊस लखनऊ-1970
(14) पं. सीताराम शास्त्री, भारतीय संस्कृति में राजस्थानी संस्कृति की महत्ता, श्री रघुनाथ विद्यापीठ,आबू-1945
(15) श्री रामनिवास शर्मा, "राजस्थानी मांड़ना" राजस्थान ललित कला अकादमी जयपुर 1961
(16) श्री देवीलाल सामर, "संस्कृति और जनसाधारण" भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर 1958
(17) डॉ.श्यामप्रकाश "मेवाड़ के ब्रज, श्री नाथद्वारा की चित्रकला" राजस्थान बृज भाषा अकादमी भाभा मार्ग,तिलक नगर जयपुर
(18) डॉ. महेंद्र भानावत " कांवड़ घर-घर बचती रामायण पटड़ी" मध्यप्रदेश आदिवासी लोक परिषद प्रकाशित मालवीय नगर भोपाल -1991 पृष्ठ सं 51
(19) भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला, डॉ रीता प्रताप
(20) राजस्थान संस्कृति कला एवं साहित्य, डॉ. प्रेमचन्द्र गोस्वामी
(21) भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास डॉ हुकुम चंद्र जैन, डॉ. कृष्णगोपाल शर्मा
(22) राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा- डॉ. नीलिमा वशिष्ठ
(23) राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा डॉ. जयसिंह नीरज, डॉ. बी.एल. शर्मा
(24) राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर
(25) राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास- डॉ. गोपीनाथ शर्मा
(26) भारतीय संस्कृति के मूलाधार - शिवकुमार गुप्त
(27) सांस्कृतिक पर्यटन- डॉ. राजेश कुमार व्यास
(28) भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का वैभव - चौहान भंवरलाल,1996
(29) भारतीय कला की कहानी, विनोद कुमार आर्य, 1997
पत्र -पत्रिकाएं
(1) माणक प्रकाश, डॉ.महेन्द्र भानावत, "कांवड़ राजस्थान की" जौहरी गेट जोधपुर,1989
(2) जय राजस्थान, डॉ. महेंद्र भानावत, "काष्ठ में कमाल" उदयपुर 1991
(3) हिन्दुस्तान पत्रिका, डॉ. महेंद्र भानावत "लोक कलाओं का आजादीकरण, नई दिल्ली,1993
(4) राजस्थान पत्रिका, डॉ. महेंद्र भानावत, काठ के ठाठ में डूबे छगन जी खैरादी",1992
(5) स्वागत पत्रिका, डॉ. ऊषा अरोड़ा, " दरवाजों की नयनाभिराम कला",1995
(6) युग पत्रिका की प्रतिदिन सेवा, डॉ. अरविंद चौहान " काष्ठ कला" जून, 1997

**SAHITYAYAN**
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

# 23
# समकालीन कला और साहित्य के अंतर्बोध का चिंतन

**सिकन्दर सुथार**
सहायक आचार्य,
चित्रकला विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय,कोटा।
9950668853
sikander331402@gmail.com

कला और साहित्य मानवीय अभिव्यंजना के दो स्वाभाविक माध्यम हैं, मन की उत्कंठाओं को प्रकट करने के दो सुगम मार्ग। किसी कालखंड में कला ही साहित्य थी तथा साहित्य ही कला था। संप्रेषण के उस प्रसूति काल में आदिम इच्छाएं कंदराओं की दीवारों को खुरच कर प्रकट हुई। आदिमानव की वही कला उस युग का साहित्य भी थी। आज के परिष्कृत, गूढ़ शब्द भंडार के कुबेर भले उस समय नहीं थे पर नुकीले यंत्र से खींची रेखाओं की अभिव्यक्ति ने उस समाज को आशावान बनाया। एक दो रंगों के योग ने उसे उमंग से भरा और उन सहज चित्रों ने उस समाज के हित की बात कही। आज के साहित्य का भी यही कार्य है जो उस समय प्रागैतिहासिक कला ने किया।

कला भावों के उद्‌गार का सरल प्रवाह है, जीवन की स्पंदन लहर। ह्रदय के भाव ह्रदय में ही छुपे नहीं रह सकते। वे अपने आवेग से ही अभिव्यक्त होना चाहते हैं। अपनी प्रकृति के वशीभूत उन्हें प्रकट होना ही होता है। दर्शक अथवा श्रोता जैसे किसी आलंबन का होना न होना उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं होता जितना उनका प्रकटीकरण। पर ऐसा भाव प्रदर्शन श्रृंखलाहीन, सूत्रहीन होता है। कला इसी प्रकटीकरण का परिष्कृत, सूत्रबद्ध मार्ग है। कला आवेश से युक्त आदिम भावों को सुसंस्कृत अभिव्यक्ति देती है। कला से पोषित भाव रसानंद से परिपूर्ण होते हैं।

यही भाव साहित्य में शब्द बनकर उभरते हैं। साहित्य सभ्य भाषा के आवरण में भावों को प्रकट करता है। यह भावाभिव्यक्ति का श्रृंगार है। अक्षरों, शब्दों के मोतियों की उसकी सम्पदा भाव व्यंजना को अलंकृत करती है जो समाज को उसके आदर्श के प्रति दृढ़बद्ध रखती है। साहित्य अपनी भाषा से वही कार्य करता है जो कला अपने कौशल से। दोनों ही मन के गहन भेद को सुलझाने में प्रयासरत रहते हैं।

अभिव्यक्ति के यह दोनों ही मार्ग अपने समय व स्थान में अस्तित्वगत होते हुए भी कालजयी कृतियों का निर्माण करते हैं। शताब्दियों पूर्व के रचे गए महाकाव्य आज भी लोक संस्कृति के वाहक एवं कलाकारों के प्रेरणा स्त्रोत हैं। मंदिर संरचनाओं में उत्कीर्ण देव प्रतिमाओं में वही दिव्य दर्शन हैं। यूनान की शास्त्रीयता अब भी आदर्श मानी जाती है। सच यह है कि कला व साहित्य का समय हमारे लोक समय से भिन्न होता है। जब कोई क्रांतिकारी रचना नए प्रश्न खड़े करती है तब हम सामान्यतः उसे अपने समय से आगे की रचना कह देते हैं। इस संदर्भ में कला व साहित्य का समकालीन होना उन्हें सीमित कर देता है। देखा जाए तो यह इनके बाहरी स्वरूप पर दृष्टिपात करने जैसा ही है।यद्यपि सिंधु,मिस्र,यूनान,अजंता के स्थान विशेष की कला या प्रभाववाद,घनवाद,संस्थापन के समयगत कला आंदोलन विविधता से भरे हैं। ऐसे ही रोमांसवादी,यथार्थवादी,छायावादी साहित्य में भिन्न विषय भले ही हैं तथापि देशकाल से अलग इनके मूल में सृजन क्रिया ही है जो शाश्वत है। प्रागैतिहासिक युग से भी प्रेरणा लेकर सृजक आधुनिक कला व साहित्य का निर्माण करते हैं। अजंता की बौद्ध कला,बस्तर की जनजाति कला आधुनिक कलाकारों को प्रेरित करती रही है। प्राचीन ग्रीक,रोमन साम्राज्य के उत्खनन से प्राप्त कलाकृतियों ने मध्यकालीन कलाकारों को नवीन विषय प्रदान किए हैं। लियोनार्दो द विंची, एल्ग्रेको, फ्रांसिस्को गोया, मार्शल धुंशॉ इत्यादि कलाकार अपने जीवन के समय की बाध्यता से आगे भी पीढ़ियों को प्रभावित करते रहे हैं। इसका आशय है कि समकालीन होने का अर्थ वर्तमान में होने से ही नहीं बल्कि प्रासंगिक होने से भी जुड़ा है। कला व साहित्य की परिधि अंतहीन विस्तृत है। समय की दिनांकों से बांधकर रचना कर्म के क्षेत्रों का विश्लेषण किया जाना पर्याप्त नहीं होता। वर्तमान के स्थापित कलाकार अपने समय का प्रतिनिधित्व जरूर करते हैं अपितु उन्हीं के समकालीन किसी अज्ञात कलाकार

की श्रेष्ठता भविष्य में सिद्ध हो जाए यह बड़ी बात नहीं। सच्ची कला व श्रेष्ठ साहित्य के उजागर होने में समय लगता ही है।

मनुष्य की साहित्यिक चेतना और कलात्मक अभिरुचि कोई भिन्न वस्तु नहीं है हालांकि अध्ययन की सरलता के लिए कला व साहित्य के स्वरूप परिवर्तन पर विमर्श किया जाता रहा है। कलाओं के आपसी व्यवहार तथा एक दूसरे से प्रेरणा के स्त्रोत इतिहास से अब तक के तथ्यों में खूब हैं। शोध अथवा विमर्श लेखन के लिए इन उदाहरणों का महत्व बढ़ जाता है। कला व साहित्य के भिन्न स्वरूप के सम्बन्ध पर बात करें तो कला तो नाद ब्रह्म के साथ ही ध्वनि रूप में उत्पन्न हो गई थी जिसे अभिनव गुप्त ने काव्य की आत्मा कहा पर साहित्य का अपने स्वरूप को प्राप्त होने में सिंधु काल तक ठहरना हुआ। तब भी कला ने ही चित्र,प्रतीक बनकर उसका पोषण किया,वैदिक युग में श्रुति रूप में साहित्य पला बढ़ा और भाषा के साथ साथ उसका विकास हुआ। वर्ण,अक्षर संरचना में कलात्मकता से विविध भाषाओं में सौंदर्य उपजा। साहित्य ने लोकधर्म की प्रतिष्ठा की और लोककला ने उसे संवारा। कविता ने मानवीय संवेदनाओं को मधुर वाणी दी तो चित्रकला ने हर्षित रंगों से उन्हें उद्घाटित किया। मूर्तिकारों ने प्रस्तर में शास्त्र वर्णित साहित्य को उकेरा। मध्ययुग में हिन्दू ,बौद्ध और जैन तीनों ही धर्म के साहित्य पर आधारित पोथी चित्रण हुआ। रीतिभक्तिकालीन साहित्य तो चित्रकला की मूल विषय वस्तु ही था। रामायण,भागवत,गीतगोविंद,कल्पसूत्र,रसराज,बिहारी–सतसई जैसे ग्रंथों में कविता व चित्र एकाकार हुए। चित्रकला तो इतनी आगे बढ़ गई कि संगीत के अमूर्त राग–रागिनियां भी मूर्त रूप में आरेखित किए गए। संपूर्ण विश्व में चित्रकाव्य की यह उच्चतम कल्पना थी। इससे बढ़कर कलाओं के आपसी सम्बन्ध का क्या ही प्रमाण होगा। चित्रकला ही संगीत बन गई। वर्ष के बारह मास की ऋतुओं के काव्यात्मक वर्णन का चित्रकला में मानवीकरण हुआ। कविता के छंदों में वर्णित नायिका की जब चित्र सृष्टि की गई तब वह बणी–ठणी के रूप में साकार हुई। कला में काव्यात्मकता पर तो बहुत विद्वानों ने लिखा ही है। जर्मन दार्शनिक हेगल ने कला वर्गीकरण में चित्रकला को काव्य ओर संगीत के साथ उच्च कोटि की कला स्वीकार किया है जिसमें एब्सोल्यूट व्यक्त होता है।

आधुनिक काल के कलाकार भी प्राचीन ज्ञान परम्परा से जुड़े रहे हैं। आधुनिक कला का प्रस्फुटन राजा रवि वर्मा से हुआ। उनके चित्रण में धर्म साहित्य का स्थान था। बंगाल में रबीन्द्रनाथ ठाकुर,अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य में कला,संगीत तथा साहित्य की चहुंमुखी धारा बही। गुरु रवीन्द्रनाथ स्वयं कवि होते हुए कला की ओर अग्रसर हुए। उनके द्वारा रचित विचित्रता नामक काव्य संकलन में उनकी कविताओं के साथ बंगाल शैली के लगभग सभी कलाकारों के चित्र आरेखित थे। इनमें अवनीन्द्रनाथ,गगनेंद्रनाथ,नंदलाल बसु,सुरेंद्रनाथकर,सुनयनी देवी,गौरी देवी प्रमुख चित्रकार थे। यह परम्परा अभी तक चली आ रही है कि किसी भी साहित्यिक कृति के मुखपृष्ठ को आवरण चित्र से सजाया जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय वैश्विक मंच के परिदृश्य से प्रेरित कलाकारों ने कला समूह बनाए। कला के नवीन विचारों के प्रसार में साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पत्र पत्रिकाओं में आधुनिक कला पर लेख लिखें गए। आधुनिक युग में कला व्यक्तिगत हो गई। कलाकार विशेष तथा उसके कृतित्व पर लिखा जाने लगा। चित्रकारों ने कवियों पर चित्र बनाए तो कवियों ने भी चित्रकारों पर कविताएं लिखीं। सबसे चर्चित कलाकार एम एफ हुसैन पर कई कवियों ने लिखा जिनमें अशोक वाजपेई की कविता हुसैन के चित्र की अचानक याद,बाबुषा कोहली की कविता हुसैन की निर्वासित देवी के लिए,राजा दुबे की कविता मकबूल फिदा हुसैन प्रमुख हैं। अरमान आनंद की कविता मकबूल तो जैसे हुसैन की जीवनी ही है –

''फिल्म के पोस्टर बनाता था

एक लड़का

मुंबई की सड़कों पर

सीढ़ियां लगाकर लेई से

पोस्टर के चौकोर हिस्से

आपस में चिपकाया करता था

जैसे आकाश पर चांद सितारे चिपका रहा था...''

ऐसे बहुचर्चित पेंटर को नई कविता के सृजक मुक्तिबोध ने अत्यंत प्रेरित किया। कवि के अंतिम संस्कार की नग्न पैरों से यात्रा कर कला हृदय ने सदा के लिए ही जूते न पहनने का प्रण किया और आजीवन यही उनके व्यक्तित्व की पहचान बन गई। हुसैन ने मुक्तिबोध की कविताओं पर चित्र भी बनाए। अपने कैनवास पटल को रजत पटल तक विस्तारित किया। प्रभाववाद और छायावाद की समानता देखते हुए सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और विंसेंट वानगो की परस्पर तुलना की ही जाती है। कवि और चित्रकार दोनों ही अति संवेदनशील और करुणा से ओत प्रोत होते हैं। चित्र के मूर्त,अमूर्त रूपाकार काव्य के बिंब प्रतिबिंब बन जाते हैं। कविता के सापेक्ष शब्दों के पीछे अमूर्त भाव छुपा रहता है। ऐसी ही एक कविता विनोद भारद्वाज कृत मोनालिसा–2020 है जिसमें तात्कालिक महामारी की भयावहता और अकेलेपन के दौर की चर्चा के साथ ही गहरे छुपे अर्थ में कला पर हावी होते बाजारवाद पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया है –

''...तुम्हें क्या सचमुच लगता है लियोनार्दो

कि मुझे एक आराम की जरूरत थी

या एक गहरे अकेलेपन की

कमबख्तों ने मुझे भी एक खूबसूरत मास्क

पहना दिया है

क्या उन्हें डर है कि यह महामारी

मेरी रहस्यमय मुस्कान मुझसे छीन लेगी...''

कला आलोचना भी एक ऐसा ही मंच है जहां कला व साहित्य एकमेक हो जाते हैं। कला की रचना प्रक्रिया के विश्लेषण,कलाकार के जीवन पर अनेक साहित्यकार लिखते रहे हैं। जियोर्जियो वसारी ने पाश्चात्य कला का क्रमबद्ध इतिहास लिखा तो विश्व को महान कलाकारों के तपस्वी जीवन का विराट दर्शन हुआ। भारत में भी हजारी प्रसाद द्विवेदी,रामचंद्र शुक्ल जैसे महान साहित्यकारों ने कला पर अपने विचार व्यक्त किए। इस तरह के अनेक उदाहरण हैं जो कि कला और साहित्य की आपसी निर्भरता को दर्शाते हों। आज की प्रत्ययवादी कला में तो यह निर्भरता और भी अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होने लगी है। ऑडियो वीडियो की तरह भाषा को भी सीधे तौर पर संस्थापन कला के माध्यम की तरह देखा गया है। समकालीन कला की विभिन्न शैलियों में विचार ही मुख्य केंद्र में होता है तथा अब किसी कलाकार की विचार प्रक्रिया जाने बिना

उसके कला कार्य का विश्लेषण करना दुरूह हो सकता है अतः कला निर्माण में साहित्य अब और अधिक आवश्यक घटक की तरह कार्य करता है।

वस्तुत कला और साहित्य एक ही हैं क्योंकि उनका आविर्भाव मानस दर्शन से ही हुआ है। आदिवेद के श्लोकों में कला की उत्पत्ति है जबकि भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में धर्म,काव्य,कला सभी नाट्य विद्या में समाहित हो गए हैं।इसी कारण प्रसिद्ध कला समीक्षक एवं नाट्यकर्मी गौतम चटर्जी ने समस्त कलाओं में अंतर्संबंध ढूंढने को ही निरर्थक बताया है, वह तो पहले से ही इन सब में व्याप्त है। इसकी अपेक्षा कला व साहित्य के आपसी अंतर्बोध पर चिंतन किया जाना आवश्यक हो जाता है क्योंकि आधुनिक समय तक पहुंचते पहुंचते सभी कलाओं के बाहरी स्वरूप में परिवर्तन आ गया है। अभिव्यक्ति के अंतर्बोध की गहन समझ ही मन के तल में छुपी समस्याओं को सुलझा सकती है जो कि कला एवं साहित्य का भी उद्देश्य होता है। एक ही भाव कला में किस प्रकार संप्रेषित होता है उसी भाव का उद्बोधन साहित्य किस प्रकार करता है। क्या यह मूल अंतर रेखा,रंग अथवा शब्द,बिंब के माध्यमों का ही है अथवा सृजक का स्व भी उसमें लिप्त हो जाता है जो प्रत्येक रचना इतनी मौलिक बन जाती है! अंतर्बोध का यह चिंतन ही कला व साहित्य को रूढ़िगत आक्षेपों के जाल से खींचकर उन्मुक्त विचरण के लिए लालायित करता है। प्रमुख कवि गजानन माधव मुक्तिबोध भी सच्चे साहित्य के निर्माण में कवि की स्वतंत्रता पर स्पष्ट लिखते

हैं। कविता अपने युग से प्रभावित होती है। प्रचलित धारणाओं में घुलमिल जाती है पर अपने समय के प्रभाव चक्र को तोड़कर ही नई कविता का सृजन संभव है। ऐसा ही कला का प्रचलित कलावादों में एकाकार हो जाना है जबकि प्रयोगवादी कला ही नए विचार और प्रतिमान स्थापित करती है। परम्परा से चली आ रही अंकन की तकनीकें,रंग की पद्धतियां भी नूतन विचार की प्रतिक्षा में रहती है। वर्षों पुरानी कलाकृतियों की नए दृष्टिकोण से व्याख्या की जाती है। यही नया दृष्टिकोण समकालीन साहित्य होता है।

आज की कला और साहित्य का बाहरी आवरण अनेक वादों,विचारधाराओं,आदर्शो और अब तक कम आंकी गई मानवीय संवेदनाओं,मुख्य धारा से विमुख विषयों को आधार बनाकर तैयार हो रहा है। कई रोचक शैलियां अपनी तकनीक से आकर्षित करती हैं। लेखन का पैनापन ओर अधिक तराशा गया है। कला व साहित्य की परस्पर घनिष्ठता न मात्र उसके उद्भव तक ही सीमित है बल्कि अब भी काल निरपेक्ष होकर अनवरत एक दूसरे में प्रेरणा ढूंढती है। कलाकार को अपने अंतर्मन के भावों का दर्पण काव्य की किन्हीं पंक्तियों में दिखता है तो कवि अपनी संवेदना को किसी चित्र में भरे गए रंगों में देख सृजन के लिए उत्साहित होता है।

कला व साहित्य की इसी समयहीन परस्परता पोलैंड की कवियित्री विस्लावा सिम्बोर्स्का की उन पंक्तियों में दिखाई देती है जब वह जॉन वरमीर की ग्वालिन के लिए लिखती हैं –

''जब तक रिज्क्सम्यूजियम की वह महिला

शांत और एकाग्रता में चित्रित

दिन प्रतिदिन

घड़े से कटोरे में दूध उड़ेलती रहेगी

तब तक दुनिया का अंत नहीं होगा''।

संदर्भ सूची –


- विवेक निराला : समकालीनता की अवधारणा और हिन्दी साहित्य, अनंता (1), 2014, पृ. 48
- ममता चतुर्वेदी : सौंदर्यशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, चतुर्थ संस्करण, 2009, पृ. 218
- रणजीत साहा : छवि के कविरूकवि की छवि,समकालीन कला (50), 2018, पृ. 62
- अन्नपूर्णा शुक्ला : वानगो और निराला,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,तृतीय संस्करण, 2019, पृ. 123
- कृष्णा महावर : कला की नवीन प्रवृत्तियां, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,प्रथम संस्करण, 2015, पृ.10
- गौतम चटर्जी : कलाओं का अंतर्संबंध : एक वृहत्तर दृष्टि, क्षेत्रीय समकालीन कला (2), 2007, पृ. 83
- गजानन माधव मुक्तिबोध : नए साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1971, पृ. 110
- https://share-google/VwOKF5ZBI4ehrilTu

# 24
# राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोक संगीत और साहित्य : एक सांस्कृतिक अध्ययन

शोधार्थी
**आदित्य तिवाड़ी**
संगीत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर।

निर्देशिका
**डॉ. नीलम सैन**
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर।

राजस्थान की सांस्कृतिक पहचान में आदिवासी जनजातियों की लोक परंपराओं का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ की भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, कंजर, सांसी आदि अनेक जनजातियाँ अपनी विशिष्ट जीवनशैली, कला और सांस्कृतिक धरोहर के लिए जानी जाती हैं। इन जनजातियों के लोकगीत, लोकनृत्य, वाद्ययंत्र और मौखिक साहित्य न केवल उनके सामुदायिक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं, बल्कि राजस्थान की सांस्कृतिक विविधता को भी सशक्त बनाते हैं। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य राजस्थान की आदिवासी जनजातियों के लोक संगीत और साहित्य का सांस्कृतिक दृष्टि से विश्लेषण करना है, ताकि इनके सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा कलात्मक आयामों को समझा जा सके।

लोक संगीत इनके जीवन के हर अवसर जन्म, विवाह, ऋतु–परिवर्तन, उत्सव, धार्मिक अनुष्ठान और कृषि–प्रधान गतिविधियाँ से जुड़ा हुआ है। मादल, ढोल, नगाड़ा, बाँसुरी, भपांग, रावणहट्टा जैसे वाद्य यंत्र इनके गीतों को जीवंत स्वर प्रदान करते हैं। इनके गीतों में प्रेम, प्रकृति, वीरता, आध्यात्मिकता और सामुदायिक बंधन की झलक मिलती है। इसी प्रकार मौखिक साहित्य कहानियाँ, लोककथाएँ, कहावतें, लोक–गाथाएँ जनजातीय अनुभवों की संवाहक है। यह साहित्य उनके ऐतिहासिक संघर्ष, सामाजिक व्यवहार और जीवनदर्शन का दर्पण है।

सांस्कृतिक अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में यह शोध यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी जनजातियों का संगीत और साहित्य केवल मनोरंजन या कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनकी सांस्कृतिक अस्मिता, सामूहिक स्मृति और पीढ़ी–दर–पीढ़ी ज्ञान–संरक्षण का माध्यम भी है। इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव से इन परंपराओं पर धीरे–धीरे संकट उत्पन्न हो रहा है। युवापीढ़ी का शहरीकरण, जनसंचार माध्यमों का प्रभाव और बदलती जीवनशैली के कारण मौलिक लोक परंपराएँ लुप्त होने की स्थिति में हैं।

इस शोध में गुणात्मक पद्धति अपनाई गई है, जिसमें प्राथमिक स्रोत के रूप में क्षेत्रीय सर्वेक्षण, साक्षात्कार और सहभागी अवलोकन का उपयोग किया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों में उपलब्ध साहित्य, शोध ग्रंथ और अभिलेखीय सामग्री सम्मिलित है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि इन परंपराओं का संरक्षण, प्रलेखन और पुनर्जीवन सुनिश्चित किया जाए तो न केवल राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित किया जा सकता है, बल्कि आदिवासी समुदायों की पहचान और आत्मगौरव को भी सशक्त किया जा सकता है।

अतः प्रस्तुत शोध राजस्थान की आदिवासी जनजातियों के लोक संगीत और साहित्य को एक व्यापक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास है, जो भविष्य में भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन और लोक परंपरा के संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध हो सकता है।

## राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का परिचय

राजस्थान भारतीय उपमहाद्वीप का वह प्रदेश है जहाँ विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। यहाँ निवास करने वाली आदिवासी जनजातियाँ न केवल इस राज्य की सांस्कृतिक

पहचान का अभिन्न अंग हैं, बल्कि भारतीय जनजीवन की परंपरागत मूल्यों और लोकसंस्कृति की जीवंत प्रतीक भी हैं। राजस्थान में कुल जनसंख्या का लगभग 13 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातियों से संबंधित है। राज्य की प्रमुख जनजातियों में भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथौडी, सांसी और अन्य उपजातियाँ प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं।

भील जनजाति को राजस्थान की सबसे प्राचीन और सबसे बड़ी जनजाति माना जाता है, जिनकी उपस्थिति उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर और सिरोही जिलों में विशेष रूप से पाई जाती है। इनकी संस्कृति में वीरता, लोकनृत्य, लोकगीत और पारंपरिक लोककला का महत्वपूर्ण स्थान है। मीणा जनजाति, जो मुख्यतः जयपुर, दौसा और अलवर जिलों में निवास करती है, सामाजिक रूप से अपेक्षाकृत संगठित और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली मानी जाती है। इसी प्रकार गरासिया जनजाति की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराएँ हैं, जिनमें सामूहिक नृत्य, गीत–संगीत और विवाह की अनूठी रीति–रिवाज प्रमुख हैं। ये जनजाति मुख्य रूप से डूंगरपुर ,बांसवाडा,पाली जिलों में पाई जाती है।

सहरिया जनजाति, जो कोटा और बारां जिलों में निवास करती है, आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत पिछड़ी होने के बावजूद अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता बनाए हुए है। इन जनजातियों का जीवन पर्यावरण और प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनके उत्सव, गीत, नृत्य और लोककथाएँ प्रकृति, ऋतु–परिवर्तन और मानव–जीवन के अनुभवों का सजीव चित्रण करती हैं।

आधुनिकता और वैश्वीकरण के युग में भी राजस्थान की जनजातियाँ अपनी लोकसंस्कृति और पारंपरिक मूल्यों को संजोए हुए हैं। उनके संगीत, नृत्य और कला के माध्यम से न केवल उनकी पहचान जीवित है, बल्कि यह भारतीय लोक–संस्कृति की निरंतरता का भी प्रतीक है। इस प्रकार राजस्थान की आदिवासी जनजातियाँ राज्य की सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक एकता की आधारशिला हैं।

**राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोकसंगीत**

राजस्थान का लोकसंगीत अपनी विविधता, भावनात्मक गहराई और सांस्कृतिक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। इस लोकसंगीत की जड़ों में यहाँ की आदिवासी जनजातियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। राजस्थान की आदिवासी जनजातियाँ भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथौडी, सांसी आदि अपने पारंपरिक गीतों और संगीत के माध्यम से जीवन के प्रत्येक पहलू को अभिव्यक्त करती हैं। उनका संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि उनकी सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है।

आदिवासी लोकसंगीत का आधार प्रकृति और लोकजीवन से जुड़ा हुआ है। इन जनजातियों के गीतों में वर्षा, फसल, विवाह, जन्म, पर्व, शिकार, श्रम और देवी–देवताओं की आराधना जैसे विषय प्रमुख रूप से मिलते हैं। उदाहरणार्थ, भील जनजाति के लोकगीतों में 'गवरी' नृत्य–संगीत का विशेष स्थान है, जो भगवान शिव और पार्वती की कथाओं पर आधारित होता है। यह संगीत धार्मिक आस्था, सामाजिक समरसता और सामूहिकता का प्रतीक है। इसी प्रकार गरासिया जनजाति के गीतों में प्रेम, प्रकृति और सामाजिक जीवन का अत्यंत भावनात्मक चित्रण मिलता है। उनके गीतों में लोकवाद्य जैसे ढोल, थाली, नगाड़ा, मोरचंग और बांसुरी का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है।

मीणा जनजाति के लोकगीतों में नारी जीवन, श्रम, सामाजिक परंपराओं और विवाह संस्कारों का गहन चित्रण देखने को मिलता है। सहरिया जनजाति के गीत प्रायः श्रम–संस्कृति से जुड़े होते हैं, जिनमें जीवन की कठिनाइयों, संघर्ष और आशा का स्वर सुनाई देता है। इन गीतों में समूहगान की परंपरा प्रमुख है, जिसमें सभी जन एक साथ स्वर मिलाकर गाते हैं यह उनके सामुदायिक जीवन और एकता की भावना को दर्शाता है। स्वांग नृत्य के माध्यम से व्यंग,पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओ का चित्रण किया जाता है। इसी प्रकार गरासिया जनजाति अपने सामाजिक जीवन को वालर,मांदल,लूर,मोरियो, आदि नृत्यों के माध्यम से प्रदर्शित करती है।

राजस्थान के आदिवासी लोकसंगीत में ताल और लय की विविधता अद्वितीय है। यहाँ प्रयुक्त वाद्ययंत्र, जैसे कि ढोल, चंग, ढप, थाली, बांसुरी, भपंग, अलगोजा, मोरचंग और मंजीरा, जनजातीय जीवन के अभिन्न अंग हैं। इन वाद्यों का निर्माण स्थानीय सामग्री से किया जाता है, जो उनके पारिस्थितिक ज्ञान और शिल्पकला की झलक प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार राजस्थान का आदिवासी लोकसंगीत केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह जनजातीय चेतना, सामूहिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता का दर्पण है। यह संगीत पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से प्रसारित होता आया है और आज भी राज्य की सांस्कृतिक आत्मा को जीवंत बनाए हुए है।

## राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोकसाहित्य

साहित्य वह सृजनात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें मानव जीवन, भावनाएँ, विचार, अनुभूतियाँ और समाज के विविध पहलू सौंदर्यपूर्ण एवं सार्थक रूप में शब्दों के माध्यम से प्रकट होते हैं। साहित्य मनुष्य के अनुभवों और संवेदनाओं का कलात्मक प्रतिबिंब है। यह केवल शब्दों का समूह नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और व्यक्ति के जीवन का दर्पण है। साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि रूपों में अपने विचारों को प्रस्तुत करता है। इसके माध्यम से लेखक अपने युग की समस्याओं, भावनाओं और आदर्शों को अभिव्यक्त करता है। साहित्य समाज को दिशा देता है, विचारों को परिष्कृत करता है और मानवीय मूल्यों को पुष्ट करता है।

राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोकसाहित्य उनकी जीवनशैली, विश्वास, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक चेतना का सजीव दर्पण है। यह साहित्य लिखित ग्रंथों की तुलना में मौखिक परंपरा पर आधारित है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी स्मृति, कथा, संगीत और अनुष्ठानों के माध्यम से जीवित रहा है। यहाँ की प्रमुख जनजातियाँ भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथौडी अपने विशिष्ट लोककथाओं, गीतों, पहेलियों, कहावतों और लोकनाट्य रूपों के लिए प्रसिद्ध हैं।

भील जनजाति का लोकसाहित्य धार्मिकता और वीरता का प्रतीक है। "गवरी" उनका प्रमुख लोकनाट्य रूप है, जो भगवान शिव और पार्वती की कथा पर आधारित होता है। इसमें "गवरी गीत" गाए जाते हैं, ये गीत भक्ति, प्रेम और प्रकृति के सामंजस्य का चित्रण करते है। जैसेः

"भोलेनाथ की गाथा गावे, पारवती रानी साथ में नाचे"

"भोला बामण आया रे, गवरी खेलन आई रे,

गावरिया नाचे बीच चौक में, डमरू बाजे धुन छाई रे।

शंकर पारवती हँसे रे, देवता सब आई रे,

भील नाचे बन झूम झूम के, धरती हरषाई रे।"

भील लोककथाओं में "राजा भील और नागकन्या" जैसी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्रेम, त्याग और चमत्कार का संगम मिलता है। इनके लोकगीतों में समाज के रीति– रिवाज,संगठन,सव्तंत्रता की झलक मिलती है। जैसे विवाह में जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता,विधवा विवाह होना,दहेज शून्यता आदि ऐसे गुण है जो आज के सभ्य कहे जाने वाले समाज में नहीं है।

(गीत)

मईलेषु मोरियों भाई है मुरिया थई थई रे–

मईलु केमुँ बड़ो मुरिया थई थई रे–

मइलु कषय हाव्ज्योदृ

वन में हिन्दू बडलो–

मीणा जनजाति के लोकगीतों में नारी जीवन और सामाजिक रीतियों का सजीव चित्रण मिलता है। विवाह गीतों में "सावन में झूलण झूलती सास बहू की जोड़ी" जैसे गीत पारिवारिक संबंधों की कोमलता और स्त्री की भावनाओं को दर्शाते हैं। मीणा लोककथाओं में भगवान विष्णु के मत्स्य अवतार का वर्णन मिलता है। जिनकी गाथाएँ धार्मिक आस्था की प्रतीक मानी जाती हैं। सांसी जनजाति की लोककथाओ में 'सांसमल' नामक व्यक्ति और बेडिया जाति से जुड़े किस्से मिलते है। गरासिया जनजाति की कथाएँ और

गीत प्रेम, प्रकृति और सामूहिकता से परिपूर्ण हैं। उनके विवाह गीतों में पारंपरिक संवाद और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिलती है, जैसेः

पेरीयो कोड़ी काल राज, झेरमरी यूँ

डंगरो मारवारों तो चारों, खूटोरे

नेढियारों नेमणों के लाल, हुकीरें, झेरमरीयूँ

यहाँ प्रकृति के माध्यम से प्रेम और उत्सव का भाव प्रकट होता है।सहरिया जनजाति का लोकसाहित्य उनकी कठिन जीवन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है। इनके श्रमगीतों मे थकान और आशा का मिश्रित स्वर सुनाई देता है, जैसेः

"कांधों पर लादे लकड़ी भारी, सूरज ढले तो मिले हमारी पारी।"

यह गीत श्रम, संघर्ष और आत्मनिर्भरता की भावना का प्रतीक है।

इनके अलावा डामोर और कथौडी जनजातियों की कथाओं में लोकविश्वास और मिथकीय तत्व प्रमुख हैं। जैसे "वनदेवी और बाघदेव" की कथा, जिसमें देवताओं की कृपा और प्रकृति की शक्ति का वर्णन मिलता है।

राजस्थान के आदिवासी लोकसाहित्य में कहावतें भी गहरी सामाजिक समझ प्रस्तुत करती हैं। जैसे

"जंगल बोले, तो धरती डोले" यह प्रकृति के प्रति आदर और संवेदनशीलता का प्रतीक है।

"पानी बचे तो जीवन बचे" यह पर्यावरण चेतना का संदेश देती है।

इन जनजातियों का लोकसाहित्य समाज की नैतिकता, पर्यावरणीय दृष्टि, लैंगिक समानता और सामूहिकता के मूल्य स्थापित करता है। इस प्रकार राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोकसाहित्य न केवल उनके जीवन का दर्पण है, बल्कि यह भारतीय लोकसंस्कृति की सृजनात्मकता और मानवीय मूल्यों का अमूल्य खजाना भी है।

## संगीत और साहित्य का परस्पर संबंध

राजस्थान की आदिवासी जनजातियों में लोक संगीत और लोक साहित्य का संबंध अत्यंत गहरा और अविभाज्य है। यह संबंध केवल कलात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का मूल तत्व है। लोकगीतों, लोककथाओं और लोकगाथाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से सजीव हो उठती है। इस परंपरा में शब्द और स्वर, कथा और लय, एक–दूसरे में इस प्रकार गुंथे हैं कि वे सामूहिक जीवन का संपूर्ण दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इन गीतों की साहित्यिक सामग्री मौखिक परंपरा से संरक्षित रहती है, और संगीत उसे जीवंत बनाता है। लोकगाथाएँ जैसे "देवनारायण जी की कथा", "बाणेसर की गाथा" या "पाबूजी की पड" में कथा–साहित्य और गायन का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। इन गाथाओं को भोपों द्वारा सारंगी या रावणहत्था की ध्वनि पर गाया जाता है जहाँ साहित्यिक भाव, सुर और ताल के माध्यम से जन–चेतना तक पहुँचता है।

संगीत और साहित्य का यह संबंध केवल मनोरंजन का नहीं, बल्कि समाज के नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक एकता के संरक्षण का माध्यम है। गीतों के माध्यम से लोक साहित्य स्मृति में जीवित रहता है, जिससे जनजातियाँ अपनी पहचान और परंपरा से जुड़ी रहती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की आदिवासी जनजातियों में संगीत और साहित्य का संबंध जीवन और संस्कृति के अभिन्न स्वरूप के रूप में विद्यमान है।

## वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण का प्रभाव

राजस्थान की आदिवासी जनजातियाँ सदियों से अपनी विशिष्ट लोक संस्कृति, संगीत, साहित्य और परंपराओं के माध्यम से अपनी पहचान बनाए हुए हैं। परंतु पिछले कुछ दशकों में वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण की लहर ने उनके सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। आधुनिक

संचार माध्यमों, बाजारवाद, शिक्षा और नगरीकरण ने आदिवासी जीवनशैली, कला और लोक परंपराओं को नई दिशा दी है। जहाँ परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।

सबसे पहले लोक संगीत और साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन देखा गया है। पहले जो गीत प्रकृति, देवी–देवताओं, खेती या सामूहिक श्रम से जुड़े होते थे, अब उनमें फिल्मी धुनों, आधुनिक वाद्ययंत्रों और लोकप्रिय संस्कृति का प्रभाव बढ़ गया है। उदाहरणस्वरूप, सहरिया और गरासिया जनजातियों के विवाह गीतों में अब पारंपरिक धुनों के साथ आधुनिक "DJ" या "सिंथेसाइजर" का प्रयोग देखा जाता है। इस परिवर्तन से जहाँ नई पीढ़ी में आकर्षण बढ़ा है, वहीं पारंपरिक शुद्धता और भावात्मक गहराई कहीं खोती जा रही है।

लोक साहित्य के क्षेत्र में भी आधुनिक शिक्षा और मीडिया ने मौखिक परंपराओं को चुनौती दी है। जो कथाएँ और गाथाएँ पहले बुजुर्गों के माध्यम से पीढ़ियों तक पहुँचती थीं, अब उनके स्थान पर मोबाइल, टेलीविजन और सोशल मीडिया ने ले लिया है। परिणामस्वरूप, मौखिक साहित्य की निरंतरता में कमी आई है। हालाँकि सकारात्मक पहलू यह है कि कई सरकारी और गैर–सरकारी संगठन अब इन परंपराओं को डिजिटल रूप में संग्रहित कर रहे हैं। विश्वविद्यालयों और सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा लोक कलाकारों को मंच प्रदान किया जा रहा है, जिससे इन परंपराओं के संरक्षण की संभावनाएँ बनी हुई हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने राजस्थान की आदिवासी संस्कृति को नई चुनौतियाँ तो दी हैं, परंतु साथ ही संरक्षण और नवाचार के अवसर भी उत्पन्न किए हैं।

### संरक्षण और पुनर्जीवन के प्रयास

राजस्थान की आदिवासी जनजातियों की लोक संस्कृति, संगीत और साहित्य आज भी राज्य की सांस्कृतिक विविधता का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। परंतु आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव से ये परंपराएँ धीरे–धीरे विलुप्त होने की स्थिति में पहुँच रही हैं। ऐसे में संरक्षण और पुनर्जीवन के प्रयास अत्यंत आवश्यक और सार्थक सिद्ध हो रहे हैं।

सबसे पहले, सरकारी स्तर पर राजस्थान सरकार द्वारा कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं। जैसे लोक कला प्रोत्साहन योजना, जनजातीय अनुसंधान संस्थान (उदयपुर) और राजस्थान साहित्य अकादमी के माध्यम से लोक कलाकारों को आर्थिक सहायता, प्रशिक्षण, और मंच प्रदान किया जा रहा है। राजस्थान संगीत नाटक अकादमी (जोधपुर) भी लोक कलाकारों की प्रतिभा को पहचानने और संरक्षण हेतु वार्षिक उत्सव आयोजित करती है।

गैर–सरकारी संगठनों का योगदान भी उल्लेखनीय है। रूपायन संस्थान, जोधपुर और लोक कला मंडल, उदयपुर जैसे संस्थान आदिवासी लोक गीतों, वाद्ययंत्रों और परंपरागत नृत्यों का अभिलेखन कर रहे हैं। उन्होंने हजारों लोकगीतों और गाथाओं को रिकॉर्ड कर डिजिटल माध्यमों पर संरक्षित किया है, जिससे यह धरोहर आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रहे।

विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में भी अब लोक संगीत और आदिवासी साहित्य पर शोध कार्यों को बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही, स्थानीय स्तर पर समुदायों द्वारा स्वयं–संचालित उत्सव जैसे "गवरी महोत्सव" और "भील लोक–उत्सव" पारंपरिक रूप से लोक संगीत और साहित्य को जीवित रखने का माध्यम बने हुए हैं।

### निष्कर्ष और सुझाव

राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोक संगीत और साहित्य राज्य की सांस्कृतिक धरोहर का मूल स्तंभ है। भील, मीणा, गरासिया, सहरिया और डामोर जैसी जनजातियों की परंपराएँ इस बात का प्रमाण हैं कि कला केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन का दर्पण और सामूहिक पहचान का प्रतीक भी है। उनके गीतों, कथाओं और गाथाओं में श्रम, प्रकृति, प्रेम, वीरता और आस्था की गूंज सुनाई देती है।

शोध के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज की संस्कृति मौखिक परंपरा, संगीतात्मक अभिव्यक्ति और सामुदायिक एकता पर टिकी हुई है। लोक संगीत और साहित्य का यह मेल उनके समाज की आत्मा है, जो उन्हें इतिहास, परंपरा और वर्तमान से जोड़ता है। किंतु वैश्वीकरण, शहरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव ने इस परंपरा को कई स्तरों पर चुनौती दी है। नई पीढ़ी का झुकाव आधुनिक संगीत और डिजिटल माध्यमों की ओर बढ़ने से मौलिक लोक विधाओं का लोप हो रहा है।

इस परिप्रेक्ष्य में कुछ ठोस सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैंः

- शिक्षा संस्थानों में लोक संस्कृति और संगीत के अध्ययन को अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाए।
- डिजिटल आर्काइव्स और ऑडियो–वीडियो डॉक्यूमेंटेशन के माध्यम से लोकगीतों, गाथाओं और वाद्ययंत्रों का स्थायी संरक्षण किया जाए।
- सरकारी योजनाओं के तहत लोक कलाकारों को आर्थिक सहायता और सम्मान प्रदान किया जाए।
- गांव और जनजातीय क्षेत्रों में सांस्कृतिक उत्सवों को बढ़ावा देकर समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
- युवाओं को पारंपरिक संगीत और साहित्य से जोड़ने के लिए प्रशिक्षण शिविर और कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ।

अंततः यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का लोक संगीत और साहित्य भारतीय संस्कृति की उस जीवंत परंपरा का हिस्सा है जो निरंतर विकसित होती रही है। इसके संरक्षण और संवर्धन से न केवल सांस्कृतिक विविधता सशक्त होगी, बल्कि समाज में सामूहिक चेतना और मानवीय मूल्यों का पुनर्संवर्धन भी संभव होगा।

**संदर्भ ग्रंथ**

1. सैनी, एस. के. (2002). राजस्थान के आदिवासी. जयपुरः यूनिक ट्रेडर्स।

2. व्यास, एन. एन. (2016). द सहरिया ए प्रिमिटिव ट्राइब इन ट्रांजिशन. जयपुरः हिमांशु पब्लिकेशन।

3. शेखावत, अ. स., एवं मृदुल, श. (2017). गारासिया जनजाति की आदिवासी संस्कृति (Tribal Culture of Garasia's) (द्वितीय संस्करण). जयपुरः आर. जी. पब्लिकेशन।

4. श्रीवास्तव, र. (2020). राजस्थान का लोक संगीत (प्रथम संस्करण). हिमांशु पब्लिकेशन।

5. नीरज, ज. स., एवं शर्मा, भ. ल. (2020). राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा. जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।

6. आहुजा, डी. आर. राजस्थानःलोक संस्कृति और साहित्य. नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, 2023.

7. Ministry of Tribal Affairs. (2023). List of Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs). Government of India.

25

# कला में साहित्य और गोदना की यात्रा : गोदना कला में प्रयुक्त प्रतीकों का लोक साहित्य, कहावतों और मुहावरों में स्थानांतरण और उनके सांस्कृतिक निहितार्थ

**डॉ. महेश सिंह**
सह आचार्य, चित्रकला विभाग, दृश्य कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
भावना मिश्रा, शोध छात्रा, चित्रकला विभाग, दृश्य कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**सारांश**

यह शोध पत्र भारतीय लोक जीवन की महत्वपूर्ण कला गोदना कला (पारंपरिक टैटूकला) और उसके मौखिक साहित्य (लोकसाहित्य,कहावतों और मुहावरों) के बीच के गहरे अंतर्संबंधों का अन्वेषण करता है। गोदना केवल शरीर पर अंकित एक डिजाइन मात्र नहीं है, यह एक गतिशील सांस्कृतिक पाठ है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है। इस अध्ययन का केंद्रीय उद्देश्य गोदना कला में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख प्रतीकों की पहचान करना और यह विश्लेषण करना है, कि ये दृश्य प्रतीक किस प्रकार साहित्यिक रूप् में परिवर्तित होकर लोककथाओं, गीतों, कहावतों और मुहावरों में समाहित हो गए हैं, जिससे उनके सांस्कृतिक निहितार्थ और भी समृद्ध हो गए हैं। परंपरागत रूप से , गोदना कला का अध्ययन अधिकतर नृवंशविज्ञान (Ethnography) या दृश्य कला इतिहास के दायरे में हुआ है। यह शोध इस दायरे का विस्तार करते हुए गोदना को एक अंतर–प्रतीकात्मक विमर्श के रूप में स्थापित करता है। यह एक ऐसा ढांचा प्रस्तुत करता है जहां एक दृश्य भाषा (गोदना) का रूपांतरण और पुनर्व्याख्या एक वाचिक भाषा (लोक साहित्य) में होती है। क्योंकि लोक कलाओं का अर्थ उनके मौखिक प्रयोग और अभिव्यक्ति में है, न कि सिर्फ दृश्य रूप में। इसका मुख्य उद्देश्य मध्यभारत और दक्कन में प्रचलित गोदना के प्रमुख प्रतीकों जैसे सर्प, मोर, सूर्य, तारे, कमल, वृक्ष आदि की पहचान करना और उनके मूल धार्मिक, सामाजिक या कार्यात्मक अर्थों का पता लगाना और यह समझना कि मौखिक परंपरा में इन प्रतीकों के मूल अर्थों को किस प्रकार संरक्षण विस्तृत या योग्य आवश्यकताओं के अनुसार बदल दिया गया है। इस प्रतीकात्मक स्थानांतरण के गहरे सांस्कृतिक निहितार्थों को समझना चाहिए, जो सामाजिक पहचान , लैंगिक भूमिकाओं, स्वास्थ्य, और संरक्षण (Amulet) के निर्माण में गोदना की कला और साहित्यिक भूमिका को स्पष्ट करते हैं। यह शोध गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। और प्रमाणिक लोक कथाओं गीतों, मुहावरों और कहावतो के विशाल संग्रह से गोदना से संबंधित प्रतीकों की खोज करना और उसके साहित्यिक संबंधों को वर्गीकृत करना। यह अध्ययन दृढ़ता से प्रमाणित करेगा कि गोदना के प्रतिको का लोक साहित्य में स्थानांतरण उसके कार्यात्मक अर्थ को मजबूत करता है और सांस्कृतिक चेतना को साहित्य प्रदान करता है। यह प्रक्रिया न केवल गोदना की कला की महत्ता को प्रमाणित करती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि दृश्य कला और मौखिक परंपरा एक ही सांस्कृतिक चेतना के दो अभिन्न अंग है, जो एक दूसरे को निरंतर पुष्ट करते हैं। यह शोध पत्र भारतीय लोक जीवन से लुप्त होती लोक कलाओं के संरक्षण और उनके साहित्यिक सांस्कृतिक अध्ययन के लिए एक अभिनव सैद्धांतिक मार्ग प्रशस्त करेगा।

**मुख्य शब्द** – गोदना, लोक, कहावतें, मुहावरे, परंपरा, आदिवासी कला, वाचिक, प्रतीकात्मक स्थानांतरण

## प्रस्तावना

**भारतीय लोक–जीवन में गोदना कला का सांस्कृतिक महत्व** – भारत के लोक जीवन में गोदना केवल शरीर का अलंकरण ही नहीं है बल्कि यह एक केंद्र सांस्कृतिक परंपरा की पहचान भी है। यह कला शरीर पर उकेरी गई लकीरों में समाज,परंपरा और जीवन के अनुभवों को व्यक्त करती है। गोदना भी धार्मिक विश्वास, सामाजिक स्थिति और जीवन के महत्वपूर्ण अवसरों को दर्शाता है यह सिर्फ एक कला

नहीं जीवन पद्धति है जो सांस्कृतिक मूल्यों, ज्ञान और रीति रिवाज को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करती है।

## गोदनाः एक स्थिर दृश्य कला से एक जीवंत सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तक

परंपरागत रूप से, गोदना कला को एक स्थिर कला के रूप में माना जाता है। जिसका अध्ययन सौंदर्यशास्त्र या नृवंशविज्ञान की सीमा में किया जाता है। इस धारणा को यह शोध चुनौती देता है। पहले के समय में विद्वानों और शोधकर्ताओं ने गोदना को केवल एक स्थिर, निर्जीव कला के रूप में देखा है। उनके अनुसार गोदना शरीर पर बना एक स्थायी बनावटहै जो बदलता नहीं है इसलिए इसका अध्ययन सिर्फ कला (Aesthetic) या समाज–विज्ञान (ethnography) से किया गया था पर यह विचार गलत है। वास्तव में, गोदना सक्रिय और जीवंत है। शरीर पर लकीरें हमेशा स्थिर रहती हैं, लेकिन उनके अर्थ बदलते रहते हैं। ये बदलाव हमें कहानियों, गीतों, लोकगाथाओं , और परिवार की कथाओं के माध्यम से दिखाई देते हैं। इसलिए गोदना केवल कला नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक बातचीत है जो मौखिक परंपरा के साथ निरंतर चलती रहती है।

## समस्या कथनः नृवंशविज्ञान सीमा से अंतर–प्रतीकात्मक विमर्श की आवश्यकता

अब तक गोदना पर जितने भी शोध हुए हैं, वे प्रायः एक ही दिशा में केंद्रित रहे हैं। गोदना की उत्पत्ति कहाँ से हुई? इसे कैसे बनाया जाता है? (प्रक्रिया) किस समाज में और किस इलाके में यह चलन है? सामाजिक दृष्टि से इसका क्या महत्व है?

यानी, नृवंशविज्ञान सीमा (ethnographic) के भीतर। अब तक, गोदना के प्रतीकों का अंतर–प्रतीकात्मक पठन उपेक्षित रहा है। यह इस अध्ययन की मुख्य समस्या है। हमें केवल यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि 'यह प्रतीक क्या है', बल्कि यह जानने की आवश्यकता है कि मौखिक कथन 'इस प्रतीक को क्या बनाते हैं। हर गोदने में कुछ संकेत हैं रूपप्राणियों, पौधों, ज्यामितीय डिजाइनों, धार्मिक चिन्हों आदि इस के होने बावजूद, ये प्रतीक अकेले नहीं रह सकते। जब वे कहानियों, गीतों और मिथकों (myths and legends) के साथ होते हैं, तो उनका अर्थ पूरा होता है।

## शोध का केंद्रीय सिद्धांतः दृश्य प्रतीकों के वाचिक स्थानांतरण से अर्थों का सुदृढ़ीकरण

यह शोध इस केंद्रीय सिद्धांत पर आधारित है कि दृश्य प्रतीकों का वाचिक स्थानांतरण (verbal transference of visual symbol) गोदना के अर्थों को केवल दोहराता नहीं, बल्कि उन्हें सुदृढ़ और गहरा करता है। जब नानी एक गोदना के प्रतीक की कहानी सुनाती है, तो वह प्रतीक न केवल एक 'चिह्न' रहता है, बल्कि सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक चेतना का एक शक्तिशाली 'वाहन' बन जाता है। नानी द्वारा सुनाई कहानियाँ थोड़ी बदली हुई हो सकती है, कुछ नए विवरण जुड़ सकते हैं, पर उनका मूल संदेशवही रहेगा। यही बार–बार दोहराई जाने वाली कहानी गोदने के प्रतीक को जीवंत बनाए रखती है। बिना कहानी के, गोदना सिर्फ एक डिजाइन रह जाता है। कहानी के साथ, वह सांस्कृतिक विरासत बन जाता है।

## शोध के उद्देश्य

गोदना प्रतीकों की एक संकेतक (ignifier) दृश्य संकेतित (ignified) सूची बनाना। इन प्रतीकों से संबंधित कहानियों का संग्रह और विश्लेषण करना। यह सिद्ध करना कि वाचिक स्थानांतरण के माध्यम से गोदना के सांस्कृतिक और सामाजिक अर्थों को स्थायित्व मिलता है। नृवंशविज्ञान और प्रतीक विज्ञान के बीच एक अंतर–विषयक मॉडल विकसित करना। गोदना एक ऐसी कला है जो केवल शरीर पर नहीं, बल्कि समाज की स्मृति में, परिवार की कहानियों में, और पीढ़ियों की बातचीत में रहती है।

## साहित्य अवलोकन

### गोदना कला पर मौजूदा अकादमिक विमर्शः नृवंशविज्ञान और दृश्य कला का दायरा

उत्पत्ति, प्रक्रिया, क्षेत्रीय विविधताओं और उसके सामाजिक उपयोग (जैसे अनुष्ठान और समूह पहचान) पर मुख्य ध्यान दिया गया है। दृश्य कला का दायरा गोदना को एक स्थिर रूपांकन (static motif) मानता है, जो सामग्री और सौंदर्य पर जोर देता है। हम इस खंड में इन अध्ययनों की आलोचनात्मक समीक्षा करेंगे और सिद्ध करेंगे कि वे गोदना के गतिशील, वाचिक–आधारित अर्थों को समझने में अपर्याप्त रहे हैं।

वर्तमान शोध को सैद्धांतिक आधार प्रदान करने के लिए, हम अंतर–प्रतीकात्मकता और अंतर–माध्यमिकता के सिद्धांतों का सहारा लेंगे।

अंतर–प्रतीकात्मकता : यह सिद्धांत कहता है कि एक प्रतीक का अर्थ दूसरे प्रतीकात्मक माध्यम (जैसे गोदना का दृश्य प्रतीक और उससे जुड़ी लोक कथा का वाचिक प्रतीक) से मिलकर पैदा होता है।

अंतर–माध्यमिकता : यह सिद्धांत गोदना (एक दृश्य/ध्दैहिक माध्यम) और लोक कथाओं/गीतों (एक वाचिक माध्यम) को एक ही सांस्कृतिक संदेश के दो अभिन्न, परस्पर जुड़े हुए माध्यमों के रूप मानता है। गोदना को एक बहु–माध्यमिक सांस्कृतिक पाठ के रूप में समझने के लिए इन सिद्धांतों का उपयोग किया जाएगा।

जिन लोगों का मानना है कि लोक कथाओं का अर्थ वाचिक अभिव्यक्ति में निहित है, उन पर भी साहित्य अवलोकन केंद्रित होगा। यह बातचीत स्थानांतरण गोदना के सांस्कृतिक महत्व को गहनता और स्थायित्व देता है, जिससे कला केवल दृश्य प्रमाण न रहकर पीढ़ी–दर–पीढ़ी स्थानांतरित होने वाला ज्ञान बन जाती है। शोध की विशिष्टता और प्रभाव वर्तमान शोध ने गोदना को प्रतीकात्मक और वाचिक चर्चा का सक्रिय स्थान मानकर इन बहसों के अंतराल को भर दिया है। दृश्य कला और वाचिक परंपरा को समझने के लिए एक अंतर–प्रतीकात्मक मॉडल बनाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

### शोध पद्धति

**गुणात्मक शोध उपागमः व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण –** इस शोध में गुणात्मक शोध पद्धति अपनाई जाएगी क्योंकि गोदना कला में सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक अर्थ को समझने के लिए स्रोत की गहराई की आवश्यकता होती है। जिसके लिए पर्याप्त संख्यात्मक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इसमें दो मुख्य दृष्टिकोण रहेंगे।

**व्याख्यात्मकः** शोधकर्ता गोदना के प्रतीकों का विश्लेषण करेंगे और उनके सांस्कृतिक, सामाजिक निहितार्थों को समझने की कोशिश करेंगे, केवल उनकी उपस्थिति का विवरण नहीं देंगे।

**वर्णनात्मकः** गोदना की प्रक्रिया, शैली, डिजाइन, और उससे जुड़ी लोक कथाओं व गीतों का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाएगा। इससे हमें किसी समुदाय के भीतर गोदना की जड़ों और धार्मिक–सामाजिक महत्व को जानने में मदद मिलेगी।

### डेटा संग्रह के स्रोतः दृश्य, और वाचिक आधारित प्रमाण

इस शोध के लिए दो तरह की सामग्री का संग्रहण किया जाएगा– **दृश्य प्रमाणः** इसमें गोदना के डिजाइन, चित्र, फोटोग्राफ, स्केच और संबंधित कलाकृतियाँ शामिल होंगी, जिससे प्रतीकों का अध्ययन संभव हो सके।

**वाचिक प्रमाणः** लोक कथाएँ, कहावतें, गीत, मिथक आदि रिकॉर्ड कर उनका लिप्यंतरण किया जाएगा। इससे पता चलेगा कि प्रतीक लोक साहित्य में कैसे स्थानांतरित होते हैं और उनका क्या अर्थ उभरता है।

### दृश्य–वाच्य विश्लेषणः प्रतीकात्मक अध्ययन

शोध का मुख्य केंद्र गोदना के डिजाइनों और उनसे जुड़े मौखिक तत्वों को साथ जोड़कर विश्लेषण करना है।

**दृश्य प्रतीक की पहचानः** गोदना में प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट प्रतीक (जैसे बिच्छू, मोर, सूर्य आदि) को श्रेणियों में विभाजित किया जाएगा।

**वाचिक सहसंबंधः** इन प्रतीकों से जुड़ी वाचिक कहानियों, उनके नामकरण और उनके सांस्कृतिक "कार्य" का पता लगाया जाएगा।

**अंतर–प्रतीकात्मक व्याख्याः** यह विश्लेषण करेगा कि वाचिक कथाएँ किस प्रकार दृश्य प्रतीकों के अर्थों को बढ़ावा, देती है। और उनका विरोध या विस्तार करती हैं। यह प्रक्रिया गोदना को कला के अतिरिक्त संचार का एक द्वैध माध्यम सिद्ध करेगी।

### पाठ–आधारित थीमेटिक मैपिंगः लोक साहित्य में प्रतीकों का वर्गीकरण

वाचिक डेटा (लोक कथाएँ, गीत) का विश्लेषण थीमेटिक मैपिंग द्वारा किया जाएगा। डेटा का विश्लेषण करेगा, जैसे लोक कथाएँ और गीत। रिकॉर्ड किए गए पाठों को ट्रांसक्राइब किया जाएगा और उनमें से बार–बार आने वाले विषयों, जैसे 'सुरक्षा', 'जनन क्षमता', 'वीरता', या 'सामाजिक बहिष्कार' को कोड किया जाएगा। यह कोडिंग के माध्यम से गोदना प्रतीकों के व्यापक सांस्कृतिक संरक्षकों को समझने में मदद मिलेगी।इस शोध–पद्धति से गोदना कला के विविध आयामों और लोक साहित्य के बीच के संवाद को गहराई से समझना आसान होगा।

### गोदना प्रतीकों का विश्लेषण और वाचिक स्थानांतरण

गोदना भारतीय लोक–जीवन और आदिवासी संस्कृति की एक अनोखी कला है, जिसमें शरीर पर उकेरे जाने वाले चित्र केवल कलाकृति नहीं हैं, बल्कि पूरे समाज, धार्मिक विचारों और व्यक्तिगत जीवन के प्रतीक बन जाते हैं। इस कला में उपयोग किए गए प्रत्येक प्रतीक का गूढ़ अर्थ है, जो न केवल सौंदर्य को दर्शाता है, बल्कि आम संस्कृति, समाजिक व्यवस्था और जीवन–मूल्यों को भी दिखाता है। इन प्रतीकों के अर्थ न केवल उनके दृश्य रूप में, बल्कि मौखिक साहित्य (कहानियाँ, गीत, कहावतें, मुहावरे) में भी होते हैं, इस भाग में हम तीन प्रमुख प्रतीकों सर्प, कमलवृक्ष, और खगोलीय आकृतियाँ (सूर्य, तारे, ज्यामितीय आकार) के दृश्य और वाचिक रूपांतरण का विश्लेषण करेंगे।

### सर्प प्रतीकः सुरक्षा से चेतावनी तक

गोदना में कार्यात्मक अर्थ – गोदना में सर्प का चिन्ह अक्सर सुरक्षा और उर्वरता का संकेत है। जनजातीय समाजों का मानना है कि सर्पविष हमें बुरी आत्माओं, रोगों और नजर–टोना से बचाता है। कई समुदायों में, खासकर महिलाओं में, प्रजनन या स्वास्थ्य संरक्षण के लिए सर्प को गोदना गुदवाना एक परंपरा है। बस्तर और झारखंड में आज भी यह सांस्कृतिक परंपरा जीवित है।

### लोक कथाएँ और मिथक

लोक कथाओं और क्षेत्रीय मिथकों में सर्प को ब्रह्मांड, नागलोक, पृथ्वी की रक्षा, देवी–देवताओं के वाहन या शक्ति (कुंडलिनी) से जोड़ा गया है। उदाहरण के लिए, कई आदिवासी समाजों में "नाग–देवता" की पूजा की कहानियाँ मिलती हैं,

### कहावतें और मुहावरे

हिंदी के मुहावरों और कहावतों में सर्प का सबसे अलग अर्थ होता है, जैसे "आस्तीन का साँप", जो एक निकट विश्वासघाती व्यक्ति को बताता है। यहाँ, सर्प का अर्थ चेतावनी और खतरे से जुड़ा हुआ है, जो सामाजिक अनुभवों और जीवन की सावधानी को दर्शाता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतीक का अर्थ मजबूत नहीं है, बल्कि कभी कभीसंदर्भ के अनुसार बदल जाता है।

### कमल और वृक्ष प्रतीकः सुंदरता, उर्वरता और स्थायित्व

गोदना में सौंदर्य और मंगला– भारतीय संस्कृति में कमल पवित्रता, सौंदर्य और नवजीवन का प्रतीक है। गोदना में कमल विशेष रूप से महिलाओं द्वारा गुदवाया जाता है, जिससे उनके जीवन में सुंदरता,

शुद्धता और स्त्रीत्व का भाव प्रबल होता है। वृक्ष, जैसे बरगद या पीपल, वंश, अस्तित्व और निरंतरता का प्रतीक हैं। कई समुदायों में वृक्ष गोदना शादी, संतान प्राप्ति या कुल–रक्षा हेतु विशेष रूप से प्रचलित है।

## लोक गीतों में प्रतीक रूपांतरण

विवाह गीतों और अनुष्ठानिक लोकगीतों में कमल और वृक्ष का अर्थ और अधिक गहरा हो जाता है। नववधू की कोमलता, उज्ज्वल भविष्य और पवित्रता के लिए कमल से तुलना की जाती है। वृक्ष को आश्रय, छाया और परिवार की स्थिरता के प्रतीक के रूप में गाया जाता है।

**कहावतों में स्थायित्व और पवित्रता के प्रतीकात्मक अर्थ की निरंतरता** – हिंदी की कहावतें – जैसे "कमल कीचड़ में भी पवित्र रहता है" – दर्शाती हैं, कि कमल की शुद्धता समाज को नैतिक पाठ सिखाती है "बरगद–जैसा साहस" जैसी उपमाएँ किसी व्यक्ति की धार्मिक दृढ़ता और साहस को दिखाती हैं। ये कहावतें प्रतीकों के पारंपरिक और धार्मिक अर्थ को पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित करती हैं।

## सूर्य, तारे और ज्यामितीय आकृतियाँः खगोलीय शक्ति से सामाजिक पहचान तक

गोदना के मूल उद्देश्य – सूर्य या तारा गोदना में शक्ति, आरोग्य, दिशा और भाग्य का प्रतीक है। सूर्य को स्वास्थ्य, ऊर्जा और बुरी नजर से बचाव के लिए बताया जाता है, जबकि तारे मार्गदर्शन और सौभाग्य के संकेत हैं। गोल, त्रिकोण या बिंदी जैसी आकृतियाँ सुरक्षा, मंडल–रचना या धार्मिक सीमा का संकेत करती हैं।

## लोक साहित्य में काल गणना और भाग्य के रूपकों में स्थानांतरण

सूर्य को लोक साहित्य और पहेलियों में समय और काल के नियंत्रक के रूप में देखा जाता है, और तारों को भाग्य, नियति और भविष्य के संकेत के रूप में स्थानांतरित किया जाता है। ये रूपक प्रतीकों को दैनिक जीवन से उठा कर ब्रह्मांड, काल और मनुष्य की नियति से जोड़ते हैं।

## ज्यामितीय प्रतीकों का सामुदायिक एकता और पहचान के वाचिक रूप में चित्रण

कई समुदायों में, गोदना की विशिष्ट ज्यामितीय आकृतियाँ सामुदायिक एकता का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसकी कहानी लोकगीतों और उत्पत्ति मिथकों में दोहराई जाती है। इस तरह, शरीर पर एक साधारण त्रिकोण या वृत्त, जो व्यक्ति को समाज में अपनी विशिष्ट स्थिति बताता है, वाचिक रूप से उस सामूहिक पहचान का प्रतिनिधित्व करता है।

यह विश्लेषण स्पष्ट रूप से दिखाता है कि गोदना प्रतीक (दृश्य) और लोक साहित्य (वाचिक) का संबंध पूरक और द्वंद्वात्मक है, जो प्रतीक के अर्थों को समृद्ध और बहुआयामी बनाता है।

## परिणाम और सुझाव

यह अध्ययन बताता है कि गोदना के प्रतीकों का मौखिक साहित्य में स्थानांतरण उनके अर्थों को बचाता है और उन्हें सामाजिक, धार्मिक और ब्रह्मांडीय आयामों तक बढ़ाता है। स्थानीय गीत, कहावतें और मिथक इन प्रतीकों की गहराई को बढ़ाते हैं, जिसमें वे सांस्कृतिक चेतना के शक्तिशाली स्तंभ बनाते हैं। गोदना कला और इससे जुड़ी मौखिक परंपराओं का संरक्षण, व्यवस्थित दस्तावेजीकरण और अंतर्विषयक शोध आवश्यक है ताकि यह बहुआयामी सांस्कृतिक धरोहर आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सके।साथ ही, स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी और शिक्षा प्रणाली में इनकी विवेचना पर जोर दिया जाना चाहिए।

## सांस्कृतिक निहितार्थ और निष्कर्ष

यह शोध पत्र बताता है कि गोदना कला और उससे जुड़ी वाचिक परंपरा केवल कलात्मक नहीं बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक संचार का माध्यम हैं। गोदना प्रतीकों का वाचिक स्थानांतरण व्यक्ति और समुदायों को उनके गोत्र, जाति और सामाजिक स्थिति से जोड़ता है। यह कला विशेष रूप से महिलाओं के लिए लैंगिक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक चेतना का महत्वपूर्ण माध्यम है, जो लोककथाओं

और गीतों के साथ प्रकट होती है, जो स्वास्थ्य, सौंदर्य और प्रजनन से संबंधित हैं। प्रतीकों का संरक्षण अमूलेट के रूप में भी होता है, जिसकी शक्ति वाचिक मंत्रों और कहावतों से स्थायी बनी रहती है।

### दृश्य कला और मौखिक परंपरा का सह–अस्तित्व

प्रतीकात्मक स्थानांतरण द्वारा सांस्कृतिक चेतना को प्राप्त स्थायित्व – यह अध्ययन स्पष्ट रूप से कहता है कि गोदना का प्रतीकात्मक स्थानांतरण (दृश्य से वाचिक और पुनः वाचिक से दृश्य तक) इस कला रूप को सांस्कृतिक चेतना प्रदान करता है। वाचिक पुनरावृत्ति न केवल प्रतीक का अर्थ स्मृति में रखती है, बल्कि इसे विस्मृति के खिलाफ एक मजबूत सांस्कृतिक ढाल बनाती है।

### दृश्य कला और वाचिक परंपराः एक ही सांस्कृतिक चेतना के पूरक और अभिन्न अंग

अंततः, गोदना की कला (दृश्य) और उससे जुड़ी लोक कथाएँ (वाचिक परंपरा) एक ही सांस्कृतिक चेतना के दो अभिन्न अंग हैं। दृश्य प्रतीक भौतिकता देते हैं जबकि वाचिक कथाएं उन्हें अर्थ और जीवन प्रदान देती है। यह आशिकी तो बताता है कि भारतीय लोक संस्कृति में कला केवल देखने के लिए नहीं, बल्कि जीने और सुनाने के लिए है।

### संदर्भ

1. ″गोदनाः सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ.″ Sahapedia] Directorate of Culture and Archaeology] Government of Chhattisgarh] http://www-sahapedia org/gaodanaa - saamaajaika - evan - saansakartaika - sanadarabhagodna - tattooing - cultural - and - social - practice- Accessed 31 Oct- 2025
2. "Godna"- Map Academy, mapacademy-io/article/godna/- Accessed 31 Oct- 2025
3. ″झारखंड की संस्कृति." Jharkhand Culture, jharkhandculture-com/hi/node/40
4. Elwin] Verrier- The Tribal Art of Middle India: A Study of Ritual Tattooing- Oxford University Press,1951
5. Varma] Anil- "Gender, Body, and Identity: Tattooing as a Feminist Statement in Central Indian Tribes" Economic and Political Weekly, vol- 50. no- 34, 2015, pp- 67–74
6. ″गोदना प्रथा और लोक साहित्य; सहपीडिया, 31 Jan - 2004, www.sahapedia.org/chatataisagadha – maen – gaodanaa – parathaa-social-role-tattooing-chhattisgarh- Accessed 31 Oct- 2025
7. गेदनाः सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ / Godna: Tattooing as a Cultural and Social Practice- Sahapedia, Directorate of Culture and Archaeology, Government of Chhattisgarh,2025,[8]- Accessed 31 Oct- 2025
8. "Sacred Tattooing: Definition: Symbols, Examples" La Bête Humaine, Baybay Blondy, www.labetehumaine-paris-com/actualite/sacred-tattooing. Accessed 31 Oct- 2025

**SAHITYAYAN**
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

26

# वैदिककालीन संगीत में वाद्यों का इतिहास

शोध **निर्देशक**
**शोधार्थी डॉ. हर्षित वैयर**
भावना मीणा
संगीत विभाग
राजस्थान विश्वविद्याालय
यपुर, राजस्थान

भारतीय संगीत इतना प्रसिद्ध है कि इसके जन्म की गाथा खोजी नहीं जा सकती, इसके प्राचीन इतिहास को देखते हुए ही विद्वानों ने इसके जन्म को, उत्पत्ति के विषय में अनेक प्राचीन, विलक्षण व आश्चर्यचकित, पौराणिक गाथाएं प्रचलित हैं। संसार में संगीत के ज्ञान का सर्वोत्तम व आरंभिक स्वरूप भारत में माना जाता है। कहा जाता है कि संगीत के संबंध में वैदिक काल के विषय में ज्ञान होना आवश्यक है।

वैदिक युग– ईसा से लगभग 2000 से 1000 वर्ष पूर्व के काल को वेदों का रचनाकाल बताया गया है। वेद जो भारतीय संस्कृति के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। भारतीय संगीत से भी उनका गहरा संबंध है। शास्त्रों में वेदों की संख्या 4 बताई गई है। 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अर्थवेद। विद्वानों का मानना है कि वेद आर्य जाति के मूल ग्रंथ माने गए है। आर्यों की संगीत से इतना प्रेम था कि उन्होंने सामवेद की रचना मात्र गान करने के उद्देश्य से की गई। कहा जाता है कि ऋग्वेद काल में संगीत जितना ग्रहों में विकसित हुआ उतना बाहर विकसित नहीं हुआ था। देखा जाए तो वैदिक युग में गायक वादक व नृतक तीनों ही विधाओं के कलाकारों का प्रादुर्भाव हो चुका था संगीत को इस युग में आध्यात्मिक व उच्च दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि न तो यह मात्र मनोरंजन का साधन था न ही व्यसनपूर्त्ति का मार्ग था इस युग में संगीत वह मार्ग था जिसके बिना कोई भी धार्मिक, सांस्कृतिक अनुष्ठाान अधूरे होते थे वेदों के पठन से यह ज्ञात हुआ कि इस समय मृदंग वीणा, बंसी तथा डमरू इत्यादि वाद्यों का प्रयोग होने लगा था इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय वाद्यों की उत्पत्ति हो चुकी थी।

भारतीय ऋषि–मुनियों ने ज्ञान को अनादि कहा है जिसका केंद्र वेदों को बताया है तो उस अनुसार वेद भी अनादि है और संगीत का संबंध वेदों से है तो संगीत को भी अनादि की संज्ञा देना उचित नहीं होगा। क्योंकि न शास्त्रों में संगीत के आरंभ, उत्पत्ति के स्पष्ट प्रमाण मिल पाए न इसके अंत के। यह बिल्कुल सृष्टि के जीवन–मरण के चक्र के समा नही प्रतीत होता है फिर भी हमारे धर्म शास्त्रों में वेदों के देव ब्रम्हा जी माने गए है।

भारतीय संस्कृति के महान ज्ञानियों ने माना है कि भगवान ब्रम्हा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अर्थवेद से इसको लेकर नाट्य वेद की रचना की। ऐसा माना जाता है कि सामवेद जो की संगीत का मुख्य वेद बताया गया है उसमें ऋग्वेद के ऐसे मंत्रों का संकलन है जो गेय है, आवश्यकता अनुसार इनमें परिवर्तन किए गए और इस प्रकार धार्मिक अनुष्ठानों यज्ञ आदि जैसे कार्यों के आरंभ में सामगान की प्रथा डाली गयी और यही प्रथा आगे चलकर संगीत शास्त्र की जन्मदात्री बनी।

वैदिक काल में वाद्यः– वैदिक युग में संगीत का संबंध वेदों से तो बताया हीहै। साथ ही इस युग के वाद्यों में स्वर, ताल, राग गीत तथा वादन संबंधी चतुर्विध वाद्यों का वर्णन मिलता है। स्वर वाद्यों का अयोग गीत के स्वरों की संगति के लिए तथा ताल वाद्यों का उपयोग संबंधित गीत में छंद, लय तथा ताल की संगति के लिए होता था।

वैदिक युग में वेणुवाद्य से वीणा का संबंधः– माना जाता है कि सामगान के समय वाण नामक तंतु वाद्य तथा वेणु का प्रयोग किया जाता था। उस समय वेणु ही ऐसा वाद्य था जिसके स्वर स्थिर होते थे और

उन्ही स्वरों के आधार पर वीणा वाद्य को मिलाया जाता था किंतु समय अनुसार वेणु वाद्य के नाम धीरे–धीरे परिवर्तित होते गए और उस अवस्था में मनिषियों ने वेणु वाद्य का स्थान वीणा वाद्य को दे दिया एवं वीणा के तारों पर स्वरों की षड्ज , ऋषभ, गंधार आदि की संज्ञा प्रदान की गई। इसी प्रकार से वीणा का वेणु वाद्य से संबंध स्थापित हुआ यदि वैदिक काल में वाद्यों के नाम की बात की जाएं तो उसके प्रमाण ''हिरण्यकेशी सूत्र'' में प्राप्त होते हैं। जिसके आधार पर तालुक वीणा पिच्छोरा वीणा, अलाबु के नाम देखने को मिलते हैं। ऋग्वेद में ''आघाटी'' की संज्ञा दी है।

संगीत ग्रंथों व शास्त्रों के गहन अध्ययन से यह बात तो सिद्ध हो जाती है कि वैदिक काल में वीणा का विकास हो चुका था। समय के बदलते स्वरूप व संगीत जगत में आए नए ज्ञाताओं के द्वारा वीणा के भी कई रूप विकसित होते गए जैसे :– आलापिनी वीणा, अनालम्बी वीणा, अलाबु वीणा, एकतन्त्री वीणा, कच्छपी वीणा, कात्यायनी वीणा, कलावती वीणा, तुम्बरू वीणा तथा त्रितन्त्री वीणा आदि। इन वीणाओं में ही आगे चलकर कुछ परिवर्तन किए गए तथा नए तन्त्री वाद्यों का उद्भव हुआ। जैसेः– तब तुम्बरू वीणा से उत्पन्न तम्बुरा वाद्य, एकतन्त्री वीणा जो वर्तमान के एकतारा वाद्य के स्वरूप से मिलती है। त्रितन्त्री वीणा जिससे विद्वानों ने सितार वाद्य का उद्भव बताया है ।

त्रितन्त्री वीणा से सितार वाद्य का उद्भवः– जिस प्रकार वैदिक काल में वीणा वाद्य का स्थान श्रेष्ठ माना जाता था ठीक उसी प्रकार आधुनिक युग में सर्वाधिक प्रिय व सुमधुर वाद्य सितार है जो मध्ययुग से विकसित होता हुआ वर्तमान रूप तक पहुंचा है। सितार की उत्पत्ति पर विद्वानों की भिन्न–भिन्न भ्रान्तियां रही है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह वाद्य ईरानी अथवा पार्शियन वाद्य है जो मुसलमानों के आगमन के साथ आया तो वही कुछ अन्य ज्ञानियों का मानना है कि सितार को अमीर खुसरो ने ईजाद किया है। एक विद्वान कैप्टन विलर्ड ने अपनी पुस्तक ''म्युजिक ऑफ हिन्दुस्तान'' 1838 में बताते हैं कि सितार का आविष्कार अमीर खुसरों ने किया।

देखा जाएं तो यह एक भ्रमात्मक विषय है जिसका मूलाधार सितार का नाम है। जिसे फारसी में सेहतार कहते हैं जिसका अर्थ तीनतार होता है। कहा जाता है कि खुसरों ने वीणा के चार तार में से एक तार निकालकर तीन तार वाले वाद्य की रचना की जिसे सेहतार कहा गया तथा आगे चलकर यही सेहतार सितार कहा जाने लगा और समय के साथ इसके तारों की संख्या भी बढ़ती गई।

किंतु कुछ विद्वानां के मतानुसार दिए गए तर्क समाधान विहिन है। इस क्रम में ही पण्डित ओमकारनाथ ठाकुर ने महाराष्ट्र में प्रचलित सितार को सतार कहने की प्रथा का आश्रय लेकर इस शब्द की व्युत्पत्ति सप्ततन्त्री से मानी। उनका मानना था कि इसी सप्ततन्त्री वीणा को सितार, सप्ततार, सतार कहा जाने लगा। किन्तु जैसा कि गुणोजनों के मतों को मैंने अपने पिछले पृष्ठों में बताया है कि अन्य विद्वान त्रितन्त्री वीणा से ही सितार वाद्य की उत्पत्ति मानते हैं। विद्वानों द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि त्रितन्त्री वीणा का विकास दो रूपों में हुआ– जिनमें एक रूप तम्बूरा तथा दूसरा सितार का रूप था

कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं, आइने अकबरी, संगीत पारिजात तथा संगीत सार द्वारा त्रितन्त्री वीणा का जो रूप वर्णन किया गया है उससे ये निरपवाद हो जाता है कि सितार और तम्बूरा त्रितन्त्री वीणा के ही दो विकसित रूप है। उक्त विद्वानों के पश्चात् सितार पर एक ओर पुस्तक सर सौरेन्द्र मोहन ठाकुर ने यन्त्र–क्षेत्र–दीपिका के नाम से सन् 188 के आसपास लिखी। जिसका तीसरा संस्करण 1890 में प्रकाशित हुआ। जिसमें लेखक सितार को त्रितन्त्री वीणा ही मानते हैं। उसमें यह भी स्पष्ट रूप में बताया है कि खुसरो ने त्रितन्त्री वीणा को सेहतार कहना प्रारंभ किया साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि सितार में पांच तार होते है। जिनमें तीन तार पीतल के तथा दो पक्के लोहे के होते हैं। व इसके अलावा तीन–चार श्रुद्र तार और बांधे जाते हैं। जो चिकारी अथवा पार्श्व तंत्री कहे जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि 20 वीं शताब्दी के गत वर्षों में सितार की तुम्बी के दो रूप प्रयोग होने लगे जिस सितार में गोल तुम्बी होती उसे तथा जिसमें चपटी तुम्बी होती उन दोनों को सितार ही कहा जाता था। लेकिन चपटी का आकार कछुए की पीठ से मिलता जुलता होने के कारण लोग इसे कच्छापी वीणा से सम्बोधित करने लगे। इसे कच्छापी रूप का प्रचार सन् 1950 तक रहा उसके पश्चात् गोल तुम्बी के सितार ही बनने लगे।

अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वीणा के उक्त परिवर्तन के पीछे विकास क्रम की स्वाभाविक प्रवृत्ति छिपी है। एक युग के बाद दूसरे युग की वीणाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह मालूम होता है कि वीणा के प्रत्येक नए परिवर्तन के बीच उसके पुराने रूप में उपस्थित है। वीणा वाद्य से सितार वाद्य में हुए परिवर्तनों का जो विकास काल रहा व एक सुंदर व भव्य इतिहास है। जो यह स्पष्ट करता है कि त्रितन्त्री वीणा का ही परिवर्तित स्वरूप आधुनिक युग का सितार वाद्य है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

- भारतीय संगीत वाद्य– डॉ. लालमणि मिश्र
- भारतीय संगीत का इतिहास– भगवत शरण शर्मा
- भारतीय संगीत का इतिहास– डॉ. ठाकुर जयदेव सिहं

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

27

# कला समाज एवं स्थानीय कथानक अंतर्संबंध

**डॉ. अनिल सैन**
सहायक आचार्य-चित्रकला
रघुकुल कॉलेज ऑफ़ एडुकेशन,जयपुर
मेल : anilsain833@gmail.com
मो.: 9414360652

कला समाज का दर्पण होती है यह कथन पूर्ण रूप से सत्य है किसी भी युग की सभ्यता व संस्कृति, रहन–सहन, पहनावा, खान–पान आदि का दिग्दर्शन कला के माध्यम से किया जा सकता है। जिस तरह का समाज होता है वहाँ वैसी ही कला जन्म लेती है। आदिम युग से लेकर आज तक की कला में इसी सच्चाई के दर्शन होते हैं। अनेक समाज और सभ्यताएँ समाप्त हो गई परन्तु हम आज भी उनके द्वारा रची गई कलात्मक वस्तुएँ, चित्र, मूर्ति शिल्प अथवा स्थापत्य रचनाओं के माध्यम से तात्कालिक समाज संस्कृति व सभ्यता की जानकारियाँ प्राप्त कर लेते हैं। आदिम युग के मानव द्वारा बनाई गई कलाकृतियों, पत्थर के औजारों आदि के माध्यम से हम उस युग की सभ्यता व संस्कृति के दर्शन कर पाते हैं। आगे चलकर सिन्धु घाटी सभ्यता की खुदाई से प्राप्त कलात्मक बर्तनों, खिलौनों, मिट्टी की मूर्तियों, मनकों, टिकरों व स्थापत्य के खण्डहरों से ही हमें उस समय के समाज संस्कृति व सभ्यता की जानकारियाँ प्राप्त हो पाती है। साथ ही उनके ज्ञान–विज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रकार वैदिक काल, शैशुनाक, नन्द वंश, मौर्य काल, कुषाण काल, गुप्त काल आदि में जिस भी प्रकार की सामाजिक संस्कृति पनपती रही उसी प्रकार की कला ने भी विकास पाया। इसी प्रकार जैन कला, बौद्ध कला या राजपूत कलाओं में भी हम उस समय के समाज उनकी विचारधाराओं, रहन–सहन, पहनावे आदि के दर्शन करते हैं, जो उस समय के समाज में प्राप्त थे। अतः कला और समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। उनमें उभयनिष्ठता का सम्बन्ध है अर्थात् वे एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। जिस प्रकार कर्ण को कर्णफूल की ओर कर्णफूल को कर्ण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार कला और समाज को भी एक–दूसरे की आवश्यकता होती है जिस प्रकार कला–विहीन समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है उसी प्रकार समाज–विहीन कला की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। कलाकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है और समाज कलाकार का कार्यक्षेत्र होता है। कला रचना कलाकार की चेतना का सर्वमान्य लक्षण है। वह अपनी कला–रचना के माध्यम से अपने अन्तर्भावों या भाषा की अभिव्यक्ति करना चाहता है और दूसरों तक अपने अनुभवों को प्रेषित करना चाहता है इसी से उसके कलात्मक उद्देश्य की पूर्ति होती है। कलाकार की यह सृजनात्मकता कलाप्रदर्शनियों, साहित्य, काव्य–गोष्ठियों, नाटकों, पुस्तक–प्रकाशनों, फिल्म टेलीविजन अथवा संगीत–नृत्य के माध्यम से समाज और दर्शक–श्रोताओं तक पहुँचती है जिसके द्वारा उनका मनोरंजन होता है और कलाकार के उद्देश्य की पूर्ति भी होती है परन्तु एक कलाकार दर्शकों या श्रोताओं से क्यों यह सम्बन्ध बनाना चाहता है? क्योंकि इसके बिना उसका अपना सौन्दर्यात्मक अनुभव अधूरा है। वह चाहता है कि दूसरे लोग भी उसके अनुभवों में भागीदार बने।

यह सम्पूर्ण कला वस्तुतः दो भागों में विभक्त की गई है, यथा–

1. उपयोगी कला से तात्पर्य है जन साधारण के उपयोग में प्रयुक्त होने वाली कलाएँ तथा खाने–पीने, पहनने–ओढ़ने, रहने–बैठने, आने–जाने की सुविधा के लिए जिन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, वे ही उपयोगी कला होती है। उपयोगी कलाओं का सम्बन्ध हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति 'सौन्दर्यबोध' और 'आध्यात्मिक चेतना' से है। अतः आनन्द और सौन्दर्य ग्राह्य होने के कारण ललित कलायें, उपयोगी कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्वमयी हैं। उपयोगी कलाओं के अन्तर्गत उपयोग आता है। ये कलायें पूर्णतया व्यावसायिक होती हैं। जैसे–काष्ठ

कला, स्वर्णकारी, दस्तकारी इत्यादि। ये कलायें हमारे जीवन को सजाती, संवारती और जीवित रखती हैं।

2. ललित कला से तात्पर्य है–वे कलाएँ जिनकी सुन्दरता मौलिकता सजीवता से दर्शक या श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाता है। ऐसी कला में चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तु–कला, संगीतकला एवं काव्यकला आती है। "महर्षि पाणिनी" ने इन्हें 'चारू' व 'कारू' के नामों से सम्बोधित किया है।

हीगल ने कलाओं का वर्गीकरण 'इन्द्रियों' के आधार पर किया है। उन्होंने ये विभाजन 'दृश्य' और श्रव्य दो प्रकार से किया है। इसमें चित्र, मूर्ति, वास्तुकला व नृत्य को 'दृश्य' कलाओं और संगीत व काव्य कलाओं को 'श्रव्य' कलाओं के अन्तर्गत रखा गया है। दृश्य कलायें दिखाई देने के कारण 'मूर्त' कहलाती हैं। संगीत व काव्य कलायें, नेत्रों का विषय न होने के कारण 'अमूर्त' कहलाती हैं। इसीलिए ये 'उच्च कलाओं' की श्रेणी में आती है और शेष 'निम्न कलाओं' की श्रेणी में आती हैं।

कला एक महत्त्वपूर्ण रूप है और प्रत्येक कला मानव के सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति है किसी भी वस्तु को देखने के दो रूप हैं–व्यावहारिक और कलात्मक दृष्टि व्यावहारिक दृष्टि से अधिक सत्य है, जैसे कि हम सभी एक भू–दृश्य को देखते हैं किंतु हम लोग प्रायः उसे खलिहान, वृक्ष, जानवर इत्यादि के मिले–जुले रूप में ही देखेंगे, परन्तु एक चित्रकार उस भूदृश्य को रेखाओं और वर्णों के समन्वित रूप में ही देखेंगा, वह उस दृश्य को रेखाओं और वर्णों के पारस्परिक सम्पर्क के द्वारा अभिव्यक्त करता है, और यही उसकी कला है। उसी प्रकार एक संगीतज्ञ उस भू–दृश्य को देखकर सुन्दर गीत, लय, ताल के संयोग से सुन्दर रूप प्रदान कर गाता बाजाता है और यही उसकी कला है। इस प्रकार वही वास्तविक कला है जो हमारे यथार्थ भावों को अभिव्यक्त करती है। भाव और रूप का समन्वय ही वास्तविक कला है। कला मनुष्य के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार मनुष्य को अपना जीवन सक्रिय और गतिमान बनाए रखने के लिए भोजन, वस्त्र आदि की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार जीवन को क्रमबद्ध और सुसंस्कृत होने के लिए ललित कलाओं के सहयोग की आवश्यकता होती है। ललित कलायें व्यक्ति का समाज, धर्म तथा संस्कृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है। कलात्मक जीवन ही जीवन है, अन्यथा यह मानव जीवन पशु के समान हो जायेगा।

चित्र, मूर्ति, नृत्य, संगीत और गायन ये कलाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और कोई व्यक्ति किसी एक कला को उसी हद तक समझ और परख सकता हैं जिस हद तक वह अन्य कलाओं को समझता और परखता हैं। कहने का तात्पर्य यह हैं कि इनमें से प्रत्येक कला के गुण–लक्षण समान हैं। यह प्रतीत होता हैं कि परम्परावादी भारतीय के मस्तिष्क और चेतना में इन कलाओं मे काई ऐसी चीज हैं जो बिल्कुल एक न होते हुए भी मूलतः एक दूसरे से मिलती–जुलती हैं।[1]

इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, नृत्यकला, संगीतकला, काव्यकला आपस में एक–दूसरे से सम्बन्धित है, तथा कलाकार समाज से जो सीखता है, देखता है, कथा कहानियाँ सुनता है। उसे चित्रों के द्वारा चित्रित करता है। मूर्तिकार सामाजिक कथाओं के आधार पर मूर्तियाँ बनाता है। संगीतकार मधु संगीत से समाज को मुग्ध करता है। वास्तुकार, मंदिर, वास्तु से समाज का निर्माण करता है। कवि सामाजिक हृदय को शब्दों से तृप्त करता है। नृत्यकार सामाजिक कथा–कहानियों द्वारा अपने अभिनय का प्रदर्शन करता है। अतः कलाकार सामाजिक यथार्थ को कला के माध्यम से प्रकट करता है।

## सारांश

कला एक सामाजिक वास्तविकता के रूप में समाज के विकास की अभिव्यक्ति है। मनुष्य अपने भावों को प्रकट करने के लिए भिन्न–भिन्न शारीरिक क्रियाओं, वक्तव्यों, चित्रों तथा संकेतों का प्रयोग करता है। भावों की अभिव्यक्ति करना आदिम काल से ही मानव मन की सहज व सुलभ प्रवृत्ति रही है। अभिव्यक्ति की विभिन्न विधाओं को कला माना गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसके हृदय में गहरी संवेदनाएँ हैं, अनेक आशाएँ, आकांक्षाएँ हैं। इनके द्वारा उसके मन में अनेक भावों की सृष्टि होती रहती है। अपने भावों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करना चाहता है। प्रारम्भ में जब भाषा नहीं थी तो वह शारीरिक हाव–भाव और संकेतों का सहारा लेता था। फिर चित्रांकन और लिपि को उसने भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भाव रंग, लय और शब्द

आदि को आधार बनाकर उसने अपने मन की अतृप्त वासनाओं (भावनाओं) को प्रकट करने का विकास किया और अनेक विधाओं कलाओं की सृष्टि होती चली गयी।

विभिन्न वार त्योहारों, उत्सवों एवं मांगलिक संस्कारों पर भांतिभांति के चित्रण द्वारा मनुष्य विशिष्ट अवसर और वातावरण को बड़ा ही भव्य कलात्मक परिवेश देता था। यह परम्परा नितनूतन रूप में युगयुगीन होकर आज भी हमारे बीच विद्यमान है। कला संस्कृति का कोई पक्ष हो, पीढ़ी–दर–पीढ़ी वह विरासत के रूप में अपना प्रभाव स्थापित करता रहता है।

भारतीय जीवन के हर स्तर में विन्यस्त लोककला आंगन से लेकर घर की दीवारों, द्वार से लेकर चौपालों और रस्मों से लेकर रिवाजों तक फैली है। वह घर की लड़कियों के लिए दुपट्टा कपड़े पर कसीदाकारी हो जाती है तो महिलाओं के लिए प्रिय की आस का माध्यम, बूढ़ी–स्त्रियों के लिए यह कला पर लोक का यंत्र हो जाती है। असंख्य रूपों में पूरे देश में अनेक भाषाओं, बोलियों, समुदायों और समाजों में फैली इस लोककला की अनेक छवियाँ हैं जो चित्रकला, मूर्ति, रेखांकन, कसीदा आदि में प्रकट होती हैं।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ललितकला के आधारभूत सिद्धान्तः मिनाक्षी कासलीवाल 'भारती', प्रकाशक राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011
2. भारतीय चित्रकला की परम्पराः महेन्द्र वर्मा, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली, 2006
3. ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त–मिनाक्षी कासलीवाल 'भारती' प्रकाशकः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, तृतीय संस्करणः 2011
4. सौन्दर्य, रस एवं संगीत–स्वतन्त्र शर्मा, प्रकाशकः अनुभव पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 2010
5. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी : भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1989
6. अवधेश मिश्र : कला दीर्घा, अंक 12 लखनऊ, अप्रैल 2006

# 28

# समकालीन कला मे निहित दर्शन तथा सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन

**गीतांजलि वर्मा**
सहायक आचार्य
एवं विभागाध्यक्ष, (चित्रकला)
से.मु.मा. राजकीय कन्या महाविद्यालय, भीलवाडा, (राजस्थान)
ईमेल आई डी : geet12gk071997gmail.com

**शोध सार :**

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से समकालीन कला में निहित दार्शनिक चिंतन और सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके माध्यम से समकालीन कला को सरलतम रूप से समझने का प्रयास किया गया है। 1970 से अब तक समकालीन कला के निरंतर परिवर्तित होते स्वरूपों के अध्ययन की दृष्टि से यह शोधपत्र महत्वपूर्ण है।

भारतीय समकालीन कला के विभिन्न स्वरूपों यथा चित्रकला, शिल्प, छाप चित्रण, डिजिटल आर्ट, संस्थापन कला वीडियो आर्ट, सिनेमा, परफॉरमेंस आर्ट साथ ही प्रदर्शनकारी कलाओं में निहित दार्शनिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों का समकालीन कला में भी दर्शन के साथ ही समाजशास्त्रीय यथार्थवाद का प्रभाव देखने को मिलता है। रविन्द्रनाथ ठाकुर, एस.एच.रजा, रामकुमार, प्रदोष दास गुप्ता, मृणालिनी मुखर्जी, विवान सुंदरम, सुबोध गुप्ता, सुदर्शन पटनायक, भारती खेर, रेखा रोडविट्टीया, अनीश कपूर, श्याम बेनेगल, मीरा नायर, विशाल भारद्वाज जैसे कलाकारों की रचनाओं में वैश्विक–स्थानीय द्वंद्व, उपभोगवादी संस्कृति की आलोचना, स्त्रीवादी दर्शन का नवीन रूप दिखाई देता है और सांस्कृतिक पहचान की खोज के स्वर गुंजायमान है। समाज की विडंबनाएं और मानवीय संवेदनाओं का संकट स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अध्ययन प्रस्तुत करने के उ़द्देष्य के साथ यह शोध किया गया है। 21वीं सदी के दूसरे दशक के उपरांत भारतीय कला में उत्तर–आधुनिकता, वैष्वीकरण, भौतिकवादिता, लैंगिक समानता, और डिजिटल क्रांति का अति प्रभाव देखा जा सकता है।

डिजिटल माध्यमों के प्रसार से कलाकारों को अभिव्यक्ति के नवीन आयाम मिल रहे है। वर्तमान परिदृश्य में कला के विभिन्न स्वरूप अनेक डिजिटल माध्यमों से समाज में संचारित हो रहे है। यथा फेसबुक, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, शॉर्ट्स, रील्स आदि से सामाजिक न्याय की अवधारणा मुखरित हो रही है। इसमें उत्तर–औद्योगिक समाज की विडंबनाएं और मानवीय संवेदना का संकट स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

शोध में 1900–2025 तक की अवधि की प्रतिनिधि कलात्मक रचनाओं का गुणात्मक अध्ययन कर विवेचन किया गया है। निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट होता है कि समकालीन कला में मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय, पारिस्थितिकी संरक्षण और सांस्कृतिक मूल्य सदैव केंद्रित रहे है। यह शोध समकालीन भारतीय कला परंपरा के साथ ही उसमें एकाकार होते दर्शन और समाजशास्त्र के अंतर्सम्बन्ध को समझने में महत्व पूर्ण योगदान देता है।

**बीजशब्दः** समकालीन, दार्शनिक प्रवृत्तियां, सामाजिक विमर्श, अस्मितावाद, उत्तर–आधुनिकता, पारिस्थितिकी संरक्षण, जन चेतना, संस्थापन कला, परफॉरमेंस आर्ट, सिनेमा, प्रदर्शनकारी कलाएं

**प्रस्तावना**

कला मानवीय जीवन संगिनी है जो उसकी उत्पत्ति से ही उसके जीवन का अभिन्न अंग रही है। जिस प्रकार मनुष्य निरन्तर विकसित और प्रगतिवान रहा ठीक उस ही तरह कला भी निरन्तर नित नवीनता पा कर विकसित स्वरूप प्राप्त करती रही। आदिम काल से ही कला, समाज और दर्शन परस्पर अभिन्नता से अग्रसर होते रहे। इनकी दीर्घ यात्रा ने अनेक पड़ाव पार करते हुए अनेक स्वरूप प्राप्त

किये। भारतीय कला के सन्दर्भ में बात की जाये तो इसने आदिम कला से समकालीन कला तक की यात्रा के बीच अनेक स्वरूप ग्रहण किये।

निश्चित ही नवीनता व विकास के लिए परिवर्तन अतिआवश्यक है। किन्तु तब से अब तक कला ने अनेक स्वरूपों को ग्रहण किया यथा चित्रकला, शिल्पकला, छापा चित्रण, डिजिटल आर्ट, संस्थापनकला, वीडियो कला, सिनेमा, साहित्य, संगीत, नाटक, नृत्य, परफॉमेंस आर्ट, आदि इन समस्त कलाओं के माध्यम से दर्शन व समाज को मुखर अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है और वर्तमान समय में भी यह नितान्त संदर्भित है। इस विमर्श में सर्वप्रथम यह विचार करना अतिआवश्यक है कि समकालीन कला से क्या तात्पर्य है'? क्या यह किसी काल विशेष से सम्बन्ध रखती है अथवा कालातीत है?

"कुछ आलोचकों का मानना है कि 20वीं शताब्दी के चित्रकारों ने कला को एक ऐसे दृष्टिकोण से देखा है, जो पूर्णतया तकनीकी है। रूपाकार सम्बन्धि समस्याओं पर इतना अधिक ध्यान दिया गया है कि कलाकृतियां प्रयोगशाला के अनुभवों की तरह लगने लगती है। समकालीन कला में बौद्धिक पक्ष इतना हावी हो जाता है कि आम दर्शक इन अनुभवों के बरक्स कोई सक्रिय भागीदारी नहीं कर पाता और यह एक निन्दनीय बात है।"(मागो प्राणनाथ, पृ0स0 11,12)

"किसी काल विशेष में कलाकार द्वारा निर्मित चित्र में दार्शनिक दृष्टि के साथ अन्तर्वस्तु और कलापरक चिन्तन जितना अधिक होगा उतना ही वह समाज के करीब भी होगा। यह सच है कि यथार्थ जीवन प्रक्रियाओं से कला निरन्तर पोषित होती रही है परन्तु समाज में जो कुछ चल रहा है या यूं कहें कि जो घटित हो रहा है उससे उत्पन्न हर्ष, विषाद, द्वंद्व और विभिन्न समस्याओं को कला में जब प्रतिबिंबित किया जाता है। तो वह समकालीन और जन सरोकारों से जुड़ी कला बन जाती है।" (व्यास डॉ0 राजेश,पृ0स0 23.,24)

समझा जा सकता है कि किसी भी विधा का कलाकार हो वह सदैव अपनी कलाभिव्यक्ति में नवीन आयामों को खोजता है। वह लालायित रहता है अपने मनोभावों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए किन्तु जब परंपरागत विधियों, तकनीकों एवं विचारधाराओं से उसकी अभिव्यक्ति परिपूर्ण नहीं हो पाती है । तब वह विभिन्न नये माध्यमों द्वारा प्रयोगधर्मिता से सृजन करने लगता है। अपनी अभिव्यक्ति की क्षुधा की तृप्ति के लिए वह विभिन्न कलाविधाओं के मिश्रित स्वरूपों के संयुक्त प्रयोग से भी नहीं कतराता है। इन्ही मिश्रित स्वरूपों का परिणाम वीडियो आर्ट, संस्थापन कला, परफॉमेन्स आर्ट, डिजिटल आर्ट आदि स्वरूपों के माध्यम से व्यक्त होता है।

समकालीन कलाकार अपने मन्तव्य को प्रस्तुत करने के लिए अनेक बार अधिक विचारशील होकर अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि वह आम दर्शक को प्रभावित करने में असफल रहता है। इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति से कुछ विशेष वर्ग के दर्शक ही जुड़ पाते हैं। जैसे "सिनेमा" में "समानान्तर सिनेमा" के दर्शक बहुत सीमित होते है। यह भी कहा जा सकता है कि समकालीन कला प्रत्येक वर्ग के लिए न हो कर ऐसे कला प्रेमियों के लिए है जो कि उस कलाकार के मन को पढ़ सके और उसकी अभिव्यक्ति से तारतम्य साध सके। समकालीन कला का मुख्य उद्देष्य "कला के लिए कला" की अवधारणा को सिंचित करना है।

प्राचीन व पारम्परिक भारतीय कला का उद्देश्य अधिकतम दर्शकों से जुडाव रखने का प्रतीत होता था किन्तु वहां कलाकार की अभिव्यक्ति गौण हो जाती थी। इसके ठीक विपरीत समकालीन कलाकार सीमित दर्शकों के लिए सृजन में लीन है। इस मानसिकता से अनेक बार सम्प्रेषण के सिद्धान्त का भी हनन होता है। यदि किसी विचार या अवधारणा को सरल रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो वह अधिक सम्प्रेषणीय होती है।

समकालीन कला अधिकांशतः प्रतीकात्मक स्वरूप में अभिव्यक्ति पाती है जो कि दर्शक के लिए आम तौर पर सुग्राह्य नहीं बन पाती है चूंकि दर्शक उन प्रतीकों से अनभिज्ञ होता है।

कला के किसी भी स्वरूप को दार्शनिक अनुभूति व सामाजिक प्रभावों से परे रख कर नहीं देखा जा सकता। समकालीन कला में दार्शनिकता व सामाजिकता को ताने—बाने में बुनकर
एक नवीन रचना संसार की व्युत्पत्ति की गई है। एक कलाकार सदैव किसी दार्शनिक अथवा सामाजिक

विचार के सूक्ष्म तथा अमूर्त रूप को अपनी कला के माध्यम से एक वृहद व मूर्त स्वरूप में गढ़ता है।

## समकालीन कला में निहित दार्शनिकता व सामाजिकता

### चित्रकला :

इस संदर्भ में सैयद हैदर रज़ा की सृजनात्मक प्रक्रिया का उल्लेख किया जा सकता है। उनके अनुसार "आरम्भ में तो एक सामान्य सा विचार होता है जो रंगों के प्रभुत्व के रूप में सामने आता है। इसको सोचना पड़ता है। विचार को मन के भीतर विकसित करना होता है।"(व्यास डॉ0 राजेश, पृ.स. 26)

अर्थात वे किसी विचार को भौतिक स्वरूप देने से पूर्व उस पर चिन्तन मनन कर उसे अपने अन्तर्मन में अमूर्तरूप में ढालते है। तत्पश्चात वह किसी रूपाकृति अथवा रंगाकृति का भौतिक स्वरूप प्राप्त करता है जो कि निरन्तर सृजनात्मक प्रक्रिया के माध्यम से, तब तक गुजरता है जब तक कि वे स्वयं पूर्ण रूप से सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर लेते। **रज़ा** के शब्दों में "लेकिन 1980 में मुझे ऐहसास हुआ की मुझे अपने काम में कुछ गहराई लानी होगी, और मैने इसमें भारतीय दृष्टिकोण अपनाने का फैसला लिया।क्योंकि मुझे भू.दृश्य का शौक था। इसलिए मैंने अपने फ्रेम में भारतीय समय और स्थान की अवधारणा को शामिल किया और प्रकृति व मानव मन के प्रकृति–पुरुष (पुरुष और स्त्री ऊर्जा) पहलू के साथ खेला । "मेरी कृतियां एक बिंदु (एक बिंदु ऊर्जा का स्रोत) से शुरू होती थी और जीवन तरंगों में त्रिभुजों (त्रिभुज) में फैलती थी। नीचे एक बिंदु था जो स्त्री ऊर्जा स्रोत का प्रतीक था और सबसे ऊपर एक बिंदु पुरुष सत्ता का प्रतीक था।" ( रज़ा एस.एच. इन्डिया ईन्यूज़ )

**रविंद्र नाथ टैगोर** ने अपने चित्रण, गीत, कविता आदि के माध्यम से दर्शन की अभिव्यंजना की। जिन कलाकारों ने बाहरी जगत के बजाय आंतरिक तत्व को अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया उनमें प्रमुख थे जी.आर. संतोष, पी.टी. रेड्डी, के.सी.एस. पाणिकर, बीरेन डे, ओम प्रकाश, के वी हरिदासन, प्रफुल्ल मोहंती, ज्योति भट्ट और मिहिरवान ममतानी इन कलाकारों ने तांत्रिक यंत्रों से प्रेरणा ली। रेखा रोडविट्टिया की चित्र श्रृंखला '**ट्रांजिऐंट वर्ल्ड ऑफ बिलॉन्गिंग**' के माध्यम से उनके जीवन के भौतिक व आध्यात्मिक पक्षों को उजागर किया गया है। वह एक नारीवादी चित्रकार है। इसके विपरीत बहुत से ऐसे चित्रकार भी है जिनके कृतित्व का आधार सामाजिक विषमताएं स्त्रीवाद, सामाजिक न्याय, अस्मिता आदि रहा अर्पिता सिंह, रामकुमार, जतिन दास ने 1970 में सामाजिक अन्याय पर आधारित चित्रण किया परितोष सेन भी ऐसे ही चित्रकार रहे हैं।

### शिल्पकला :

भारतीय समकालीन शिल्पकारों ने दर्शन और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को बहुत महत्व दिया है। इस संदर्भ में **लीडिया मेहता** की '**बॉडी एंड सोल**' श्रृंखला, सुबोध गुप्ता, भारती खेर, शिल्पा गुप्ता, जितेश कल्लट,नेहा चोकसी, अनीश कपूर, सुदर्शन पटनायक आदि शिल्पकारों के नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने शिल्प कला को इन विचारों के साथ नवीन आयाम दिए। उन्होंने शिल्प को दर्शन और समाज का आईना बनाया है।

मीरा मुखर्जी ने अपने मूर्ति शिल्प के माध्यम से 1978 की विनाशकारी बाढ़ तथा 1984 की भोपाल गैस त्रासदी को प्रतीक रूपों के साथ गहनता से परिपूर्ण सशक्त अभिव्यंजना की है। (भारद्वाज सोनल एवं कुंद्रा कृष्ण ) सुदर्शन पटनायक ने अपने सेंड स्कल्पचर्स के द्वारा विभिन्न सामाजिक परिदृश्य व घटनाओं को उभारा है। धनराज भगत, एस.एल. पाराशर, के.जी. सुब्रमण्यन, रजत कुमार घोष, सी. जगदीश, अमरनाथ सहगल, वेद नायर, रत्नावली कांत आदि को भी ऐसे महत्वपूर्ण शिल्पियों में स्थान प्राप्त है।

### छापाचित्रण :

एक ओर **अनुपम सूद** महिला को केंद्र में रखकर अपना सृजन करती रही हैं, वहीं **कृष्ण रेड्डी** के छापाचित्र दार्शनिक तत्वों से परिपूर्ण हैं। जबकि **ज्योति भट्ट** ने अपने प्रिंट्स में समकालीन प्रतीकों के साथ यंत्र तंत्र को अपनी कृतियों में स्थान दिया। (चतुर्वेदी डॉ. ममता, पृ. सं.130) छापा चित्रकार अनुपम सूद ने छापा चित्रण की विधा को कलापूर्ण व भावपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ ही एक सारगर्भित सामाजिक

टिप्पणी स्वरूप प्रयोग में लिया।(मागो प्राणनाथ,पृ.सं.193) कंचन चंदर, शांति दवे, लक्ष्मण पै, कंवल कृष्ण, देवयानी कृष्ण, जय झरोठिया, सुरेंद्र चड्ढा, रिनी धुमाल, अतुल डोडिया आदि छापा चित्रकार इस संदर्भ में महत्वपूर्ण नाम हैं। **चित्त प्रसाद** के '**सिटी स्ट्रीट बैड**' में मानव जीवन के अभाव अंकित हैं।

डिजिटल आर्ट व वीडियो आर्ट :

"उपग्रह संचार, लिक्विड क्रिस्टल डिस्प्ले (एलसीडी) और वर्चुअल रिएल्टी के क्षेत्र में हुए द्रुत विकास की वजह से आधुनिक विज्ञान ने कलाकारों के दरवाजे पर नए अवसरों को ला खड़ा कर दिया है।"' (मागो प्राणनाथ पृ. सं. 201) भारतीय कला परिप्रेक्ष्य में कंप्यूटर ने क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इसके प्रयोग से अभिव्यक्ति का एक नवीन स्वरूप विकसित हो गया है। कलाकार मनोवांछित आकारों व प्रभावों को उत्पन्न कर, अपने मनोभावों को दर्शक तक संप्रेषित करने में सक्षम हुआ है। इस कला का प्रयोग करने में 2–डी व 3–डी माध्यम सहयोग करते हैं व ऐसे अनेक कलाकार हैं जिन्होंने अपनी 2–डी व 3–डी कृतियों के सृजन हेतु डिजिटल व वीडियो आर्ट का प्रयोग किया जैसे **राजीव लोचन**, **अकबर पदमसी**, **अतुल डोडिया**, **नलिनी मालानी**, **अनीश कपूर** आदि। **बैजू प्रार्थन** की कृतियों में पौराणिकता, साइंस फिक्शन व दर्शन का मिश्रित स्वरूप देखने को मिलता है।

सिनेमा :

भारतीय सिनेमा के संदर्भ में अगर दर्शनिकता व सामाजिकता के पुट को रखकर विचार किया जाए तो ज्ञात होगा कि यह दोनों ही तत्व भारतीय सिनेमा के अभिन्न अंग रहे हैं। लगभग 1920 से भारतीय सिनेमा में **समानांतर सिनेमा** का आरंभ हुआ ऐसे फिल्मकार जो लोकप्रियता नहीं, अपितु अपनी स्वयं की विचारधारा अथवा दर्शन या किसी सामाजिक अवधारणा को प्रस्तुत करने के पक्ष में थे। उन्होंने अपनी फिल्मों के माध्यम से एक संपूर्ण दर्शन को दिखाया अथवा किसी सामाजिक परिदृश्य, कुरीति, व्यवस्था या उनके निवारण के स्वरूप में फिल्में बनाई। ऐसे अनेक फिल्मकार हुए हैं जिनको प्रमुख रूप से जाना जा सकता है– श्याम बेनेगल, मीरा नायर, दिपा मेहता, गोविंद निहलानी, मणि कॉल, कुमार साहनी, सईद मिर्जा, मणि रत्नम, अनुराग कश्यप, अमोल पालेकर, ऋषिकेश मुखर्जी, कल्पना लाजमी, केतन मेहता, किरण राव, एस सथ्यू, महेश भट्ट, सईद अख्तर मिर्जा, सुधीर मिश्रा, शेखर कपूर, नीरज घेवन, नागेश कुकनूर आदि एवं उनके द्वारा निर्मित फिल्में तमस, आनंद, डोर, मसान, अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है अर्थ, वाटर, फायर, बैंडिट क्वीन, सारांश, सितारे जमीन पर, शंकराचार्य, चलो जीते हैं, अविराम, पार्च्ड, फ्रीडम, आर्टिकल–15, आरक्षण आदि।

संस्थापन कला एवं परफॉर्मेंस आर्ट :

पिछले कुछ दशकों से कलाकार अपनी कला को मात्र दिखाने का ही उद्देश्य नहीं रखता है अपितु वह अपने दर्शक को उसके रस में पूरी तरह भिगो देना चाहता है। शायद इस ही वजह से संस्थापक कला व परफॉर्मेंस आर्ट का उद्भव हुआ है। 1960 व 1970 के दशकों में **रॉबर्ट रोजनबर्ग** का कथन "आज की कला सिर्फ दिखाई नहीं जाती इसे प्रदर्शित किया जाता है और दर्शकों की भागीदारी अपेक्षित रहती है एक्शन पेंटिंग में दर्शकों का ध्यान कलाकार की सृजन क्रिया की तरफ आकर्षित रहता है। इस सक्रिय कला के साथ–साथ कलाकार अभिनेता में उपस्थित होता है। हैपनिंग में तो चित्रकार तथा मूर्तिकार मंच सामग्री का निर्माण करते हैं दृश्य का संयोजन करते हैं और प्रदर्शन प्रस्तुत करते हैं। " सटीक बैठता है भारतीय संदर्भ में ऐसे प्रमुख कलाकार हैं एम एफ हुसैन, वेद नैयर, गोगी सरोज पाल, रत्नावली कांत, शमशाद हुसैन, विवान सुंदरम।(मागो प्राणनाथ पृसं 195)

भारतीय कला जगत में इस नवीन कला माध्यम के उद्भव से विभिन्न कलाओं की सीमाएं समाप्त होकर एक हो गई है जिन्होंने चाक्षुष अभिव्यक्ति और पारंपरिकता से लगभग मुक्त कर नवीन आयाम दे दिया है। इस विधा में विभिन्न कलाकारों जैसे रीना सैनी कल्लट, रीना बनर्जी, जितेश कल्लट, रक्स मीडिया कलेक्टिव, शिल्पा गुप्ता, दयानिता सिंह, गौरी गिल आदि।(सिल्विया वॉकर)

उपरोक्त कलाकारों के अलावा अन्य संस्थापन कलाकारों में भारती खेर, रेखा रोडविट्टिया आदि ने भी विभिन्न दार्शनिक व सामाजिक अवधारणाओं पर आधारित संस्थापक कला व परफॉर्मेंस का सृजन किया है। अपने विचार दर्शकों तक पहुंचाए हैं। **रेखा रोडविट्टिया** के आरंभिक इंस्टालेशन में '**सांग्स फ्रॉम द**

**ब्लड ऑफ द विअरी** ' जो की 12 चित्रों का एक समूह है और एक कमरे के रूप में स्थापित किया गया है।

समकालीन रंगमंच :

**कुसुम कुमार** के '**सुनो शेफाली**' में भारतीय जातिवाद व लिंगवाद के परस्पर संबंधों को उद्घाटित किया गया है। **रविंद्र नाथ टैगोर** के नाटक '**डाकघर**', '**रेड ओलिएंडर्स**' ने बंगाली रंगमंच को नए आयाम दिए। उनके नाटकों में आध्यात्मिकता के साथ ही सामाजिक बंधनों वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समावेश देखा जा सकता है। **विजय तेंदुलकर** ने अपने रंगमंच में सामाजिक कटु सत्य को उजागर किया। उनके ऐसे महत्वपूर्ण नाटकों में '**शांतता ! कोर्ट चालू आहे**', '**घासीराम कोतवाल**', '**सखाराम बाइंडर**' आदि है इसी प्रकार **धर्मवीर भारती** के '**अंधा युग**' में युद्ध की निस्सारता को रचा गया है, जो की महाभारत व भारत के विभाजन की त्रासदी के परिप्रेक्ष्य से संबंधित है। **अनुराधा कपूर** व **ईन लाल** द्वारा निर्देशित नाटक '**द एंटी गॉन प्रोजेक्ट**' में 2002 में हुए गोधरा दंगों के लिए प्रतिक्रिया का मंचन किया गया।

समकालीन नृत्य व संगीत :

**मधुबाला सक्सेना** के अनुसार संगीत पूर्णतः दर्शन के सिद्धांत से प्रभावित होता है इसके माध्यम से वह उस **आत्मा** और **परमात्मा (ब्रह्म)** के मिलन से **मोक्ष** की प्राप्ति का पथ बताता है। जबकि **उदय शंकर** के संगीत दर्शन का यह आधारभूत विश्वास था कि, नृत्य की शक्ति से भाषाई, सांसारिक व भौगोलिक सीमाओं से परे एक वैश्विक अभिव्यक्ति व संप्रेषण का माध्यम विकसित किया जा सकता है। (मोहापात्रा गुरू रतिकांत,) **मल्लिका साराभाई** कृत '**सीताज़ डॉटर**', '**कलर ऑफ द हार्ट**', '**ब्रीदिंग वूमेन**' नारी जीवन व जातिवाद पर आधारित महत्वपूर्ण रचनाऐं हैं। **पद्मिनी चेट्टूर** द्वारा कृत '**पंख और मुखौटे**', '**लीलावती**', '**प्राण**', '**भिन्न प्रवाह**' , '**महाकाल**', '**शरीर**' आदि सृजित किए गए।( The Federal of voice states 29 April 2023)

निष्कर्ष :

संपूर्ण शोध के आधार पर यह निष्कर्ष स्वरुप ज्ञात होता है कि मानव जीवन से जुड़ी समकालीन कला में दर्शन व सामाजिक प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है। इनके अभाव में कला निस्सार है। विभिन्न कालावधियों में, कला की विभिन्न विधाओं
द्वारा, अनेक माध्यमों में, अनेक कलाकारों ने अपनी रचनात्मक क्षमता अनुसार अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। यह भी ज्ञात होता है कि कोई भी एक कलाकार किसी एक निश्चित विधा में बंधकर, अपनी अभिव्यक्ति को संपूर्ण रुप प्रदान नहीं कर सकता। अतः वह चित्रकला, शिल्पकला, छापाचित्रण, डिजिटल आर्ट, वीडियो आर्ट, संस्थापन कला, परफॉर्मेंस आर्ट, रंगमंच, नृत्य, संगीत अथवा सिनेमा को एक साथ प्रयोग करने से भी नहीं कतराता। क्योंकि कला एक सहज अभिव्यक्ति है, कलाकार इस दिशा में सदैव अपनी सृजनात्मकता के पथ पर चलकर सृजन में लीन रहता है।

कलाकारों के लिए भविष्य में भी अनेक विधाएं और विधियां प्रचलित हो सकती हैं जिनके माध्यम से कलाकार अपनी कला, दर्शन व सामाजिक प्रवृत्तियों की धारा को प्रवाहित करता रहेगा।

संदर्भ सूची

1. Catalogue, Indian Sculpture Today 1983, Jehangir Art Gallery Publication
2. Catalogue ,Indian Print Making Today 1985, Jehangir Art Gallery Publication.
3. Raza S.H. ' New generation of artist must take art seriously', India eNews, page -1
4. Songs from the Blood of the Weary(Dialogues of Peace, by Rekha Rodwittiya, JNAF, 2018.
5. Mohapatra Guru Ratikant, 'Aesthetic of Vidhyashankar's choreography and its

impact on the
present day choreographers', IJCRT, Volume 8,Issue 12 Dec- 2020

6. The Federal of voice states 29 April 2023
7. Cinema and Society, Monthly Current Affairs, 2 May 2025
8. Walker Sylvia, 'Top 10 most important indian contemporary artists and a reasoned anthology', Contemporary art issue (CAI) Article-, June 17 2025
9. Saxena Madhubala, 'Co relation of music with spiritualism and philosophy an analytical study', Indian Culture, page 27
10. मागो प्राणनाथ, भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य,नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इन्डिया, 2006 पृ.11,12,193,195, 201
11. चतुर्वेदी ममता, समकालीन भारतीय कला,पंचम संस्करण राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ. 115, 124, 130, 170
12. भारद्वाज सोनल एवं कुंद्रा कृष्ण, 'भारतीय समकालीन दृश्य कला का वैश्विक परिदृश्य', अपनी माटी अंक 55, 2024.
13. व्यास डॉ0 राजेश, कलावाक्, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 23,24,26,
14. प्रसिद्ध भारतीय नाटककार और आज के रंगमंच पर उनका प्रभाव,11 फरवरी, 2025
15. साखलकर र. वि. कला के अंतर्दर्शन, तृतीय संस्करण 2015,राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

**29**

# समकालीन भारतीय चित्रकला में उत्तर आधुनिक प्रयोग : कला की नई भाषा की खोज

**डॉ. हेमन्ता मीणा**
असिस्टेंट प्रोफेसर, चित्रकला
विभाग
से.मु.मा. राजकीय कन्या महाविधालय भीलवाड़ा (राज.)
email- hemantameenarrb@gmail.com

**सारांश**

भारतीय चित्रकला सदियों से परंपरा, प्रतीकवाद और अध्यात्म की गहरी जड़ों से जुड़ी रही है। किंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भारतीय कला जगत में एक नया मोड़ आया – जिसे "उत्तर आधुनिक युग" के रूप में पहचाना गया। समकालीन भारतीय चित्रकला में उत्तर आधुनिक प्रयोगों ने कला की अभिव्यक्ति को नया स्वरूप प्रदान किया। उत्तर आधुनिकता सामाजिक ,आर्थिक, राजनीतिक क्रियाओं से जुड़ी संस्कृति है यह जीवन के हर क्षण में देखने को मिलती है। अब चित्र केवल सौंदर्य का विषय न रहकर संवाद और विचार का माध्यम बन गया।

उत्तर आधुनिकता सिर्फ कला में ही नहीं, बल्कि समाज से जुड़े हर क्षेत्र में इसके लक्षण दिखाई देते हैं। यह ऐसी अवधारणा है जिसमें साहित्य, कला, संगीत में नए प्रयोग हुए हैं। उत्तर आधुनिक कलाकारों ने कोलाज, मिक्स मीडिया, डिजिटल तकनीक और इंस्टॉलेशन जैसे माध्यमों के माध्यम से कला की नई भाषा विकसित की। इस प्रक्रिया में मिथक, परंपरा और समकालीन जीवन के बीच एक जीवंत संवाद स्थापित हुआ। नलिनी मलानी, अतुल डोडिया, अर्पिता सिंह, सुबोध गुप्ता, और ज्योति भट्ट जैसे कलाकारों ने अपनी रचनाओं में आधुनिकता और भारतीयता के समागम को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया।
इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि भारतीय चित्रकला में उत्तर आधुनिक प्रयोगों ने नई दृष्टि, नई अभिव्यक्ति तथा नए अर्थ की खोज को कैसे जन्म दिया।

**मुख्य शब्द** – उत्तर आधुनिकता, समकालीन चित्रकला, कला प्रयोग, भारतीयता, दृश्य भाषा।

## भूमिका

भारतीय कला का आरंभ प्रागैतिहासिक काल से होता है जब मनुष्य गुफाओं में रहता व वनों में स्वच्छंद विचरण करता था। वह गुफाओं की दीवारों व शिलाओं पर रेखाएं अंकित कर चित्रण करता था।

गुफाओं की भित्तियों पर खींची रेखाओं से भारतीय कला की जो यात्रा आरंभ हुई वह हजारों वर्षों के प्रयोगों से अजंता के भित्तिचित्रों की तकनीक व ऊंचाई तक पहुंची। उसके बाद अजंता जैसी अनेक गुफाओं से होती हुई मंदिर व स्थापत्य में विकसित हुई। मौर्य काल, शुंगकाल, कुषाणकाल गुप्त आदि कालों में अनेक गुफाओं व मंदिरों में मूर्तिकला के निर्माण से कला में अनगिनत प्रयोग हुए। 10वीं व 11वीं शताब्दी में पाल व जैन शैलियों के रूप में विकसित होकर अपने–अपने धर्म से संबंधित पांडुलिपियों में निर्मित हुई। इस समय चित्रण परंपरा वृहद आकारों से लघु आकार के ताड़पत्रों में समा गई। ताड़पत्रों से बाद में कागज के प्रयोग से अंतराल में भी परिवर्तन आया। इसके बाद का समय कला में विषयों व पद्धतियों को लेकर महत्वपूर्ण रहा।

अंग्रेजों ने भारतीय साम्राज्य को अपने शिकंजे में करने के लिए यहाँ की कला व संस्कृति को अपने प्रभाव में लिया। भारत का कला परिदृश्य भी इसी प्रकार आगे बढ़ रहा था। भारतीय कला को समकालीन कला तक पहुंचने के लिए कई शताब्दियों का दौरा करना पड़ा है। प्राचीनकाल से ही भारत की कला कलात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से गौरवशाली रही है। यहां के कला आंदोलनों, शैलियों, उपशैलियों, मूर्तिकला, वास्तुकला एवं चित्रकला की विशेषताओं ने विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। भारतीय कला हर युग में प्रचलित देश के धर्म और संस्कृति से प्रेरणा पाती रही। यह

भिन्न–भिन्न युग में कला की भिन्न–भिन्न शैलियों से जानी गयी। भारतीय कला में धर्म प्रधान रहा है। भारतीय कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन हैं जो मानव सभ्यता के विकास क्रम से भी जुड़ा हैं। वस्तुतः भारतीय कला भारतीय धर्म और संस्कृति की मूर्त अभिव्यक्ति रही हैं। इसके बाद नवीन कला रूपों की रचना हुई ।

कालांतर में आए परिवर्तनों और स्वतंत्रता के बाद वैश्विक प्रभावों ने भारतीय कला और कलाकारों को एक नया दृष्टिबोध प्रदान किया। कला जगत में मान्यताओं और परंपराओं पर आधारित विभिन्न कला रूपों की खोज हुई है। भारतीय कला में भी शैलीगत परिवर्तन हुए।
इसी मोड़ पर उत्तर आधुनिकता का आगमन हुआ। यह न केवल कलात्मक शैली में परिवर्तन था, बल्कि सोचने की एक नई पद्धति भी थी – जहाँ एक ही सत्य नहीं, बल्कि अनेक सत्यों का सह–अस्तित्व संभव है। भारतीय कलाकारों ने इस दृष्टिकोण को स्थानीय संवेदनाओं और परंपराओं से जोड़कर अपनी विशिष्ट शैली विकसित की।

## 2. उत्तर आधुनिकता का अर्थ एवं पृष्ठभूमि

उत्तर आधुनिकता अंग्रेजी के पोस्ट मॉडर्न का हिंदी पर्याय हैं। उत्तर आधुनिकता को बीसवीं सदी के मध्य आधुनिकता की समाप्ति या विस्तार दोनों अर्थों में देखा जाता है। उत्तर आधुनिकता की उत्पत्ति द्वितीय विश्व युद्ध से मानी जाती है। उत्तर आधुनिकतावाद का संबंध विघटनवाद व उत्तर संरचनावाद से माना जाता है। आधुनिकतावाद ने औद्योगिकीकरण व साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया। उत्तर आधुनिकता का आरम्भ 1960–70 के दशक से माना जाता है। उत्तर आधुनिकता अचानक से उत्पन्न होने वाली विचारधारा नहीं है यह आधुनिक समाज की विचारधारा को अपने में शामिल किये हुए हैं।

उत्तर आधुनिकता का सबसे पहले प्रयोग अर्नाल्ड टॉयनबी ने 1947 में किया। उत्तर आधुनिकता ऐसी अवधारणा है जिसने सभी वर्गों को प्रभावित कर दिया। उत्तर आधुनिकता की अवधारणा को कोई भी विचारक स्पष्ट नहीं कर पाया है क्योंकि सभी विचारों विचारको के अलग–अलग मत हैं। इससे इस अवधारणा के बारे में भ्रम की स्थिति बनी हुई है। उत्तर आधुनिकता का संबंध साहित्य, कला, संस्कृति से माना जाता है साहित्य से इसका जुड़ाव ज्यादा है क्योंकि भारत में इसकी उत्पत्ति साहित्य से ही मानी जाती है।

उत्तर आधुनिक दृष्टि कला में बहुलता, विखंडन, विडंबना, पुनर्संयोजन, और लोकप्रिय संस्कृति के समावेश को स्वीकार करती है। उत्तर आधुनिकता मनुष्य की भावनाओं, मनोभावों और आध्यात्मिकता पर भी जोर देती है। आधुनिकता ने पवित्र, करिश्मा, मानवीय एकता, रोमांच सभी पर बड़े–बड़े प्रश्न चिन्ह खड़े कर दिए थे। उत्तर आधुनिकता इन सब पर जोर देती है। समुदाय, प्रेम, स्त्रियों की कोमलता, स्नेह आदि इसमें केंद्रीय विषय रहे हैं। उत्तर आधुनिक कला ने धर्म को मनोविज्ञान, व्यापक और राजनीति के साथ जोड़ा। उत्तर आधुनिकता की विचारधारा में संस्कृति का विशेष महत्व है। उत्तर आधुनिकता को आधुनिकता का विकल्प माना जाता है। उत्तर आधुनिकता आधुनिकता के अभावों को दिखाती है। उत्तर आधुनिक समाज में क्रांतिकारी बदलाव आए। उत्तर आधुनिकता की उत्पति समाज में मनुष्य की बढ़ती हुई समस्याओं के कारण हुई हैं। आधुनिकता के कारण समाज में बुराइयों व समस्याओं को बढ़ावा मिला जिससे मनुष्य की स्थिति दयनीय बन गई। आधुनिकता की इस रूढ़िवादिता को उत्तर आधुनिकता ने नकार दिया। उत्तर आधुनिकता की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करना मुश्किल है। समाज और साहित्य के विनाश का कारण आधुनिकता को माना जाता है। उत्तर आधुनिक बहुलवादी प्रवृत्ति है। आधुनिकता के दोषों को दूर करने के लिए उत्तर आधुनिकता का उद्भव हुआ है।

## 3. समकालीन भारतीय चित्रकला का परिदृश्य

1960 के दशक के बाद भारतीय कलाकारों पर पाश्चात्य कला प्रभाव अधिक बढ़ गया। देखा जाए तो वर्तमान में समय की मांग के अनुसार ही कलात्मक कार्य जारी है लेकिन सिर्फ पाश्चात्य का अनुकरण करने से ही कला निर्मिती नहीं हो सकती, यदि कलाकृति का जनसंपर्क नहीं हो पाता है तो। पाश्चात्य कला वहां की संस्कृति की समसामयिक मांग के अनुसार ढल गई है, उसमें वहां के जीवन दर्शन होते हैं। पश्चिम में कलाकारों के अनुसंधानों से वहां कला की अन्य शैलियों को लाभ पहुंचा है। हमें पश्चिम

की कला से सीख लेकर अपनी भारतीय शैली को नहीं भूलना चाहिए व ऐसी कलाकृतियों का निर्माण करना चाहिए जिससे कला में भारतीय जन – जीवन के दर्शन हो।

भारतीय कला में भी कलाकारों ने इस समय पश्चिम की भांति कुछ अकलात्मक आयोजन किए। जिनमें उदाहरण के रूप में के. एच. आरा के द्वारा अपनी प्रदर्शनी के दौरान गालिब के शेर को प्रदर्शित करना। हुसैन द्वारा अपनी श्वेतांबरी नामक प्रदर्शनी में समाचार–पत्रों में श्वेत वस्त्रों को लटकाकर कला निर्मित की। उसके एक साल बाद ही हुसैन ने 6 दिन में ही 6 हिंदू देवियों के चित्र बनाएं फिर सातवें दिन उनके ऊपर सफेद रंग की पुताई करके उनका विनाश कर दिया जिसे विनाश – निर्मित– उत्सव नाम दिया। इन कलाकार्यों की वजह से भारतीय समाज में उनकों आलोचना का शिकार होना पड़ा क्योंकि यह धार्मिक क्रियाकलापों को आहत करने वाले थे।

1980 के दशक से भारतीय कला में जो परिवर्तन के फलस्वरुप उत्तर आधुनिक कला को बल मिला। इस समय के कलाकार अपनी कला में आत्म अभिव्यक्ति करते थे। सतीश गुजराल, हुसैन, जतिन दास आदि चित्रकार अपनी कलाकृतियों द्वारा आनंद, सामाजिक जीवन, दैनिक दिनचर्या आदि विषयों को लेकर चित्रांकन करते थे। हमारे यहां की उत्तर आधुनिक कला पश्चिम की कला से सर्वथा भिन्न थी। सतीश गुजराल ने अपने चित्रों के भावों की अभिव्यक्ति में बदलाव किया। दुःख की जगह हर्षोल्लास के चित्र बनाएं। जतिन दास द्वारा अपने चित्रों के विषयों में शैलियों का मिश्रण किया गया। हुसैन ने भी अपने काम के साथ नवीनता को जोड़ा। यांत्रिक अथवा ज्यामितिक शैली मे 'मंडल परंपरा' तांत्रिक तत्वों तथा ज्यामितिक रूपाकारों को जो प्रमुखता से दर्शाया जाता है। मूर्तिकला तथा ग्राफिक चित्रों में माध्यम की विविधता दिखाई देती है। इन कृतियों से कलाकारों की आविष्कारक परक प्रतिभा की पुष्टि होती है जो नए रूपाकार तथा तकनीक की तलाश में है। अब कलाकार सांस्कृतिक सीमाओं को लांगते हुए अंतरराष्ट्रीय कला शैली को अपनाने की तरफ प्रयासरत है। इस समय भारत में अभिव्यंजनावादी आंदोलन फल – फूल रहा था। कुछ युवा भारतीय कलाकारों ने काव्यात्मक रहस्यवाद को लेकर खूब ऊंची उड़ान भरी है।

भारत में 90 के दशक में उदारीकरण, निजीकरण व भूमंडलीकरण ने लोगों में आकर्षण पैदा किया है। समकालीन भारतीय समाज में लोकप्रिय संस्कृति का उदय इस बात का संकेत है कि देश में तेजी से उत्तर आधुनिक समाज बनता जा रहा है।

### 4. भारतीय चित्रकला में उत्तर आधुनिक प्रयोग

#### (क) माध्यम और तकनीक में प्रयोग

उत्तर आधुनिक कलाकारों ने पारंपरिक कैनवस और रंगों की सीमाएँ तोड़ीं। उन्होंने कोलाज, इंस्टॉलेशन, वीडियो आर्ट, डिजिटल मीडिया और मिश्रित माध्यमों का प्रयोग किया।

#### (ख) समकालीन कला में लोक संस्कृति का समावेश

भूपेन खखर, और रविंद्र रैड्डी जैसे कलाकारों ने लोककला, प्रतीकों को अपनी कला में शामिल किया। इससे कला अभिजात वर्ग से बाहर निकलकर आम जन के निकट पहुँची। समकालीन कला को लोककला के साथ मिलाकर नई शैली बनाई।

#### (ग) स्त्री दृष्टि और नारी चेतना

अर्पिता सिंह, नलिनी मलानी, भारती खेर जैसी महिला कलाकारों ने स्त्री अनुभव को केंद्र में लाया। अर्पिता सिंह की पेंटिंग्स में युद्ध, हिंसा और घरेलू जीवन का संयोजन देखा जा सकता है, जबकि मलानी की वीडियो इंस्टॉलेशन में स्त्री शरीर एक राजनीतिक स्थल बन जाता है।

#### (घ) राजनीतिक और सामाजिक व्यंग्य

भूपेन खखर और जतिन दास ने भारतीय मध्यमवर्ग, धर्म, और नैतिकता पर व्यंग्य किया।

#### (ङ) डिजिटल माध्यमों प्रयोग

नए सदी में कलाकारों ने डिजिटल माध्यमों और प्लेटफॉर्म्स का प्रयोग शुरू किया। यह प्रयोग कला के बाजार और दर्शक–परिस्थिति दोनों को प्रभावित करते हैं।

### भारतीय कलाकारों ने उत्तर आधुनिक कला को नई पहचान दी।

भूपेन खक्कर ने समाज की परंपरागत सीमाएँ तोड़ीं। अर्पिता सिंह ने स्त्री के भीतर की दुनिया को अभिव्यक्ति दी। अतुल डोडिया ने इतिहास और स्मृति को पुनर्परिभाषित किया। उनकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया। नीलिमा शेख लघु चित्रों का प्रयोग करती है। ताकि भारतीय शिल्प व परंपराओं को जान सके। उनके टेंट जैसे संस्थापन उनकी पेंटिंग को छोटे, अंतरंग स्थानों से बाहर निकलते हैं। नलिनी मलानी ने माध्यमों की दीवारें गिराईं। मालिनी बहुत सारी ईमेज और साउंड के साथ परमाणु हथियार, हिंदू मुस्लिम झगड़े आदि के साथ दर्शकों के समक्ष आती हैं। भारती खेर ने परंपरा को प्रतीक बनाकर वैश्विक संवाद स्थापित किया। रविंद्र रेड्डी के मूर्तिशिल्पों में प्राचीन मूर्तिशिल्प पर यक्षी या उत्पादक आकृतियाँ नजर आती है। उनके विशाल नेत्रों वाली महिला के मूर्ति शिल्प प्रसिद्ध हिंदू उत्सव मूर्ति शिल्पो की याद दिलाते हैं।

### कला की नई भाषा की खोज

उत्तर आधुनिक भारतीय चित्रकला ने कला की पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर नई भाषा गढ़ी है। अवलोकन, विश्लेषण, प्रयोग, नवाचार ये सभी भारतीय समकालीन कला को काफी दिलचस्प बनाते हैं। समकालीन कला के माध्यमों द्वारा दुनिया को देखा जा रहा है। कला में कैनवास, ब्रश का स्थान कंप्यूटर व नवीन तकनीक ने ले लिया। इन नए माध्यमों से दर्शक, कलाकार व उसकी कला से पहुंच आसान हो गई हैं। कला कैनवास से मुक्त होती हुई डिजिटल माध्यमों से व्यक्त कि जाने लगी। संवाद की भाषा दर्शक को सहभागी बनाती है। इस प्रकार "नई भाषा" केवल कलात्मक प्रयोग नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी संकेत है। यह भाषा भारतीयता को वैश्विक संदर्भ में प्रस्तुत करती है।

## निष्कर्ष (Conclusion)

समकालीन भारतीय चित्रकला में उत्तर आधुनिक प्रयोगों ने कला को एक नया जीवन दिया है। अब कला केवल सौंदर्य या रूपक नहीं रही वह संवाद, प्रतिरोध और चिंतन का माध्यम बन गई है। कलाकारों ने पारंपरिक रूपों को पुनर्परिभाषित किया और एक ऐसी दृश्य–भाषा का निर्माण किया जो समय, समाज और व्यक्ति तीनों को जोड़ती है। उत्तर आधुनिक कला में दर्शक सीधे कला से संवाद कर रहे हैं कला में हो रहे नवीन प्रयोग कलाकार की कल्पनाशीलता को दर्शाते हैं। बीसवीं शताब्दी में वैश्विक पटल पर दर्शन ,कला, स्थापत्य कला में बदलाव आये जिसे उत्तर आधुनिक नाम दिया गया।

यह दृष्टिकोण पश्चिम की उत्तर आधुनिक कला में प्रचलित निजी अभिव्यक्ति की अवर्गीकृत शैली, जो प्रयोजन, तकनीकी ड्रॉइंग अथवा डिजाइन के अनुशासन से सर्वदा मुक्त थी, से एकदम अलग तरह का था। इस दौर में भारतीय कलाकारों द्वारा निर्मित कृतियों से यह स्पष्ट होता है कि वे चित्र की विषय वस्तु में नए सिरे से अपनी दिलचस्पी प्रकट कर रहे थे। यह परिवर्तन तकनीक तथा रूपाकार में प्रयोग करने की अभिरुचि से भिन्न थी। किसी सरोकार से जुड़ने की उनकी चाहत का द्योतक था। उनका यह सरोकार चित्र की अंतर्वस्तु से वहां अभिव्यक्ति अथवा सामाजिक सरोकार तथा काव्यात्मक रहस्यवाद में से किसी से भी संबंधित हो सकता है–भले ही शैली कोई भी हो, ज्यामितिक से फोटो यथार्थवाद तक। कुछ कलाकारों के लिए सामाजिक और राजनीतिक घटनाएं आवश्यक प्रेरक का काम कर रही थी और ये मानवीय व सामाजिक अनुभवों के चित्रण के लिए भी एक चुनौती थी। कुछ कलाकार सौंदर्य भावना को प्रतीकात्मक वह रहस्यवादी तरीके से अभिव्यक्त कर रहे थे।

उत्तर आधुनिक कलाकारों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने भारतीयता को पश्चिमी प्रभावों के बावजूद खोने नहीं दिया। उन्होंने स्थानीय संस्कृति, लोक–संवेदना और मिथकीय प्रतीकों को आधुनिक उपकरणों के साथ संयोजित कर भारतीय कला की एक विशिष्ट पहचान गढ़ी।

संदर्भ सूची


- श्रोत्रीय, सुखदेव. "कला के जीवित रहने की चुनौतीण" *समकालीन कला* 46.47 (2015)
- दमामी, एल.. *राजस्थान की आधुनिक कला एवं कलाविद.* उदयपुर : हिमांशु पब्लिकेशंस, 2004.
- भार्गव, रमेश. भारतीय आधुनिक कला का विकास. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
- मिश्र, गार्गी शरण. *उत्तर आधुनिकता और भारत.* राजस्थान : पराग प्रकाशन, 2017.
- यादव, विवेक कुमार, "उत्तर आधुनिकता : नई सामाजिक दृष्टि का उदय", अपनी माटी, अंक–37 (2021). <https://www.apnimaati.com/2021/11/blog-post_8.html>.
- मोंटी, ज्योति. "भूपेन खखर की कला में समाज और यथार्थ." कला संवाद, खंड 22, 2017.
- शर्मा, मंजरी. Darshan Series- Gallery Sumukha, Bangalore, 2014.
- सरल, मनमोहन. *समसामयिक कला की वर्तमान स्थिति और दिशा.* जयपुर : राजस्थान ललित कला अकादमी, 1995.
- दोषी, एस एल. *आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धदांत.* जयपुर : रावत प्रकाशन, रिप्रिंटेड 2019.
- पचौरी, सुधीश. *उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श.* प्रथम संस्करण. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1996.

30

# गीताप्रेस के आलोक में ग्रंथचित्रण की अजस्र धारा

पूनम कुशवाहा

[1]पी–एच.डी. शोधार्थी, दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

poonm6416@gmail.com / 8840336552

डॉ० सचिन सैनी

[2]सहायक प्राध्यापक, दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

**शोध सारांश–** गीताप्रेस, गोरखपुर भारत में धार्मिक ग्रंथों के प्रकाशन का एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है जिसने भारतीय समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। एक ओर यह संस्थान रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद एवं गीता जैसे ग्रंथों के प्रकाशन के माध्यम से ज्ञान का प्रसार करता है, वहीं दूसरी ओर इन ग्रंथों को आकर्षक और जीवंत बनाने के लिए चित्रकला एवं ग्रंथचित्रण की निरंतर परंपरा का विकास भी करता है।

गीताप्रेस के प्रकाशित ग्रंथ और पत्रिकाएँ जैसे – चित्रमय श्रीरामचरितमानस, बच्चों के लिए बालसाहित्य एवं कल्याण पत्रिका में छपे चित्र केवल अलंकरण मात्र नहीं हैं अपितु वे कथानक, भाव, आदर्श और दर्शन को सजीव रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों ने जटिल आध्यात्मिक प्रसंगों को सरल बनाया, धार्मिक आदर्शों को दृश्य रूप में मूर्त किया और सामान्य जनमानस में धार्मिक व सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने का कार्य किया है।

यह शोध ग्रंथचित्रण की उस अजस्त्र धारा का अन्वेषण करता है जो गीताप्रेस के माध्यम से आधुनिक काल में प्रवाहित हुई। इसमें यह विश्लेषण किया जाएगा कि किस प्रकार चित्रांकन ने केवल सौंदर्य संवेदना ही नहीं, बल्कि शिक्षाप्रद और सांस्कृतिक संदेश भी प्रसारित किए। साथ ही, यह अध्ययन ग्रंथचित्रण की शैली, विषयवस्तु और उसकी जन–स्वीकृति पर प्रकाश डालते हुए यह भी दर्शाता है कि किस प्रकार गीताप्रेस ने भारत की धार्मिक कला परंपरा को नई ऊर्जा और व्यापकता प्रदान की।

- **बीज शब्द : ग्रंथचित्रण, गीताप्रेस, साहित्य, चित्र, कथाचित्र ।**

## 1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में ग्रंथों का स्थान केवल ज्ञान और धर्मोपदेश तक सीमित नहीं है, बल्कि वे जीवन के मार्गदर्शक और समाज की सांस्कृतिक धरोहर भी रहे हैं। इन ग्रंथों को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु चित्रण का सहारा लिया गया है। दृश्यात्मक प्रस्तुति ने सदैव शास्त्रों और धर्मग्रंथों की अवधारणाओं को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया है। भारत में यह परंपरा हमें सर्वप्रथम पाल शैली के ताड़पत्रीय ग्रंथों से देखने को मिलती है। इसी प्रकार जैन, अपभ्रंश, राजस्थानी, पहाड़ी एवं मुगल शैलियों में पर्याप्त मात्रा में ग्रंथों का चित्रण कार्य किया गया। इस संदर्भ में यदि हम आधुनिक काल में देखें तो गीताप्रेस गोरखपुर का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी से लेकर आज तक गीताप्रेस न केवल धार्मिक ग्रंथों का प्रकाशन करता रहा है, बल्कि उनके साथ समाहित ग्रंथचित्रण की एक निरंतर, जीवंत और अजस्र धारा भी प्रवाहित करता आया है।

## 2. गीताप्रेस का परिचय और ग्रंथचित्रण की परंपरा

उत्तर प्रदेश राज्य के गोरखपुर जिले में विश्व का सबसे बड़ा हिंदू ग्रन्थ प्रकाशक गीताप्रेस स्थित है। गीताप्रेस की स्थापना 1923 में हुई थी और लगभग शुरू से ही गीताप्रेस ने अपने ग्रंथों के साथ चित्रों

का समावेश करना प्रारंभ कर दिया था। गीताप्रेस, गोविंद भवन कार्यालय की एक इकाई है जो सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 (वर्तमान में पश्चिम बंगाल सोसायटी अधिनियम, 1960 द्वारा शासित) के अंतर्गत पंजीकृत है। इसके संस्थापक स्वर्गीय **जयदयाल गोयनका** जी हैं। गीताप्रेस की इमारत से लेकर प्रकाशित ग्रंथों तक हमें असाधारण कलात्मकता के दर्शन होते हैं। "प्रेस का मुख्य प्रवेश द्वार अपनी डिजाइन के लिए उल्लेखनीय है। इसका हर पहलू भारत की समृद्ध स्थापत्य विरासत का प्रतिनिधित्व करता है। द्वार का प्रत्येक भाग विशिष्ट प्राचीन प्रसिद्ध मंदिर शैलियों से प्रेरित है। वस्तुतः, प्रवेश द्वार भारतीय मंदिर स्थापत्य कला का एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, प्रवेश द्वार के स्तंभ प्रसिद्ध गुफा–मंदिर एलोरा के स्तंभों पर आधारित हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुन के रथ के पीछे, मध्य भाग में स्थित गोलाकार खोखला भाग, अजंता गुफा मंदिर के मुख का स्मरण कराता है। प्रवेश द्वार का शिखर दक्षिण भारत के मीनाक्षी मंदिर के शीर्ष भाग का स्मरण कराता है। इस भव्य और विशिष्ट प्रवेश द्वार का उद्घाटन भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने 29 अप्रैल, 1955 को किया था।"1

**लीला चित्र मंदिर,** गीताप्रेस के प्रांगण में ही स्थित अपनी तरह की यह एक अनोखी कलादीर्घा है। "इसका उद्घाटन भी 29 अप्रैल 1955 में राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने किया था। गीताप्रेस में स्थित यह चित्र मंदिर भक्तजनों और दर्शकों के आकर्षण का केंद्र है।"2 जहाँ लगभग 684 चित्र संगृहीत हैं। यहाँ मुख्य रूप से राम, कृष्ण और शिव से संबंधित चित्र अधिक हैं। राजस्थानी शैली के भी कुछ चित्र यहाँ के संग्रह में मौजूद हैं। "इस गैलरी की एक और विशेषता यह है कि दीवारों पर संगमरमर की टाइलों की एक पंक्ति है जिन पर गीता के श्लोक 1–18 अंकित हैं जो पूरी गैलरी को एक धारा में घेरे हुए हैं। इसके अलावा, छत पर कबीर, तुलसीदास आदि महान कवियों के श्लोक चित्रित हैं। प्रत्येक पेंटिंग के कोने पर, कलाकार के आद्याक्षर या हस्ताक्षर देखे जा सकते हैं।"3

चित्र सं०–1 लीला चित्र मंदिर कलादीर्घा

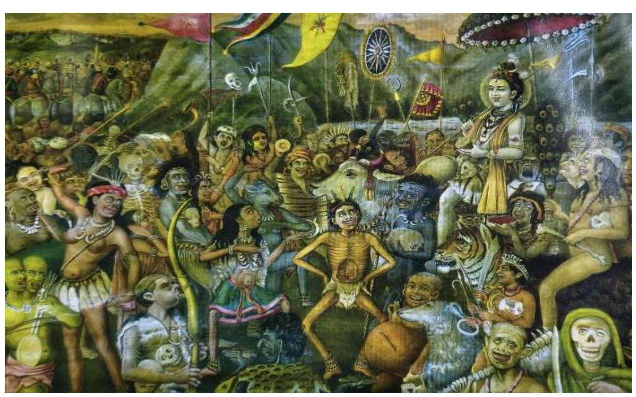

चित्र सं०–2 शिव बारात का चित्र– देवलालीकर

**कल्याण पत्रिका,** जो गीताप्रेस का प्रमुख प्रकाशन है, उसमें प्रकाशित चित्र धार्मिक प्रसंगों, पौराणिक कथाओं और संत साहित्य के आदर्शों को मूर्त रूप देते रहे। "इसमें तो बी० के० मित्रा, भगवान् व

जगन्नाथ के रंगीन व श्वेत–श्याम चित्र प्रत्येक अंक व वार्षिकांक में स्थाई तौर पर प्रसंगानुसार प्रकाशित होते रहे हैं। जब कभी देवलालीकर के चित्र भी छपते थे, इनकी चित्र–शैली उपरोक्त तीनों स्थायी चित्रकारों की अपेक्षा भिन्न थी। उनके रंगों के संयोजन में अपनी एक विशिष्ट छाप थी, जिससे उनके चित्र अपने ही आप पहचान में आ जाते थे। शेष तीनों चित्रकारों के सैकड़ों रेखाचित्र, श्याम–श्वेत व रंगीन चित्र प्रकाशित हो चुके हैं।"4

यूँ तो गीताप्रेस के ग्रंथों के अध्ययनकर्ताओं की संख्या करोड़ों में है किंतु उनमें से कुछ ही लोग ऐसे हैं जिन्हें इनके ग्रन्थचित्रों के चित्रकारों के बारे में ज्ञात है। ऊपर हमने जिन चित्रकारों का जिक्र किया है वह तो विशेष ख्याति प्राप्त कलाकार हुए जिन्होंने गीताप्रेस हेतु चित्र बनाए और प्रसिद्धि प्राप्त की ; किंतु इन चित्रकारों के अतिरिक्त भी अन्य चित्रकार हैं जिन्होंने गीताप्रेस के लिए चित्रण कार्य किया है। इनमें ओरधेन्द्र कुमार गांगुली, सत्येंद्रनाथ बनर्जी, मोहम्मद हकीम खान, शारदा चरण उकील, कनु देसाई, सावित्री खानोलकर, जे.एन. प्रसाद, इन्द्र शर्मा, धनुष, नरेंद्र घासीराम शर्मा (नाथद्वारा कलाकार) आदि कलाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

गीताप्रेस के सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कलाकारों में सबसे पहले **बिनय कुमार मित्रा** का नाम आता है जिन्हें गीताप्रेस का राजारवि वर्मा भी कहा जाता है। लीला चित्र मंदिर में इनके बनाए अनेकों उत्कृष्ट चित्र विद्यमान हैं। इनके बनाए कुछ पहेली चित्र भी हैं जिनमें आकृतियों को खोजना पड़ता है। देखने में यह चित्र पहले किसी पहाड़ी, नदियों, अलंकरण इत्यादि के चित्र लगेंगे किंतु ध्यान से अवलोकन करने पर इसमें शिव, पार्वती, भक्त–पुरुषाकृति आदि की आकृतियाँ दिखाई देती हैं।

**जगन्नाथ गुप्त**, जिनकी प्रतिभा देख कर उन्हें गीताप्रेस के प्रवेश द्वार का मॉडल तैयार करने की जिम्मेदारी दे दी गई थी। इन्होंने ने भी गीताप्रेस के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। इन्हें अमेरिका द्वारा **"नोटेड द हिंदू इलस्ट्रेटर"** की उपाधि मिली थी। जगन्नाथ बी.के. मित्रा के शिष्य थें। इन्होंने अनेक चित्रों की रचना की, किंतु जिसने उन्हें अमर कर दिया वह चित्र कदंब के पेड़ के नीचे बाँसुरी बजाते भगवान कृष्ण का था इस चित्र को इतनी लोकप्रियता मिली कि आज भी देश–विदेश में इसकी काफी माँग है।

**भगवानदास** इन्होंने अपना पूरा जीवन देवी–देवताओं की छवियों को आकार देने में लगा दिया। देव चित्रों के साथ ही आस–पास के माहौल और भवनों की बारीक नक्काशी को ब्रश से पेंटिंग में उतारने की उनकी खासियत ही निर्माता–निर्देशक रामानंद सागर को गोरखपुर तक ले आई थी। चित्रकार भगवान दास भी मित्रा के जरिये ही गीताप्रेस का हिस्सा बने थे।

मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध कलाकार एवं हुसैन व बेंद्रे के कलागुरु रहे **दत्तात्रेय दामोदर देवलालिकर** ने गीताप्रेस के लिए कई कमीशन प्राप्त कृतियाँ कीं। इनके द्वारा बनाए चित्रों में रंग योजना एवं आकृतियों का संयोजन अद्वितीय है।

कई भारतीय फिल्मों में कला निर्देशक रहने वाले **कनु देसाई** ने कल्याण के लिए कई चित्र बनाए। इन्होंने महात्मा गाँधी द्वारा लिखी गई कई पुस्तकों के लिए भी चित्रण कार्य किया था।

गीताप्रेस के लिए चित्रण करने वालों में एक महत्त्वपूर्ण नाम **मोहम्मद हकीम खान** का भी है, जो एक मुस्लिम व्यक्ति थे लेकिन अपने हिंदू देवी–देवताओं की प्रतिमाओं के लिए जाने जाते थें।

**सावित्रीबाई खानोलकर** एक कुशल महिला चित्रकार एवं परमवीर चक्र का रूपांकन करने वाली प्रसिद्ध डिजाइनर थीं। इनका जन्म स्विट्जरलैंड में हुआ, किंतु विवाहोपरांत वह भारत आ गईं और यहाँ सावित्रीबाई ने हिंदू धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन किया। इन्होंने गीताप्रेस के लिए चित्रण कार्य भी किया है।

**गोपाल साधक गुप्ता** एक स्वशिक्षित कलाकार हैं जो वर्तमान में गीताप्रेस में नियुक्त हैं। साधक जी ने अपने साक्षात्कार में बताया कि वह सिर्फ पुराने मास्टरों के बनाए रेखाचित्रों में रंग भरने व आवश्यकता अनुरूप चित्रों में सुधार का कार्य करते हैं। हालांकि वह स्वतंत्र रूप से चित्रकारी का कार्य भी करते हैं।

इस प्रकार इन कलाकारों ने अपने चित्रों में भारतीयता, भक्ति, सादगी और गूढ़ भावनाओं का ऐसा अद्भुत संयोजन प्रस्तुत किया जो न केवल सौंदर्यात्मक दृष्टि से समृद्ध है, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि से भी गहन है। गीताप्रेस जन कल्याण की भावना लिए हुए एक समाज सेवी संस्था है जो अपने ग्रंथों में किसी भी प्रकार का विज्ञापन इत्यादि नहीं छापती यहाँ तक कि इनकी पुस्तकों में पुस्तक के आवरण व दृष्टांत चित्रों के लिए चित्रण का श्रेय भी प्रदान नहीं किया गया है। किन्तु मौलिक चित्र में यदि चित्रकार के हस्ताक्षर हैं तो वह प्रकाशित चित्र में अवश्य ही देखे जा सकते हैं। इस प्रकार गीताप्रेस के लिए चित्रण कार्य करने के लिए कलाकार में सेवाभाव एवं जन कल्याण की भावना का होना अत्यंत आवश्यक हो जाता है क्योंकि इस कार्य के लिए उसे न्यूनतम श्रम ही प्राप्त होता है और इसके अतिरिक्त भी उसका किसी प्रकार का प्रचार–प्रसार नहीं किया जाता।

### 3. गीताप्रेस के चित्रों की विशेषताएँ

**विषयवस्तु** : चित्रण में रामायण, महाभारत, भागवत, गीता, पुराण तथा भक्ति–साहित्य की कथाओं का वर्चस्व रहा है साथ ही बालकों के लिए शिक्षाप्रद ग्रंथों का प्रकाशन भी किया जा रहा है। जिसमें प्रेरक कथाओं के चित्रित ग्रन्थ एवं अन्य शिक्षाप्रद विषयों पर आधारित पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं।

**शैली** : "लीला चित्र मंदिर की सभी पेंटिंग प्राचीन शास्त्रों में दिए गए विवरणों पर आधारित हैं और इसलिए भारतीय पौराणिक कथाओं में प्रत्येक देवता और दृश्यों का सटीक वर्णन प्रदान करती हैं।"[5] चित्रकारों ने पारंपरिक भारतीय ललित कला की सरल, लोकाभिमुख शैली अपनाई, जिसमें भावाभिव्यक्ति, सांकेतिकता और नैतिक संदेश पर बल दिया गया। सभी चित्र सरल और यथार्थवादी शैली में समझ आने योग्य हैं।

**दृश्य प्रभाव** : इन चित्रों ने अशिक्षित या अल्पशिक्षित पाठकों तक भी धर्म और संस्कृति का संदेश पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चित्रों में सर्वत्र एक समान मर्यादित भाव विद्यमान है, कहीं भी गीताप्रेस के आदर्शों का हनन होता दिखाई नहीं पड़ता।

**धार्मिक शिक्षण** : इन चित्रों ने अमूर्त आध्यात्मिक विचारों को सुलभ और बोधगम्य बनाया।

**सांस्कृतिक एकता** : भारत के विविध प्रांतों में गीताप्रेस के चित्र समान रूप से लोकप्रिय हुए, जिससे सांस्कृतिक एकात्मता को बल मिला।

**नैतिकता और आदर्शवाद** : पात्रों और प्रसंगों का चित्रण आदर्श मानवीय गुणों को उजागर करता है, जैसे– सत्य, धर्म, त्याग, सेवा और भक्ति चित्रण ने धार्मिक पुस्तकों को जनमानस के लिए आकर्षक बनाया, जिससे उनका व्यापक प्रसार हुआ।

**लोकप्रियता और जनसुलभता** : गीताप्रेस की चित्र परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी "लोकप्रियता और जनसुलभता" है। इन चित्रों ने शिक्षित–अशिक्षित सभी के बीच धर्म और संस्कृति का संदेश पहुँचाया। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि गीताप्रेस के चित्र दृश्य माध्यम से धर्मप्रचार के सशक्त उपकरण बन गए। कल्याण पत्रिका और अन्य ग्रंथों में प्रकाशित चित्रों ने करोड़ों लोगों के घरों, मंदिरों और मनों में स्थायी स्थान बना लिया। यही कारण है कि इन चित्रों की झलक आज भी भारतीय धार्मिक आयोजनों, मंदिरों की मूर्तियों और यहाँ तक कि टेलीविजन धारावाहिकों और फिल्मों में भी देखी जा सकती है।

### 4. ग्रंथचित्रण की अजस्र धारा : सांस्कृतिक एवं सामाजिक संदर्भ

गीताप्रेस का ग्रंथचित्रण कोई सामान्य चित्र नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक चेतना का वाहक है। जब से गीताप्रेस अस्तित्व में आयी तब से इसके ग्रंथों एवं लीलाचित्र मंदिर में संगृहीत चित्रों ने लोगों को प्रभावित किया है। जिस प्रकार इसके ग्रन्थ भारतीय ज्ञान का प्रमाणिक स्रोत माने जाते हैं ठीक उसी प्रकार इनके चित्र भी दर्शकों को एक व्यापक, शुद्ध और पावन आध्यात्मिक अनुभूति कराते हैं।

"दुनियाभर में फैले करोड़ों आध्यात्म प्रेमी इन चित्रों के प्रशंसक हैं। ये चित्र इतने पसंद किये

जाते हैं कि आज भी इन चित्रों को लाखों धर्मप्रेमियों ने अपने घरों में पुराने एलबमों में सहेज रखा है।

चित्र सं०– 3 चित्र सं०– 4

1940 और 1980 के दशक के मध्य निर्मित, इन 10,000 से अधिक चित्रों को गीताप्रेस अनेक बार कल्याण और अन्य ग्रंथों में प्रकाशित कर चुकी है और आज भी कर रही है। ये चित्र बड़े–बड़े कैलेण्डर के रूप में भी छप चुके हैं, घर–घर में सुशोभित हैं और भारतीय चित्रकला की अमूल्य निधि हैं। उल्लेखनीय है कि इन चित्रों के आधार पर देश के अनेक मन्दिरों में प्रतिमाओं का निर्माण भी हुआ है।"6 इनकी झलक हमें अन्य धार्मिक कृतियों में भी दिखाई पड़ती है। उदाहरण स्वरूप जब राम मंदिर का निर्माण कार्य चल रहा था तब यह अनुमान था कि उस पर भी गीताप्रेस के चित्रों की छाप दिखाई पड़ सकती है और ऐसा ही हुआ **सुनील विश्वकर्मा** जी के द्वारा बनाए गए रामलला के विग्रह के रेखाचित्र (चित्र सं०–7) पर गीताप्रेस की पुस्तक रामलला (code-1016) में चित्रित भगवान राम के बाल स्वरूप की छाप दिखलाई पड़ती है। संभवतः ऐसा इसलिए है क्योंकि गीताप्रेस के चित्रकारों ने शास्त्रीय वर्णन के अनुरूप रामलला का रूप गढ़ा और चित्रकार सुनील विश्वकर्मा ने भी उन्हीं ग्रंथों के वर्णन के अनुसार राम का बाल रूप चित्रित किया।

"फिल्मों के मशहूर निर्माता–निर्देशक रामानंद सागर 'रामायण' धारावाहिक बनाने से पहले गीताप्रेस के

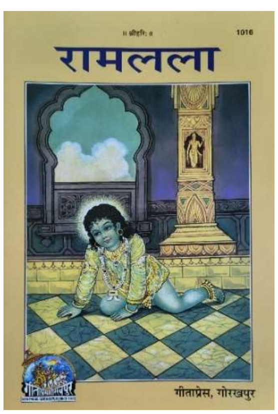

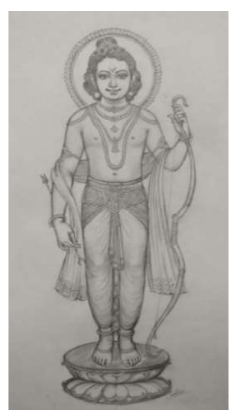

चित्र सं०– 5 चित्र सं०– 6 चित्र सं०– 7 चित्र सं०– 8

लीला चित्र मंदिर में सजे चित्रों को देखने के लिए गोरखपुर आए थे। अपने चार दिन के प्रवास में चित्रो की जीवतंता देख वह अभिभूत हुए और उनके आधार पर ही अपने धारावाहिक के पात्रों राम, लक्ष्मण, सीता, कौशल्या, हनुमान, सुग्रीव आदि के वस्त्र, उनके रंग, आभूषण आदि का चुनाव किया। धारावाहिक में सजाए गए दरबार का आधार भी यही चित्र थे। **गीताप्रेस के प्रबंधक डा. लालमणि तिवारी**

**बताते हैं कि चित्रों को देखने के बाद रामानंद सागर ने कहा था कि यह तो अद्‌भुत है, इसका अंशमात्र भी हम धारावाहिक में इस्तेमाल कर पाए तो धन्य होंगे।"7**

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीताप्रेस ने निरंतर ही समाज एवं संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला है जिसे नकारा नहीं जा सकता।

## 4. विश्लेषणात्मक दृष्टि

गीताप्रेस के चित्रों को देखने पर स्पष्ट होता है कि उनका उद्देश्य केवल कला–सृजन नहीं, बल्कि शिक्षण, मार्गदर्शन और जनजागरण रहा है। चित्रों की सादगी, स्पष्टता और भावगर्भिता ने इन्हें लोकप्रिय बनाया। यह परंपरा इतनी समृद्ध और निरंतर रही कि इसे "अजस्र धारा" कहना समीचीन है। गीताप्रेस के चित्र भारतीय संस्कृति की उस "दृश्य गंगा" के समान हैं जो निरंतर प्रवाहित होकर जनमानस को धर्म, सत्य, भक्ति और नैतिकता के पथ पर प्रेरित करती है।

इन चित्रों में कला, अध्यात्म और संस्कृति का अद्‌भुत समन्वय है जो आज भी भारतीय समाज की आस्था का सजीव प्रतीक बना हुआ है। आधुनिक काल में गीताप्रेस की सम्पूर्ण विश्व में जो साख़ है वह अन्य किसी धार्मिक प्रकाशन की नहीं है। आज जब देशवासियों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव हावी होता जा रहा है ऐसे समय में गीताप्रेस विदेशों तक भारतीय ज्ञान को कई भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी भाषा में भी उपलब्ध करा रहा है। इन ग्रंथों की भाषा तो अनेक हैं किंतु जन–जन तक पहुँचने वाले यह ग्रन्थचित्र एक ही हैं। इन सभी चित्रों पर गीताप्रेस का एकाधिकार है जिनका प्रकाशन उनके ग्रंथों में ही होता है तथा मौलिक चित्र लीला चित्र मंदिर कलादीर्घा में संग्रहित हैं। इस प्रकार लोगों में गीता का ज्ञान फैलाने के उद्देश्य से जिस महान संस्थान की स्थापना की गई थी वह अप्रत्यक्ष रूप से चित्रकला के क्षेत्र में भी अपना योगदान दे रहा है या यूँ कहें कि बीसवीं सदी से ही यह योगदान देता आया है। जिसकी अजस्र वेगवती धारा का सिंचन आज भी इस विश्व धारा पर हो रहा है।

## 5. निष्कर्ष

गीताप्रेस ने ग्रंथों और चित्रों के सामंजस्य के माध्यम से भारतीय धार्मिक संस्कृति को एक व्यापक मंच प्रदान किया। यह ग्रंथचित्रण मात्र सौंदर्यबोध का संवाहक नहीं, अपितु आध्यात्मिक संदेशों का सेतु भी है। आज भी गीताप्रेस के प्रकाशनों में चित्रण की यह धारा प्रवाहित हो रही है, जो भारतीय समाज में धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक चेतना और नैतिक जीवन मूल्यों को पोषित कर रही है।

गीताप्रेस गोरखपुर न केवल भारत का एक प्रमुख धार्मिक ग्रंथ प्रकाशन संस्थान है, बल्कि यह भारतीय दृश्यकला और ग्रंथचित्रण की उस अजस्र धारा का संवाहक भी है जिसने धार्मिक साहित्य को नये सौंदर्य, संस्कार और जीवंतता से भर दिया। इसके ग्रंथों में प्रकाशित चित्र भारतीय सांस्कृतिक चेतना, आस्था, नैतिकता और धर्म के मूर्त प्रतीक बनकर उभरे हैं। इन चित्रों ने धर्मोपदेश और अध्यात्म के गूढ़ विचारों को सरल, सहज और लोकाभिमुख रूप में प्रस्तुत किया, जिससे वे समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचे।

इसकी चित्र परंपरा ने भारतीय धार्मिक कला की धारा को निरंतर 100 वर्षों तक प्रवाहित रखा है इसलिए इसे "ग्रंथचित्रण की अजस्र धारा" कहना अत्यंत उपयुक्त है। इन चित्रों में निहित सौंदर्यबोध, सादगी और संदेशवत्ता आज भी उतनी ही प्रभावशाली है जितनी अपने आरंभिक काल में थी।

अंततः कहा जा सकता है कि गीताप्रेस ने शब्द और चित्र दोनों को एकात्म कर भारतीय आध्यात्म की दृश्यभाषा रची है। इसने धर्म को केवल पठन–पाठन तक सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि उसे देखने, अनुभव करने और जीने का अवसर भी प्रदान किया। यह परंपरा आज भी जीवित है, प्रवाहित है और भारतीय समाज को अपनी जड़ों से जोड़ने का सतत् कार्य कर रही है यही इसकी वास्तविक उपलब्धि और स्थायी महत्ता है।

संदर्भ–सूची

1. Gita Press. *serving humanity for truth and peace since 1923*, Gitapress, Gita Press - Largest Hindu Religious Text Publisher https://share.google/oLTitNviO6SmIyF8s.

2. श्रीवास्तव, अविनाश. "दुनिया का सबसे अनोखा है ये 'लीला चित्र मंदिर', यहां दीवार पर लिखी है संपूर्ण गीता". अमर उजाला, 29/11/2020, Special Story Of Geeta Press Leela Chitra Mandir Gorakhpur - Amar Ujala Hindi News Live - **दुनिया का सबसे अनोखा है ये 'लीला चित्र मंदिर', यहां दीवार पर लिखी है संपूर्ण गीता** https://share.google/38Kx3UYU0jgNDaGgj.

3. "10 Famous Artists Who Worked for Gita Press and Leela Chitra Mandir". Abir pothi, 20 December 2023, 10 Famous Artists Who Worked For Gita Press And Leela Chitra Mandir - Abirpothi https://share.google/HkvbBp4br1rTA6dzA.

4. वर्मा, महेंद्र. *भारतीय चित्रकला की परंपरा.* भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, 2006. प्रथम संस्करण.

5. "10 Famous Artists Who Worked for Gita Press and Leela Chitra Mandir ". Abir pothi, 20 December 2023, 10 Famous Artists Who Worked For Gita Press And Leela Chitra Mandir - Abirpothi https://share.google/HkvbBp4br1rTA6dzA.

6. अग्रवाल, गुंजन. "गीताप्रेस के सच्चे कला उपासक". भारतीय धरोहर, **गीताप्रेस के सच्चे कला-उपासक | भारतीय धरोहर** https://share.google/xUojGRaYmjiC2OPQP.

7. श्रीवास्तव, प्रदीप. "लीला चित्र मंदिर, यहीं आकर रामानंद सागर को मिली थी धारावाहिक 'रामायण' बनाने की प्रेरणा". जागरण, 05/06/2022, **लीला चित्र मंदिर, यहीं आकर रामानंद सागर को मिली थी धारावाहिक 'रामायण' बनाने की प्रेरणा -** Leela Chitra Mandir Gita Press Gorakhpur ramanand Sagar got the inspiration to make Ramayana by coming here https://share.google/Xp5BcHYwYRZkUcxTW.

8. कोड, 1016. *रामलला.* गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत २०८१. पचीसवाँ पुनर्मुद्रण.

9. प्रताप, डॉ० रीता. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास. जयपुर, 2022. 39वां संस्करण.

10. कोड, 651. गोसेवा के चमत्कार. गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०८१. पचासवां पुनर्मुद्रण.

11. गीताप्रेस के 100 वर्ष पूर्ण होने पर प्रकाशित संक्षिप्तिका

12. Official website of gitapress, https://gitapress.org/.

- चित्र–सूची

1. चित्र सं० 1,7,8 – गूगल से प्राप्त
2. चित्र सं० 2,3,4,5,6 – गीताप्रेस की पुस्तकों से प्राप्त

31

# "भारतीय कला-साहित्य का दार्शनिक आधार : सौन्दर्य और अध्यात्म की अंतर्धारा"

राहुल ऊषाहरा (शोधार्थी)
चित्रकला विभाग, ललित कला संकाय,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. राजेंद्र प्रसाद (शोध निदेशक)
सहायक आचार्य
चित्रकला विभाग, ललित कला संकाय,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

## सारांश (**Abstract**) :

भारतीय कला और साहित्य का इतिहास केवल सृजन का इतिहास नहीं, बल्कि आत्मा की यात्रा का इतिहास है, जहाँ शब्द, रंग, रूप और लय मिलकर ब्रह्म की मूक भाषा रचते हैं। भारतीय दृष्टि में कला इंद्रिय सुख का विषय नहीं, बल्कि आत्म–साक्षात्कार की साधना है। यहाँ सौन्दर्य बाह्य आकर्षण नहीं, बल्कि वह प्रकाश है जो आत्मा की गहराइयों में उतरकर उसे विष्वचेतना से जोड़ता है। भारतीय परंपरा में सृजन, साधना का पर्याय रहा है – कलाकार, कवि और दार्शनिक सभी एक ही तत्व की खोज में रहे हैंः वह सत्य जो जीवन, प्रकृति और अस्तित्व के मध्य निरंतर स्पंदित है। यह शोध उसी अदृश्य अंतर्धारा का अन्वेषण है, जहाँ सौन्दर्य और अध्यात्म एक ही तत्त्व के दो स्पंदन बनकर बहते हैं। अभिनवगुप्त के रसानुभव से लेकर टैगोर के मानव धर्म तक, और कालिदास से लेकर अमृता शेरगिल तक प्रत्येक सृजनकर्ता उस क्षण की खोज करता है, जब रूप और निरूप, दृश्य और अदृश्य, सीमित और असीम – एक ही निःशब्द बोध में विलीन हो जाते हैं। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में देखना केवल दृष्टि का क्रिया नहीं, हो जाना है – उस अनुभव में आत्मा का विसर्जन जहाँ वह परमात्मा से एकाकार होती है। इसीलिए भारतीय कला केवल संस्कृति की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सृष्टि के रहस्य का उद्घाटन है। यहाँ चित्र में दर्शन है, कविता में साधना है, और संगीत में मुक्ति का स्पर्श। यही वह क्षण है जहाँ सौन्दर्य अध्यात्म में रूपांतरित होता है और अध्यात्म सौन्दर्य में झलकता है – जैसे सूर्य का प्रकाश जल में प्रतिबिंबित होकर स्वयं को पहचान लेता है। यह शोध–पत्र भारतीय कला और साहित्य में निहित उस दार्शनिक आधार को उद्घाटित करता है, जो सौन्दर्यबोध, अध्यात्म और अनुभूति के त्रिवेणी संगम के रूप में भारतीय संस्कृति की आत्मा में प्रवाहित है। यहाँ कला धर्म से पृथक नहीं, न ही साहित्य जीवन से; सब एक समरस संगीत में गुँथे हुए हैं। यह अध्ययन वेदान्त, उपनिषद, आचार्य अभिनवगुप्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा आधुनिक कलाविमर्श के आलोक में भारतीय सृजन परंपरा की उसी अंतर्धारा को खोजने का प्रयास है, जो सौन्दर्य को आध्यात्मिकता का दर्पण और अध्यात्म को सौन्दर्य की आत्मा बनाती है।

**मूल शब्द : सौन्दर्यबोध, अध्यात्म, कला दर्शन, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, आत्म–साक्षात्कार, रसानुभव, वेदान्त, उपनिषद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अभिनवगुप्त, कलात्मक अनुभूति, संस्कृति, जीवन–दर्शन, सृजनात्मक चेतना, भारतीय परंपरा।**

## प्रस्तावना (**Introduction**) :

कला मानव सभ्यता की आत्मा है – वह निःशब्द स्वर, जो युगों से मनुष्य के भीतर गूंजता रहा है। जब आदिम मानव ने पहली बार अपनी उँगलियों से मिट्टी को आकार दिया, जब उसने पत्थर पर अपने भय, आशा और प्रेम के चिन्ह उकेरे, उसी क्षण कला का उद्भव हुआ। यह जन्म किसी शिल्प का नहीं, बल्कि उस आंतरिक ज्वाला का था जो अपने अस्तित्व को अभिव्यक्ति देना चाहती थी। कला मानव की उस अभिलाषा का नाम है जो अनंत को छू लेना चाहती है – जो दृश्य में अदृश्य को देखने का प्रयत्न करती है। भारतीय परंपरा में कला को सदैव सृष्टि की सृजनशक्ति से जोड़ा गया है। यह केवल अनुकरण नहीं, बल्कि सृष्टि की निरंतर प्रक्रिया में भागीदारी है। कला जीवन को प्रतिबिंबित नहीं करती, वह जीवन को पूर्णता की ओर ले जाती है।[1] इसीलिए यहाँ कला केवल सौन्दर्य का विषय नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन है। यह धर्म की भक्ति में भी है, साहित्य की संवेदना में भी, और दर्शन की अनुभूति में भी – एक त्रिवेणी, जहाँ अनुभव, विचार और अभिव्यक्ति एकाकार हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति की आत्मा सदैव एकात्म और समन्वय की रही है। यहाँ धर्म, दर्शन और कला तीनों जीवन के अविभाज्य आयाम हैं। भारतीय ने कभी सौन्दर्य को बाह्य रूप में नहीं देखा; उसने उसे भीतर की अनुभूति, आत्मबोध और आध्यात्मिक उत्कर्ष के रूप में समझा। कला यहाँ साधना है – मन की परिशुद्धि की प्रक्रिया।[2] साहित्य

यहाँ लोक और परलोक के बीच सेतु है, जो मनुष्य के भीतर के भाव–जगत को ब्रह्मांड की चेतना से जोड़ता है। और दर्शन यहाँ केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि अनुभूति की यात्रा है, वह यात्रा जो "जानने" से आगे "होने" तक जाती है।

**कला, साहित्य और दर्शन का पारस्परिक संबंध :**

कला और साहित्य, मानव सृजन के दो समानान्तर आयाम हैं – दो दिशाएँ, जो एक ही केंद्र की ओर बढ़ती हैं। कला वहाँ रंगों में बोलती है जहाँ शब्द मौन हो जाते हैं, और साहित्य वहाँ गाता है जहाँ रंगों की सीमा समाप्त होती है। दोनों का उद्देश्य एक ही है मानव अनुभव की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति, उस सत्य की खोज जो रूप, शब्द और अनुभूति तीनों में एक साथ विद्यमान है। भारतीय आचार्यों आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त और मम्मट ने 'काव्य' का मूल तत्व 'रस' बताया है। यह रस केवल साहित्य की आत्मा नहीं, चित्रकला की भी प्राणधारा है। शब्दों में जो रस झरता है, वही रंगों में खिलता है। इसीलिए कहा गया है "यत्र चित्रं तत्र काव्यम्।" जहाँ चित्र है, वहीं काव्य है।भारतीय परंपरा में कला और साहित्य का यह अंतर्संबंध अनादि काल से जीवित रहा है। अनेक चित्रशैलियाँ साहित्यिक काव्यों से प्रेरित रहीं – गीतगोविन्द, रामायण, महाभारत, रघुवंश, कुमारसंभव जैसे ग्रंथों ने चित्रकारों की चेतना को आलोकित किया। राजस्थान की किशनगढ़, जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, बूंदी, और पहाड़ी प्रदेशों की कांगड़ा–बासोली चित्र शैलियाँ इसका प्रमाण हैं। इन चित्रों में कविताओं के भाव रंगों में साँस लेते हैं; मीरा की भक्ति, राधा का विरह, सीता की करुणा और अर्जुन का द्वंद्व सब कुछ रेखाओं और रंगों में मूर्त हो उठता है।[3] कवि शब्दों से जो चित्र रचता है, चित्रकार रंगों से वही कविता गढ़ता है। दोनों में एक ही आत्मा का संचार है, बस माध्यम भिन्न हैं। यह संवाद केवल अतीत की स्मृति नहीं, आज की सजीव परंपरा भी है। आधुनिक युग में भी साहित्य और कला का यह संबंध उतना ही गहरा और सजीव है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के चित्रों में उनकी कविताओं की आत्मा धड़कती है, एक ही भाव, दो रूपों में प्रकट होता है। मकबूल फिदा हुसैन की रचनाओं में रामायण और महाभारत के प्रतीक आधुनिक संवेदना के रंगों में नये अर्थ ग्रहण करते हैं।

कला और कविता दोनों ही मानव चेतना के दर्पण हैं, जो विचार को अनुभव में रूपांतरित करते हैं, और अनुभव को अनन्तता में ले जाते हैं। कला और साहित्य दोनों संवेदना के माध्यम हैं, परंतु उनका आधार दर्शन है। दर्शन सत्य की खोज करता है; कला उस सत्य को रूप और रंग देती है; और साहित्य उसे शब्दों की लय में गूंजता है। तीनों मिलकर सत्य की त्रयी बन जाते हैं विचार, अनुभूति और अभिव्यक्ति का प्रतीक।

**भारतीय दार्शनिक दृष्टि में कला का स्थान :**

भारतीय दर्शन में कला को केवल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि साधना कहा गया है, वह साधना जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ती है, और मनुष्य के अस्तित्व को उसकी दिव्यता से मिलाती है। यहाँ कला दृष्टि का नहीं, ध्यान का रूप है। टैगोर के शब्दों में "कला आत्मा की वह भाषा है, जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व की गहराइयों को व्यक्त करता है।[4]" जयशंकर प्रसाद ने इस भाव को और भी गहराई दी "कला ईष्वर की कर्तृत्वशक्ति का मानव द्वारा कौशलपूर्ण पुनर्निर्माण है।[5]" यह वही बिंदु है जहाँ कला सृष्टि का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि उसका पुनःसृजन बन जाती है। प्लेटो ने जहाँ कला को सत्य की अनुभूति कहा[6], वहीं क्रोचे ने इसे बाह्य प्रभाव की आंतरिक अभिव्यक्ति बताया। इन सभी विचारों का संगम भारतीय दृष्टि में 'अनुभूति के धर्म' के रूप में होता है, क्योंकि यहाँ कला केवल इन्द्रिय सुख नहीं, बल्कि आत्मा का स्पर्श है। "सत्यं, शिवं, सुन्दरम्" यह वाक्य भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का सार है। यहाँ सौन्दर्य सत्य और शिव का ही रूप है। कला इन तीनों तत्त्वों को मूर्त करती है, वह सत्य को रूप देती है, शिव को अनुभव में लाती है, और सौन्दर्य को लोक तक पहुँचाती है। भारतीय कलाकार के लिए सृजन 'रचना' मात्र नहीं, बल्कि 'उपासना' है। उसकी कूची, उसकी कलम, उसकी वीणा सभी साधना के उपकरण हैं, जिनके माध्यम से वह आत्मा की ऊँचाइयों को छूता है। इसलिए भारतीय कला में अध्यात्म का प्रकाश सहज रूप से झलकता है। जहाँ पश्चिमी चिन्तक कला को "अनुभूति" और "सत्य की खोज" के रूप में देखते हैं, वहीं भारतीय दर्शन में यह अभिव्यक्ति के साथ–साथ मुक्ति का पथ भी है। टैगोर ने The Religion of Man में लिखा है "Art is the response of man's creative soul to the

call of the Real." अर्थात्, कला उस शाष्वत सत्य के प्रति आत्मा का मौन उत्तर है वह संवाद जो रंग, रेखा और शब्द में आकार ग्रहण करता है।[8] इस प्रकार टैगोर हों या नंदलाल बोस हों या राजा रवि वर्मा सभी कलाकारों ने अपने सृजन में उसी शाष्वत तत्व का अन्वेषण किया है, जिसे भारतीय दर्शन "सत्यं शिवं सुन्दरम्" कहता है। भारतीय साहित्य में रामचरितमानस से लेकर गीतांजलि तक, और चित्रकला में अजन्ता की भित्तियों से लेकर अमृता शेरगिल की आत्मनिष्ठ आकृतियों तक हर रचना इसी अंतर्धारा की जीवित साक्षी है। कला, साहित्य और दर्शन ये तीनों भारतीय चेतना की त्रिवेणी हैं। दर्शन दिशा देता है, साहित्य उसे भाषा देता है, और कला उसमें जीवन का रंग भर देती है। इन तीनों का संगम ही वह बिंदु है जहाँ सत्य केवल विचार नहीं रह जाता, बल्कि अनुभव बनकर खिलता है और वहीं से आरम्भ होती है भारतीय सौन्दर्य–दृष्टि की अनन्त कथा, जो युगों से हमारे सांस्कृतिक अस्तित्व में प्रवाहित है।

**भारतीय साहित्य में सौन्दर्य और अध्यात्म की अभिव्यक्ति :**

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ कला और साहित्य सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति बन चुके हैं, वहीं भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट धारा अब भी उस आध्यात्मिक सौन्दर्य से प्ररित है, जिसने सदियों से हमारी सांस्कृतिक चेतना को दिशा दी है। भारतीय सौन्दर्य–दृष्टि में अध्यात्म कोई संप्रदायिक या धार्मिक आग्रह नहीं, बल्कि आत्मा के अनुभव का विस्तार है। यहाँ कलाकार या कवि जब सृजन करता है, तो वह अपने "स्वम" से परे जाकर "सर्व" से जुड़ता है, अपने व्यक्तिगत भावों में सार्वभौमिक चेतना की झंकार भर देता है। भारतीय कला और साहित्य, दोनों में यह आध्यात्मिक अनुभव बार–बार रूपांतरित होता रहा है। यहां कि नटराज की मूर्ति में सृजन और संहार का अद्भुत संतुलन है; वहीं कृष्ण की बंसी में प्रेम और मोक्ष का सम्मिलित स्वर है; और बौद्ध मूर्तियों में मौन और करुणा का गहरा दर्शन है। यही वह बिंदु है जहाँ सौन्दर्य, अनुभूति में बदल जाता है और अनुभूति, अध्यात्म में। टैगोर ने कहा था "When we create, we participate in the eternal creation of the world." अर्थात, कलाकार केवल दर्शक नहीं, सृष्टिकर्ता का सहभागी है उसकी रचना उसी अनंत सृजन की पुनरावृत्ति है, जिसे भारतीय परंपरा 'ब्रह्मानुभूति' कहती है।[9] भारतीय साहित्य का प्रत्येक युग इसी ब्रह्मानुभूति की विविध अभिव्यक्तियों का साक्षी रहा है। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में "कला आत्मा की पुकार है।" उनकी दृष्टि में सौन्दर्य केवल दृश्य नहीं, आत्मा का कंपन है। टैगोर की गीतांजलि में यह कंपन भक्ति, प्रेम और आत्म–विलय की मधुर ध्वनि बनकर गूंजता है। वहाँ सौन्दर्य का अर्थ है, आत्मा का परमात्मा में लय हो जाना। इसी तरह छायावादी कवियों की रचनाओं में भी सौन्दर्य का अर्थ मात्र बाह्य आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभूति है।[10] जब महादेवी वर्मा लिखती हैं "जग जीवन की काव्यधारा, सत्य का संगीत है," तो यह केवल काव्य नहीं, बल्कि भारतीय दर्शन का काव्यात्मक रूप है।

भारतीय साहित्य में सौन्दर्य का यह रूप इन्द्रिय–सुख तक सीमित नहीं, बल्कि आत्मा को शांति, दिशा और उद्देश्य प्रदान करता है। यहाँ सौन्दर्य का अर्थ है सत्य का संगीत और जीवन का ध्यान। यही कारण है कि भारतीय काव्य परंपरा में कला, सौन्दर्य और अध्यात्म तीनों एक दूसरे में विलीन हैं। जहाँ पश्चिम में कला का उद्देश्य 'सुख' रहा, वहीं भारत में वह 'मुक्ति' का मार्ग बना। यह मुक्ति किसी लोक से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के केंद्र में स्थित सत्य की पहचान है। इस प्रकार, आधुनिकता के शोर और बाजारवाद की चकाचौंध के बीच भी भारतीय साहित्य उस गूढ़ आध्यात्मिक परंपरा को जीवित रखे हुए है, जहाँ सौन्दर्य केवल देखने की वस्तु नहीं, बल्कि 'होने' की प्रक्रिया है। और यही वह स्थान है जहाँ कला, साहित्य और दर्शन एकाकार होकर भारतीय चेतना का शाष्वत संगीत रचते हैं, एक ऐसा संगीत जो समय से परे है, परंतु हर युग के हृदय में गूंजता रहता है।

**कला और साहित्य का प्रतीकवाद और आत्माभिव्यक्ति :**

भारतीय कला और साहित्य का मूल स्वर उस अदृश्य संगीत में बसता है, जो शब्दों से नहीं, बल्कि प्रतीकों की मूक भाषा में गूंजता है। यहाँ प्रतीक केवल चिह्न नहीं, बल्कि आत्मा की अनुभूतियाँ हैं, वे भाव जो दृश्य रूपों में प्रकाश की तरह झिलमिलाते हैं। भारतीय कलाकार जब सृजन करता है, तो वह केवल चित्र नहीं बनाता, वह अपने अंतर के आकाश में छिपे अर्थों को मूर्त रूप प्रदान करता है। उसके लिए रंग, रेखा, आकृति, ध्वनि सब साधना के उपकरण हैं, जिनसे वह अपने भीतर के सत्य को अभिव्यक्त करता है। यहां की कलाकृतियों में निर्मित त्रिशूल में केवल शक्ति नहीं, सृष्टि के तीन आयामों सृजन,

पालन और संहार का अदृश्य संतुलन निहित है। डमरू की लय समय के आवर्तन का प्रतीक है, जिसमें ब्रह्मांड की गति धड़कती है। कमल की पंखुड़ियों में निर्मल चेतना का प्रस्फुटन है; चंद्रमा में मन की शीतलता और अपार धैर्य की झिलमिलाहट; मूषक में वह विनम्रता जो ज्ञान का वाहन बनती है।[11] इन सब प्रतीकों में भारतीय कलाकार की आत्मा बोलती है, वह अपने भीतर के मौन को रूप, रंग और संकेत में ढाल देता है। भारतीय चिंतन में 'ध्यान ही रूप है, और रूप ही ध्यान' कहा गया है। इस दृष्टि से कलाकार का सृजन–क्षण योग की पराकाष्ठा है जहाँ भाव, मन और आत्मा का त्रित्व एकाकार हो जाता है। यह वह क्षण है जब कलाकार अपनी देह की सीमाओं से ऊपर उठकर ब्रह्म की सृष्टि–शक्ति में विलीन हो जाता है। सृजन उसके लिए आराधना बन जाता है; रेखा खींचना, ष्वास लेने जैसा सहज और पवित्र अनुभव बन जाता है।

भारतीय साहित्य में भी यह प्रतीकात्मकता भावों की गहराई में उतरती है। कालिदास के मेघदूत का मेघ केवल आकाश का यात्री नहीं, बल्कि विरह में डूबे हृदय का संदेशवाहक है। टैगोर की गीतांजलि में पक्षी, नदी और प्रकाश आत्मा की स्वतंत्रता और ईष्वर के सान्निध्य के प्रतीक हैं। कवि और कलाकार दोनों ही प्रतीक के माध्यम से उस अव्यक्त सत्य को व्यक्त करते हैं, जो शब्दों से परे है।

आधुनिक युग में यह प्रतीकवाद और भी सूक्ष्म हो गया है। रंग अब भावनाओं की गूंज बन गए हैं, और रेखाएँ चेतना की तरंगें। जैसे रज़ा के बिंदु में ब्रह्म का विस्तार है, हुसैन की रेखाओं में आधुनिक भारत की बेचैनी, और अमृता शेरगिल की आकृतियों में स्त्री–अस्तित्व की अंतर्दृष्टि। अब प्रतीक केवल धार्मिक या सांस्कृतिक संकेत नहीं, बल्कि आत्मा और समाज के संवाद का जीवंत माध्यम बन गए हैं। भारतीय कलाकार जब प्रतीक रचता है, तो वह संसार की नकल नहीं करता वह उसकी आत्मा को नया आकार देता है। उसके लिए कला 'अनुकरण' नहीं, बल्कि अनुभूति का पुनर्जन्म है। इस पुनर्जन्म में वह स्वयं भी रूपांतरित होता है; वह सृष्टिकर्ता के सह–रचनाकार के रूप में अपने अस्तित्व को पहचानता है। अतः भारतीय कला और साहित्य में प्रतीकवाद केवल अलंकरण नहीं, आध्यात्मिक संवाद का माध्यम है। यह वह अदृश्य पुल है जो सीमित से असीम तक, रूप से निरूप तक, मनुष्य से ईष्वर तक पहुँचाता है। जब कलाकार इस संवाद को रचता है, तो वह अपने भीतर के मौन को शाष्वत ध्वनि में रूपांतरित कर देता है और वहीं से आरंभ होती है आत्माभिव्यक्ति की वह यात्रा, जो भारतीय सौन्दर्य–दर्शन को अनंतता से जोड़ती है।

**समकालीन संदर्भ में प्रतीक और अध्यात्म का रूपांतरण :**

भारतीय कला और साहित्य की परंपरा में प्रतीक सदैव अध्यात्म के सेतु रहे हैं वे दृश्य और अदृश्य, स्थूल और सूक्ष्म, आत्मा और समाज के बीच संवाद के माध्यम रहे हैं। किंतु समय के साथ जब युग चेतना बदली, जीवन की गति और संवेदनाएँ परिवर्तित हुईं, तो इन प्रतीकों का रूप भी बदलने लगा। आधुनिक और उत्तर–आधुनिक दौर में कलाकारों ने इन पारंपरिक प्रतीकों को नए अर्थों, नए संदर्भों और नई व्याख्याओं से जोड़ दिया। अब कला में अध्यात्म किसी धर्म या पूजा का पर्याय नहीं रहा; वह अस्तित्व की खोज, पहचान की पुकार और मानवीय संवेदना का रूपांतरण बन गया है। आज का कलाकार नटराज या कमल के पारंपरिक प्रतीकों से आगे बढ़कर अपने अनुभव की आंतरिक सच्चाई तलाशता है। वह रंग, रेखा और रूप को आत्मा के प्रतिरूप की तरह बरतता है। रज़ा के बिंदु में ब्रह्मांड का केंद्र है – सृष्टि की आरंभ–रेखा; वहीं तैयब मेहता की त्रिशूल आकृतियों में आधुनिक मनुष्य के विभक्त अस्तित्व की त्रासदी झलकती है। अमृता शेरगिल की स्त्रियाँ अब केवल कोमलता की प्रतीक नहीं, बल्कि संघर्ष, आत्म–सजगता और अंतर्निहित शक्ति की प्रतीक हैं।[12] इस प्रकार भारतीय प्रतीकवाद आधुनिक युग में अध्यात्म की नई भाषा बन गया है – जहाँ ईष्वर की खोज मनुष्य के भीतर के अनुभव में रूपांतरित हो गई है।

समकालीन साहित्य में भी यही रूपांतरण दिखाई देता है। अब कवि और लेखक धर्म या मिथक की पुनरावृत्ति नहीं करते, बल्कि उन्हें आधुनिक जीवन के संदर्भों में पुनः अर्थ देते हैं। अज्ञेय की कविता में 'अंधकार' केवल निराशा नहीं, आत्म–चेतना की यात्रा है; मुक्तिबोध के 'अंधेरे में' प्रतीक जीवन की जटिलताओं में सत्य की खोज का रूप ले लेता है। निर्मल वर्मा के उपन्यासों में 'मौन' एक गहन आध्यात्मिक प्रतीक है, जहाँ शब्दों से परे संवेदना बोलती है।

समकालीन कलाकारों और साहित्यकारों के लिए प्रतीक अब किसी निश्चित परंपरा का संकेत नहीं, बल्कि व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव का विस्तार हैं। कला में अब 'अर्थ' स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील हो

गया है हर दर्शक, हर पाठक, हर अनुभव उसे अपने अर्थों से भर देता है। यह वही स्वतंत्रता है जो भारतीय दर्शन के मूल में निहित रही है 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदंति' अर्थात सत्य एक है, पर उसकी अभिव्यक्तियाँ अनेक हैं। इसीलिए आधुनिक कला में अध्यात्म का स्वर मौन और सूक्ष्म है, पर उसकी अनुभूति गहरी है। कलाकार अब मंदिरों की दीवारों पर नहीं, अपने मन की दीवारों पर चित्र बनाता है। उसका कैनवास बाह्य नहीं, आंतरिक है। वह सृष्टि के प्रतीकों से स्वयं को जोड़कर नहीं, बल्कि स्वयं के अनुभवों से सृष्टि को जोड़ता है। इस रूपांतरण ने भारतीय कला और साहित्य को एक नई दिशा दी है जहाँ प्रतीक अब अध्यात्म के वाहक होने के साथ–साथ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक चेतना के दर्पण बन गए हैं। वे अब केवल मोक्ष की नहीं, बल्कि अस्तित्व की तलाश के प्रतीक हैं; केवल पूजा की नहीं, बल्कि जीवन की व्याख्या के माध्यम हैं। अतः समकालीन भारतीय कला में अध्यात्म अब किसी परंपरा की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि आत्मानुभूति की निरंतर यात्रा है जो हर नए कलाकार, हर नए रचनाकार, हर नई रेखा और हर नए शब्द में पुनः जन्म लेती है।[13] इस यात्रा में प्रतीक वह दीपक हैं जो अंधकार में दिशा दिखाते हैं, और कला वह पथ है जो आत्मा को उसके अनंत केंद्र तक पहुँचाता है।

**आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कला और साहित्य की दिशा :**

आधुनिक युग ने कला और साहित्य दोनों के स्वरूप, सरोकार और संवेदना को एक गहन परिवर्तन से गुज़ारा है। जहाँ कभी साहित्य समाज का दर्पण था और कला उसकी आत्मा, आज दोनों मिलकर समाज के बदलते यथार्थ को परखने और पुनःनिर्मित करने के सशक्त उपकरण बन गए हैं। इस युग में सृजन केवल सौन्दर्य की खोज नहीं रहा, बल्कि प्रश्न उठाने, विचार व्यक्त करने और अनुभव साझा करने का माध्यम बन गया है। अब न कवि केवल प्रेम और प्रकृति का गायक है, न चित्रकार केवल सौन्दर्य का शिल्पी। आधुनिक युग में कलाकार और साहित्यकार, दोनों ही अपने समय के साक्षी और आलोचक बन गए हैं। वैष्वीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी संस्कृति और पर्यावरण संकट जैसे विषय कला और साहित्य दोनों के केंद्र में आ गए हैं। कविता में अब प्रतीक बदल गए हैं शब्दों में शहर की धूल है, मशीनों की आवाज़ है, और मनुष्य की थकी हुई आँखों का रंग है। इसी प्रकार चित्रकला में अब केवल सौन्दर्य का बिंब नहीं, बल्कि समाज की विडंबना और अस्तित्व की पीड़ा भी उभर आई है। कला और साहित्य दोनों अब "विचार की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति" बन गए हैं। उनका उद्देश्य केवल सुंदर दिखना नहीं, बल्कि संवेदनशील बनाना है। कलाकार और लेखक अपने भीतर की बेचैनी को इस तरह व्यक्त करते हैं कि वह समाज की सामूहिक चेतना का हिस्सा बन जाती है। यही कारण है कि आज का सृजनात्मक परिदृश्य केवल 'कलात्मक' नहीं, बल्कि 'मानवीय' हो गया है। समकालीन भारतीय कलाकारों और लेखकों ने इस दिशा को नए अर्थ दिए हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर मकबूल फिदा हुसैन तक, सतीश गुजराल से लेकर अमृता शेरगिल, और अज्ञेय से लेकर निर्मल वर्मा तक सभी ने अपने–अपने माध्यमों में मानव मन के गहरे प्रश्नों को स्वरूप दिया। टैगोर की कविताएँ और चित्र दोनों ही इस बात के साक्ष्य हैं कि शब्द और रंग एक ही आत्मा की दो भाषाएँ हैं। अमृता शेरगिल के चित्रों में भारतीय स्त्री का मौन उतना ही मुखर है जितना महादेवी वर्मा की कविताओं में।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य और कला ने एक दूसरे के प्रति खुलापन अपनाया है, कविता अब दृश्य बनने लगी है, और चित्र अब कविता की तरह बोलने लगे हैं। इंस्टॉलेशन आर्ट, परफॉर्मेंस आर्ट, ग्राफिक नॉवेल्स, और डिजिटल साहित्य जैसी विधाएँ इस संवाद की नई दिशाएँ हैं। यह वह समय है जब कला और साहित्य दोनों 'माध्यम' नहीं, 'संवाद' हैं व्यक्ति और समाज के बीच, मनुष्य और तकनीक के बीच, और परंपरा व आधुनिकता के बीच। आज की कला और साहित्य दोनों में "सत्य" की खोज अब बाहरी नहीं, भीतरी है। वे अब यह नहीं पूछते कि "सौन्दर्य क्या है", बल्कि यह पूछते हैं "सौन्दर्य क्यों है?" और "किसके लिए है?" यही प्रश्न उन्हें गहराई देता है, और यही उन्हें प्रासंगिक बनाए रखता है। इस प्रकार आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कला और साहित्य न केवल समाज की अभिव्यक्ति हैं, बल्कि उसकी आत्मालोचना भी हैं। वे हमें यह स्मरण कराते हैं कि सृजन का अर्थ केवल निर्माण नहीं, बल्कि जागरण भी है। और जब कलाकार और साहित्यकार इस जागरण के वाहक बनते हैं, तभी कला और साहित्य अपने शिखर को प्राप्त करते हैं वहाँ, जहाँ अनुभव और विचार एकाकार हो जाते हैं, और जीवन स्वयं एक काव्य बन जाता है।

## निष्कर्ष (Conclusion) :

भारतीय कला–साहित्य की परंपरा उस अनवरत साधना का रूप है, जिसमें जीवन को केवल अनुभव नहीं, बल्कि अर्थ और उद्देश्य की दृष्टि से देखा गया है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि सृजन केवल सौन्दर्य का निर्माण नहीं, बल्कि आत्मा का जागरण है। भारतीय दृष्टि में कला, साहित्य और दर्शन ये तीनों एक ही चेतना के भिन्न–भिन्न रूप हैं। एक विचार को अभिव्यक्ति देता है, दूसरा उसे संवेदना में रूपांतरित करता है, और तीसरा उसे अनुभूति में परिणत करता है। भारतीय सौन्दर्य–दृष्टि की यह विशेषता है कि यहाँ सौन्दर्य कभी बाह्य आकर्षण नहीं रहा; वह सदैव अध्यात्म का प्रतिबिंब रहा है। "सत्यं, शिवं, सुन्दरम्" का यह शाष्वत सूत्र बताता है कि सौन्दर्य, सत्य और शिव एक ही तत्त्व के तीन आयाम हैं। इसलिए भारतीय कला में जब चित्रकार रेखा खींचता है, कवि शब्द रचता है, या नर्तक गति में अर्थ भरता है तो वे सभी उस अदृश्य शक्ति के सहभागी बन जाते हैं जो सृष्टि के मूल में स्पंदित है। इस परंपरा की सबसे बड़ी सुंदरता यही है कि इसमें कला धर्म से अलग नहीं है, और साहित्य जीवन से परे नहीं है। दोनों मिलकर एक ऐसी अंतर्धारा बनाते हैं जो भारतीय संस्कृति की आत्मा में प्रवाहित रहती है एक ऐसी चेतना, जो सौन्दर्य को साधना बनाती है और अध्यात्म को अनुभूति में बदल देती है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में भी यह प्रवाह थमा नहीं है; बस उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ है। आधुनिक कलाकार और साहित्यकार अब परंपरा के प्रतीकों को नए अर्थों में ढाल रहे हैं। वे बाह्य अध्यात्म से नहीं, आंतरिक अनुभव से संवाद करते हैं। कला अब केवल ईष्वर की खोज नहीं, बल्कि मनुष्य की खोज है; साहित्य अब केवल सौन्दर्य की व्याख्या नहीं, बल्कि अस्तित्व के प्रश्नों का प्रतिवाद है।

आज की भारतीय कला और साहित्य उसी अनादि परंपरा की नवीन कड़ी हैं, जहाँ प्रतीक अनुभव के, और अनुभव अध्यात्म के रूप में विकसित होते हैं। कलाकार अब मंदिरों में नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर प्रकाश जलाता है। उसकी साधना अब ब्रह्म की नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय चेतना की खोज है वह चेतना जो हर मनुष्य में, हर अनुभूति में, हर सृजन में उपस्थित है। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय कला–साहित्य का दार्शनिक आधार एक ऐसी जीवंत धारा है, जिसमें सौन्दर्य और अध्यात्म दो भिन्न तत्त्व नहीं, बल्कि एक ही चेतना के द्वि–स्पंदन हैं। यह वही अदृश्य स्वर है, जो कभी उपनिषदों में मंत्र बनकर गूंजा, कभी कालिदास की कविता में बिंब बनकर खिला, और कभी रज़ा के बिंदु या टैगोर की पंक्तियों में पुनः जन्म लेता रहा। यह निरंतर सृजनशील यात्रा आज भी जारी है – क्योंकि जब तक मनुष्य में सौन्दर्य का बोध और आत्मा का प्रकाश जीवित है, तब तक भारतीय कला और साहित्य की यह आध्यात्मिक धारा भी अमर रहेगी।

**संदर्भ सूची :–**

1. दास, रायकृष्ण. भारत की चित्रकला. प्रथम संस्करण, द्विवेदी लोक हितकारी पुस्तकालय, गाज़ियाबाद, 1951, पृ.सं. 41।
2. गैरोला, वाचस्पति. भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास. प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ.सं. 12।
3. वही, पृ.सं. 12।
4. शुक्ला, डॉ. जूही, चित्रकला के मूलाधार, प्रथम संस्करण, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, कानपुर, 2020, पृ.सं. 30।
5. प्रसाद, जयशंकर, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, प्रथम संस्करण, भारती–भण्डार, इलाहाबाद, 1933, पृ.सं. 15।
6. जेम्स, आर. ए. स्कॉट; दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर, मार्टिन सेकर और वारबर्ग, लंदन, प्रथम संस्करण, वर्ष 1928 पृ.सं. 37–46।
7. Raghavan, V. "The Aesthetics of Ancient Indian Drama." *Indian Literature*, vol. 1, no. 2, Apr.–Sept. 1958, p. 67–74.
8. Rabindranath Tagore. *The Religion of Man*. The Macmillan Company / George Allen & Unwin Ltd., 1931. p. 96.

9. वही, पृ.सं. 96–97।
10. साखलकर, रवि. कला कोश. तृतीय संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011, पृ. सं. 21।
11. Jechner, George. "An East and West." *Marg*, vol. XXXIII, no. 4, 1982, p. 9.
12. व्यास, डॉ० राजेश; भारतीय कला, प्रथम संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2017, पृ.सं. 54–57।
13. वही, पृ.सं. 54–55।

32

# समकालीन भारतीय चित्रकला में उत्तर वैदिक युग के साहित्यिक कथानकों का व्यक्ति-चित्रण

**आशा लालवानी**
शोध छात्रा, दृश्य कला विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर- 313001, राजस्थान
9784449377, ashalalwani12@yahoo.com

**शोध सार :** समकालीन संस्कृति में, कलात्मक अभिव्यक्ति के दो रूपों कला और साहित्य का एक-दूसरे से जुड़ने और एक-दूसरे को प्रभावित करने का एक लंबा इतिहास रहा है। कला और साहित्य का गहरा संबंध है। अतः रचनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा कला ने साहित्य के विकास में अभुतपूर्व योगदान दिया है। कला मानव सभ्यता का वह प्रकाश स्तंभ है जिसमें साहित्यिक कृतियों पर आधारित कई चित्र बने हैं जो समान विषयों और विचारों को व्यक्त करते हैं। कला क्षेत्र में अनेकानेक विधाओं में चित्रकला का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं। अतः भारतीय चित्रकला भी साहित्य पर आधारित रही। चित्रकारों ने काव्य में वर्णित साहित्य के अनुरूप ही व्यक्ति-चित्रण किया। अर्थात् चित्रकारों ने कवियों के द्वारा प्रतिपादित विषयों और मनोभावों को अपने माध्यम के अनुरूप प्रस्तुत किया, जिससे उनकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति उभर कर सामने आई। समकालीन कला सृजन में चित्रकला में व्यक्ति-चित्रण का विकास पीढ़ी दर पीढ़ी जारी है। जो वर्तमान में बहुत अधिक प्रचलित है। जिसमें हमारी संस्कृति एवं सभ्यता के विकास को भी देखा जा सकता है। भारतीय कला में एक संक्रमण काल के दौरान बने हुए साहित्यिक चित्रों में व्यक्ति-चित्रण की बात करें तो इसका काव्यात्मक विकसित व आधुनिक रूप हमें राजा रवि वर्मा, पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय, अर्पणा कौर आदि की शैली में देखा जा सकता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में काव्य, नाटक, महाकाव्य, पुराण, उपनिषद् व विभिन्न विषयों के ग्रन्थों द्वारा भारतीय चित्र लेखन की प्राचीन परम्परा एवं जनमानस में उनकी लोकप्रियता का वर्णन मिलता है। इन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के माध्यम से ही आज चित्रकार कलाकृतियों का अध्ययन सूक्ष्मरूप से करने में सक्षम हो सका है। ऐतिहासिक रूप से व्यक्ति-चित्रण प्राचीन है, और वर्तमान में भी व्यक्ति-चित्रण कला का एक लोकप्रिय रूप बना हुआ है, और कलाकार रंग, रचना और तकनीक के माध्यम से अपने विषयों के सार को पकड़ने के लिए नए तरीके तलाशते रहते हैं। मेरे द्वारा उत्तर वैदिक युग के साहित्यिक कथानकों के चित्रण पर प्रकाश डाला जाएगा। तथा कला की अमूल्य धरोहर इन व्यक्तिचित्रों का परिचय अपने इस शोध पत्र द्वारा कला रसिकों को कराना मूल उद्दश्य है।

**बीज शब्द :** व्यक्तिचित्र, कलाकार, साहित्य एवं कला, साहित्यिक कृति, व्यक्ति-चित्रण

**1.प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला में 'व्यक्ति चित्रण' :**

यह सर्वविदित है कि पाषाणकालीन गुहा मानव ने किसी भी लिपि के आविष्कार से पूर्व ही सबसे पहले चित्रकर्म से अपने को व्यक्त किया। बाद के समय में अजंता में बुद्ध की जीवनी व जातक कथाओं का चित्रण हुआ। अपभ्रंश में भी जैन साहित्य को ताड़पत्र, कपड़े व कागज पर चित्रित किया गया। इसी तरह भारतीय कला में विकसित अन्य चित्रशैलियों जैसे राजस्थानी, मुगल और पहाड़ी में बड़े पैमाने पर साहित्यिक कृतियों को चित्रित किया गया।

चित्रकला के विषय में भारतीय साहित्य के 'चित्रलक्षण' में एक कथा का आविर्भाव है उस कथा में एक ब्राह्मण के युवा पुत्र की असमय मृत्यु हो जाती है तब राजा ने उस युवा लड़के का चित्र बनाकर ब्राह्मण से उस चित्र में प्राणों का स्पन्द करवाया। इस तरह सृष्टि के विकास में चित्रलक्षण की कथा के अनुसार यह प्रथम व्यक्तिचित्र बना, साथ ही राजा को विधाता विश्वकर्मा के पास चित्र विद्या सीखने को कहा इसी आधार पर चित्रलक्षण में चित्र विद्या की शिक्षा का आविर्भाव सृष्टि में हुआ। 'चित्रकला की प्रमुख विधाओं में व्यक्तिचित्रण का शीर्षस्थ स्थान है, जो चित्रण की कुशलता का अन्तिम

सोपान है। वर्णित वृत्तान्तों में व्यक्ति चित्रण को प्रतिकृति चित्र, सत्यचित्र, प्रतिबिम्ब चित्र, सादृश्यचित्र, बिद्ध चित्र, छविचित्र, सच्चरित चित्र आदि नाम दिया गया है। यद्यपि आरम्भ में भारतीय चित्रकला में व्यक्ति चित्रण का उद्देश्य आदर्श धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना से आबद्ध रहा। नारद के शिल्प-शास्त्र के अनुसार चित्रण के विषय, देवता, गन्धवं, यक्ष और ऋषि हैं। शुक्रनीति में तो यहाँ तक कहा गया है कि मनुष्य की मूर्ति (मानव प्रतिमा) चाहें कितनी ही आकर्षक क्यों न हो उसकी अपेक्षा देव प्रतिमां चाहें वह ठीक प्रकार से न बनी हो कहीं अधिक मान्य है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के तृतीय अध्याय में मार्कंडेय ऋषि ने राजा बज्र को चित्रकला की शिक्षा देते हुए चित्रों को चार भागों में विभाजित किया है- सत्यम्, वैणिकम् नागरय तथा मिश्रम्। सत्यचित्र ही व्यक्तिचित्र हैं जिसमें सादृश्य पर विशेष बल दिया गया है। यथा "चित्र सादृश्य करणं प्रधान परिकीर्तितम्" चित्र सूत्रधार के अनुसार सादृश्य से तात्पर्य प्रतिबिम्ब उतारना न होकर कृति में हृदयगत भावों का समावेश आवश्यक है। कोरा सादृश्य शोभाहीन होता है। रूप का सादृश्य जब भाव के दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर प्रदर्शित होता है तभी प्राणवान बन पाता है। व्यक्ति-चित्रण की कला का ऐसा तात्विक विवेचन भारतीय कला मर्मज्ञों ने प्रस्तुत किया है जो विवाद और उक्तिपूर्ण विवेचन से युक्त है एवं विश्व साहित्य में दुर्लभ हैं। जिन फलकों पर ये व्यक्तिचित्र चित्रित किये गये थे वह अस्थायी सामग्री, काष्ठफलक, ताड़पत्र आदि से निर्मित थे जो काल के क्रूर प्रहार से अपनी रक्षा करते हुए आज प्रमाण हेतु उपलब्ध नहीं है। अतः संस्कृत वाङ्गमय के रचयिता वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, बाण, हर्ष आदि के वर्णित स्थलों को ही प्रमाण का आधार माना जा सकता है, जिसमें व्यक्ति चित्रण प्रेम प्रसंगों तथा सामाजिक कार्यों के सम्पादन हेतु किया जाता था। इस युग में व्यक्ति चित्रण जीवित प्रतिमान के अभाव में भी ध्यानयोग द्वारा किया जाता था जो पूर्ण सादृश्य युक्त होता था। व्यक्तिचित्र में शारीरिक और चारित्रिक विशेषताओं का सम्मिलित रूप से प्रदर्शन होना चाहिए। व्यक्ति चित्रण में चित्रण की सजीवता पर विशेष बल दिया है।

**2. प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला में व्यक्ति चित्रण परम्परा को प्रमाणित करने वाली उपलब्ध सामग्री :**
कला ने जीवन और धर्म को न केवल प्रभावित किया है, अपितु उसने साहित्य को भी सुन्दर बनाया है। साहित्य, दर्शन और काव्य सभी का चित्रकला से सम्बन्ध है। संस्कृति साहित्य में जहाँ चित्रकला की सभी विद्याओं का विशद् वर्णन उपलब्ध है वही व्यक्तिचित्रण की कला पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संस्कृत वाङ्गमय में इसे अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। धनपाल रचित "तिलक मंजरी" में व्यक्ति चित्र के लिए "प्रतिबिम्बचित्र", हर्षदेव ने ‘‘नागानन्द’’ नाटक में इसे ’’सादृश्य चित्र’’, सोमेश्वर ने ‘‘मानसोल्लास’’ में ‘‘बिद्ध चित्र’’ का प्रयोग किया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्रम नामक प्रकरण में इसे "सत्यचित्र" की संज्ञा की गई है। बाणभट्ट रचित ‘‘कादम्बरी’’ में इसे "सच्चरित चित्र" तथा फारसी में इसे "शबीह" तथा आंग्ल भाषा में इसे "पोर्ट्रेट" नाम दिया गया है।

संस्कृत साहित्य में व्यक्तिचित्रण की मूलभूत विशेषता, सादृश्य पर विशेष प्रकाश डाला गया है। "चित्रसूत्रम्" में सादृश्य को सत्यचित्र का प्रधान लक्षण माना है। स्थूल चित्रकारिता केवल यथातथ्य निरूपण है, हृदयगत मनोभावों का चित्रण चित्रकार की स्वतंत्र प्रजनन शक्ति का परिचायक है। "शुक्रनीति" के आचार्य चित्र रचना से पूर्व समाधिस्थ होकर प्रतिमान को सम्मुख प्रतिष्ठित कर उसका सादृश्य पूर्ण चित्रण करने की आज्ञा देते हैं, जैसा कालिदास ने अपने ‘‘मालविकाग्निमित्रम्" में वर्णन किया है।
जिस देश के प्राचीन साहित्य में जिस विषय का इतना तथ्यपूर्ण वर्णन, विवेचन उपलब्ध हो फिर पाश्चात्य कला समीक्षकों के इस आक्षेप को कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि भारतीय व्यक्तिचित्रण की कला के कभी ज्ञाता ही नहीं हुए इस संबंध में यह कहना अनुचित न होगा कि उन्हें संस्कृति साहित्य के अवलोकन का कभी अवसर ही नहीं मिला। मुगलों के आगमन के पूर्व भारत में व्यक्तिचित्रण की परंपरा प्रचलित थी। उस युग में व्यक्ति चित्रण भोजपत्रों, ताड़ पत्रों तथा काष्ठ फलकों पर चित्रित किये जाते थे। जिन फलकों पर यह व्यक्तिचित्र अंकित किये जाते थे, वे अस्थायी सामग्री से निर्मित होने के कारण काल के क्रूर प्रहार से अपनी रक्षा करते हुए आज उपलब्ध नहीं हैं। अतः प्रत्यक्ष उपलब्ध प्रमाणों के अभाव में संस्कृत नाटकों के रचयिता कालिदास, भवभूति, बाण, भास, जयदेव आदि के वर्णित स्थलों को ही प्रमाण का आधार

माना जाता है। इन्हीं के आधार पर पर्सीब्राउन ने स्वीकार किया है- व्यक्तिचित्रण की कला में भारतीयों को इतनी रूचि थी जितनी पाश्चात्य देशों में कभी नहीं रही।

"नागानन्दम्" नाटक का नायक यक्ष कुमार जीमूतवाहन अपनी प्रेयसी सिद्ध जाति के राजा विश्ववद्यु की राजकुमारी मलयवती का व्यक्तिचित्रण शिला खण्ड पर अंकित करता है। इसको देखकर जीमूतवाहन की प्रशंसा करते हुए विदूषक ने कहा नेत्रों से न देखते हुए भी, आपने इतना उत्तम चित्रण कैसे कर लिया है जीमूतवाहन ने उत्तर दिया मैंने ध्यान-योग से अपनी प्रिया को सम्मुख बैठा लिया है और उसे देख-देख कर अंकन कर रहा हूं। इसमें आश्चर्य का कौन सा विषय है।
जयदेव कृत ''प्रसन्नराघवम्'' नाटक में उल्लेख है कि महर्षि याज्ञवल्क्य की द्वितीय पत्नी मैत्रेयी जो चित्रकारिता में दक्ष होने के साथ-साथ त्रिकालदशिनी सिद्ध योगिनी थी। उन्होंने राम के विवाह से पूर्व ही उस घटना का चित्रण कर दिया था जिसमें किशोर बालक के रूप में राम का चित्रण था और उनके गले में जयमाला डालते हुए सीता का चित्रण था। अतः उन्होंने भविष्य में होने वाली घटना का चित्रण विवाह से पूर्व ही कर प्रेषित कर दिया था।

श्रीमद्भागवत् के बासठवें अध्याय में उषा-अनिरुद्ध मिलन नामक कथा में वर्णित प्रसंग में यह बताया गया है कि बाणासुर की पुत्री, उषा को उदास देखकर उसकी सखी चित्रलेखा जो बाणासुर के मंत्री कुम्भाण्ड की पुत्री थी, ने संसारभर के तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्तियों के चित्र उकेरकर उसके सामने प्रस्तुत किये थे, जिनको देखकर उसने अपना प्रियतम पहचान लिया था। चित्रलेखा जो योग विद्या की ज्ञाता थी उसने उषा को बताया कि यह राजकुमार अनिरुद्ध श्री कृष्ण के पौत्र हैं। इस प्रसंग से यह पुष्टि होती है कि उस युग में व्यक्तिचित्रण की कला का कितना व्यापक ज्ञान था। यह कला योग से सम्बन्धित थी। जिसके आधार पर द्रष्टव्य पुरुषों के चित्र बनाए जाते थे जिनका उपयोग अज्ञात व्यक्तियों के पहचान का आधार बनता था तथा सादृश्य का कितना सूक्ष्म प्रदर्शन इसमें निहित रहता था। उपरोक्त वर्णन महाभारत काल में व्यक्ति चित्रण की परम्परा को प्रमाणित करता है।

स्कन्धपुराण के नागरखण्ड में वर्णित प्रसंग के अनुसार राजा अनन्तराज की राजकुमारी रत्नावली जब विवाह योग्य हुई तो राजा ने सुयोग्य वर खोजने के लिए अपने चित्रकारों को भेजा। इन चित्रों को ही देखकर उसने अपनी पुत्री राजकुमारी रत्नावली के लिए योग्य वर का चयन किया था।

महाकवि कालिदास रचित "मालविकाग्निमित्रम्" में व्यक्तिचित्रण की कला का एक विश्लेषणात्मक विवरण नाटककार ने प्रस्तुत किया है। कालिदास ने ''मालविकाग्निमित्रम्'' में सादृश्य का विश्लेषण अग्निमित्र से चित्रांकित मालविका और प्रत्यक्ष देखकर दोनों की तुलना कर निर्णय कराया है और यह स्पष्ट कर दिया है कि वास्तविक आकृति जिसे प्रतिमान कहा जाता है से अधिक या कम सौन्दर्य यदि चित्रकार अपने चित्रण में लाता है तो वह ग्राह्य नहीं माना जा सकता और चित्रकार शिथिल समाधि का दोषी है। व्यक्ति चित्रण की उपयोगिता पर भी इन वर्णनों से प्रकाश पड़ता है। दैहिक सादृश्य के साथ-साथ चित्रण में भावात्मकता का भी समावेश आवश्यक ही नहीं अनिवार्यता की कोटि में जाता है। चित्रण में सफलतापूर्वक अंकित किया गया है। इस वर्णन में चित्रण की सजीवता की प्रशंसा की गयी है। किसी भी व्यक्ति के चित्रण में सजीवता का होना उसका अपरिहार्य गुण है। और "मेघदूत" में भी यक्ष ध्यानयोग द्वारा अपनी प्रियतमा यक्षिणी का प्रस्तरफलक पर गेरु से भावपूर्ण व्यक्तिचित्र अंकित करता है।

कालिदास रचित ''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' में परिवेश चित्रण को भी व्यक्ति चित्रण का आवश्यक लक्षण माना है हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त द्वारा चित्रित शकुन्तला के व्यक्तिचित्र में नदी, पर्वत, मुगछौना, तथा बल्कल वस्त्रों को आश्रम के परिवेशीय पृष्ठभूमि में सूखते हुए चित्रित किया गया है। यह सजीव चित्रण का सफल उदाहरण है। जो भावाभिव्यक्ति में पूर्ण सफल है।

बाणभट्ट ने अपने "हर्षचरित्र" में प्रभाकरवर्द्धन की रानी यशोमती को सती होते समय अपने पति का चित्र अपने पास रखने का प्रमाण अनुष्ठानपूर्ति तथा सामाजिक उपयोगिता को प्रमाणित करने के लिए किया है। इसी प्रकार भावरचित "स्वप्न वासवदत्ता" में राजा प्रद्योत तथा महारानी अंगारवती द्वारा भेजे गये उदयन और वासवदत्ता के वे चित्र हैं जिनसे उनका विवाह सम्पन्न कराया गया था। जो आगे चलकर वासवदत्ता के पहचानने का आधार बने।

व्यक्तिचित्र की प्रमुख विशेषताओं के कलात्मक दृश्य के संकेत भास कृत "दूतवाक्य" में कुशलता से किया गया है। नाटक की कथावस्तु में वर्णित प्रसंग के अनुसार जब भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से संधि प्रस्ताव लेकर कौरवों की सभा में उपस्थित होते हैं उस समय दुर्योधन उनके सम्मुख द्रौपदी का आकर्षक चित्रपट उपस्थित करता है दुर्योधन चित्र की आकार रेखा, रंग विधान तथा संयोजन की प्रशंसा करता हुआ व्यक्तिचित्रण की प्रमुख विशेषताओं की ओर इंगित करता है और श्रीकृष्ण द्वारा उसकी पुष्टि करायी जाती है साथ ही उस व्यक्तिचित्र का प्रयोग वह राजनैतिक उद्देश्य के लिए करता है जिससे श्रीकृष्ण का मनोबल गिर जाय और वे पाण्डवों का पक्ष कुशलता से प्रतिपादित न कर सकें। इस प्रकार संस्कृत नाटकों में केवल व्यक्ति चित्र के उदाहरण ही उपलब्ध नहीं है वरन् उसकी सम्पूर्ण कलात्मक विशेषताएँ, विवेचन, विश्लेषण, उपयोग के प्रकार आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। दूतवाक्य के रचयिता का संकेत इस दिशा में हैं कि महाभारत काल में व्यक्ति चित्रण का कितना प्रचलन था।
भारतीय वाङमय में वर्णित उपरोक्त उद्धरणों से यह प्रकट होता हैं कि व्यक्तिचित्रण का भारतीय चित्रकला में कितना व्यापक प्रचलन था। जिसमें तत्कालीन राजकुमारों, राजकुमारियों के प्रेम प्रसंगों का आरम्भ एवं वैवाहिक परिणति का आधार व्यक्तिचित्र थे। उस समय का व्यक्ति चित्रण केवल दैहिक सादृश्य पर ही निर्भर नहीं था वरन् हृदय जनित भावों के अंकन में भी पूर्ण सफल था।

**3. व्यक्तिचित्रण में मौलिकता और विषय-वैविध्य :**
भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से जहाँ एक ओर ऐतिहासिक और धार्मिक विषयों को लेकर रचनाओं का सृजन किया जाता रहा है वहीं, दूसरी ओर स्वच्छन्द प्रेम पर आधारित रचनाओं का प्रारम्भ ऋग्वेद से ही मिलता है। यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी, श्यावाश्व और मनोरमा, ढोलामारु, मधुमालती, पृथ्वीराज रासो, दुष्यन्त शकुन्तला, सोनी-महिवाल, रूपमती-बाजबहादुर, उषा-अनिरुद्ध, पद्मावती रतनसेन, काम-रति आदि सम्बन्धित प्रेमाख्यानों में स्वच्छन्दता के तत्व देखे जा सकते हैं।

संम्वत् 1600 वि. के पूर्व में रचित चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती' ग्रन्थ जहाँ साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हुआ, साथ ही चित्रकारों की तूलिका का भी प्रिय विषय बन गया। जहाँ यह ग्रन्थ कला की विभिन्न शैलियों में चित्रित हुआ, वहाँ राजस्थान में इसका व्यापक चित्रांकन हुआ। इन्होने जहाँ काल्पनिक चित्रों को सजीव बनाया वहाँ इनकी तूलिका ने काव्य की आत्मा को स्पर्श करते हुए कवि की भाव-भूमि को भी उभारने का सफल प्रयत्न किया है। चित्रों में मधु मालती का प्रणय निवेदन करना सभी आकर्षक है। मधुमालती के अलौकिक भावों को व्यक्त करने के लिए हल्के रंगों को भावपूर्ण ढंग से अंकित किया गया है। इसी तरह 12वीं सदी में जयदेव के द्वारा रचित ग्रंथ 'गीतगोविन्द' अत्यंत महत्वपूर्ण है, साहित्य का मानक होने के साथ ही संगीत और चित्रकला जैसी महान कलाओं की उद्गाता भी है। इसमें भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में चित्रकला से सम्बन्धित सभी विषयों का विशद् वर्णन उपलब्ध है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति-चित्रण पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

**4. साहित्य (काव्य) से प्रेरित चित्र सृजन :**
भारत में प्रारम्भ से ही साहित्यिक कथानकों के व्यक्ति-चित्रण का सम्पन्न स्वरूप देखा जा सकता है, 19वीं सदी से 20वीं सदी तक आते-आते सम्पूर्ण देश के कला जगत् में एक नवीन वातावरण दृष्टिगोचर होने लगा। अतः ऐसा कहना अनुचित न होगा कि भारतीय कला के स्वरूप में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक बदलाव आए। कई युवा कलाकारों ने कला साहित्य में

अपनी मिट्टी की गंध को सम्मिलित करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप मानवीय अभिव्यक्ति के विशाल परिदृश्य में, प्रतिभाशाली कलाकारों के हाथों से साहित्यिक संदर्भों को नया जीवन मिला है, वे पहचानी जाने वाली कहानियों को ऊर्जावान, दृश्य अनुभवों में बदल देते हैं जो दर्शकों को दुनिया को एक अलग केंद्र बिंदु से देखने के लिए प्रेरित करते हैं। पुनरुत्थान के कलाकारों ने भी अपनी कृतियों में काव्यों को आधार बनाया है. उनमें राजा रवि वर्मा प्रमुख हैं, उनकी प्रतिष्ठित कलाकृतियों में अक्सर पारंपरिक लोककथाओं और पौराणिक कथा के दृश्य चित्रित किए जाते थे। इनके चित्रों को आधार बनाकर कविताओं का सृजन भी हुआ है, राजा रवि वर्मा की प्रसिद्ध कृति 'शकुन्तला' चित्र संख्या (1) में पौराणिक कथा राजा दुष्यंत और शकुन्तला के मिलन का दृश्य चित्र है। कथा के अनुसार राजा दुष्यंत जंगल में शिकार पर निकले हैं, यहीं शकुन्तला भी अपनी सखियों के साथ है। दुष्यंत और शकुन्तला के प्रथम मिलन के बाद शकुन्तला अपने पैर में लगे हुए कांटे के बहाने से राजा दुष्यंत को मुड़ते हुए देख रही है। सम्पूर्ण दृश्य का भावात्मक चित्रण किया है। क्योंकि वह संगीत व नृत्य काव्य की भी अच्छी समझ रखते थे, इसलिए शकुन्तता के पैर में लगे हुए कांटे के दृश्य को नृत्य मुद्रा की तरह चित्रित किया है जो कि शुद्ध शास्त्रीय नृत्य की मुद्रा है। चित्र में धरातल पर धूप-छाया का प्रकाश नजर आता है। शकुन्तला एवं उनकी सखियों के वस्त्र, चेहरे की आभा में प्रकाश झलकता है।

दूसरा रामायण पर आधारित 'श्रीराम का राजतिलक' चित्र में राम नीले रंग से चित्रित है, जिसका तान प्रभाव स्पष्ट चित्रित हुआ है। प्रभु श्रीराम सिंहासन पर बिराजे है तथा सम्मुख प्रियजन खड़े है। चित्र में दाएं तरफ कोई हल्की आकृति नजर आती है, जो स्पष्ट नहीं हैं। लेकिन राजा रवि वर्मा के चित्रों की चमक आज भी दैदीप्यमान है। दृश्य में नाटकीय छाया-प्रकाश को सम्मिलित किया है।

मानव जीवन में साहित्य एवं कला का उत्कृट स्थान है। जिस प्रकार कवि ने चित्रों से सीखा है उसी प्रकार चित्रकारों का तो अधिकतर आधार ही काव्य रहा है। इस क्रम में स्व. रामगोपाल विजयवर्गीय जी का नाम अग्रणीय है, उन्होंने सभी परम्परागत पुराणों, इतिहास, धर्म, साहित्य, कथाओं के अनेक विषयों के सैकड़ों चित्र अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति से बनाये। रामगोपाल विजयवर्गीय जी ने गीत गोविन्द काव्य पर अनेकों चित्र बनाए है, जिसमें राधा के रूप सौन्दर्य को विभिन्न रंगों, जटिल रेखांकन व संवेदनशील भावों के साथ चित्रित किया है। 'प्रतिक्षारत राधा' नामक चित्र 1960 में बनाया गया है। नारी आकृत्तियों के समान ही चित्र भी लम्बाकार रूप में बनाया गया है। पाँच नारी आकृतियों के संयोजन में बने इस चित्र में प्रत्येक नारी के अंग-प्रत्यंग, नाक-नक्ष विजयवर्गीय शैली में है, लेकिन मध्य में राधा का अद्भुत अंकन हुआ है, जिसका सौन्दर्य दर्शक के मानसपटल पर अलग ही प्रभाव छोड़ता है। उसके चेहरे का तेज, कृष्ण के प्रति उनकी मनोवृति और चित्रकार की दृढ़ शक्ति राधा के व्यक्तित्व व उसके आध्यात्मिक चिंतन का परिचय देती है। राधा के चारों तरफ उसकी सखियों का इतना सुंदर अंकन किया गया है, जिनकी हस्त-मुद्राओं से तो वे राधा को मनाती हुई दिख रही है, परन्तु राधा का ध्यान किसी ओर ही दिशा में है।

विजयवर्गीय चित्रों की खास विशेषता यह है कि उन्होंने जितने भी काव्यमयी चित्र बनाए है वे सभी भावात्मक पक्ष को उजागर करते है। प्रस्तुत चित्र संख्या (2) "यक्ष विरह" मेघदूत श्रृंखला से है, जिसमें यक्ष विरह वेदना के आंसुओं को अपने भीतर छिपाएं रखना चाहता है, लेकिन मेघ से वार्तालाप के दौरान भावविभोर होने पर यक्ष के आंसू बाहर निकल आते है। चित्र में विरह, प्रेम की पीड़ा, उत्कण्ठा, करुणा, आशा व विश्वास का मार्मिकता से चित्रण हुआ है साथ ही बादलों की उपस्थिति व उनका गतिमय चित्रांकन ऐसा दर्शा रहा है, मानो मेघ बहुत ही उत्सुकता के साथ यक्षिणी को संदेश पहुँचाने को आतुर हो।

समकालीन कलाकारों में एक विशेष स्थान रखने वाली अर्पणा कौर की कला-साधना में ऐसे अनेक साहित्यिक संदर्भ पाए जाते हैं। अर्पणा कौर विषयों की ऐतिहासिकता और पौराणिकता से परे उन्हें एक तरह की समकालीनता प्रदान करती हैं। इसी तरह उन्होंने सोहनी महिवाल विषय को भी अपने नजरिए से एक समकालीन पुट देते हुए चित्रित किया है।

संवेदनशील भावबोध की दृष्टि से सोहनी-महिवाल चित्र श्रृंखला बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने इन सब घटनाओं का चित्रात्मक वृत्तांत मात्र प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि अपने नजरिये से उन्हें प्रस्तुत किया है। उन्होंने सदा नवीनता के साथ नये संदर्भों और नये प्रतीकों का उपयोग कर चित्रित किया है। उनके चित्रों की रंगयोजना अत्यंत भावप्रवण होती है, जो दर्शक को सहज चित्र की विषय वस्तु के साथ तादात्मय स्थापित करने को आमत्रित करती है। इस कलाकृति में मध्यकाल के रोमानी वातावरण में सोहनी की छवि बहुत ही सहज दिखाई देती है।

संक्षेप में, कला और साहित्य का एक-दूसरे से जुड़ने और एक-दूसरे को प्रभावित करने का एक लंबा इतिहास रहा हैं। चित्रकला और काव्य कला-दोनों ही भावाभिव्यक्ति के सबल तथा प्रभावशाली रूप है। मनुष्य ने इन दोनों कलाओं के माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति को तीव्रता के साथ अभिव्यक्त किया है। भारत में प्राचीन साहित्य से प्रेरित चित्रों की परंपरा अत्यंत विशाल है। समकालीन भारतीय चित्रकला में भी कलाकार साहित्यिक कृतियों को अपने कलाकर्म का विषय बना रहे हैं। चित्रकार को उस साहित्यिक कृति की चित्रात्मकता प्रभावित करती है। जो उसे इस साहित्यिक कृति को अपने माध्यम में व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती है। चित्रकार साहित्य की अपने नजरिये से व्याख्या करना चाहता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भले ही चित्रों की शैली पाश्चात्य के अनुकरण पर चल पड़ी हो, लेकिन उनका विषय आज भी भारतीय पौराणिक आख्यानं तथा साहित्यों पर आधारित हैं। आज के कई चित्रकारों ने काव्यों को अपना आधार बनाया है अतः चित्रकारों के सृजन के लिए साहित्यिक कथानकों से संदर्भों का चयन करने का चलन रहा है। है। और समकालीन चित्रकला में भी चलन जारी रहेगा।

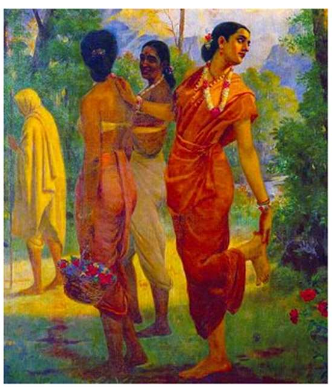

चित्र संख्या-1 'शकुन्तला'

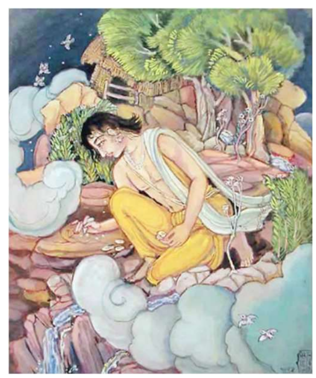

चित्र संख्या-2 'यक्ष विरह' (मेघदूत

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, डॉ० प्रेम शंकर. राधा कृष्ण भारद्वाज : भारतीय चित्रकला में व्यक्ति-चित्रण, प्रकाशक : कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1996
2. प्रताप, डॉ. रीता. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास. 31वां संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2019.
3. रानी, डा. अर्चना. श्रीमति शालिनी त्यागी, शोधपत्र : 'मधुमालती' ग्रन्थ से समृद्ध राजस्थानी चित्रकला

33

# समकालीन साहित्य और कला का अंतर्संबंध

**डॉ० (श्रीमति) अपर्णा अनिल**
प्रोफेसर सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
भोपाल, मध्य प्रदेश

**संजय कुमार**
रिसर्च स्कॉलर शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
भोपाल, मध्य प्रदेश

शोध सार –

इस संसार में साहित्य एवं कला अपने आप को एक अलग स्थान पर प्रदर्शित करती है। आज विश्व भर में कला एवं साहित्य को बढावा देने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन हो रहा है। जिस कारण से बड़े पैमाने पर मनुष्य इस क्षेत्र में रुचि ले रहा है। समकालीन साहित्य एवं कला दोनो ही नये परिवर्तन की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती हैं। जिसमें कलाकार एवं साहित्यकार दोनों ही नये प्रयोग करके अभिव्यक्ति को जन्म देते हैं। साहित्य की बात करें तो साहित्य सभी प्रकार की कलाओं की अपेक्षा समाज में संबन्ध बहुत ऊँचाई तक बनाए रखने में सफल होती है। समकालीन साहित्य भारतीय सामाजिकता को संस्कारित करता रहा है। साहित्य का आधार जीवन है तथा मानवता को जीवित बनाऐ रखने में कला भी विशेष स्थान रखती है। साहित्य जीवन का आधार है और कला इसे कई रूपों में प्रदर्शित करती है। समकालीन साहित्य के परंपरा और नवीन विचारों को आत्मसात करके कला के नए रास्तों की खोज की और उनका सृजन भी सम्भव हुआ है। साहित्यिक कला की शैलियों का प्रचार प्रसार हुआ है। इस शोध में नई कला प्रवृत्तियों का रूप प्रदर्शित करना है और सभी उन प्रकृतियों से प्रभावित होकर कैसे विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं, इन तथ्यों पर विशेष अध्ययन कर प्रस्तुत किया है।

**प्रस्तावना–**

समकालीन साहित्य काल एवं समय सापेक्ष होते हैं। वह इस समय के जीवन जगत की स्थितियों को भोगे हुए अपने स्वयं संघर्षों, अपनी संवेदनाओं को परिवर्तित करते हुए संसार के मूल्यों का चित्रण रूप प्रदर्शित करती है। इनके केन्द्र में सामान्यतः मनुष्य होता है। 90 के दशक से वर्तमान तक समकालीन साहित्य मनुष्य की संवेदनाओं मानसिकता के प्रश्नों की अभिव्यक्ति गहनता से कर रही है। इस समय में तीव्रता से बढ़ते हुए संसारीकरण के बाबजूद स्वयं की संस्कृति व नयी सुन्दरता की अनुभूतियों को जन्म दिया है। आम जनता की इन्हीं नयी दिग्भ्रमित परिस्थितियों से जुड़े प्रश्नों को लेकर वर्तमान समकालीन साहित्यिक कला के स्वरूप का निर्माण हुआ है। 20वीं शती के बाद की कलाओं में साहित्यिक कला के इस नये रूप की अभिव्यकित होती है।

समकालीन साहित्य और कला दोनों अवधारणाओं का अपने समाज और परिवेश के साथ परस्पर सम्बन्ध होता है। अगर साहित्य की बात की जाए तो आदिकाल से लेकर इस काल तक धाराओं की सवयं का एक सामाजिक सन्दर्भ है। साहित्यकार समाज को अपना कृतिम मूल स्त्रोत बनाता है। यर्थात यदि देखा जाए तो साहित्य को समाज की कृति या रूप माना जाता है। परन्तु समकालीन साहित्य और कला के सम्बन्ध की बात जब हम करते हैं तो हमारे समक्ष एक बात मुख्य रूप से प्रदर्शित होती है कि हम साहित्यकार से जिस कला यथार्च को प्रस्तुत करने की आशा से साहित्य की कल्पना करते हैं, कलाकार उस प्रकार से सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने की आशा से कल्पना करते हैं। साहित्यकार उस प्रकार से समाज को प्रस्तुत नहीं कर पाता है। वरन् उस समाज को साहित्य रूपी ढंग

से प्रस्तुत कर रहा है। इस प्रकार समकालीन साहित्य समाज से ही साहित्य भी विषय वस्तु ग्रहण करता है।

समकालीन साहित्य और कला के सम्बन्धों की चर्चा आज जोरों पर है। सच में मनुष्य जीवन के स्नेहपूर्ण रंगात्मक विकास जो कला रूपी संसार में जन्म लेकर फलते–फूलते हैं। इसलिय साहित्य और कला के पारस्परिक सम्बन्धों की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। साहित्य वह है जो साहित्यकार की चेतना के बाद उत्पन्न होता है। इसी कारण से साहित्य और कला का घनिष्ट सम्बन्ध स्पष्ट होता है, क्योंकि लिखना भी एक कला का स्वरूप मानी जाती है। अगर हम भारत में कला की बात करें तो समकालीन कला आगमन 20वीं शती के आरम्भ में परिवर्तित सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच हुआ है। 18वीं शती के दशक में संगठित तरीके से यूरोपियन कला का अध्ययन करने के लिए भारत के, मद्रास, कलकत्ता, बम्बई में कला विद्यालयों की स्थापना की गयी तथा इसका गहरा प्रभाव भारत की कला पर पड़ा और वह धीरे–धीरे भारत की कला का अन्त होने लगा। तभी उस समय के कुछ कलाकारों के सहयोग से भारतीय कला को नया रास्ता मिला और उन्होंने यूरोपीय कला की नकल न करके स्वयं की आत्मा की अभिव्यक्ति का सृजन करना आरम्भ कर दिया। आज अमूत चित्रकारी समकालीन कला के रूपों में लोगों को स्वयं की ओर आकर्षित करने लगे ।

साहित्य और कला में परस्पर गहरा सम्बन्ध है। वह दोनों आपस में एक–दूसरे पर निर्भर हैं। साहित्य का कला के बिना कोई महत्व नहीं है और कला का साहित्य के बिना। कलाकार साहित्य के बाहरी और आन्तरिक दोनों घटकों को उद्घटित करता है। इसलिए कला को साहित्य का दर्पण कहा जाता है। इसी कारण कलाकार समाज में घटित आम जनता के दुख–सुख को अपनी तूलिका के माध्यम से व्यक्त करते हैं। मूलतः साहित्यिक कला का उद्देश्य लोक कल्याण से सम्बन्धित विचारों को प्रकट करना है। वहीं साहित्य, कला के साथ अपना सम्बन्ध मजबूत कर पाता है और कला के द्वारा एक नयी दिशा प्रदान करता है। साहित्य का उद्देश्य समाज का कल्याण करना है और कला समाज के रूपों को उजागर करती है। वह समाज की भावनाओं के साथ चलती है। साहित्य समाज में घटने वाले विकृत व्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज उठाने का काम करता है और समाज हर पहलू को प्रभावित करता है। इसीलिए कलाकार और साहित्यकार अपने माध्यम से समाज का चित्रण करते हैं।[1]

**समकालीन साहित्य में कला और कलाकार की स्थिति –**

साहित्य में समकालीन के अर्थ को समझने के लिए सबसे पहले 'समकालीनता' पर विचार करना अति आवश्यक है। इस शब्द का अर्थ है, 'एक ही समय में समय के' या समय के साथ चलते हुए। पहले समय में कला सन्दर्भ के लिए 'आधुनिक कला' शब्द का प्रयोग होता था। परन्तु अब उसी कला सन्दर्भ के लिए समकालीन कला शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों के शाब्दिक स्वरूप से अर्थ अलग है, परन्तु परिभाषा स्वरूप से अर्थ लगभग समान है। आधुनिक कला आन्दोलन के बाद की सृजनात्मक कला को परिभाषित करने के लिए 'आधुनिक कला' शब्द का प्रयोग कई दशकों तक किया गया, परन्तु शब्द से सन्तुष्ट न होकर हर समय काल की आधुनिकता को समय के साथ देखने का प्रयास किया और अब समकालीन कला शब्द का प्रयोग कला में इन्हीं सन्दर्भों के लिए हो रहा है किन्तु इस शब्द का भी कहीं–कहीं सार्थक नहीं हो रहा है। इसीलिए कुछ विद्वान अपनी बात कहने के लिए 'आज की कला' शब्द का प्रयोग करते हैं। समकालीन व्यक्ति तथा साहित्य समाज की भावनाओं को कलाकार आत्मसात् कर करके वह गहनता से खोज में लगा है।[2]

कला और साहित्य का सम्बन्ध इस बात से और ज्यादा पुष्ट हो जाता है, कि साहित्य समाज के दोनों को ही प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में टी० एस० इलियट में लिखा है कि– केवल अतीत ही वर्तमान को प्रभावित नहीं करता है, वर्तमान भी अतीत को प्रभावित करता है।[3] इसी तर्क से सभी युगों में साहित्य के नये विकास उसके फलस्वरूपों के मूल्यांकन को प्रभावित करते रहते हैं।

चित्रकला और साहित्य मनुष्य रूपी जीवन को मूर्त और वैविध्यपूर्ण ढंग से प्रमाणित करती है। वास्तव में जीवन के अन्तगर्त व्यक्ति विशेष का सम्पूर्ण अन्तर्बाहा जीवन आ जाता है। प्राचीन से श्रेष्ठ कलाकार बस्तु उन्मुखी रहे हैं। यदि कहें कि वस्तु उन्मुखी चित्रकार की महानता प्राप्त कर सकते हैं।

कलाकारों ने समाज के साथ ही साथ मनुष्य के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रतिविम्बित किया है। साहित्य में विशेष रूप से कलाकारों ने अपने युग और सामाजिक इतिहास व निर्देश केन्द्रित समस्याओं का चित्रकारी के माध्यम से कलात्मक जीवन का उद्घाटन किया है और उन समस्याओं से जूझने वाले लोगों की विशिष्ट मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी गहरा और मार्मिक चित्रण किया है। मानव जीवन के इस सम्पूर्ण अन्तर और बाहरी सत्यता को प्रतिबिम्बित कर कलाकृति बनती है तथा मनुष्य जीवन में निहित संभावनाओं को उद्घाटित कर पाती है।[4]

भारत की कला विकास में मुख्य साहित्य, कला अथवा शिल्प, स्थापना, गायन, मूर्ति और नाटक का विशेष महत्व है, किसी भी राज्य की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए उस राज्य विशेष की कलाओं का ज्ञान अति आवश्यक है। कला के द्वारा किसी भी देश, राज्य के समाज का दर्शन की यथोचित रूप प्रतिविम्बित हो जाता है। दर्शन को यदि मन की क्रिया कहें तो विज्ञान शरीर की क्रिया है। परन्तु कला मनुष्य आत्मा की वह क्रिया है जिसमें शरीर व मन की अनुभूति निहित रही है। अतः कला मनुष्य संस्कृति का प्राण है, जिसमें राज्य तथा काल की आत्माएँ मुखरित होती है।[5]

## निष्कर्ष–

प्रस्तुत शोध समकालीन साहित्य तथा कला में मनुष्य मन की विशेष संवेदनशील स्थिति पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। आज जिस प्रकार हर एक मनुष्य संसार में हर प्रकार की सूचना रखता है, उसी प्रकार कलाकार भी संसार परिदृश्य से अपनी संवेदना उजागर करता है, तथा साहित्यकार वैचारिक सामग्री को इकट्ठा करके अपनी चेतना से नये से नये माध्यम में अपनी स्थानीयता के साथ अपने को व्यक्त करने की चेष्टा में लगा रहता है। आज के समय में कलाकार के सामने समसामयिकी चित्रकारी करने के लिए दुनिया के सांस्कृतिक अतीत का समृद्ध भंडार है, जिससे समसामयिक चित्रकार भी उन समृद्ध प्रवृत्तियों का धारक हो गया है। हमें यह भी देखना है कि कितने कलाकार समाज में बुराईयों को दूर करने हेतु उपचारात्मक कलाकृतियों के सृजन में संलग्न है किन्तु कितने सफल हैं, क्या वास्तव में उनकी कृतियाँ विशेष संदेश देने, मन में वैचारिक क्रान्ति पैदा करने और विशेष शान्त वातावरण में ले जाने में सफल हैं। समकालीन कला में कलाकार अपनी स्वेच्छा से विषय का चयन कर उसको अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रदर्शित कर रहा है। लेखक के व्यक्तित्व के सामाजिक अंश का विकास तभी सम्भव है। युगान्तकारी घटनाओं की क्रिया ने व्यकित्तत्व रूप से भाग लेकर उन अनुभवों की संवेदनशील ग्रन्थि को धारण करते हुए साहित्य में उसको खोलते हैं। साहित्यकार होना प्रकृति का वरदान है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– साहित्य और समाज, विजयदान देया– राजस्थानी शोध संस्थान चोपासनी, जोधपुर, 1960, पृष्ठ–05

2– समकालीनू कला, ललित कला अकादमी नई दिल्ली 50–17

3– हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० नगेन्द्र, डा० हरदयाल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दरियागंज नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ–01

4– शिवदान सिंह चौहान– साहित्यानुशीलन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1955, पृ० 33

5– अविनाश बहादुर वर्मा– भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डियो, बरेली, 2000 पृ० 1–2

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

34

# महाराजा सूरजमल का कला संरक्षण: लोहागढ़ के महलों में जाट शौर्य, बृज भक्ति और संस्कृति का समन्वय

**शोधार्थी:- रिचा शर्मा**
स्कूल ऑफ़ फाइन आर्ट्स, आई आई एस मानित विश्वविद्यालय, जयपुर
पर्यवेक्षक महोदय : डॉ गिरिराज शर्मा (सह आचार्य), स्कूल ऑफ़ फाइन आर्ट्स, आई आई एस मानित विश्वविद्यालय, जयपुर
सह-पर्यवेक्षक महोदय: डॉ वागीश शर्मा (सहायक आचार्य), जे ई सी आर सी, जयपुर

**शोध सार-**

महाराजा सूरजमल (1756–1763 ई.) को न केवल एक कुशल प्रशासक और कूटनीतिज्ञ के रूप में, बल्कि 18वीं शताब्दी के भारत के महानतम निर्माताओं में से एक माना जाता है। उनका कलात्मक रुझान भरतपुर रियासत की राजनीतिक शक्ति को दृश्य रूप देने, नवजात जाट राज्य को वैधता प्रदान करने और बृज की आध्यात्मिक विरासत के प्रति सम्मान व्यक्त करने पर केंद्रित था। उन्होंने अपने शासनकाल के दौरान डीग को अपनी पहली राजधानी बनाया और यहाँ मनमोहक दुर्ग, भव्य जल महल, और उद्यान बनवाए। डीग के स्थापत्य में मुगल और राजपूत शैलियों का उत्कृष्ट मिश्रण दिखाई देता है, अपनी दूसरी राजधानी भरतपुर को बनाया। भरतपुर का **लोहागढ़ दुर्ग** उनके शासनकाल का जीवंत साक्ष्य है जो जाट शौर्य, बृज भक्ति और मुग़ल स्थापत्य के अद्भुद समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करता है यहाँ की संरचनाओं में जहाँ शाहजहाँ के स्थापत्य से मिलती-जुलती वास्तु शिल्प विशेषताएँ मिलती हैं, वही गोवेर्धन महलों के भित्ति चित्रों में बृज की रसात्मक भक्ति—विशेष रूप से राधा-कृष्ण की लीलाएँ और रास लीलाओं के आयोजन—को केंद्र में रखा गया है। महाराजा सूरजमल का कला संरक्षण केवल स्थापत्य तक सीमित नहीं रहा वल्कि यह लोक कला, वैष्णव भक्ति और जाट सांस्कृतिक चेतना का समग्र रूप था सूरजमल ने अपनी कलात्मक विरासत के माध्यम से स्वयं को "ब्रजराज" और जाट राजाओं की कलात्मक विरासत के योग्य उत्तराधिकारी के रूप में प्रस्तुत किया। उनका यह कार्य उस संपूर्ण काल में "सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं महान" माना जाता है, जिसने कला और शक्ति के बीच के गहरे संबंध को स्थापित किया।

**मुख्य शब्द** : महाराजा सूरजमल, डीग महल, जाट स्थापत्य, ब्रज भक्ति, भित्ति चित्र, कृष्ण लीलाएं , सांस्कृतिक वैधीकरण

**शोध पत्र**

भारतीय इतिहास में 18वीं शताब्दी को घोर राजनीतिक उथल-पुथल और संक्रमण का काल माना जाता है। मुगल सल्तनत के पतन के साथ ही, देश गृह-युद्ध की चपेट में आ गया था, जहाँ राजपूत, जाट, सिक्ख, मराठे और प्रांतीय मुगल सूबेदार जैसी विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियाँ मुगल-क्षेत्रों पर अधिकार जमाने के लिए परस्पर शत्रुता में उलझी थीं। यह वह संकटापन्न काल था जब नेतृत्व की लड़ाई चरम पर थी और देश विखंडित होने के कगार पर था। इसी डाँवाडोल शताब्दी में, महाराजा सूरजमल ((शासनकाल 1756-1763 इश्वी) के नेतृत्व में भरतपुर रियासत का उदय हुआ। सूरजमल ने न केवल परस्पर लड़ने वाले जाट गुटों को एकजुट कर एक नवजात राज्य की रक्षा की, बल्कि अपनी कूटनीति, राजनीति और युद्धनीति के बल पर मुगलों, मराठों और राजपूतों से गठबंधनों का शिकार हुए बिना अपनी धाक स्थापित की। उन्हें अपने युग के महानतम निर्माताओं में से एक माना जाता है, जिन्होंने कला और स्थापत्य के क्षेत्र में ऐसे कार्य किए जो उस संपूर्ण काल में सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं महान थे। [1]

[1] https://archive-org.translate.goog/details/in.ernet.dli.2015.400780?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc

चित्र1 महाराजा सूरजमल ((शासनकाल 1756-1763 ईश्वी)

सूरजमल ने अपनी वीरता और कूटनीति के बल पर साम्राज्य का व्यापक विस्तार किया, जिसमें भरतपुर के अतिरिक्त आगरा ((1761 में आगरा किला जीता) अलीगढ़, बल्लभगढ़, होडल, बुलंदशहर, धौलपुर, मथुरा, मेरठ, रोहतक, गुड़गाँव और मेवात के कई क्षेत्र शामिल थे । उन्हें एक सुयोग्य शासक, कुशल सेनापति और राजमर्मज्ञ ((स्टेट्समैन) माना जाता था । उनके शासन का एक प्रमुख पहलू किसानों के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी, उन्होंने किसानों की समस्याओं की पहचान की और उन्हें दूर करने के लिए सुधार किए ।इतना ही नहीं उन्होंने दिल्ली पर आक्रमण कर वहाँ से बहुमूल्य धरोहरें भी भरतपुर लायी । सूरजमल के इन शौर्य कथाओं से ना केवल महाराजा सूरजमल की छबि एक नेक और शौर्यवान जाट शासक में देखी जाती है बल्कि पूरे जाटो के शौर्य को देखा जाता है। उनके इन शौर्य गाथाएँ यह बताती है की उन्होंने हमेशा जाटों की शौर्य शक्ति को बढ़ाया है और साथ ही अपने क्षेत्र में सांस्कृतिक गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया है। महाराजा सूरजमल ने जाटों को विरासत में जाट गौरव, स्वाभिमान और संघर्षशीलता का प्रतीक प्रदान किया है।

महाराजा सूरजमल के शासनकाल में भरतपुर रियासत ने ना केवल राजनीतिक और सैन्य रूप से बल्कि सांस्कृतिक रूप से सर्वोच्चता प्राप्त की। वे सांस्कृतिक और साहित्यिक संरक्षण के प्रति गहरी रुचि रखते थे। ब्रजभाषा साहित्य के प्रति उनके प्रेम का प्रमाण उनके दरबारी कवि सूदन द्वारा रचित ग्रंथ सुजानचरित्र है।इसमें महाराजा सूरजमल के युद्धों का वर्णन किया गया है साथ ही यह दरबार के दृष्टिकोण और महाराजा के गुणों को दर्शाती है।[2] यह कृति महाराजा सूरजमल के जीवनकाल में उनके युद्दों की प्रत्यक्ष दृष्टि से प्रेरित होकर रची गयी प्रतीत होती है , अतः यह एक रूप में महाराजा सूरजमल के जीवन का दस्तावेजीकरण है । यह दस्तावेजीकरण जाट शौर्य का प्रतिनिधित्व करता है और साथ ही ब्रज भक्ति के प्रभाव का प्रतिपादन करता है।

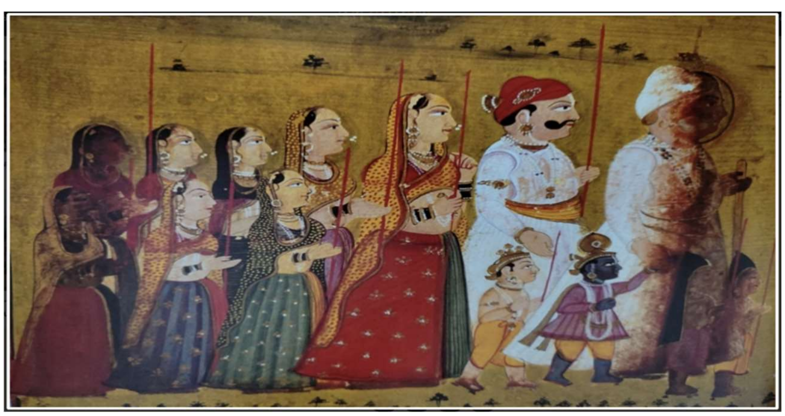

[2] https://hi.wikipedia.org/wiki/सुजान_चरित्र

चित्र 2 (सूजन चरित्र श्रृंखला से, रामजी, जयपुर स्कूल द्वारा लगभग १८वी शताब्दी के मध्य के अंत तक का विवरण) https://jatchiefs.com/raja-badan-singh-of-bharatpur/#google_vignette

यह चित्र (गोवर्धन धारण) के दृश्य के बाईं ओर निर्मित किया गया है। इसमें अग्रभूमि की आकृति को भरतपुर की पारंपरिक वेशभूषा में चित्रित किया गया है, जो संभवतः महाराजा सूरजमल का प्रतीकात्मक रूप प्रस्तुत करती है।इसमें डीग के राजा श्री बृज राज बदन सिंह को सफ़ेद पगड़ी में बाल कृष्ण का हाथ थामे हुए दर्शाया गया है, जबकि उनके पीछे भ्राता बलराम भी चित्रित हैं। बालकृष्ण का हाथ थामे हुए शासकों का यह चित्रण दर्शाता है कि वे अपने राज्य और सत्ता को कृष्ण के आशीर्वाद और ब्रज परंपरा से वैधता प्राप्त मानते थे। पृष्ठभूमि में दर्शाई गई नारी आकृतियाँ ब्रज की स्त्रियों, भरतपुर क्षेत्र की महिलाओं या गोपियों का सांकेतिक रूप हो सकती हैं। उनके पीछे रानियाँ और स्त्रियाँ हैं जिनके वस्त्र और आभूषण उस समय की भरतपुर दरबार शैली को दर्शाते हैं – लाल, पीले, और हरे रंगों का संतुलित उपयोग, साथ ही मोतियों और सोने की आभा। संपूर्ण दृश्य संभवतः भरतपुर राज्य की ब्रज क्षेत्र पर शासन करने की वैधता को अंकित या स्थापित करने के उद्देश्य से निर्मित किया गया प्रतीत होता है। प्रत्येक आकृति की पार्श्व मुद्रा और लंबी आँखें, राजस्थान की किशनगढ़ व जयपुर लघुचित्र परंपरा से प्रभावित हैं, लेकिन यहाँ भावाभिव्यक्ति अधिक कोमल और भक्तिभावपूर्ण है, जो ब्रज शैली का लक्षण है। सभी आकृतियाँ एक पंक्ति में अग्रगामी हैं, जो यात्रा या जुलूस का प्रतीक है। सुनहरा, लाल, और सफेद प्रमुख रंग हैं, जो दिव्यता, राजसी गरिमा, और पवित्रता का प्रतीक हैं। भरतपुर के शासकों ने स्वयं को बृज के रक्षक और कृष्णा भक्ति परंपरा के संवाहक के रूप में प्रस्तुत किया। इस चित्र में बालकृष्ण का हाथ थामना उस आध्यात्मिक दावे को पुष्ट करता है कि भरतपुर की सत्ता ब्रजधाम और कृष्ण की कृपा से संचालित है।

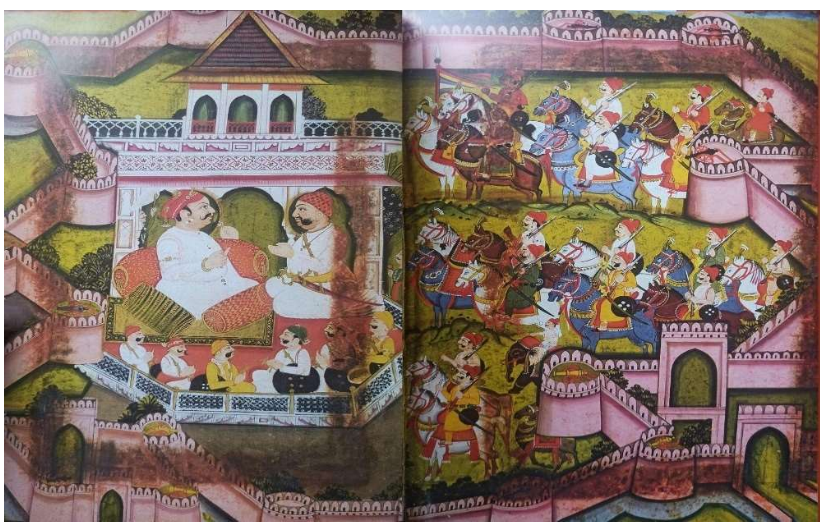

चित्र 3 बगरू की लड़ाई से पहले भरतपुर राज्य के सूरजमल की जयपुर राज्य के अपने राजा ईश्वरी सिंह से मुलाकात की पेंटिंग, रामजी की बनाई (सुजान चरित्र) सीरीज़ की तस्वीरों से ली गई, लगभग 18वीं सदी के बीच से आखिर तक की। https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Painting_of_Suraj_Mal_of_Bharatpur_State_meeting_with_his_liege_Ishwari_Singh_of_Jaipur_State_before_the_Battle_of_Bagru,_from_an_illustrated_%27Sujan_Charitra%27_series,_by_Ramji,_circa_mid-to-late_18th_century.jpg

यह चित्र 18वीं शताब्दी के मध्य से उत्तरार्ध के दौरान बनाया गया एक ऐतिहासिक राजस्थानी लघुचित्र है , जिसे चित्रकार रामजी द्वारा रचित माना जाता है। यह चित्र (सुजान चरित्र) नामक ग्रंथ से संबंधित श्रृंखला का एक दृश्य है, यह वही ग्रंथ है जिसे कवि सूदन ने महाराजा सूरजमल के जीवन और युद्धों पर आधारित किया था।चित्र में भरतपुर के महाराजा सूरजमल और जयपुर नरेश ईश्वर सिंह को एक महत्वपूर्ण बैठक के दौरान दर्शाया गया है। यह दृश्य बगरू के युद्द 1748 इश्वी से पूर्व की घटना को चित्रित करता है, जब दोनों शासकों ने आपसी रणनीति पर चर्चा की थी। इस युद्ध में जयपुर, भरतपुर, और अन्य क्षेत्रीय शक्तियाँ मुग़ल प्रभाव से

स्वतंत्रता और सत्ता-संतुलन के लिए संघर्षरत थीं।

बाएँ भाग में दुर्ग या महल के भीतर का दृश्य है, जहाँ सिंहासन-जैसे आसन पर बैठे दो प्रमुख शासक संवाद कर रहे हैं, एक ओर सफेद पोशाक में शाही गरिमा से युक्त महाराजा सूरजमल और दूसरी ओर लाल पगड़ी में बैठे जयपुर नरेश ईश्वर सिंह।उनके चारों ओर मंत्री, सिपाही और दरबारी बैठे हैं, जो सभा के औपचारिक माहौल को दर्शाते हैं। दाएँ भाग में दुर्ग के बाहर घुड़सवार सेना और सैनिकों का विशाल जुलूस दिखाया गया है जिसमें ढाल, तलवार और भाले लिए हुए सैनिक अनुशासित पंक्तियों में आगे बढ़ रहे हैं।यह दृश्य युद्ध की तैयारी, सामाजिक संगठन और शक्ति-प्रदर्शन का प्रतीक है।राजस्थानी लघुचित्र शैली की प्रमुख विशेषताएँ यहाँ स्पष्ट हैं स्थापत्य संरचना की जटिलता , (महल की दीवारें और द्वार पर चमकीले रंगों का प्रयोग (लाल, पीला, हरा और सफेद एवं सूक्ष्म रेखांकन और दो-आयामी दृश्य विन्यास प्रमुख है । चित्र में भरतपुर और जयपुर की संयुक्त सैन्य संस्कृति का समन्वय दिखाई देता है।यह चित्र दरवारी चित्रण और युद्द दृश्य दोनों को एक साथ प्रस्तुत करता है, जो इसे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाता है।

यह चित्र केवल एक ऐतिहासिक दृश्य नहीं बल्कि उस समय के राजनैतिक गठबंधनों, सैन्य गौरव और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का साक्ष्य है। महाराजा सूरजमल को केवल योद्धा के रूप में नहीं, बल्कि एक संवेदनशील शासक और कला-संरक्षक के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। यह चित्रण बताता है कि भरतपुर दरबार में चित्रकला न केवल सजावट का माध्यम थी, बल्कि राजनीतिक दस्तावेजीकरण और सांस्कृतिक वैधता का साधन भी थी।

महाराजा सूरजमल के शासनकाल में (सुजानचरित ) जैसे साहित्यिक ग्रंथों, लघुचित्रों और भव्य स्थापत्य रचनाओं का उत्कर्ष हुआ। उनके संरक्षण में निर्मित प्रमुख स्थापत्य कृतियों में लोहगढ़ किला डीग महल, कुसुम सरोवर, तथा वैर और कुम्हेर के अनेक भव्य भवन शामिल हैं। इनमें से लोहगढ़ किला विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो अपनी अभेद्यता के कारण जाट शौर्य और स्वाभिमान का प्रतीक माना जाता है। डीग में स्थित डीग महल अनेक भवनों का समूह है, इन भवनों में स्पष्ट रूप से मुग़ल स्थापत्य शैली का प्रभाव दिखाई देता है, जो संभवतः आगरा से आए शिल्पकारों और कलाकारों की उत्कृष्ट कारीगरी का परिणाम था जिन्हें सूरजमल ने अपने दरबार में संरक्षण दिया था। यद्यपि इन स्थापत्यों में मुग़ल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, तथापि सम्पूर्ण क्षेत्र की कला और स्थापत्य में ब्रज संस्कृति का प्रभाव अधिक गहराई से विद्यमान है। यह प्रभाव न केवल महलों और किलों की भित्तिचित्र सज्जा तथा मंदिर स्थापत्य में दिखाई देता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में भी परिलक्षित होता है। लोकगीतों, नृत्यों, त्योहारों और पारंपरिक उत्सवों के माध्यम से यह बृज भावनां जनजीवन में गहराई से रची-बसी हुई थी जिसने भरतपुर रियासत को एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान प्रदान की।

4 महाराजा सूरजमल की छतरी, कुसुम सरोवर

यह भित्तिचित्र, जो महाराजा सूरजमल की छतरी में चित्रित है, भरतपुर के जाट शासकों की सांस्कृतिक, धार्मिक और राजसी जीवनधारा का सजीव दृश्य प्रस्तुत करता है। चित्र में संभवतः राजदरबार अथवा धार्मिक जुलूस का दृश्य अंकित है, जो भक्तिभाव और राजवैभव दोनों का सशक्त संगम दर्शाता है। चित्र के ऊपरी भाग में गवाक्ष के भीतर श्रीनाथजी की मूर्ति का चित्रण किया गया है। मूर्ति के समक्ष स्त्रियों का समूह तथा संगीतमंडली उपस्थित है, जो भक्ति-रस में लीन दिखाई देती है। यह दृश्य भरतपुर के राजपरिवार के धार्मिक जीवन और कृष्णभक्ति परंपरा को प्रतिबिंबित करता है। श्रीनाथजी के साथ उनकी सेवा में खड़ी स्त्रियाँ

दर्शाती हैं कि यह केवल उपासना का नहीं, बल्कि सेवा भाव और भक्तों संवेदना का प्रतीकात्मक चित्रण है।
चित्र के निचले भाग में एक भव्य राजसी शोभायात्रा दिखाई गई है, जिसमें घोड़े, हाथी और पालकी शामिल हैं। पालकी में रखे वस्त्र, मूर्ति या किसी राजसी व्यक्ति का चित्रण, मोरध्वज के साथ आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यह दृश्य न केवल राजकीय शक्ति और अनुशासन का द्योतक है, बल्कि उस काल की राजकीय धार्मिक आस्थाओं और अनुष्ठानों को भी मूर्त रूप में प्रस्तुत करता है। चित्र को दो क्षैतिज पट्टियों में विभाजित किया गया है ऊपरी भाग में धार्मिक अनुष्ठान और निचले भाग में राजसी जुलूस। यह विभाजन दृश्य को क्रमबद्ध और कथा- संरचनात्मक बनाता है जिससे दर्शक धार्मिक और राजनीतिक दोनों आयामों को समान रूप से अनुभव कर सकता है।
आकृतियों की शैली राजस्थानी लघुचित्र परंपरा से प्रेरित है, छोटे कद की गोल-मटोल चेहरों वाली आकृतियाँ, तीखी नाक और बड़ी आँखें, रंगीन परिधान और आभूषणों की सजावट। स्त्रियों का समूह और वाद्य यंत्र बजाते पुरुष दृश्य में गतिशीलता और उल्लास जोड़ते हैं , जबकि सैनिकों और सेवकों की पीला प्रमुख हैं, जो धार्मिक और राजसी वैभव दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चित्र में स्वर्णआभा का प्रयोग इसकी भव्यता को बढ़ाता है। हाथी, घोड़े और पालकी राजसत्ता, शक्ति और सम्मान के प्रतीक हैं, जबकि देवमूर्ति और भजन-कीर्तन दृश्य धार्मिक आस्था और भक्ति परंपरा को उभारते हैं। संरचनात्मक दृष्टि से चित्र में सीमित गहराई का उपयोग किया गया है, जो इसे पारंपरिक और सजावटी रूप प्रदान करता है। भीड़ और अनुष्ठानिक गतिविधि को प्रदर्शित करने के लिए दोहरी संरचना का प्रयोग किया है जो काफ़ी प्रभावशाली प्रतीत होती है।
यह भित्तिचित्र इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है कि महाराजा सूरजमल के निधन के बाद भी उनके स्मरण में कला और संस्कृति का संरक्षण निरंतर जारी रहा। ये चित्र न केवल उनके समय की कलात्मक परंपराओं को दर्शाता है बल्कि यह भी प्रमाणित करता है कि सूरजमल का प्रभाव जाट समाज और उनके शासकों पर लंबे समय तक बना रहा। उनके आदर्शों और सांस्कृतिक दृष्टिकोण ने आगामी पीढ़ियों को प्रेरित किया कि वे कला, स्थापत्य और धार्मिक जीवन में उसी परंपरा को आगे बढ़ाएँ। इस प्रकार सूरजमल की स्मृति मात्र ऐतिहासिक रूप में नहीं रही, बल्कि सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग बन गई, जो चित्रकला, स्थापत्य और लोकजीवन सभी में सजीव रूप से दिखाई देती है।

## निष्कर्ष

महाराजा सूरजमल के काल और उनके पश्चात की कला-सांस्कृतिक परंपरा का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भरतपुर रियासत में कला केवल सौंदर्य का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और राजनीतिक गौरव की अभिव्यक्ति थी। सूरजमल जी के शासनकाल में आरंभ हुई स्थापत्य, साहित्य और चित्रकला की परंपरा उनके पश्चात भी सतत् विकसित होती रही। महाराजा सूरजमल का कला संरक्षण राजनैतिक चेतना, भक्ति-भाव और सांस्कृतिक एकरूपता को दर्शाते हैं। इनमे ब्रज भक्ति जाट शौर्य और संस्कृति उत्कृष्ट तरीके से विद्यमान है। यह कला लोक जीवन को भी प्रेरित करती थी और आज भी भरतपुर की कला इन संवेदनाओं को संभाले हुए है।

संदर्भ

1: https://en.wikipedia.org/wiki/Suraj_Mal#/media/File:Maharaja_Suraj_Mal.jpg
2:https://jatchiefs.com/raja-badan-singh-of-bharatpur/#google_vignette
3https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Painting_of_Suraj_Mal_of_Bharatpur_State_meeting_with_his_liege_Ishwari_Singh_of_Jaipur_State_before_the_Battle_of_Bagru,_from_an_illustrated_%27Sujan_Charitra%27_series,_by_Ramji,_circa_mid-to-late_18th_century.jpg

## संदर्भ ग्रंथ सूची

- (HISTORY OF THE JATS : A CONTRIBUTION TO THE HISTORY OF NORTHERN INDIA (REPRINT ED.))
- (महाराजा सूरजमल , जीवन और इतिहास)
- (महाराजा जवाहर सिंह और उत्तराधिकारी; QANUNGO; QANUNGO; Siṃha; वर्मा)
- वर्मा रामवीर सिंह *भरतपुर का इतिहास* ३ ed., भरतपुर, प्रदीप प्रकाशन, २०२३.
- Siṃha, Tanūjā. *भरतपुर की कला सम्पदा.* jaipur, Rājasthāna Hindī Grantha Akādamī, 2011.

35

# भारतीय अमूर्त चित्रकला और कविताओं का संवाद

**नीतू सिंह चौधरी**
सहायक आचार्य (चित्रकला)
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

भारतीय कला और साहित्य के विकास क्रम में "अमूर्तता" एक ऐसा भाव है जो बाहरी रूपों के पार जाकर आंतरिक अनुभूति, चेतना और आध्यात्मिक अनुभव को व्यक्त करता है। यह शोधपत्र भारतीय अमूर्त चित्रकला और कविताओं के बीच उस संवेदनशील संवाद की खोज करता है जो दृश्य और शब्द, रंग और लय, रूप और अर्थ के मध्य स्थित है। भारतीय चित्रकारों जैसे एस.एच. रजा, वासुदेव एस. गायतोंडे, तायब मेहता, और कवियों जैसे अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ सिंह आदि के कार्यों में यह अंतःसंवाद स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि भारतीय अमूर्त चित्रकला और कविता दोनों ही एक समान भाव क्षेत्र में कार्य करती हैं— जहाँ बाहरी रूप गौण हो जाता है और अनुभूति ही मुख्य माध्यम बन जाती है।

**खंड 1 : परिचय**

भारतीय कला और साहित्य दोनों का आधार "अनुभूति" और "अर्थ के पार जाने की कोशिश" में निहित है। जब कोई कलाकार रंगों से अपनी भावना को व्यक्त करता है और कवि शब्दों से, तब दोनों ही एक ही सत्य की खोज में लगते हैं— उस "सूक्ष्म" की जिसे देखा नहीं जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। अमूर्त कला का उद्भव पश्चिमी आधुनिकता के प्रभाव में हुआ माना जाता है, किंतु भारतीय परंपरा में यह भाव प्राचीन काल से विद्यमान है। भारतीय दार्शनिक दृष्टि— विशेषकर वेदांत, बौद्ध और उपनिषदिक चिंतन— में जो "रूपातीत" विचार है, वही भारतीय अमूर्त कला की जड़ है।

कविता और चित्रकला, दोनों ही संवेदन की दो धाराएँ हैं। एक दृश्य माध्यम है, दूसरी श्रव्य–भाषिक। जब ये दोनों एक–दूसरे से संवाद करती हैं, तब मनुष्य की संवेदना का विस्तार होता है। यह शोधपत्र इन्हीं दोनों माध्यमों के अंतःसंबंध का विश्लेषण करता है।

**अध्ययन के उद्देश्य:**

1. भारतीय अमूर्त चित्रकला के प्रमुख रूपों और प्रवृत्तियों का अध्ययन।
2. आधुनिक भारतीय कविता में अमूर्तता की प्रवृत्ति की पहचान।
3. दोनों माध्यमों के बीच मौजूद समान संवेदनात्मक धरातल को प्रस्तुत करना।
4. यह दिखाना कि अमूर्तता केवल कला का नहीं, बल्कि चेतना का आयाम है।

खंड 2 : भारतीय अमूर्त चित्रकला का विकास और स्वरूप

अमूर्त चित्रकला का उद्भव बीसवीं शताब्दी में हुआ, जब कलाकारों ने यथार्थ चित्रण से आगे बढ़कर "अभिव्यक्ति" को प्राथमिकता दी। भारत में स्वतंत्रता के बाद यह प्रवृत्ति गहराई से उभरी।

**2.1 ऐतिहासिक विकास**

| कालखंड | प्रमुख कलाकार | प्रमुख प्रवृत्तियाँ |
|---|---|---|
| 1940–1950 | जमिनी रॉय, नंदलाल बोस | लोक और परंपरा से प्रेरित रूप |
| 1950–1970 | एस.एच. रजा, तायब मेहता, गायतोंडे | अमूर्त–अभिव्यंजनावाद, प्रतीकवाद |
| 1970–2000 | जे. स्वामीनाथन, रामकुमार, अकबर पदमसी | ध्यान, मौन, रचनादृसंरचना |
| 2000 के बाद | अतुल डोडिया, भारती खेर आदि | समकालीन अमूर्तता और बहुस्तरीय अर्थ |

एस.एच. रजा की "बिंदु" शृंखला भारतीय अमूर्तता की आत्मा है। उनके अनुसार —
"बिंदु ब्रह्मांड की शुरुआत है, सृजन का प्रतीक है।"
यह बिंदु कविता के "शब्द" जैसा है — छोटा, पर अर्थ–ब्रह्म को धारण करने वाला।
वासुदेव एस. गायतोंडे ने अमूर्तता को "ध्यान" की स्थिति माना। उनके चित्रों में कोई आकृति नहीं, केवल स्पंदन है — जैसे कविता की लय।
तायब मेहता और रामकुमार जैसे कलाकारों ने शहरी तनाव, एकाकीपन और अस्तित्वगत प्रश्नों को अमूर्त रूप में चित्रित किया।

### 2.2 भारतीय अमूर्त कला की विशेषताएँ

1. रूपातीतता — बाह्य आकृति से परे जाना।
2. आध्यात्मिकता — रंगों का प्रयोग भावानुभूति हेतु।
3. मौन और रिक्तता का महत्व।
4. भारतीय प्रतीकों का प्रयोग — बिंदु, त्रिकोण, मंडल।
5. आंतरिक लय — जो संगीत और कविता से जुड़ती है।

## खंड 3 : भारतीय कविताओं में अमूर्तता का भाव

भारतीय आधुनिक कविता (विशेषकर 1940 के बाद) में भी अमूर्तता का स्वर मुखर हुआ।
छायावाद के बाद कवि "भाव" से "चेतना" की ओर बढ़े।
अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ सिंह, धूमिल और कुँवर नारायण जैसे कवियों ने कविता को दृ श्य, लय और रंगों के समान एक अनुभव माध्यम बना दिया।

### 3.1 अमूर्तता के प्रमुख उदाहरण

| कवि | काव्य कृति | अमूर्त प्रवृत्ति |
|---|---|---|
| अज्ञेय | "हरी घास पर क्षणभर" | अनुभव की लघुता और अनंतता |
| शमशेर बहादुर सिंह | "बात बोलेगी" | शब्दों के पार का मौन |
| केदारनाथ सिंह | "बाघ" | प्रतीकों और रिक्तता का प्रयोग |
| कुँवर नारायण | "आत्मजयी" | समय और अस्तित्व का दार्शनिक संवाद |

शमशेर बहादुर सिंह की पंक्तियाँ —
"रंग बोलते हैं, मैं सुनता हूँ उनका मौन"
यह वाक्य अमूर्त चित्रकार की भाषा भी बन सकता है।
कविता में रंग, प्रकाश और ध्वनि के प्रतीक — वही हैं जो चित्रकला में दृश्य तत्व हैं।
कवि रंगों से नहीं, शब्दों से चित्र बनाता है।

### 3.2 कविताओं और चित्रों का समान धरातल

| तत्व | चित्रकला | कविता |
|---|---|---|
| रूप | रंग, रेखा, बिंदु | शब्द, लय, विराम |
| अभिव्यक्ति | मौन, स्पंदन | बिंब, प्रतीक |
| उद्देश्य | अनुभूति का संप्रेषण | संवेदना का प्रकटीकरण |
| परिणाम | ध्यान, शांति | आत्मचेतना |

## खंड 4 : चित्रकला और कविता का अंतःसंवाद

चित्रकला और कविता का संवाद तब जन्म लेता है जब दोनों एक–दूसरे की भाषा को समझने लगते हैं। भारतीय परंपरा में यह संवाद नया नहीं है — भित्तिचित्रों से लेकर अजंता की गुफाओं तक, जहाँ चित्र और श्लोक दोनों साथ चलते थे।

### 4.1 आधुनिक काल में संवाद

बीसवीं सदी के कलाकार और कवि, दोनों ने एक–दूसरे से प्रेरणा ली।
एस.एच. रजा और अज्ञेय, दोनों ही ”अर्थ के पार” की तलाश में थे।
गायतोंडे की चित्रदृशृंखला और शमशेर की कविताएँ दोनों ही मौन में संवाद करती हैं।
”जब चित्र बोलता है, तो कविता मौन हो जाती हैय
और जब कविता बोलती है, तो चित्र भीतर गूंजता है।”

### 4.2 अध्ययन आधारित तालिकारू कला और कविता में समान प्रतीकात्मकता

| तीीक | चित्रकार | कवि | भावार्थ |
|---|---|---|---|
| थ्बंदु | रजा | अज्ञेय | सृजन, आरंभ |
| थ्रक्तता | गायतोंडे | शमशेर मौन, | आत्मचिंतन |
| वृत्त/मंडल | पदमसी | कुँवर नारायण | ब्रह्मांडीय ऊर्जा |
| विभाजन रेखा | तायब मेहता | केदारनाथ सिंह | अस्तित्वगत द्वंद्व |

### 4.3 संवेदी तुलना:

चित्रकला आँखों से देखी जाती है, कविता मन से।
फिर भी दोनों का गंतव्य एक ही– अनुभव की गहराई।
इस संवाद की परिणति ”अनिर्वचनीयता” है– वह जो न शब्दों में कहा जा सकता है, न रंगों में दिखाया जा सकता है।

### खंड 5 : निष्कर्ष

भारतीय अमूर्त चित्रकला और कविता, दोनों ही भारतीय दर्शन की गहरी जड़ों से जुड़ी हैं।
दोनों का उद्देश्य बाह्य रूप नहीं, बल्कि आंतरिक अर्थ की खोज है।
अमूर्तता यहाँ केवल तकनीकी नहीं, बल्कि आध्यात्मिक है– ”स्वरूप के पार” का अनुभव।
इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय कवि और चित्रकार दोनों ही ”अनुभूति” को भाषा देते हैं– एक रंगों से, दूसरा शब्दों से।
दोनों माध्यम एक–दूसरे को समृद्ध करते हैं और भारतीय आधुनिकता को नया अर्थ प्रदान करते हैं।

### प्रमुख निष्कर्ष सारणी

| क्रम | निष्कर्ष | सार |
|---|---|---|
| 1 | अमूर्तता भारतीय परंपरा का आंतरिक तत्व है | यह पश्चिमी प्रभाव मात्र नहीं |
| 2 | कविता और चित्रकला दोनों ”अनुभव” पर आधारित हैं | रूप गौण, भाव प्रधान |
| 3 | दोनों में प्रतीकात्मक भाषा समान | बिंदु, मौन, रिक्तता जैसे प्रतीक |
| 4 | अंतःसंवाद से नई अभिव्यक्ति जन्म लेती है | कला का समग्र दृष्टिकोण बनता है |

### निष्कर्ष टिप्पणी:

यह शोधपत्र यह सिद्ध करता है कि ”भारतीय अमूर्त चित्रकला और कविताओं का संवाद” वास्तव में एक अनुभवात्मक एकता का प्रमाण है।
जहाँ शब्द रंग बन जाते हैं और रंग कविता में रूपांतरित हो जाते हैं।

संदर्भ सूची

1. अज्ञेय– हरी घास पर क्षणभर, राजकमल प्रकाशन, 1973।
2. शमशेर बहादुर सिंह– बात बोलेगी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1969।
3. केदारनाथ सिंह– उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1985।
4. कुँवर नारायण– आत्मजयी, वाणी प्रकाशन, 1971।
5- Raza, S-H- Bindu: Space and Time in Indian Art, Lalit Kala Akademi, 1992

6- Gaitonde, V-S- The Silent Canvas, NGMA Catalogue 2014

7- Kumar, R- Modern Indian Painting: The Making of a New Identity Oxford University Press, 2005

8- Chaitanya, Krishna- A History of Indian Painting: The Modern Period, Abhinav Publications, 1994

9- Chakravarty, A- The Spiritual in Indian Abstract Art, Indian Art Journal, 2012

36

# परंपरा से आधुनिकता तक राम लीला की पृष्ठभूमि के माध्यम से लोक नाटक की यात्रा: सौंदर्यात्मक विश्लेषण

**श्री रवि कुमार**
(शोधार्थी)
सरदार सोभा सिंह फाइन आर्टस विभाग,
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला
संपर्क सूत्र: 90237-30522
मेल: rrvermaravi@gmail.com

**सारांश:** राम लीला न केवल एक लोक नाट्य परंपरा है, बल्कि रामायण के रूप में भारत की अद्भुत संस्कृति का दर्शन भी है, जो सदियों से भारतीय लोगों की आस्था और कलात्मक प्रतिभा के साथ जुड़ा हुआ है। राम लीला धार्मिक गाथा के रूप में भगवान श्री विष्णु जी के त्रेता युग्गीं सातवें अवतार मर्यादा पुरूषोतम श्री राम जी के जीवन की नाटकीय प्रतिनिधित्व है, जिस का एक स्तर पेशकारी और दूसरे स्तर में चित्रित बड़े-बड़े पर्दो के रूप में सजी पृष्ठभूमि आँखों को सौंदर्य आनंद की प्राप्ति करवाने के साथ दर्शक को त्रेता युग के दर्शन करवाती है। पृष्ठभूमि रामलीला का वह महत्वपूर्ण तत्व है, जो अदाकार को एक अनुकूलित वातावरण प्रदान करता हुआ सैट निर्माण करने में सहयोग डालता है। इस में सैट या पृष्ठभूमि को चित्रों से लेकर कई डिजिटल तकनीको का सहारा ले कर नाटक के अनुकूल बनाया जाता है। राम लीला उत्तर भारत के लोक नाटको की शैली है और समय के साथ इसका प्रदर्शन दक्षिण भारत, इंडोनेशिया, म्यांमार, कंबोडिया, थाईलैंड, बाली और उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में यूरोपीय उपनिवेशीकरण के कारण मलेशिया, सिंगापुर और अफ्रीका जैसे देशों में फैला। परंपरागत रूप से चित्रित पर्दो से लेकर प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ राम लीला की पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जो कलात्मक अभ्यास के साथ-साथ तकनीकी प्रगति को दर्शाते है। यह शोध पत्र भारतीय संस्कृति में समाए नाट्य प्रदर्शन के लोकप्रिय रूप राम लीला की लोक नाटक परंपरा में पृष्ठभूमि के विकास और परिवर्तन की खोज करता है। इस के अतिरिक्त यह शोध पत्र ऐतिहासिक और समकालीन अभ्यासों की जांच करते हुए कलात्मक, सामाजिक एवं तकनीकी सन्दर्भो में पृष्ठभूमि के परिवर्तनों का विश्लेषण कर राम लीला के डिजाइन तत्वों के सौंदर्य, सांस्कृतिक निरन्तरता और तकनीकी पहलुओं की पड़ताल करता है।

**मुख्य शब्द: राम लीला, पृष्ठभूमि, लोक नाटक, पिछवयी, सौंदर्य, चित्रित पृष्ठभूमि।**

भारत में लोकनाट्य देश की कलात्मक एवं सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग है, जिनमें भारतीय जीवन की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। स्थानीय परंपरा में क्षेत्रीय और उप-भाषाओं में प्रदर्शित किये जाने वाले लोक नाटकों की जड़े संस्कृति के साथ जुड़ी होने के कारण कई गाथाएं और महाकाव्य उभर कर सामने आए, जिनमें 'राम लीला' उत्तर भारत के सबसे लोकप्रिय लोक नाटकों की श्रेणी में शामिल हुआ। 'रामलीला' संस्कृत शब्दों का मिश्रण है; जिसमें 'राम' का संबंध सृष्टि के पालणकर्ता भगवान श्री विष्णु के सातवें अवतार श्री राम जी से है, जिन्होंने त्रेता युग में अवतार लेकर संपूर्ण मानवता को सदाचार, मर्यादा और नैतिकता का पाठ पढ़ाया और इस के साथ ही 'लीला' अर्थात नाटकीय प्रदर्शन के रूप में उनके संपूर्ण जीवन की झलकियाँ को दिखाना, जो भक्ति और सामुदायिक भागीदारी की गहराई से जुड़ा हुआ है। इस मानवता के पाठ को आधुनिक मनुष्य तक पहुँचाने के लिए महर्षि वाल्मिकी ने ईसा पूर्व पहली शताब्दी में 'रामायण' नामक महाकाव्य को संस्कृत भाषा में पिरोया। यह प्रदर्शन नवरात्रि के नौ दिनों में आयोजित किया जाता है, जिसके दसवें दिन दशहरा 'बुराई पर अच्छाई की जीत' के प्रतीक रूप में मनाया जाता है। 2008 में यूनेस्को द्वारा राम लीला महोत्सव को

'मानवता की अटल सांस्कृतिक विरासत' में से एक घोषित किया गया। सभी धर्मों, जातियों और संप्रदायों के लोग राम लीला का आनंद लेने के लिए उत्साहित रहते है और दो घंटे का रंगमंचीय शो साधरण मनुष्य की सोच में मर्यादा का संचार करने के साथ नैतिक सिद्धांतों का पालन करना सिखाता है। 'हीन राम लीला को 'हिन्दू पैशन प्ले' कहता है।'[1] राम लीला वह धार्मिक गाथा है, जिस का एक स्तर पेशकारी के रूप में और दूसरे स्तर में चित्रित बड़े-बड़े पर्दो के रूप में सजी पृष्ठभूमि दर्शकों को सौंदर्य आनंद प्रदान करते हुए त्रेता युग में पहुँचा देती है। राम लीला में पृष्ठभूमि एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो न सिर्फ़ कहानी के लिए दृश्य संदर्भ प्रदान करती है; बल्कि अदाकार को एक अनुकूलित वातावरण प्रदान करते हुए सैट निर्माण करने में सहयोग डालती है। एक चित्रित पर्दे से ले कर सृजन किए हुए महल को सैट के अंतर्गत शामिल किया जाता है।

रामायण में वृतांत या दृश्य भिन्न-भिन्न स्थानों जैसे कि अयोध्या, पंचवटी वन, समुद्र और लंका आदि में तबदील होता है, जिस में प्रत्येक स्थान को एक अलग पर्दे पर दर्शाया जाता है, जिस के साथ दर्शकों को कहानी के बदलते दृश्यों को समझने में मदद मिलती है। यह पृष्ठभूमि प्रदर्शन के मूड, सेटिंग, कहानी के भौगोलिक और लौकिक संदर्भ को स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाती है, जिस में चित्रित रंग-बिरंगे पर्दो पर बनाए गए दृश्य एक ही स्थान को बहुआयामी दृश्यों में बदलते है। तुलसीदास जी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में 'बाल कांड' के दृश्य में हरे-भरे परिदृश्यो के साथ मंदिरों, महलों और घरेलू जीवन के दृश्य; 'अयोध्या कांड' अयोध्या की भव्यता, उदासी, शाही दरबार, महलों के द्वार, जंगल के दृश्य, 'अरण्य कांड' (जंगल अध्याय) में घने रहस्यमय जंगल, नदियाँ, आश्रम आदि; 'किष्किंधा कांड' में वानर समुदाय, चट्टानी इलाके, पहाड़, गुफाएँ और जंगल; 'सुंदर कांड' में सोने की लंका, राजसी महल और समुद्र एवं आकाश के दृश्य'; 'लंका कांड' में समुद्र और आकाश, पुल निर्माण, लक्ष्मण-मेघनाथ युद्ध, लक्ष्मण मुर्षित, संजीवनी बूटी, राम-रावण युद्ध आदि और अंत में 'उत्तर कांड' में विजय के पश्चात अयोध्या वापसी, राजाभिषेक की स्थिति को बयान करते है, जिसमें पृष्ठभूमि श्री राम के धर्ममय शासन का वर्णन करती है। प्रौद्योगिकी के आगमन और वैज्ञानिक प्रगति के साथ राम लीला के मंच में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए, जो पृष्ठभूमि के दृष्टिगत तत्वों के सौंदर्यशास्त्र को उजागर करते हुए कलात्मक अभ्यास, तकनीकी प्रगति और सामाजिक गतिशीलता में परिवर्तन को दर्शाते है।

'भारत में राम कथा की शुरुआत दो स्तरों पर हुई, एक मौखिक माध्यम के साथ और दूसरा रंगमंच के माध्यम से मंचित की जाती थी।'[2] रामायण के पहले मंचन की यदि बात करें तो वो अभी तक इतिहास के पन्नों में उभर कर सामने नहीं आया है। 'महाभारत के अनुसार यह मंचीय प्रदर्शन द्वापर युग में 'राजसूय यज्ञ' के दौरान धर्मराज युधिष्ठर, श्रीकृष्ण, बलराम द्वारा कई नाटकीय उपकरणों के साथ किया गया था।'[3] 'राम कृष्ण, लीला अनुकरण सिद्धांत के लेखक बाबा सरयू दास कहते है कि तुलसीदास के शिष्य 'मेघा भगत' अपने गुरु की मृत्यु के बाद बहुत परेशान थे। उन्हें 'नाटी इमली' में रामलीला करने का दैवीय निर्देश प्राप्त हुआ। यह भी कहा जाता है कि तुलसीदास ने ही काशी (वाराणसी) और अन्य स्थानों पर राम लीला की नींव रखी थी।'[4] आधुनिक समय में राम लीला का मंचन महात्रऋषि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' और तुलसीदास जी द्वारा अवधी भाषा में रचित ग्रंथ 'रामचरितमानस' को आधार बना कर ही किया जाता है। भारतीय कला रूप जैसे लघुचित्र, भित्ति चित्र और कई शास्त्रीय नृत्य जैसे कथकली, यक्षगान, कथक आदि ऐसी श्रेणियां है, जिनमें राम लीला विषय पर आधारित तत्व शामिल है। परंपरागत रूप से राम लीला के प्रदर्शन खुले स्थानों, अक्सर गाँव के थड़ों या मंदिर के प्रांगण में आयोजित किए जाते थे। उस समय पर्दो का रिवाज़ न होने के कारण पात्रों की वाणी से ही दर्शक के मन में पृष्ठभूमि का सृजन किया जाता था। 'कभी-कभी कोई समूह कैनवास से ढकी हुई लकड़ी और बांस की एक अस्थायी संरचना स्थापित करता था और पृष्ठभूमि को कपड़े से ढक दिया जाता था।'[5] इस अवधारणा ने ही धीरे-धीरे चित्रित पर्दो को रास्ता दिया। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही बंगाल और महाराष्ट्र में नए शहरी थियेटर की शुरुआत हुई, जिसमें इतालवी पुनर्जागरण के प्रभाव के साथ मंच पर महल, किले, जंगल, सड़के बनने की शुरुआत हुई। पारसी रंगमंच तक आते-आते रंगमंच में चित्रित पर्दो की शुरुआत हो चुकी थी, जिस का प्रभाव राम लीला पर सीधे तौर पर पड़ा।

पृष्ठभूमि में पर्दो की शुरूआत ने राम लीला को सिनेमैटिक रूप में दर्शक के सामने प्रस्तुत कर रामायण से सम्बन्धित स्थानों को यथार्थवादी और भौतिक रूप में प्रस्तुत किया।

प्रारंभिक चरण के प्रदर्शनों में ये पर्दे अक्सर स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री जैसे कपड़े, बांस और प्राकृतिक रंगों से बनाए जाते थे, जिनमें रामायण के साथ सम्बंधित जंगल, महल और अन्य महत्वपूर्ण स्थानों की छवियां के चित्रों को शामिल किया गया; जिसके निर्माण में कई स्थानीय कारीगरों का सहयोग शामिल था। इस में कई कारीगर तो भक्ति और भावना के साथ इन पर्दो का चित्रण करते; जो चित्रकार का रामायण के प्रति आध्यात्मिक सम्बंध को दिखाता है। 'कई स्थानीय कलाकारों की चार से पांच पीढ़ियाँ इस काम को समर्पित होती और एक दृश्य बनाने में कई दिन का समय लग जाता था।'[6] 'इन पर्दो को ज़्यादातर खद्दर के कपड़े के लम्बे टुकड़ों को सिलाई कर के तैयार किया जाता'[7], जिस में दर्ज़ी का धागा परंपरा के साथ सम्बंध स्थापित करता हुआ एकता, बंधन और शिल्प कौशल का प्रतीक होता है। एक बड़े पर्दे के तैयार होने के बाद इस पर प्राईमर का कोड लगाया जाता और सूख जाने के बाद इस पर दृश्य अनुसार भू-दृश्य, महल और जंगल के दृश्य बनाए जाते थे। इन चित्रों को ज़्यादातर भड़कीले रंगों के माध्यम से तैयार किया जाता था, जिस में किसी क्षेत्र की पारंपरिक प्रतीकात्मक और लोक कला शैली के गुण मिश्रित होते थे। यह पर्दे चित्रकारों के लिए आध्यात्मिकता का कैनवस बन जाता, जहाँ चित्रित किया प्रत्येक तत्व कलाकार की भक्ति और विश्वास के साथ रंगा दिखाई देता है। यह चित्र एक कहानीकार के रूप में दर्शकों की कल्पना का मार्गदर्शन करते हुए उनको महाकाव्य की दुनिया में प्रवेश होने की आज्ञा देते है। इन पर्दो को चित्रित कर एक के पश्चात् एक मंच पर लटका दिया जाता था, जिन्हें दृश्य शुरू और दृश्य बदलने के पश्चात् ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर रस्सी की सहायता से खींचा जाता था। दृश्य ख़त्म होने पर एक सामान्य पर्दा मंच के आगे लगाया जाता था, जिस के पीछे अगले दृश्य को सृजन करने का समय मिल सके। प्रारंभिक चरण में एक ही पर्दे में जंगल, पहाड़, झरना दिखाया जाता और समय के विकास के साथ अलग-अलग दृश्यों के लिए अलग-अलग पर्दे तैयार होने लगे। चूँकि अधिकांश पर्दे स्थानीय चित्रकारों द्वारा चित्रित किये जाते थे, जिस कारण परिप्रेक्ष्य (पर्सपेक्टिव) की झलक कम दिखाई देती थी। पहाड़ अक्सर गोलाई नुमा गाढ़े रंगों के साथ बनाऐ जाते, जो दूर बैठे दर्शक तक अपना प्रभाव डाल सके। इस प्रारंभिक पृष्ठभूमि की सादगी ने प्रदर्शनों को आयोजित करने वाले समुदायों के संसाधनों को दिखाने के साथ-साथ राम लीला को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ग़ैर यथार्थक होने के बावजूद भी यह पर्दे पात्र प्रवेश, प्रकाश और आध्यात्मिक भावना के कारण वास्तविक प्रतीत होते थे। यह तैयार किये पर्दे कई-कई वर्षो तक काम आते और हर साल ज़रूरत अनुसार इस में कुछ तबदीली की जाती, जिस को *रिस्टोरेशन* कहा जाता है।

राम लीला शुरू होने से पहले ये दृश्य दर्शकों के सामने अपना प्रभाव डालते है, जिन्हें देखकर दर्शकों द्वारा मारी गई तालियां मंच पर कलाकारो का हौसला बनती है। एक ही पर्दे पर चित्रित जंगल कभी राम सीता मिलाप की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता और कभी बनवास के समय पंचवटी का रूप धारण कर लेता। इसी प्रकार महल या दरबार के विषय पर चित्रित पर्दे का उपयोग राजा दशरथ, राजा जनक और अन्य महलों के दृश्यों में किया जाता था। रावण का दरबार अन्य दरबारों की अपेक्षा अलग होता, पृष्ठभूमि में ऊँचा सिंहासन और बाकी दरबारी पात्रों के बैठने की व्यवस्था इस को शाही स्वरूप प्रदान करती थी। यह कलाकार की कलात्मक शैली की जादूगरी थी, जो दर्शक के मन में एक ही पर्दे का अलग-अलग दृश्यों में स्थान परिवर्तन करती है। इस से अतिरिक्त 'रामलीला में मुखौटे प्रमुख भूमिका निभाते है, जिनका उपयोग रावण, ब्रह्मा, गरुड़, सुबाहु, मारीच, हनुमान आदि पात्रों द्वारा किया जाता है, जो धातु, कागज की लुगदी और कपड़े से बने होते थे, 'रामनगर की राम लीला में हनुमान जी के मुखौटे का वज़न 14 पौंड (6.35 किलोग्राम) होता है।'[8]

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ स्थानों की राम लीला के चित्रित पर्दो पर सूक्ष्म डिजाइनों के कारण पहाड़ी और मुगल लघु चित्रकला का प्रभाव देखा जा सकता है, जो पहले किसी भी लोक नाटक में नज़र नहीं आया। समय-समय पर राजस्थान की लघु चित्रकला शैलियों से लेकर बंगाल, केरल और स्थानीय राज्यो की लोक कला ने इस

पर अपना प्रभाव पाया। अधिकांश मंच सज्जा के चित्रों में भू-दृश्य के दृश्य शामिल थे, जिस में धीरे-धीरे वास्तुकला के तत्वों के क्रमिक एकीकरण के साथ परिप्रेक्ष्य, रंगत और यथार्थवादी चित्रण ने इन चित्रो में विशेष प्रकार का सौंदर्यबोध पैदा किया। इनमें से अधिकांश परिवर्तन शहरों की राम लीला में देखने को मिलता है, क्योंकि शहरी क्षेत्रों में जहाँ अधिक संख्या में संसाधन और कलात्मक प्रतिभा उपलब्ध थी; जिसमें भारतीय कला में औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त कलाकारों ने इन चित्रों में नए आयाम सृजन किए। शास्त्रीय भारतीय कला रूप जैसे लघु चित्रकला और मंदिर भित्ति चित्रों का प्रभाव भी धीरे-धीरे रामलीला की पृष्ठभूमि में चित्रित पर्दो पर देखा जाने लगा, जिसने लोक रंगमंच के दृश्य डिजाइन के लिए अधिक सुलभ दृष्टिकोण की शुरुआत की। जैसे-जैसे राम लीला ने लोकप्रियता हासिल कर के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित किया, वैसे-वैसे दृश्य में सौंदर्यात्मक अपील पैदा करने के लिए इन पर्दो में त्रि-आयामी मंच शिल्प कला को शामिल किया गया।

शास्त्रीय कला के प्रभाव के साथ-साथ बीसवीं सदी में कला आंदोलनों के आगमन, रंग मंच में बढ़ती सेट डिज़ाइन तकनीकों और नए-नए प्रयोगो ने राम लीला के मंच को प्रभावित किया और 'विज्ञान के विकास ने राम कथा की पेशकारी के तकनीकी पहलूओं में सकारात्मक दिशा प्रदान की|'[9] परिणामस्वरूप नई सामग्रियों और तकनीकों की शुरूआत से मुद्रित पर्दे और गतिशील दृश्य अनुभवों के लिए प्रकाश का व्यापक उपयोग हुआ। आधुनिक प्रिंटिंग प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ पर्दे कम दरों पर उत्पादित होते है, जो अधिक प्रयोग और रचनात्मकता की अनुमति देते है। समकालीन समय में गांव और शहरों में अभी भी राम लीला का प्रदर्शन चित्रित पर्दो के अधीन ही किया जाता है, परन्तु कई बड़े शहरें में डिजिटल प्रोजेक्टर, एल. ई. डी. बैकड्रॉप स्क्रीनें और फाइबर सेट के माध्यम से राम लीला के प्रदर्शन ने प्राचीन कला रूप में आधुनिक सौंदर्य प्रस्तुत करके परंपरा और आधुनिकता का मिश्रण स्थापित किया है। यह समकालीन रंग दर्शकों को आकर्षित करते हुए प्रदर्शन की सांस्कृतिक जड़ों का सम्मान करते है। ये गतिशील डिजिटल दृश्य पृष्ठभूमि को अधिक यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करके समय की मर्यादा को कायम रखते है। यह स्क्रीनें अयोध्या के अलौकिक महलों से लेकर लंका तक के तत्वों की उच्च रेजोल्यूशन वाली छवियों को गतिशील रूप से प्रदर्शित करके राम लीला के भावनात्मिक प्रभाव को बढ़ाती है। इन दृश्यों के प्रदर्शन के दौरान पड़ने वाली रोशनी न केवल सौंदर्यपूर्ण है, बल्कि प्रतीकात्मक भी है, जो प्रदर्शन के भावनात्मक और आध्यात्मिक प्रभाव को दर्शक तक पहुंचाने में योगदान डालती है। इन तकनीकों ने न केवल डिजाइन तत्व को प्रभावित किया बल्कि भारतीय और अंतरराष्ट्रीय दर्शक, विशेष रूप से युवा पीढ़ी तक राम लीला के नैतिक गुणों को पहुंचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राम लीला में दर्शकों की बढ़ती संख्या ने जहाँ राम लीला के मंच डिजाइन को प्रभावित किया, वहाँ सांस्कृतिक विरासत की प्रामाणिकता के संरक्षण के बारे में भी बहस छेड़ दी है। शोधकर्ता द्वारा विभिन्न निर्देशकों और विशेषज्ञों के साथ साक्षात्कार के विश्लेषण से पता चलता है कि ज्यादातर निर्देशक राम लीला के धार्मिक महत्व के कारण पारंपरिक प्रदर्शन पर ही जोर देते है। दूसरी ओर आधुनिकीकरण के समर्थकों का मानना है, कि आधुनिकीकरण का समावेश समकालीन समय में परंपरा को जीवित रखता हुआ युवाओं के मन में धार्मिक भावना का विकास करता है। पृष्ठभूमि में बदलाव का प्रमुख कारण दर्शकों की धारणा यह भी है, क्योंकि पुरानी पीढ़ी राम लीला को पारंपरिक रूप में देखकर बड़ी हुई है, परन्तु आधुनिक दर्शक सिनेमा, टैलिविज़न और सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण प्रौद्योगिकी को ज़्यादा पसंद करते है; जिस कारण इस में आधुनिकता का समावेश हुआ। आधुनिक समय में भारत की स्थानीय एवं सांस्कृतिक विविधता के कारण राम लीला की पृष्ठभूमि को लेकर प्रत्येक क्षेत्र की अपनी अनूठी शैली है। वाराणसी भारत के प्राचीन शहरों में से एक है, जहां पारंपरिक ढंग से राम लीला का मंचन किया जाता है। स्थानीय कारीगरों द्वारा हाथ से चित्रित पर्दो की पिछवयी परंपरा की निरंतरता आज भी राम लीला के प्रदर्शन में देखी जाती है, जो परंपरा की निरंतरता को बरकरार रखती है। रामनगर की राम लीला अपने पारंपरिक प्रदर्शन के लिए पूरे भारत में प्रसिद्ध है, वहीं दिल्ली और मुंबई में राम लीला का प्रदर्शन अत्याधुनिक तकनीकों के साथ किया जाता है; जिस में डिजिटल गतिशील पृष्ठभूमि राम लीला को आध्यात्मिक के स्तर तक पहुँचाती है। बॉलीवुड और समकालीन कला का प्रभाव दिल्ली की राम लीला में साफ देखा जाता है, जिस के सैट पेशेवर कारीगरों द्वारा डिजाइन किए जाते है, जो रामायण की धार्मिक भावना को बरकरार रखते हुए आधुनिक संवेदनाओं को पूरा करते है। दिल्ली के राम लीला मैदान, लाल किला मैदान (लव कुश राम लीला) में राम लीला के मंचन के लिए शाही मंच बनाए

जाते है, जिस की पृष्ठभूमि में कई डिजिटल तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। राजस्थान में राम लीला के प्रदर्शन में लोक कला का समावेश स्थानीय सांस्कृतिक को उजागर करता है, जिसमें पृष्ठभूमि में फड़ और पिछवयी जैसी पारंपरिक राजस्थानी चित्रात्मक शैलियों का संयोजन किया जाता है।

राम लीला का प्रदर्शन न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर भी फैला, जिस में इंडोनेशिया के बाली और जावा में राम लीला पारंपरिक स्थानीय रंगमंच जैसे वायआंग कुलित (छाया कठपुतली) नृत्य-नाटक से प्रभावित है। पृष्ठभूमि में अक्सर वेशभूषा और मुखौटों सहित जटिल बाली या जावानीज़ कला शैलियाँ शामिल होती है, जिस में पोशाकें और मास्क होते है। नेपाल में राम लीला प्रदर्शन की पृष्ठभूमि उत्तरी भारत के समान ही होती है और मंचन शैली में नेपाली सौंदर्य अक्सर देखा जाता है। इसके साथ ही त्रिनिदाद, टोबैगो, मॉरीशस, फिजी आदि देशों में भी राम लीला का प्रदर्शन धूम-धाम से किया जाता है।

सर्वेक्षण एवं अध्ययन के दौरान प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ है कि लोक नाटक राम लीला की पृष्ठभूमि में परिवर्तन भारतीय समाज के सांस्कृतिक एवं तकनीकी संदर्भ को दर्शाता है। चित्रित पर्दो से शुरू हुए इस सफ़र ने नई-नई मंच डिजाइन तकनीकों को शामिल करके लोक नाटक 'राम लीला' को एक विलक्षण रूप दिया। एक जीवंत प्रस्तुति ने परंपरा को बनाए रखते हुए, नई तकनीकों के साथ कलात्मक अभिव्यक्ति को शामिल करते हुए खुद को समय के अनुसार ढाल लिया है, जिसने सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और समकालीन प्रभावों को अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक समय में डिजिटल प्रोजेकशण विधी ने राम लीला की पृष्ठभूमि को एक गतिशील और इम्रसिव अनुभव बनाने की इजाजत दी है, जिस ने न केवल सौंदर्य अपील को बढ़ाया बल्कि प्रदर्शन को भारतीय, अंतरराष्ट्रीय और ऑन-लाइन दर्शकों के लिए और अधिक सुलभ बना दिया है। पृष्ठभूमि के इस बदलाव के बावजूद भी आधुनिक युग में राम लीला लोक परंपराओं के साथ जुड़ा हुआ एक लोक नाटक है, जो महाकाव्य के नैतिक और आध्यात्मिक विषयो का संचार करना जारी रखता है। अंत में, राम लीला के मंच सजा में बदलाव लोक नाटकों की गतिशील प्रक्रियाओं का प्रमाण है, जो अपनी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अखंडता को कायम रखते हुए बदलते समय के अनुकूल है।

**संदर्भ पुस्तक सूची**

1. मेहता, भानुशंक, संपादक, *श्री राम नगर रामलीला*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2015, पृष्ठ-21.
2. Jain, Rajendra, *Ramayana Theatre in India*, B.R. Publishing Corporation, Delhi, 1996, p.ix.
3. Ibid., p.ix.
4. Sinha, Biswajit, *Encyclopaedia of Indian Theatre-6 Folk Theatre*, Raj Publication Delhi, 2004, p.386.
5. Lal, Ananda, Ed., *Theater of India a Concise Companion*, Oxford University Press, New Delhi, 2009, p.382.
6. खोपा, रजिन्दर कुमार, (कलाकार, राम लीला), व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री राम लीला कमेटी, रजि., राघो माजरा, पटियाला, 05 अक्तूबर 2022.
7. टंडन, श्री राम कुमार, व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री राम लीला कमेटी, रजि., राघो माजरा, पटियाला, 05 अक्तूबर 2022.
8. Sinha, Biswajit, *Encyclopaedia of Indian theatre-6 Folk Theatre*, Raj Publication Delhi, 2004, p.387.
9. Jain, Rajendra Jain, *Ramayana Theatre in India*, B.R. Publishing Corporation, Delhi, 1996, p.x.

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

37

# साहित्य एवं कलाभिव्यक्ति में दार्शनिक अवधारणा

काजल महावर
शोध छात्रा
दृश्य कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश
Kajalmahawar18@gmail.com

**शोध सार** – कलाओं की अपनी एक दृश्य भाषा है, जिसमें सब कुछ कह देने की अर्थपूर्ण शक्ति है। **"कलाएं शब्दों की मोहताज नहीं"** *हेरोल्ड रोजेनबर्ग* का यह वाक्य अपने आप में स्पष्ट और परिभाषित अर्थ बतलाता है। क्या वाकई में कलाओ को शब्दों की जरूरत नहीं है? यह सवाल जब भी मेरे जहन में आता है तो मैं सोचती हूं कि शब्दों के बिना कुछ नहीं। कलाएं मूक है फिर भी शब्दों की आवश्यकता होती हैं। बिना शब्दों के कलाएं केवल संवेदनशील तस्वीर मात्र हैं। बहुत सी कलाएं बिना शब्दों के आगे नहीं बढ़ सकती और साहित्य उसमें से एक भाषा हैं। बिना शब्दों के तो किसी भी साहित्य, संगीत, लोकगीतों और कविताओं का सृजन संभव ही नहीं है। साहित्य इतिहास नहीं, अपितु शब्दों की अभिव्यक्ति है, जिसमें कहानियां, नाटक, उपन्यास सभी समय की पकड़ से स्वतंत्र होकर अपना–अपना वर्चस्व स्थापित करते है तथा समाज में क्रांति और नए परिवेश के साथ बदलाव लाते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर, महादेवी वर्मा, जगदीश गुप्त, एवं जे स्वामीनाथन ऐसे कला के द्विआयामी सर्जक हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से लेखन और कला जैसी दोनों विधाओं के मिलनसार से रंग व शब्दों की निराली दुनियां को विस्तार दिया है। यह ऐसे साहित्यकार और कलाकार है, जिन्होंने दोनों भूमिकाओं को संतुलित करने में अद्वितीय भूमिका निभाई जहां एक ओर कलम से शब्द साहित्य की रचना की वहीं रंग–स्याही से रूप आकार की व्यंजना को अविरल गति से बहने दिया। इनका जितना अधिकार शब्दों पर था, उतना ही रंग–रेखाओं और आकारों पर भी था। इसलिए कहा जा सकता हैं माध्यम रंग है, भाषा अनुवाद है। और कलाएं तो हमेशा संवेदनाओं से जोड़ती है, फिर चाहे वह कोई भी माध्यम क्यों ना हो।

**परिचय** – वर्तमान परिदृश्य में सर्जक जो अनुभव करता है, उस अनुभूति को वह साझा करना चाहता है। जिनमें कही न कहीं शब्द सहायक हैं। भाषा जितनी सहज, सरल होती है, उसका अर्थ भी सारगर्भित होता है। जो भाषा जितनी क्लिष्ट है वह उतनी ही समझने में कठिन है। शब्दों से भाषा बनती है, पर शब्द भाषा नहीं है, भाषा से ही साहित्य बनता है, पर भाषा साहित्य नहीं है। भाषा साहित्य का कलेवर है। जैसे आत्मा या प्राण की स्थिति को लेकर शरीर को होना भी आवश्यक है, वैसे ही साहित्य के लिए भाषा और उसकी इकाई, शब्दों के अस्तित्व का होना अनिवार्य है।1 अतः शब्दों के माध्यम से व्यक्त की गई भावनाए साहित्य हो सकता है किन्तु मूक अभिनय में भाषा का प्रश्न नहीं उठता। क्योंकि इनका प्रदर्शन भाव बोध, मुद्राओं और चेष्टाओं से होता है। पर चाक्षुष और श्रव्य नाटक जिसका प्रधान वाहन उच्चरित शब्द है, उसकी सफलता तो उसी मात्रा में है जिस भाषा में वह दर्शकों द्वारा समझी जा सकती है।1 अर्थात भाषा एक प्रकार का सम्प्रेषण है जो मनुष्य को मनुष्य के करीब करता है। भाषा ही है, जो मनुष्य को कलाओ के नजदीक करती है। और कला की ऐसी ही शब्दावलियाँ है जिनका दार्शनिक दृष्टीकोण से अध्ययन आवश्यक हैं। विश्व की महान क्रांतियों चाहे वो राजनीतिक, नैतिक, आर्थिक अथवा मानवीय हो, कला और साहित्य ने अहम भूमिका निभाई है, इस कारण इनका अध्ययन कला में आवश्यक है।

**कला का दार्शनिक संदर्भ** – **"अर्थ एक गुण नहीं है बल्कि एक शब्दावली का कार्य है।** *सुजैन लैंगर* के इस कथन का अर्थ है कि 'अर्थ' कोई ऐसी चीज नहीं है जो किसी चीज में स्वाभाविक रूप से मौजूद हो, बल्कि यह शब्दों और प्रतीकों के उपयोग से उत्पन्न होता है। अर्थात् अर्थ हमारे अनुभव की हमारी समझ और व्याख्या करने के तरीके का एक पहलू है, न कि वस्तुओं या अवधारणाओं का एक अंतर्निहित गुण। और संवेदना जीवित भाषा हैं जो साहित्य, चित्रावली और नाट्य सभी कलाओं में मौजूद है। एक चित्रकार के लिए कला सामग्री उतनी ही जरूरी है, जितनी लेखन के लिए कलम। इस सामग्री के उत्कृष्ट होने के

P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

कारण उसकी अभिव्यक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता। कलाएं महान् विचार, भावनात्मक प्रेरणा और दार्शनिक दृष्टि देती है।

कला—साहित्य को जानने के लिए उनके सौंदर्य तत्वों (कल्पना, बिंब, प्रतीक, विषय विधान इत्यादि) को जानना आवश्यक हैं। यह ऐसे तत्व है जिनकी मात्रा ज्यादा कम हो सकती है, फिर भी चित्र, काव्य, संगीत, मूर्ति सभी ललित कलाओं में समाविष्ट है।2 **पाश्चात्य दार्शनिक क्रोचे भी स्वीकारते है कि विचार से पूर्व कल्पना होती है और कलाओं का उद्भव कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है।3** कल्पना एक ऐसी मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष वस्तुओं के बिंबों को प्रत्यक्ष करते है। और इन बिंबों का संयोजन 'स्मृति' द्वारा होता है, इंद्रिय संवेदनाओं और अनुभूतियों को फिर से जगाना स्मृतियों का काम है, और इन स्मृतियों के सहारे मानसिक चित्र (इमेज) को पाते है, जो कल्पना का सरलतम धरातल है। साहित्य—कला में बिंब तो वह सजीव शब्द चित्र है, जो कवि—चित्रकार के मन की भावनाओं और विचारों को पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। न केवल शब्दों से बल्कि रेखा, रंग और ध्वनि से भी भावनाएं संपादित हो सकती है, इस प्रकार भावनाओं की अभिव्यक्ति को क्रोचे **एक्सप्रेशन** कहते है। जो किसी भी माध्यम में व्यक्त की जा सकती हैं।

**साहित्य और कला का अंतःसंबंध** — साहित्य और कला का संबंध हमेशा से रहा है, दोनों ही मानव अनुभव को व्यक्त करने और संप्रेषित करने के माध्यम है। साहित्य, शब्दों के माध्यम से विचारों, भावनाओ और कहानियों को व्यक्त करता है, जबकि कला दृश्य रूप, आकार, या अन्य संवेदी माध्यमों से ऐसा करती है। साहित्य और कला एक दूसरे को प्रभवित एवं प्रेरित करते है, अतः साहित्य में भी कला को देखा जा सकता है। जैसे एक उपन्यास या कविता किसी चित्रकार या मूर्तिकार को एक दृश्य बनाने के लिए प्रेरित करती है। इसी तरह, कला साहित्य को प्रभवित कर सकती है। उदाहरण के लिए एक चित्र का टुकड़ा भी लेखक को एक कहानी लिखने के लिए प्रेरित कर सकता है।

**रूपभेदः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम।**
**सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्रं षडंगकम।**

यह भारतीय षड़ंग दृश्य कला का शाश्वत आधार है और इनमें तीन अंग-भाव, लावण्य योजना एवं सादृश्य काव्य कला (साहित्य) में भी विद्यमान हैं।2 साहित्य ऐसी विधा है जिससे नाटक रंगमंच, अभिनय तक जन्म लेता है। कालिदास की रचनाए सबसे सटीक उदाहरण है, जिसे नाट्य से लेकर बिंब रूप में अनेक कलाकारों ने प्रस्तुत किया। साहित्यकार जब अपनी कल्पना को शब्द माध्यम से रचना करता है, वहीं एक चित्रकार भी उस शब्द कल्पना को पड़—सुनकर अपनी कलात्मक प्रतिभा को परिचय देते हुए उसे बिंब रूप में प्रस्तुत करता है। वहीं संगीतकार भी प्रकृति, एवं कल्पना में परस्पर समन्वय स्थापित कर लेता है तो स्वर, शब्द रूप में एक अदृश्य ध्वनि को जन्म देता है, जो आत्मा को भी एक समय के लिए झंझोर देती है। संगीत ध्वनि हर प्रकार के भावों और रस को प्रस्तुत करने में अपनी भूमिका को साकार कर लेता है। और राजस्थानी शैली में तो संगीत को भी प्रवर्तित रूप रागमाला में चित्रांकित कर रचनाकार ने अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। प्राचीन युग में कालिदास, भरत मुनि और भारतीय साहित्य चाहे चित्रसूत्र, विष्णुधर्मोत्तरपुराण सभी में कही ना कही साहित्य और कला की झलक एक साथ दिखाई देती है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र तो कलाओं की शब्दावलियों और अर्थ को समेटता है। पुनर्जागरण में बदलाव का ऐसा दौर आया कि नए युग का सूत्रपात होता दिखाई दिया। पश्चिमी देशों में तभी तो क्रांति ने साकार रूप लिया, लेखन को बढ़ावा दिया गया। शेक्सपियर, दांते ऐसे महान साहित्यकार पश्चिमी धरती की ही देन है। यूनान में

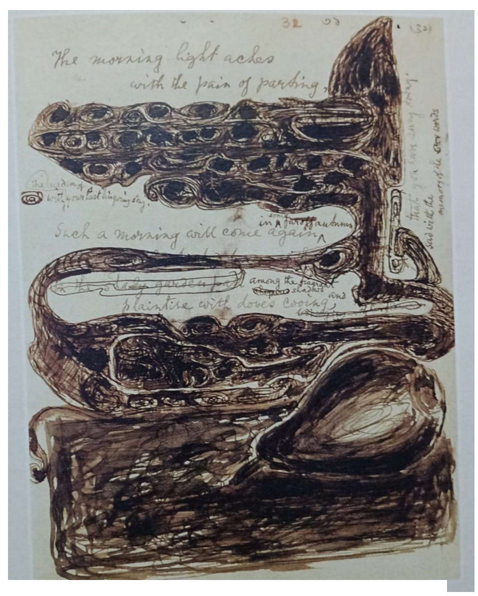


चित्र स. 1 कागज पर स्याही

बाइबल एवं कथावाचक कहानियों से लेकर 18 वी शती में दाविद, जेरिको का रोमांसवाद साहित्य का ही चित्रण रूप है। जिन्हे कलारूपों में व्यक्त कर पाश्चात्य कलाकारों ने अपने काल्पनिक प्रतिभा को प्रस्तुत किया। भारत में भी अजंता, बाघ, सिंगिरिया, सितनवासल सभी कथावाचक उदाहरण है, जिनको कला में रेखाओं–रंगों में भी चित्रांकित किया गया है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म में पांडुलिपि ग्रंथों (प्रज्ञापारमिता, साधना माला इत्यादि) एवं मुगल काल में महाभारत, पंचतंत्र का अनुवादित रूप रज्मनामा, अनवर ए सुहेली आदि सभी साहित्यिक रूपों में कही न कही लेखन और कला की झलक साथ दिखाई देती हैं। रागमाला, बारामासा, ढोला मारू, जितनी भी कथावाचक साहित्य रूप में पृष्ठभूमियाँ है, उनको राजस्थानी शैली से पहाड़ी आदि चित्रशैलियों में जीवंत रूप दिया है। अर्थात साहित्य ने तो कला प्रस्तुति में अहम भूमिका निभाई है फिर लिखित कहानियां और घटना को चित्रित करना ही क्यों ना शामिल हों। और भारतीय साहित्य तो उस नदी की भांति है जो कला रूपी सागर में मिलने के लिए अपना रास्ता ढूंढ़ ही लेती है।

**कलाकार–लेखक की सर्जनात्मक अवधारणाएं-**कलाकार का प्रयोजन सृजन है, और इसके लिए उसके पास अर्जित कौशल, उपकरण है। रवींद्रनाथ टैगोर, जगदीश गुप्त, जे. स्वामीनाथन जैसे साहित्यकार और कलाकार दोनों भूमिकाओं को संतुलित करने में अद्वितीय थे, उनके लिए साहित्य और कला एक दूसरे के पूरक थीं।

जिनमें **रवींद्रनाथ टैगोर** को आधुनिक भारत का पहला सर्जक माना जा सकता है। रवींद्र नाथ टैगोर का जन्म चौदहवें बच्चे के रूप में जिस परिवार में हुआ था, वह कलात्मक गतिविधियों से भरा घर था। सबसे बड़ा भाई कवि, दार्शनिक, गणितज्ञ थे। वहीं दूसरे भाई सत्येन्द्रनाथ थे, जिन्होंने गीता का बंगाली में अनुवाद किया और भारतीय सिविल सेवा के पहले भारतीय सदस्य बने। पांचवा भाई ज्योतिरिन्द्र नाथ जन्मजात संगीतकार थे, उन्होंने मोलियर और संस्कृत नाटकों को बंगाली में अनुवाद किया और अपने समय के कुछ सबसे लोकप्रिय बंगाली नाटकों को लिखा और मंचित किया। बहिनों में स्वर्ण कुमारी जो कि पहली महिला उपन्यासकार और भारत में एक पत्रिका का संपादन करने वाली पहली महिला थी।9

यह कहा जा सकता है कि कला का पारिवारिक माहौल रविंद्रनाथ को हमेशा मिला और उन्होंने कल्पना रूपी शब्दों को रंग स्याही में रूपांतर किया। फिर सत्तर वर्ष कि आयु के इस पड़ाव पर कल्पना को शब्दों से रंगों की ओर ले गए। **रवींद्रनाथ चित्रकला को खेल के बहाने वक्त गुजारने की संगिनी मानते थे।4** साहित्य के क्षेत्र में देखें तो रवींद्र नाथ तेरह वर्ष के थे तभी उन्होंने कविता की पहली पुस्तक लिख डाली और सोलह वर्ष के थे कि साहित्यिक पत्रिका में निबंध लिखा था। लंबे समय तक कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, गीत, नृत्य आदि विधाओं में पूरी ऊर्जा और तन्मयता के साथ सक्रिय होने बावजूद चित्रकला को जिस गंभीरता के साथ लिया यह एक अदभुत कार्यकुशलता भी है और उलझनों से भरा प्रश्न भी। 4

वे अपने पत्र में कहते **"अब मैं चित्रकला से इस कदर जुड़ गया हूं कि प्राय यह भूल जाता हूं कि मैं कभी कविता भी लिखा करता था।"4** निसंदेह यह एक बेहद महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति हैं क्योंकि यह उस व्यक्ति का बयान है जिन्होंने न केवल असंख्य कविताएं रची, जिन्हें कविता के लिए ही नोबेल पुरस्कार मिला था, बल्कि जिन्हें विश्व कवि के रूप में ही लोग जानते हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें चित्रकला में मुक्ति का एक ऐसा आनंद मिला था जिसे वे शायद उम्र भर साहित्य और अन्य कला विधाओं में तलाशते रहे थे।

चित्रकला क्या हैं इस प्रश्न के बारे में उन्होंने गहरा मंथन किया और कला रूपों से चित्रकला भिन्न क्यों है, इस पर भी गंभीरता से सोचा। उनका मानना था कि **" अन्य कलाओं की तुलना में, हमारा साहित्य का ज्ञान बेहतर है इसलिए, क्योंकि साहित्य का वाहक भाषा होती है और भाषा अंततः "अर्थ पर आश्रित होती है। लेकिन रेखाओं और रंगों की कोई जुबान नहीं होती। अपने चित्रों के बारे में बताते है कि मेरे चित्र, रेखाओं के माध्यम से की गयी मेरी पद्य रचना है। और अपने चित्रों के संदर्भ में हमेशा कहा करते थे " जैसे मैं खामोश रहता हूं, ठीक वेसे मेरे चित्र खामोश हैं। उनके चित्रों का काम अपने आप को अभिव्यक्त करना है, न की व्याख्या करना।4**

चित्र स. 2 कागज पर पेन और स्याही

उनके द्वारा बनाए गए नारी आकृतियों, पक्षी आकृतियों, प्रकृति चित्रण सभी करुणा की खामोश अनुभूतियां ही तो हैं। उनके चित्र इसलिए भी भिन्न और आकर्षक है कि उनकी चित्रों में बनाई गई सफेद रेखाएं नहीं बल्कि सफेद रिक्त स्थान है, जो दो गहरे रंगों के बीच स्वाभाविक बन पड़ी रेखा सी लगती है।

उनके साहित्य में भी देखें तो पाएंगे कि जितने सोच विचार कर उन्होंने शब्दों का चयन किया है, उसके विपरीत स्वाभाविक ही निसर्ग की खामोश कल्पना को साकार किया है। रवींद्र नाथ टेगोर की एक कविता जिसका भावार्थ इस प्रकार है।**5**

**इस नन्हें से पुष्प को तोड़ लें**
**और इसे (अपने हाथों में) ले ले, विलंबन न कर!**
**मुझे डर है कहीं यह मुरझा कर धूल में न गिर जाए.**

**तेरी माला में चाहे इसे स्थान न मिले,**

**किन्तु अपने कर कमल के स्पर्श से इसका मान तो कर और तोड़ ले,**
**मुझे डर है कि कहीं मेरे जाने बिना ही भेंट का समय ना निकल जाए**

**यद्यपि इसका रंग गहरा ना हो, और इसकी गंध हल्की ही हो,**

**तिस पर भी इस पुष्प को, अपनी सेवा में लगा लें**

***जीवन पुष्प*** नामक शीर्षक रवींद्र नाथ टैगोर की कविता जो कि बंगला भाषा का हिंदी रूपांतरण है, इस कविता में कवि टैगोर ने अपने जीवन को एक छोटा तुच्छ फूल माना है। वह परमेश्वर से प्रार्थना करते है कि इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करें।**5** इस कविता के मर्म में जितना गहराई है, पाठक को बार बार चिंतन मनन करने के लिए प्रेरित करती है, जो इस मर्म को समझ लेता है उसके लिए उनकी मूक कृतियों को समझना थोड़ा आसान हो सकता है ।

इसी प्रकार दूसरे द्विआयामी सर्जक ***जगदीश गुप्त*** कुशल शिक्षक, कवि, आलोचक थे जो, इतिहास, साहित्य, कविता के क्षेत्र में जाने माने हस्ताक्षर के बावजूद चित्रकला से जुड़े रहे। ब्रज भाषा के कवि, और नयी कविता के संपादक भी रहे। यह ऐसे द्विआयामी सर्जक है जिन्होंने कला के बारे में लिखा भी और चित्र कर्म भी साथ किया। उनकी कविता में बहुत सारे चित्र है और उनके चित्रों में बहुत सारी कविताएँ। वे कहते थे, **चित्रकला सारी कलाओं की आंख है,** और इसे सिद्ध भी करते थे।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपनी पुस्तक ***इलाहाबाद के चित्रकार*** में जगदीश गुप्त की कला यात्रा को छह चरणों में विभाजित किया है। पहले चरण में प्रकृति में मानव आकृतियों का आरोपण किया है, यही प्रवृति उनकी कविताओं में भी मिलती है, जैसे नाव के पांव। दूसरे चरण में दीप श्रृंखला चित्रों में मानवीय सौंदर्य के साथ–साथ करुणा, अवसाद को दर्शाया गया है जो कि वॉश शैली तकनीक में और भी सौम्य दिखाई देते हैं।

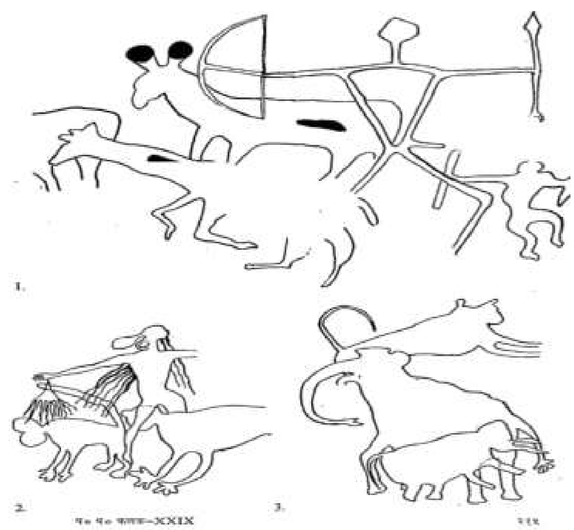

चित्र स. 3 जगदीश गुप्त का रेखांकन

तीसरे चरण स्वप्न कर्म है, और चतुर्थ चरण में टेराकोटा प्रधान तैल चित्रों की श्रृंखला है जिसका प्रदर्शन कम ही हुआ है। पाँचवें कर्म में शैल चित्र आते है, जो कि चारकोल और रेखा प्रधान है, *प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला* नामक प्रसिद्ध पुस्तक उनकी प्रतिभा का ऐसा ही उदाहरण है, जिसमें लेखन कर्म करने के साथ–साथ इसी पुस्तक में अनेक रेखाचित्रों को बनाया है। छठवें चरण में सैकड़ों रेखाचित्रों में मानव मूड, गीत, और लय के साथ आस्था, विश्वास, थकान आदि रेखाओ के माध्यम से व्यक्त करने का उन्होंने प्रयास किया गया है। **जगदीश गुप्त मानते भी हैं कि रेखाएं सर्वोपरि हैं। समस्त पौर्वात्य कला रेखा प्रधान रही है, इसीलिए मेरा रचना क्रम उतरोतर रेखा प्रधान होता गया।6** यही छाप उनके रेखाचित्रों में जा सकती हैं। **जगदीश गुप्त मानते है की सर्जक के पास दो दृष्टियाँ होती है एक वह जिससे वह अपनी रचना को मूर्त रूप देता है दूसरी वो जिससे वह अपनी कृति को परखता है, उसका विश्लेषण करता है।7**

**निष्कर्ष –** दृश्य भाषा को समझने के लिए शब्द सहायक होते हैं, और प्रेषक शब्दों के सहारे अपन संवेदनाओं को अच्छा व्यक्त कर सकते है। भाषा संप्रेषण हैं, नाटकों में, लोक गीतों में संवाद है, नाटकों और लोकगीतों से अगर संवाद हटा दिया जाए तो नाटक का, लोकगीतों का अर्थ कम हो जाएगा। अगर गौर करे तो पाएंगे कि साहित्य लिखने वाला अलग व्यक्ति होता था और उसे रूप आकार देने वाला दूसरा व्यक्ति होता था अर्थात कलाएं भिन्न थी और प्रस्तुतीकरण करने वाला भी भिन्न भिन्न। किन्तु आज एक ही सर्जक दोनों विधाओं में कार्य कर रहा है उसका दायरा बढ़ गया है। उनके भाव जितने स्वतंत्र हैं उतने ही उनकी रेखाएं स्वतंत्र हैं और भारत में रवींद्र नाथ टैगोर पहले व्यक्ति है जिन्होंने दोनों भूमिकाओं में समान योगदान दिया है। उसी प्रकार आज कलाकार द्विआयामी से त्रिआयामी और त्रिआयामी से चतुर्थ आयामी होता जा रहा है। वह अपने दायरे का विस्तार कर रहा है वहीं समाज में नई चिंतनशील दृष्टि–दिशा दोनों दे रहा है। साहित्य का ऐसा रूप जहां उपन्यास, कहानियां है वहां शब्दों की अन्नत और असीम शब्द सीमा होती है वहीं साहित्य का ऐसा रूप जहां संगीत, गीत और कविता में उतने ही कम और संक्षिप्त शब्दों से ताल मेल बैठाया जाता है। शब्द भी

बड़े निराले है कभी लघु आकर रूप में कविता रच देते है वहीं वृहद रूप में उपन्यास को लिख एवं नाट्य रूप में उसे जीवन्त कर देते है। इसलिए कहा जा सकता है मनुष्य केवल कलाकार ही नहीं होता, वह दार्शनिक भी होता हैं। मनुष्य की बुद्धि में यह सामर्थ्य होता है कि केवल वस्तुओं का चित्रांकन ही नहीं करती, सूक्ष्म दृष्टि से कला और साहित्य की शब्दावलियों के अर्थ का गहन चिंतन भी करती है।8

चित्र स. 4 जगदीश गुप्त का रेखांकन

## सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. उपाध्याय.भगवतशरण.,1960 *साहित्य और कला.*,आत्माराम एण्ड संस दिल्ली., –पृष्ठ 56,72,
2. डॉ0 कुमार विमल.,2023 *सौन्दर्य शास्त्र के तत्व.*, राजकमल प्रकाशन.,सातवाँ संस्करण ISBN978–81–19159–71–0 पृष्ठ 57,67,129,137
3. डॉ0 शर्मा.हरद्वारी लाल.,1992.,*कला मनोविज्ञान.*,मानसी प्रकाशन.,मेरठ- ISBN–81–85494–12–6
4. भौमिक.अशोक.,2019.,*रवींद्रनाथ ठाकुर के चित्र.*,रवींद्र नाथ टेगोर विश्वविद्यालय भोपाल. मध्यप्रदेश., प्रथम संस्करण. ISBN 978–93–48854–01–8 पृष्ठ 14,17,21
5. हिन्दी गीतांजली Internet Archive https://share.google/8EY6rZ1HEOhzwqcoB पृष्ठ 18
6. वर्मा.लक्ष्मीकान्त.,*इलाहबाद के चित्रकार.*,इलाहबाद संग्रहालय इलाहबाद. पृष्ठ 55, 54
7. सेतिया. सुभाष., अगस्त 2001.,*आजकल'* साहित्य एवं संस्कृति का मासिक., प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय.,ISBN – 0971-8478., पृष्ठ 7-9
8. डॉ0 अवधेश मिश्र.,2023.*संवेदना और कला.*,प्रलेक प्रकाशन.,प्रथम संस्करण ISBN 978–93–55001–58–0 पृष्ठ 18
9. सत्यजीत रे द्वारा रवींद्रनाथ टैगोर 1961 में बनी भारतीय डॉक्यूमेंट्री फिल्म से

38

# खजुराहो और मोढेरा की कामुक मूर्तियाँ: समकालीन साहित्य और कला अंतर्संबंध का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

**सृष्टि वर्मा**
शोधार्थी
राजकीय महाविद्यालय बूंदी
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान)
Email – staverma96@gmail.com

**सारांश** (Abstract)
भारतीय कला और संस्कृति में खजुराहो और मोढेरा के मंदिर अपनी अद्वितीय शिल्पकला और कामुक मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं। पहली दृष्टि में ये मूर्तियाँ केवल सौंदर्य और कामुकता का प्रतीक प्रतीत हो सकती हैं, लेकिन दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो ये जीवन, प्रेम, मानव इच्छाएँ और आध्यात्मिकता के गहरे विमर्श को उजागर करती हैं। ये मूर्तियाँ मानव जीवन के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—की समग्र व्याख्या करती हैं, जिसमें "काम" पुरुषार्थ विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में काम और इंद्रिय-सुख केवल भोगात्मक नहीं, बल्कि जीवन की आध्यात्मिक और रचनात्मक यात्रा का अभिन्न हिस्सा हैं।

समकालीन साहित्य में भी प्रेम, काम और मानवीय संवेदनाओं का निरंतर विमर्श मिलता है। आधुनिक कविताएँ, उपन्यास और नाटक जीवन की जटिलताओं, सामाजिक मान्यताओं और मानव इच्छाओं को व्यक्त करते हैं। इस संदर्भ में खजुराहो और मोढेरा की मूर्तियाँ और समकालीन साहित्य एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। दोनों माध्यम मानवीय भावनाओं और जीवन के अनुभवों को साझा करते हुए कला और साहित्य के दार्शनिक और सांस्कृतिक अंतर्संबंध को स्पष्ट करते हैं।
खजुराहो और मोढेरा की मूर्तियों में दिखाए गए युगल और स्त्री-पुरुष के भाव केवल भौतिक दृष्टि से नहीं, बल्कि जीवन के सामाजिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक आयामों में भी समझे जा सकते हैं। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि कला और साहित्य मानव जीवन
की जटिलताओं, भावनाओं और अनुभवों को उजागर करने के स्थायी साधन हैं।

अतः यह शोध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि खजुराहो और मोढेरा की कामुक मूर्तियाँ केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय जीवन, प्रेम, काम और आध्यात्मिकता के दार्शनिक विमर्श का प्रतीक हैं। समकालीन साहित्य इन मूर्तियों की दृष्टि और अर्थ को
और स्पष्ट रूप से समझने में सहायक है। कला और साहित्य का यह संवाद मानव जीवन की गहराइयों और भावनाओं को समृद्ध करने वाला शाश्वत सेतु है।

**मुख्य शब्द** (Keywords):
खजुराहो, मोढेरा, कामुकता, मूर्तिकला, दर्शन, योग, साहित्य, संस्कृति, तंत्र, अध्यात्म।

## प्रस्तावना

भारतीय कला केवल सौंदर्य या मनोरंजन का माध्यम नहीं रही, बल्कि यह जीवन के समग्र दर्शन का दर्पण रही है। भारत में कला सदा से धर्म, अध्यात्म, प्रेम, सौंदर्य और काम — इन सभी तत्वों का संतुलित और गहन चित्रण करती आई है। यह

संतुलन ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। खजुराहो (मध्य प्रदेश) और मोढेरा (गुजरात) के मंदिर इस परंपरा के अद्भुत उदाहरण हैं, जहाँ मानव जीवन की समग्रता को दिव्यता से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। इन मंदिरों की दीवारों पर अंकित कामुक मूर्तियाँ केवल शारीरिक आकर्षण का प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे जीवन की सृजनात्मक ऊर्जा, पुरुष और प्रकृति के एकत्व, तथा आनंद की परम अवस्था का दार्शनिक निरूपण करती हैं।

भारतीय जीवन-दर्शन चार पुरुषार्थों — धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — पर आधारित है। इनमें से "काम" को अक्सर केवल इंद्रियसुख या भोग से जोड़ा गया है, जबकि भारतीय दर्शन में यह शब्द कहीं अधिक व्यापक अर्थ रखता है। यहाँ "काम" सृजन, ऊर्जा, सौंदर्य और समरसता का प्रतीक है। यह उस सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है, जिसके बिना जीवन अधूरा है। इन मूर्तियों में भोग और योग, इंद्रिय और आत्मा, दोनों के बीच संतुलन दिखाई देता है — जहाँ भौतिक और आध्यात्मिक अनुभव एक ही धारा में प्रवाहित होते हैं।

**भारतीय मूर्तिकला की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास अत्यंत प्राचीन और निरंतर विकसित होता रहा है। इसका आरंभ सिंधु-घाटी सभ्यता की "नाचती हुई युवती" (Dancing Girl) जैसी मूर्तियों से होता है और यह क्रम गुप्त काल, चंदेल काल और सोलंकी काल तक अपनी विशिष्ट कलात्मकता को प्राप्त करता है।

खजुराहो के मंदिरों का निर्माण लगभग 950 से 1050 ईस्वी के बीच चंदेल वंश के राजाओं ने करवाया था। इन मंदिरों में जीवन के हर आयाम का मूर्त रूप मिलता है — देवता, अप्सराएँ, नायक-नायिका, संगीतज्ञ, नर्तकियाँ और युगल दृश्य — जो मानव जीवन की पूर्णता और सौंदर्य के प्रतीक हैं।

इन मूर्तियों का उद्देश्य केवल धार्मिक उपासना या आस्था तक सीमित नहीं था, बल्कि जीवन की विविधता, भावनाओं और मानवीय अनुभवों को सौंदर्य के माध्यम से समझाने का भी था।

मोढेरा का सूर्य मंदिर ग्यारहवीं शताब्दी में सोलंकी वंश के भीमदेव प्रथम द्वारा बनवाया गया। यह मंदिर सूर्य की उपासना के साथ-साथ ऊर्जा, प्रकाश और जीवन के उत्सव का प्रतीक है। यहाँ की मूर्तियाँ सूर्य की किरणों के साथ एक जीवंत लय में गुँथी हुई प्रतीत होती हैं। ये मूर्तियाँ धर्म और कला के बीच अद्भुत सामंजस्य को प्रकट करती हैं — जहाँ भक्ति और सौंदर्य दोनों एक साथ विद्यमान हैं।

**खजुराहो और मोढेरा की मूर्तियों की कलात्मक विशेषताएँ**

खजुराहो की मूर्तियाँ अपनी गत्यात्मकता (movement), लय (rhythm) और जीवंतता (vitality) के लिए विश्वप्रसिद्ध हैं। हर आकृति में एक प्रवाह है — जैसे वे पत्थर नहीं, बल्कि जीवन से भरपूर हों। इन मूर्तियों में मानवीय भावों की सूक्ष्मता और यथार्थ का अद्भुत संयोजन दिखाई देता है। स्त्री देह को यहाँ केवल सौंदर्य के प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि सृजन की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह शक्ति जो सृष्टि को जन्म देती है और जीवन को गति प्रदान करती है।

मोढेरा के सूर्य मंदिर की मूर्तियों में भी इसी जीवन-ऊर्जा की छटा दिखाई देती है। यहाँ सूर्य देव के साथ-साथ नृत्यरत युगल, संगीतज्ञ और योगमुद्रा में बैठे साधक अंकित हैं। इन आकृतियों में भौतिकता और आध्यात्मिकता का सुंदर संगम है। सूर्य मंदिर की स्थापत्य योजना भी योग और साधना की प्रक्रिया से जुड़ी है — मंदिर का गर्भगृह इस प्रकार बनाया गया है कि सूर्य की पहली किरण सीधे मूर्ति पर पड़ती है, मानो प्रकृति और ईश्वर का मिलन हो रहा हो।

इन दोनों स्थलों की मूर्तियाँ यह सिखाती हैं कि भारतीय कला कभी निष्क्रिय या केवल धार्मिक नहीं रही, बल्कि यह जीवन की धड़कनों से जुड़ी एक सजग, सजीव और संवेदनशील अभिव्यक्ति रही है।

**कामुकता, अध्यात्म और जीवन-दर्शन का दार्शनिक विश्लेषण**

भारतीय दार्शनिक परंपरा में "काम" को जीवन का एक अनिवार्य तत्व माना गया है। "कामसूत्र" के रचयिता वात्स्यायन ने इसे केवल इंद्रियसुख तक सीमित नहीं रखा, बल्कि सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास से भी जोड़ा। इसी प्रकार "अर्थशास्त्र" में चाणक्य ने जीवन के संतुलन के लिए धर्म, अर्थ और काम तीनों को समान महत्त्व दिया।

खजुराहो और मोढेरा की मूर्तियों में अंकित युगल दृश्य केवल शारीरिक संबंध नहीं दर्शाते, बल्कि वे आत्मिक मिलन का प्रतीक हैं — वह मिलन जहाँ देह और आत्मा एकाकार होते हैं। यह भारतीय दर्शन का वह मूल विचार है जिसमें शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति, भोग और योग — सभी को एक ही सृष्टि की परस्पर पूरक शक्तियाँ माना गया है।

इन मूर्तियों के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि कामुकता और अध्यात्म विरोधी नहीं हैं। वास्तव में दोनों एक ही चेतना की दो अवस्थाएँ हैं — एक बाह्य, दूसरी आंतरिक। जब व्यक्ति अपने भीतर की ऊर्जा को सही दिशा में नियंत्रित करता है, तो वही साधना बन जाती है।

तांत्रिक और योग साधना से संबंध भारतीय तंत्र परंपरा में "काम" को साधना का साधन माना गया है, न कि बाधा।

तंत्र में यह बताया गया है कि यौन ऊर्जा (कुंडलिनी शक्ति) को यदि साधक नियंत्रित कर जाग्रत करे, तो वह आत्मबोध और मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यही ऊर्जा सृजन का स्रोत है।

योग दर्शन में भी यही विचार प्रतिपादित है — जब साधक अपने भीतर की चेतना को ब्रह्मांडीय चेतना से जोड़ता है, वही "योग" की अवस्था है। खजुराहो की मूर्तियाँ इस योगिक मिलन की मूर्त अभिव्यक्ति हैं — जहाँ देह, आत्मा और सृष्टि का समन्वय दिखाई देता है।

मोढेरा का सूर्य मंदिर इस साधना को ऊर्जा और प्रकाश के प्रतीक रूप में प्रस्तुत
करता है। सूर्य यहाँ केवल देवता नहीं, बल्कि जीवन के स्रोत के रूप में पूज्य हैं। मंदिर की मूर्तियाँ, स्थापत्य और सूर्य की गति — सभी मिलकर यह दर्शाते हैं कि जब मनुष्य प्रकृति की ऊर्जा से जुड़ता है, तो वह अपने भीतर के अंधकार को मिटाकर आत्म-प्रकाश को प्राप्त करता है।

**समकालीन साहित्य और कला में अंतर्संबंध की अभिव्यक्ति**

आधुनिक भारतीय साहित्य में प्रेम और कामुकता की अभिव्यक्ति अब अधिक गहन, स्वतंत्र और विश्लेषणात्मक रूप में देखने को मिलती है। मृदुला गर्ग, अन्नपूर्णा देवी, अज्ञेय, निर्मल वर्मा और कमलेश्वर जैसे लेखकों ने प्रेम, देह और आत्मा के मध्य संबंधों पर गंभीर चिंतन किया है।

इन रचनाकारों ने यह दिखाया है कि प्रेम केवल शारीरिक आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मा की मुक्ति का साधन भी हो सकता है। उनके साहित्य में प्रेम की यात्रा मनुष्य की भीतरी खोज (inner quest) का रूप ले लेती है।

इसी प्रकार आधुनिक चित्रकला और मूर्तिकला में भी स्त्री शरीर केवल सौंदर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि विचार, प्रतिरोध और सृजन की शक्ति के रूप में उभरता है।

इस प्रकार, खजुराहो और मोढेरा की मूर्तियाँ तथा समकालीन साहित्य दोनों यह प्रमाणित करते हैं कि कामुकता भोग नहीं, बल्कि आत्मिक चेतना की ओर अग्रसर यात्रा है। माध्यम बदलते हैं, पर भाव वही रहता है — प्रेम, सृजन और आत्म-साक्षात्कार का।

आधुनिक दृष्टि और आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य आधुनिक युग में पश्चिमी दृष्टिकोण के प्रभाव से कुछ समय तक इन मूर्तियों को "अश्लील" या "भोगवादी" कहा गया। परंतु यह दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों को न समझने का परिणाम थी। भारतीय परंपरा में देह को अपवित्र नहीं, बल्कि पवित्र माना गया है, क्योंकि वही आत्मा का मंदिर है।

समकालीन आलोचना और स्त्री-विमर्श ने अब इन मूर्तियों को नए अर्थों में पढ़ा है। अब इन्हें नारी शक्ति, लिंग समानता, मानवीय स्वतंत्रता और सृजन की ऊर्जा के प्रतीक के रूप में देखा जा रहा है।

इस पुनर्पाठ के माध्यम से भारतीय संस्कृति की मूल भावना — जो भोग और योग, प्रेम और ध्यान, देह और आत्मा के संतुलन पर आधारित है — फिर से समझने का अवसर मिलता है।

**निष्कर्ष**

भारतीय कला का सार सदैव जीवन की समग्रता में निहित रहा है। खजुराहो और मोढेरा की कामुक मूर्तियाँ केवल भोग या आकर्षण की प्रतीक नहीं, बल्कि सृजन, चेतना और आनंद के आध्यात्मिक रूपक हैं। इनकी संवेदनशीलता यह बताती है कि देह और आत्मा विरोधी नहीं, बल्कि एक ही सत्य की दो अवस्थाएँ हैं। इन मूर्तियों में जीवन के चारों पुरुषार्थ — धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — का संतुलन दिखाई देता है। यहाँ "काम" को केवल इंद्रियसुख नहीं, बल्कि सृजन और मुक्ति की शक्ति के रूप में समझा गया है। यही दृष्टि भारतीय संस्कृति की गहराई को प्रकट करती है, जहाँ भोग भी योग बन जाता है। समकालीन साहित्य और कला में भी यही विचार नए रूपों में प्रकट होता है —

प्रेम, देह और आत्मा की यात्रा निरंतर चलती रहती है, केवल अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते हैं। इस प्रकार, खजुराहो और मोढेरा की मूर्तियाँ हमें यह सिखाती हैं कि जीवन का सौंदर्य ही उसका अध्यात्म है, और यही भारतीय कला का शाश्वत संदेश है।

**संदर्भ सूची:-**

1. कुमारस्वामी, आनन्द के. दि डांस ऑफ शिवा : भारतीय कला और संस्कृति पर निबंध. न्यूयॉर्क: सनवाइज टर्न, 1918. पृ. 45–52.
2. ज़िमर, हेनरिक. इंडियन एशिया की कला : मिथक और रूपांतरण. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1955. पृ. 210–225.
3. क्रामरिश, स्टैला. द हिन्दू टेम्पल. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1946. पृ. 132–148.
4. बनर्जी, जितेन्द्र नाथ. द डेवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी. कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956. पृ. 98–104.
5. वत्स्यायन, कपिला. भारतीय नृत्य और कला का शास्त्रीय स्वरूप. नई दिल्ली: संगीत नाटक अकादमी, 1974. पृ. 87–93.
6. मिश्रा, रामनाथ. खजुराहो की मूर्तिकला : एक सांस्कृतिक अध्ययन. वाराणसी: भारती प्रकाशन, 1999. पृ. 55–68.
7. शर्मा, ओ. पी. भारतीय मंदिर वास्तुकला और प्रतीकवाद. दिल्ली: राजपाल एंड सन्स, 2002. पृ. 101–118.
8. गुप्ता, नलिनी. मोढेरा सूर्य मंदिर : कला और आध्यात्मिक दृष्टि. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2010. पृ. 73–81.
9. दुबे, श्यामलाल. भारतीय तांत्रिक परंपरा और कला. भोपाल: मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, 2008. पृ. 60–70.
10. पांडेय, के. सी. भारतीय मूर्तिकला का इतिहास. प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1958. पृ. 144–159.

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

39

# शेखावाटी के भित्ति चित्रों में स्थानीय कथाएं

**प्रो. सोनू द्विवेदी (विद्या भूषण)**
चित्रकला विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर, अल्मोड़ा
उत्तराखण्ड
शोधार्थी– भाष्कर पांडे
चित्रकला विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर अल्मोड़ा
उत्तराखण्ड

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य होने के साथ–साथ समृद्ध सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व रखने वाला क्षेत्र है। इसने प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक समय तक कला में हुए परिवर्तनों और विकास को सहेजा है। राजस्थान अपनी लघु चित्रकला और भित्ति चित्रण परंपरा के लिए विश्वविख्यात है, जिनके विषय धार्मिक, सामाजिक, श्रृंगारिक तथा ऐतिहासिक विविधता से परिपूर्ण हैं। इन चित्रों में स्थानीय कथाओं से संबंधित भित्ति चित्र भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

ये स्थानीय कथाएँ हमें न केवल वीर योद्धाओं के त्याग और बलिदान की स्मृति दिलाती हैं, बल्कि संस्कृति, धर्म और राष्ट्र के लिए कर्तव्यपरायणता और प्रेरणा का स्रोत भी बनती हैं। राजस्थान में प्राचीनकाल से ही लोकगीतों और लोकगाथाओं के माध्यम से स्थानीय कथाओं को प्रस्तुत करने की परंपरा रही है। इन कथाओं का विशेष गुण यह है कि एक ही कथा विभिन्न स्वरूपों और भिन्न–भिन्न विवरणों के साथ प्रचलित हो सकती है। भारतीय लोकसाहित्य में संचित ये कथाएँ जीवन के संघर्ष, प्रेम और कर्तव्यों की अभिव्यक्ति करती हैं। ग्रामीण समाज में भोपों का विशेष स्थान रहा है। वे गायन, वादन और नाट्य प्रस्तुतीकरण के माध्यम से इन लोककथाओं को जन–जन तक पहुँचाते थे। गाँव–गाँव जाकर कथाओं का यह जीवंत प्रस्तुतीकरण भाषा की सीमाओं से परे सीधे लोगों के हृदय को स्पर्श करता था। यथार्थ घटनाओं और कल्पना का समन्वय इन कथाओं को और भी प्रभावशाली बनाता रहा है। इनका विषय क्षेत्र व्यापक रहा है, जिसमें स्थानीय वीर नायक, राजपूत वीरांगनाएँ, लोकदेवियाँ, श्रृंगार प्रधान प्रसंग, कहावतें, पारिवारिक घटनाएँ और उत्सव सम्मिलित हैं।

कथाओं का प्रारंभिक दृश्यात्मक प्रस्तुतिकरण हमें प्राचीन भित्ति चित्रों में मिलता है, जिनमें अजंता की गुफाएँ प्रमुख उदाहरण हैं। अजंता न केवल बौद्ध जातक कथाओं का विशाल भंडार हैं, बल्कि इन चित्रों ने समय के प्रवाह में कथाओं को विलुप्त होने से भी बचाया। राजस्थान की लघु चित्रण परंपरा भी कालांतर में हवेलियों, छतरियों और दुर्गों की विशाल भित्तियों पर विस्तृत चित्रण के रूप में विकसित हुई। सेठों और साहूकारों ने अपने कला–प्रेम तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रदर्शन हेतु भव्य हवेलियों की दीवारों पर विविध चित्रों का निर्माण करवाया। जयपुर संभाग का शेखावाटी क्षेत्र इस चित्रण परंपरा का प्रमुख केंद्र बनकर उभरा। शेखावाटी के आरंभिक भित्ति चित्र मुख्यतः धार्मिक कथाओं पर आधारित थे। शेखावटी के आरंभिक चित्रों में मुख्यतः महाभारत, रामायण एवं अन्य देवी देवताओं के चित्र थे, लेकिन समय के साथ भोपों द्वारा गई जाने वाली कथाओं ने भित्तियों पर विशाल रूप धारण किया। हाड़ी रानी, बलजी– भूरजी, ठाकुर सुजान सिंह, वीर तेजाजी, वीर गोगा जी, राजा रिसालू, वीरमदेव चौहान, रामदेव जी आदि की कथाओं के दृश्य शेखावटी की भित्तियों पर चित्रित हैं. जिनमें से कुछ निम्न हैं–

**राजा रिसालू–** राजा रिसालू उत्तर भारत की लोक परंपराओं में एक वीर, बुद्धिमान और पशु–प्रेमी नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे राजा सालवान के पुत्र और भक्त पूरणमल के सौतेले भाई और सालवान के पुत्र थे।[1] जन्म के समय अशुभ नक्षत्रों के कारण उन्हें बारह वर्षों तक तहखाने में रखा गया, जहाँ उनका विवाह तलवार को साक्षी मानकर राजा भोज की पुत्री से हुआ। बाद में निर्वासन के दौरान उन्होंने अगरजी नगर के राजा को पराजित कर उसकी कन्या से विवाह किया और धारा नगरी में राक्षस

का वध कर शासन स्थापित किया। उनकी दूसरी पत्नी के प्रेम प्रसंग से क्रोधित होकर उन्होंने बादशाह हठमल का वध किया, जिसके बाद रानी सती हो गई। पत्नी सांवल्दे, जो उनसे गहरा प्रेम करती थी, वियोग के चलते अग्नि में प्रवेश करने जा रही थी, परंतु रिसालू समय पर पहुँचकर उसे बचा लेते हैं। लोक विश्वास है कि राजा रिसालू पशु—पक्षियों की भाषा समझते थे। राजा रिसालू को एक वीर योद्धा, गरीबों के संरक्षक और पशु—प्रेमी के रूप में जाना जाता है। साथ ही वे बांसुरी वादन में भी निपुण थे, जिसका उल्लेख लोककथाओं में मिलता है। शेखावाटी क्षेत्र की भित्तियों पर उनके चित्रण के प्रमाण मिलते हैंकृजैसे सेठ दयाराम डेडराज गोयनका हवेली (मंडावा) और गंगधर भीवराज हवेली (अलसीसर) में। इन चित्रों में राजा रिसालू की बहुआयामी छवि को दर्शाया गया है, जो उनकी वीरता, करुणा और कलात्मकता को एक साथ उजागर करती है।

राजा रिसालू अपनी पत्नी संग (सेठ डेडराज दयाराम हवेली, मंडावा ), वीर तेजा जी (गोयनका हवेली,

**वीर तेजा जी-** वीर तेजा जी का जन्म विक्रम संवत् 1130 में नागौर के खड़नाल गाँव में नागवंशीय जाट परिवार में हुआ। उनके जन्म को शिव और नाग देवता के आशीर्वाद से जुड़ा माना जाता है। बाल्यकाल से ही उनके चेहरे पर अद्भुत तेज था, जिससे उनका नाम 'तेजा' पड़ा। लोककथाओं में तेजा जी को साँपों के देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। एक प्रसंग के अनुसार, उन्होंने आग में फँसे एक सर्प को बचाया, जिसने उन्हें मोक्ष बाधित करने का दोष देकर डसने की बात कही। तेजा जी ने वचन दिया कि पत्नी को ससुराल से लाने के बाद वे स्वयं सर्प के पास आएंगे। ससुराल में उन्होंने मीणा डाकुओं से गायों की रक्षा की, जिससे वे गंभीर रूप से घायल हो गए। वचन निभाने हेतु वे सर्प के पास लौटे, जिसने शरीर पर साफ़ स्थान न पाकर उनकी जिह्वा पर डंस लिया। उसी क्षण उनकी मृत्यु हो गई। राजस्थान में भाद्रपद शुक्ल दशमी को 'तेजा दशमी' के रूप में मनाया जाता है, जिसमें श्रद्धालु विशेष रूप से जाट देवता की पूजा करते हैं।[2]

**राजा धांधल और अप्सरा—** राजस्थान की लोककथाओं में अप्सराएँ केवल सौंदर्य की प्रतीक नहीं, बल्कि शर्त, वचन और आत्मबल की संवाहक हैं। राजा धांधल की कथा में अप्सरा एक शर्त पर विवाह स्वीकार करती है कि राजा पूर्व सूचना के बिना महल में न आए। पुत्र पाबूजी के जन्म के बाद राजा भूलवश उसे सिंहनी रूप में देख लेता है, जिससे शर्त टूट जाती है और अप्सरा आकाश में उड़ जाती है।[3] यह दृश्य लक्ष्मणगढ़ की हवेली में चित्रित है। दूसरी कथा में चुरू के राजा घांघू अप्सराओं के वस्त्र चुराकर विवाह प्रस्ताव रखते हैं। एक अप्सरा शर्त के साथ विवाह स्वीकार करती है और हर्ष व जीण को जन्म देती है। शर्त भंग होने पर वह दोनों को दो चोटियों पर बैठाकर स्वर्ग लौट जाती है। यही स्थल आज हर्ष महादेव और जीण माता मंदिर के रूप में पूज्य हैं। पाबू जी और अप्सरा का दृश्य बालूराम धानने वालों की हवेली (लक्ष्मणगढ़) में देखने को मिलता है. जिसमें राजा आकाश में उड़कर जाती हुई अप्सरा की साड़ी पकडे हुए है।

**ढोला—मारू—** ढोला—मारू की कथा राजस्थान की सबसे लोकप्रिय प्रेम गाथाओं में से एक है, जिसमें भावनात्मक गहराई, संघर्ष और पुनर्मिलन की छवियाँ समाहित हैं। ढोला नरवर (वर्तमान मध्य प्रदेश) के राजा नल का पुत्र था, जबकि मारू पूंगल के राजा की पुत्री थी। बचपन में ही उनका विवाह तय कर दिया गया था, परंतु समय के साथ ढोला को यह स्मृति नहीं रही और उसका दूसरा विवाह मालवा की राजकुमारी से हो गया। मारू को जब अपने बचपन के विवाह की जानकारी मिली, तो उसने

ढ़ोला से संपर्क करने के अनेक प्रयास किए, जो विफल रहे। अंततः उसने एक चारण गायक को नरवर भेजा, जिसने विरह गीतों के माध्यम से ढोला को उसकी पुरानी स्मृतियाँ पुनः जागृत कर दी। ढ़ोला ऊँट पर सवार होकर पूंगल पहुँचा, जहाँ मारू ने उसका स्वागत किया। कुछ समय बाद दोनों ने नरवर के लिए ऊँट में सवार होकर प्रस्थान किया। मार्ग में उमर–सूमरा नामक दो व्यक्ति मारू का अपहरण करने के उद्देश्य से पहुँचे, पर चारण गायक ने गीतों के माध्यम से उनके छल का संकेत दिया। मारू ने ढ़ोला को सावधान किया और दोनों ऊँट पर सवार होकर वहाँ से निकल गए। अंततः वे नरवर पहुँचे और ढ़ोला अपनी दोनों रानियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। शेखावाटी की भित्तिचित्र परंपरा में ढ़ोला–मारू की कथा से जुड़े अनेक दृश्य चित्रित हैं, जिनमें उमर और सूमरा को उनका पीछा करते हुए दर्शाया गया है। कुछ चित्रों में मारू को उमर–सूमरा पर तीर चलाते हुए भी दिखाया गया है। सूरजगढ़ के गढ़ में इस कथा का एक अत्यंत जीवंत चित्र मिलता है, जिसमें ढोला और मारू ऊँट पर सवार हैं। मारू धनुष–बाण से उमर–सूमरा की ओर निशाना साध रही हैं, जबकि दायीं ओर से ऊँट पर आते उमर–सूमरा दुनाली बंदूक ताने हुए हैं। चित्र के मध्य में एक पहाड़ी पर चारण को गीत गाते हुए दर्शाया गया है, जो दृश्य को नाटकीयता और संगीतात्मक गहराई प्रदान करता है। परशुरामपुरा की शार्दुल सिंह की छतरी, अलसीसर की काशी बाबू की हवेली, डूंडलोद के जगनाथ प्रसाद गोयनका की हवेली तथा मंडावा के शेखावाटी होटल में भी ढोला–मारू के चित्र देखे जा सकते हैं।

ढ़ोला मारू (रघुनाथ मंदिर, मंडावा)

**बींजा सोरठ की प्रेम कथा–** राजस्थान की लोककथाओं में बींजा–सोरठ की कथा एक अद्वितीय प्रेमगाथा है, जिसमें सामाजिक बाधाएँ, वचनबद्धता और आत्मबल की गहराई समाहित है। सांचोर नरेश रायचंद की पुत्री सौरठ को ज्योतिषियों ने अशुभ भविष्यवाणी के कारण एक निःसंतान कुम्हार चांपा को सौंप दिया। चांपा की देखरेख में सोरठ बत्तीस लक्षणों और चौंसठ कलाओं में निपुण एक अनुपम युवती बनी। कुम्हार ने सोरठ के लिए राजाओं के रिश्तों को ठुकराते हुए उसका विवाह एक बंजारे से कर दिया। बंजारा एक चलता–फिरता लकड़ी का महल लेकर यात्रा करता था। जब उसका कारवां राव खंगार के राज्य से गुज़रा, तो खंगार ने अपने भांजे बींजा को जुए में बंजारे को हराकर उसका महल और माल लाने का आदेश दिया। बींजा ने बंजारे को हरा दिया और उसका सारा माल लेकर महल में आ गया। राव खंगार सोरठ की देख रेख का जिम्मा बींजा को सौंप स्वयं द्वारका की यात्रा पर निकल पड़ा। लौटने पर जब उसे बींजा और सोरठ के प्रेम का पता चला, तो उसने बींजा से युद्ध किया। बींजा ने उसे पराजित किया, फिर भी खंगार ने सोरठ को सौंपने से इंकार कर दिया। वियोग में बींजा की मृत्यु हो गई। सोरठ ने शोक में सूर्य देव से प्रार्थना की और अग्नि में प्रवेश कर बींजा से पुनर्मिलन की कामना की।[4] यह कथा प्रेम, त्याग और आत्मबल की प्रतीक है, जो आज भी राजस्थान की लोक स्मृति में जीवित है।

**ठाकुर सुजान सिंह–** 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुगल सम्राट औरंगजेब द्वारा हिन्दू धर्म के मंदिरों के ध्वस्तिकरण का अभियान चलाया गया था। इसी क्रम में औरंगजेब ने अपने सेनापति दराबखाँ को खण्डेला स्थित ढ़ाता मंदिर को ध्वस्त करने का आदेश दिया। दूसरी तरफ ठाकुर सुजान सिंह अपने विवाह के लिए मारवाड़ गए हुए थे। परन्तु जैसे ही उन्हें दराबखाँ द्वारा मंदिर पर हमला किए जाने की सूचना मिली, वह नववधु का मोह त्याग, विवाह रस्में छोड़कर तुरंत अपने साथियों के संग खण्डेला के

लिए रवाना हुए। सुजान सिंह अपनी टुकड़ी के साथ मिलकर मुगलों की सेना से भीड़ गये और उन्हें वहाँ से खदेड़ दिया। लेकिन मुगलों की सेना से अपने धर्म, संस्कृति की रक्षा करते हुए वीर सुजान सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। सुजान सिंह की वीरता और त्याग के लिए राजस्थान में एक दोहा बहुत प्रसिद्द है–

ढातां मंदिर सिर दियो, आतां दल अवरंग ।

इण बातां सूजो अमर, रायसलोतां रंग ।।

ठाकुर सुजान सिंह के युद्ध में जाने से पूर्व का चित्र शेखावटी की भित्ति पर मिलता है, जिसमें उनकी होने वाली पत्नी उनके घोड़े और उनकी आरती कर रही हैं। जगदम्बा हवेली (अलसीसर), कनोडिया हवेली (बिसाऊ) और खेमका शनि देव मंदिर (रामगढ़) की भित्तियों पर ठाकुर सुजान सिंह का चित्रण मिलता है। इन चित्रों में युद्ध से पूर्व का एक भावनात्मक दृश्य दर्शाया गया है, जिसमें संभवतः उनकी भावी पत्नी उन्हें आरती कर रही हैं। यह दृश्य न केवल वीरता की तैयारी को दर्शाता है, बल्कि पारिवारिक स्नेह और परंपरागत रीतियों की गहराई को भी उजागर करता है। आरती के इस क्षण में युद्ध के पूर्व की मानसिक स्थिति और भावनात्मक जुड़ाव को कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। उत्तर भारत के राजस्थान, पंजाब, हरियाणा आदि में गीतों, भजनों, नाट्य रूपांतरण के माध्यम से कथाओं का प्रचार प्रसार किया जाना आम बात है।

सुजान सिंह (कनोडिया हवेली, बिसाऊ) एवं हाड़ी रानी (मोरारका हवेली, नवलगढ़)

**हाड़ी रानी**– चौहान राजपूत कन्या हाड़ी रानी का विवाह मेवाड़ के सानलूबर के राजा राव रतन सिंह चुंडावत से हुआ था। राजस्थान में प्रचलित गीतों और कथाओं में उनकी वीरता पर त्याग की प्रशंसा मिलती है। उनके विवाह के कुछ समय बाद औरंगज़ेब की सेना ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। चित्तौड़ नरेश महाराणा राज सिंह प्रथम ने राव रतन सिंह को मुगलों को रोकने हेतु युद्ध के लिए अजमेर जाने का आदेश दिया, जिसके बाद रतन सिंह अपने सिपाहियों के साथ अजमेर के लिए निकल पड़े। लेकिन वहाँ पहुँचकर राव रतन सिंह अपने वैवाहिक जीवन, प्रेम एवं देश और धर्म की सेवा के बीच उलझ गए थे।[5]

रतन सिंह ने अपने एक दूत को रानी के पास जाकर एक निशानी लाने के लिए भेजा। जब रानी ने अपने पति के प्रेम को देश कर्तव्य के बीच बाधा बनते देखा तो रतन सिंह को प्रेम मोह से मुक्त करने और इस अनिर्णयावस्था से बाहर निकालने के लिए रानी ने तलवार लेकर अपना सिर धड़ से अलग कर एक थाल में रख दिया। राजा द्वारा भेजा दूत रानी का कटा सिर लेकर रतन सिंह के पास ले गया। अपनी रानी का कटा हुआ सिर देख रतन सिंह का मोह भंग हो गया और रानी के सिर को अपने गले में बाँध अदम्य साहस के साथ मुगलों पर टूट पड़े। कहा जाता है कि रतन सिंह ने मुगलों पर विजय तो प्राप्त की परंतु युद्ध समाप्त होने के बाद अपनी ही तलवार से अपना जीवन समाप्त कर लिया।

जगन्नाथ शिवालय (डूंडलोद), मोरारका हवेली (नवलगढ़) और आठ हवेली (नवलगढ़) में हाड़ी रानी और राजा के दूत का दृश्य है। आठ हवेली में बने चित्र में घुड़सवार दूत के हाथ में थाल है और दाईं तरफ रानी को दिखाया गया है। जबकि मोरारका हवेली में बने चित्र में हाड़ी रानी के सम्मुख स्वयं घोड़े पर सवार राजा रतन सिंह को चित्रित किया गया है। उन्हें युद्ध से आता देख रानी को महल के

द्वार पर हाथ में तलवार लिए चित्रित किया है। इसी तरह जगन्नाथ शिवालय के चित्र में भी राजा को घोड़े पर महल की ओर आते हुए और रानी को महल से ही हाथ में तलवार लिए चित्रित किया गया है। दो तरह के चित्र मिलने का कारण कथाओं में भिन्नता है, किसी में राजा द्वारा दूत को रानी के पास भेजने तो किसी में राजा के स्वयं जाने की बात सामने आती है।

**निष्कर्ष**– भित्तियों पर बने चित्रों में राजा रिसालू की संवेदनशीलता, तेजा जी की वचनबद्धता, ढोला–मारू और बींजा–सोरठ प्रेम, ठाकुर सुजान सिंह का धर्मरक्षण और हाड़ी रानी का त्याग एक साथ समाहित हैं। ये चित्र केवल अतीत की घटनाओं का दृश्यांकन नहीं, बल्कि वर्तमान के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। जो हमें संघर्ष, प्रेम, बलिदान और कर्तव्य की गहराइयों से परिचित कराते हैं। हाड़ी रानी का आत्मबलिदान विशेष रूप से यह दर्शाता है कि व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रधर्म को निभाना किस प्रकार वीरता का सर्वोच्च रूप बन जाता है।

शेखावाटी की भित्तियाँ एक दृश्यात्मक लोकस्मृति हैं, जहाँ हर रंग, हर रेखा, हर कथा एक सामाजिक संवाद बन जाती है। जब तक ये चित्र जीवित हैं, तब तक राजस्थान की आत्मा गीतों में, भजनों में, हवेलियों की दीवारों पर, और लोकमन की गहराइयों में बोलती रहेगी। समाज की आत्मा कही जाने वाली स्थानीय कथाएँ अपने आप में अनुभव, संघर्ष, विश्वास एवं मूल्यों को पीढ़ियों में संचारित कर समाज से जोड़ने का कार्य करती हैं।[6] चितेरों (स्थानीय चित्रकारों) ने भित्तियों पर वही भाव और सौंदर्य उतारा जो इन कथाओं में अंतर्निहित था। अजंता की भांति शेखावाटी की भित्तियों पर अंकित स्थानीय कथाएँ और मान्यताएँ भी एक समृद्ध संग्रह प्रस्तुत करती हैं। शेखावाटी की हवेलियाँ, छतरियाँ और मंदिर अपनी भित्ति चित्रण परंपरा के कारण एक मुक्तांगण दीर्घा के रूप में जानी जाती हैं। जो न केवल स्थानीय समाज को अपनी जड़ों से जोड़ती है, बल्कि देश–विदेश से आने वाले पर्यटकों और शोधार्थियों को भी राजस्थान की संस्कृति, इतिहास और परंपराओं से परिचित कराती है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची–**

1-Swynnerton, Rev. Charles : The Adventure of The Punjab Hero Raja Rasalu, W. Newman & Co., ld, 4 Dalhouse Square, 1884, Introdction. P. I- VIII

2. गुप्ता, के. एस. एवं ओझा, जे. के. : राजस्थान का इतिहास एक सर्वेक्षण, जयपुर, द्वितीय संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या– 398

3. राजस्थान–भारती, डा कन्हैयालाल सहल का लेख, अंक– 3–4, बीकानेर, राजस्थान, जून– 1959, पृष्ठ संख्या– 10–12

4. बींजा सोरठ री बात (हस्त लिखित) : सरस्वती भण्डार, उदयपुर, लिपिकाल संख्या–1822, ग्रंथांक – 16, मरू भारती, वर्ष–3, अंक–1, पिलानी राजस्थान, 1955, पृष्ठ संख्या– 4–7

5. hi.wikipedia.org/wiki/हाड़ी–रानी

6. मेनारिया, डॉ पुरुषोत्तम लाल : राजस्थान लोक गीत संग्रह, वीर रस परम्परा, जोधपुर रूपायन संस्थान, 2025, पृष्ठ संख्या– 112–118

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

40

# राजस्थान की चित्रकला पर स्थानीय लोक कथा साहित्य का प्रभाव

**डॉ. बाबूलाल चौधरी**
कला शिक्षक
रा. स. बाल विद्यालय, सूरजमल विहार (1001006)
दिल्ली –110092
मो.नं.7740820449
ईमेल –253801.choudhary@doe.delhi.gov.in
स्थाई पता – 92, वी.के.आई. एरिया,रोड नं.8,
मुरलीपुरा,जयपुर,राजस्थान,पिन कोड–302039

राजस्थान भारत में एक गौरवपूर्ण ऐतिहासिक विरासत रखने वाला समृद्ध राज्य है।राजस्थान अपनी कला सम्पदा ,संस्कृति व लोक कथा साहित्य के कारण सम्पूर्ण विश्व में अपनी अलग पहचान रखता है। लोक कथाऐं सदियों से मनुष्य के मनोरंजन व ज्ञान वृद्धि तथा अपने अनुभवों को अगली पीढी में पहुंचाने का साधन रही हैं। लोक कथा साहित्य एक विशाल सागर के समान है जिसने राजस्थान की कला सम्पदा को बहुत प्रभावित किया चाहे वह यहा की लघुचित्र कला हो या भिति चित्रकला। इसके सबसे बड़े उदाहरण ढोला– मारू,मूमल–महेन्द्र, फूलजी–फूलमती, बींझा–सोरठ जैसी प्रेम प्रधान लोक कथाऐं व विभिन्न लोक देवताओं पाबूजी, तेजा जी, रामदेव जी,गोगा जी , जुझार जी व लोक देवियों करणी माता, जीण माता, नागणेचिया माता, तनौट माता, चामुंडा माता, जमवाय माता की कथाऐं हैं। इन कथाओं में मनुष्य के विचार व समाज का सच्चा चित्र नजर आता है। ये लोक कथाऐं राजस्थान के कलाकारों के लिए प्रेरणा व मुख्य विषय रही हैं। जिनके प्रभाव से ही यहां लोक कथाओं पर आधारित लघु चित्र, फड़ चित्र व भित्ति चित्रों का निर्माण अधिक हो सका तथा अब भी जारी है।

राजस्थान की चित्रकला और लोक कथा साहित्य का संबंध केवल कलात्मक प्रेरणा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान और धार्मिक आस्थाओं का अभिन्न हिस्सा है। भित्तिचित्र, फड़ चित्र और लघु चित्रकला जैसी विभिन्न शैलियों ने लोक कथाओं को दृश्य रूप में प्रस्तुत करके उन्हें पीढ़ियों तक जीवित रखा है। लोक कथा साहित्य ने चित्रकला को कथानक, पात्र और प्रतीकों की दृष्टि से समृद्ध किया, जबकि चित्रकला ने लोक कथा को चित्रित कर जीवंत रूप दिया।शेखावाटी की हवेलियों के भित्तिचित्र हों या भोपाओं द्वारा प्रस्तुत फड़ चित्रकला ये सभी उदाहरण इस बात को प्रमाणित करते हैं कि लोक कथाएँ केवल मौखिक परंपरा में नहीं,बल्कि चित्रकला के माध्यम से भी समाज के जीवन का अभिन्न अंग रही हैं। राजस्थान की चित्रकला और लोक कथा साहित्य का पारस्परिक संबंध केवल अतीत का हिस्सा नहीं है,बल्कि वर्तमान में भी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक मूल्यों के संरक्षण का आधार बना हुआ है। लोक कथाओं ने राजस्थान की चित्रकला को गहराई ,अर्थ और सामाजिक पहचान प्रदान की है, जिससे यह कला केवल सौंदर्यशास्त्रीय अभ्यास न होकर जीवंत सांस्कृतिक संवाद है, जिसमें लोक कथाएँ कला को अर्थ देती हैं और चित्रकला कथाओं को स्थायित्व और दृश्य शक्ति प्रदान करती है।

**मुख्य शब्दः** भित्तिचित्र,फड़ चित्र,लघुचित्र,स्थानिय लोककथा साहित्य, राजस्थानी चित्रकला, कला व साहित्य अंतर्संबंध, सचित्र ग्रंथ ।

संसार के सभी जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ है। उसके पास विवेक व बुद्धि रूपी दो महाशक्तियां हैं। इनके द्वारा ही वह अन्य जीवों से ऊँचा उठकर साहित्य ,कला व संगीत का सृजक बना। कला व साहित्य के द्वारा ही मानव अपने आनन्द, प्रेम, आदर्श व यर्थाथ को अभिव्यक्ति देता है। मनुष्य जिस संस्कृति में जन्म लेता है उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का स्वरूप निश्चित होता है। साहित्य व कलापूर्ण वातावरण मिलने से व्यक्तित्व के अनेक पक्ष सुदृढ हो जाते हैं। इसी कारण लोक कथा साहित्य व कला ने संसार के सभी स्थानों की संस्कृति में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। लोक साहित्य

कथाओं के कहने व सुनने की परम्परा बहुत प्राचीन काल सें ही चली आ रही है। इनसे मनुष्य अपने मनोरंजन के साथ ही अनुभव व ज्ञान भी प्राप्त करता है।[1]

कला व साहित्य की दृष्टि से भारत प्राचीन समय से ही समृद्ध है। भारत में भी राजस्थान राज्य अपने लोक साहित्य व कला, संस्कृति के लिए अलग पहचान रखता है। राजस्थान का लोक साहित्य विभिन्न प्रकार की कथाओं का विशाल भण्डार है। मौखिक रूप से जो हजारों लोक कथाएँ सुनायी जाती हैं, उनसे केवल मनोरंजन ही नहीं शिक्षा और सात्विक प्रेरणा भी मिलती है। इसलिए इन लोक कथाओं को धर्म प्रचारकों ने भी नैतिक शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा के प्रचार का माध्यम बनाया तथा सामान्य परिवर्तन करके एक नीति या धर्म के साथ उस कथा का सम्बन्ध जोड़ कर चित्रों के साथ प्रस्तुत किया। इन चित्रों को देखकर तथा कथाओं को सुनकर लोगों ने ज्ञान व सत्प्रेरणा भी ग्रहण की इससे दोहरा लाभ हुआ। राजस्थान में जैन विद्वानों ने सर्वाधिक लोक कथाओं को अपने धार्मिक साँचे में ढालने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। जिनके उदाहरण आज जैन पोथियों में देखे जा सकते हैं ये ग्रंथ विभिन्न देशों के संग्रहालयों व जैन ग्रंथ भण्डारों मे संग्रहित हैं।[2] बौद्ध धर्म में प्रचलित जातक कथा साहित्य भी इस बात की पुष्टि करता है। क्योंकि ये जातक कथाए आज भी वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय हैं तथा अनेक परिवर्तन व रुपांतरण के साथ लोक–साहित्य मे उपलब्ध हैं।

इसी समृद्ध स्थानिय लोक कथा साहित्य ने राजस्थान की चित्रकला को उन्नतिशील बनाने में भी अपना अमूल्य योगदान दिया है। राजस्थान में चित्रकला की एक प्राचीन व सुदीर्घ परंम्परा रही है। राजस्थान की संस्कृति को गौरवानवित करने का श्रेय यहां की चित्रकला को भी उतना ही जाता है जितना यहां कि लोक साहित्य परम्परा को। राजस्थान में आलनियाँ (कोटा), बैराठ (जयपुर), आहड़ (उदयपुर) तथा भरतपुर के 'दर' नामक रेखांकनों को देखने सें यहां की प्रारम्भिक चित्रण परम्परा का पता चलता है। गणेश्वर (सीकर), आहड़ (उदयपुर), कालीबंगा ( हनुमानगढ़ ), नगरी (चितौडगढ़) आदि स्थलों से ताम्र सभ्यता के अवशेष व कलात्मक मृदभाण्ड उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। राजस्थान की कला का विकाश शैलचित्रों से होते हुए लघुचित्रों की परम्परा का उदय 9 वीं सदी में बने ताड़पत्रों पर बने चित्रों से हुआ। मेवाड़ इसका प्रमुख केंद्र रहा। यहाँ आहड़ (उदयपुर) में ताड़पत्र पर चित्रित प्राप्त प्रथम सचित्र ग्रंथ 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णी' है जो 1260 में मुहिल शासक तेजसिंह के काल में चित्रित किया गया। राणा मोकल के समय देलवाड़ा में सन् 1422–23 में चित्रित 'सुपासनाह चरियम' ग्रंथ है जिसमें राजस्थानी चित्रण की भाव भूमि व जैन एवं गुजरात शैली का प्रभाव है।1450 ई. के लगभग पश्चिमी भारत में एक प्रति 'गीत गोविन्द' और 'बाल गोपाल स्तुति' प्राप्त हुई है जो राजस्थान के प्रारम्भिक चित्रण के उदाहरण कहे जाते हैं। राजस्थानी चित्रकला की परम्परा में अनेक सचित्र ग्रंथ, लघु चित्र व भित्ति चित्र बने जो इसके महत्व को बताने में समर्थ हैं।[3] राजस्थान की स्थानीय मौखिक और लिखित लोक कथा साहित्य ने चित्रकला की विषयवस्तु, शैली और सांस्कृतिक अर्थ को आकार दिया है। यह अध्ययन न केवल कला और साहित्य के अंतःसंबंध को रेखांकित करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि लोककथाएँ किस प्रकार समाज की स्मृति और पहचान को कला के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं। कलाकारों पर अपने स्थानिय परिवेश में प्रचलित लोक साहित्य का बहुत प्रभाव रहता है। राजस्थान के कलाकारों ने चित्रकला के मुख्य विषयों के रूप में स्थानिक लोक कथा साहित्य को प्राथमिकता दी, जिसके कारण यहां लोक कथाओं पर आधारित चित्रों की संख्या बहुत अधिक है।राजस्थान के स्थानिय लोक कथा साहित्य ने यहां की चित्रकला शैलियों को गहराई सें प्रभावित किया है।राजस्थान में चित्रकला की अनेक विद्यायें हैं जिनमें लघु चित्र, सचित्र ग्रंथ , फड़चित्र तथा भित्ति चित्र अधिक प्रसिद्ध रहे हैं।

**राजस्थान की चित्रकला पर स्थानीय लोक कथा साहित्य का प्रभाव :**

(1) लघु चित्रण व सचित्र ग्रंथों पर प्रभाव

(2) भित्ति चित्रण पर प्रभाव

(3) फड चित्रण पर प्रभाव

## (1) लघु चित्रण व सचित्र ग्रंथों पर प्रभाव :–

कला की दृष्टि में राजस्थानी लघुचित्र शैली का उद्भव मध्ययुग की सबसे बड़ी देन है। राजनैतिक उथल–पुथल के बाद भी साहित्य और कला के विकास के लिए 15वीं सदी से लेकर 19वीं शदी तक जो कार्य हुए, वे ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कला के क्षेत्र में राजस्थान के लघुचित्र विश्व कला की अनमोल धरोहर कहे जा सकते हैं। इस कला का विकास किसी एक स्थान पर ना होकर विभिन्न रियासतों, ठिकानों, समृद्ध नगरों तथा धर्मपीठों में हुआ। अधिकांश रियासतों के चित्रकारों ने जिन–जिन तौर तरीकों से चित्रों को बनाया, उसी के अनुसार वहाँ की सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक विशेषताओं को चित्रों में दर्शाया है। इसी से राजस्थान में अनेक चित्र शैलियों यथा मेवाड़, मारवाड़, ढूंढाड़, हाड़ौती, शेखावाटी आदी शैलियों व उपशैलियों  का विकास हुआ । राजस्थान कि लघुचित्र शैली को राजस्थान में प्रचलित स्थानिय लोक कथा साहित्य ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। यहां के लघु चित्रों व सचित्र ग्रंथों में राजस्थान के लोक कथा साहित्यों के नायकों की सम्पूर्ण कथा व कथा की महत्वपूर्ण घटनाओ के चित्रों की भरमार है, जिनमें अनेक ऐतिहासिक व अर्द्ध एतिहासिक घटनाऐं भी सामिल हैं।[4]

ढोला मारू चित्रित ग्रंथ (1762, उदयपुर), मूमल महेन्द्र री बात ( 1822 ,जोधपुर ), बीझां – सोरठ (1822, जोधपुर), मधुमालती (1824, पाली), वीरम दे सोनीगरा री बात, जलाल– बूबना की बात (1797 ,जोधपुर), पंवार जगदेव री बात ( संवत् 1831, जोधपुर), लोर चन्दा ( 1540, अहमदाबाद व 1 अन्य प्रति मुम्बई), फूलजी– फूलमती री बात (1777, 1833 ई.जोधपुर ), ससी पना री बात (संवत् 1832, बीकानेर), वीरमदे पन्ना री बात (1856,पाली), सदैवच्छ–सावलिंगा री बात (1662,पाली), पृथ्वीराज संयोगिता (अजमेर), पाण्डव चरित्र (संवत् 1468 नागौर में चित्रित, जोधपुर), चन्द्र कुंवर री बात 1742 ,1775, 1781 तथा 1811 ई. की 15 से अधिक प्रतियाँ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में संग्रहित हैं। ये मुख्यतः चित्रित ग्रंथ हैं जिनकी अनेक प्रतियाँ बनी जो आज देश विदेश के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। राजस्थान में ढोला मारू कथा पर सर्वाधिक सचित्र ग्रंथों व लघु चित्रों का निर्माण हुआ है। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित आहड़, उदयपुर में 1592 ई. में लिखित व 104 चित्रों से सुसज्जित 'ढोला मारू री चौपाई' मेवाड़ शैली का महत्वपूर्ण सचित्र ग्रंथ है इस ग्रंथ का चित्रण महाराणा प्रताप (1572 ई. –1597 ई.) के समय किया गया था। सन् 1762 ई. का चित्रित ढोला–मारू ग्रंथ उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित है। 153 ढोला–मारू चित्रावली का एक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में संग्रहित है जो ऊँट पर सवार गतिशील मुद्रा में है। 154 एक अन्यचित्र 1850–60 ई. के लगभग का भारत कला भवन, वाराणसी में संग्रहित है। ढोला–मारू मारवाड़ की लोकप्रिय कथा थी लेकिन कुछ परिवर्तनों के साथ चित्रों का एक जैसा संयोजन है। इन चित्रों में आँखें, चेहरे व वेशभूषा व पृष्ठभूमि में अन्तर कर दिया जाता है लेकिन ऊँट के उठे हुए पैरों से चित्र में गति दिखाई देती है। यहां के सभी चित्रों में राजस्थानी वेशभूषा व आभूषणों को राजस्थान के भू– दृश्यों के साथ सुन्दरता सें चित्रित किया गया है।[5] इन लोक कथा साहित्यों पर अनेक लघु चित्र भी अलग–अलग स्थानों व शैलियो में बने हैं। चित्रकारों नें यहाँ के शासकों की रूची के अनुसार दरबार, घुडसवारी, युद्ध, पौराणिक कथाओं के साथ ही स्थानीय लोक देवताओं व कथा साहित्य के आख्यानों सें सम्बंधित लघु चित्रों का सृजन बहुत प्रभावपूर्ण रूप से किया है।

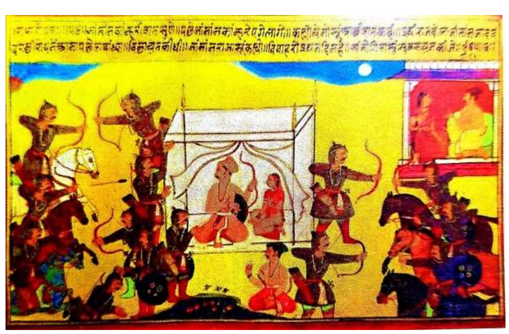

पृथ्वीराज व संयोगिता, चित्रित पृथ्वीराज रासों,17वीं शताब्दी, अजमेर संग्रहालय

(2)भित्ति चित्रण पर प्रभाव :–

भारत में भित्ति चित्रण परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितना प्राचीन स्वंय मानव है। प्रागैतिहासिक काल से ही आदिमानव ने अपनी अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए भित्ति चित्रण का सहारा लिया था। इसलिए मानव इतिहास में चित्रकला का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान सदैव ही रहा है। मनुष्य जो भी देखता है उसकी स्मृति बनाये रखना चाहता है। जो चित्रों द्वारा संभव है इसी लिए हमे आज प्रागैतिहासिक मानव के बनाऐ चित्र देखने को मिलते हैं। भिति चित्रण की परम्परा सम्पूर्ण भारत में है लेकिन राजस्थान इस दृष्टि सें अत्यधिक समृद्ध रहा है। यहां के शासकों ने धार्मिक प्रवृति के अनुसार मंदिरों का निर्माण तथा बड़े–बड़े दुर्ग व राजप्रसाद बनवाऐ । यहां के सेठों ने भी अनेक हवेलियों का निर्माण करवाकर इन्हें सुन्दर भित्ति चित्रों सें सुसज्जित करवाया।[6] राजस्थान में बने भित्ति चित्र निश्चित ही अनूठे हैं। उनकी सरलता और सहजता देखकर यहाँ की समृद्धकला परम्परा का आभास अनायास ही हो जाता है।राजस्थान के भवनों में बनाए गए अनेक भित्ति चित्र दो सदी से अधिक समय के होने के बाद भी ताजा लगते हैं। 17वीं सदी से तो इस परम्परा का निरन्तर विकास बैराठ, भावपुरा, मोजमाबाद तथा आमेर में राजा भारमल की छतरी से आरम्भ हो जाता है। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, बूंदी तथा शेखावाटी के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों में 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के भित्ति चित्रों का अथाह भण्डार आज तक विद्यमान है जिनकी शैली किसी अन्य शैली की बजाय अजन्ता परम्परा के रेखागत अभिव्यक्ति का ही अनुसरण करती है। ऐसे भित्ति चित्र सम्पूर्ण राजस्थान के छोटे से छोटे गाँवों में भी देखने को मिल जाते हैं।[7] इन भित्ति चित्रों के मुख्य विषय राजस्थान में प्रचलित लोक कथा साहित्य रहा है। इस साहित्य का राजस्थान के कलाकारों व जनमानस पर गहरा प्रभाव था। यहां बने भित्ति चित्रों में बड़ी संख्या में ढोला – मारू , मूमल– महेन्द्र, जेठवा – ऊजली, बींजा– सोरठ, जलाल–बूबन,राणा काछबो( राणा हमीर),ससी–पन्ना, सैणी – बीजाणंद ,निहालदे और सुल्तान जैसी प्रेम प्रधान लोक कथाओं को चित्रित किया गया है। इसके साथ ही स्थानिय लोक साहित्य में राजस्थान के ऐतिहासिक वीरों व लोक देवताओं की वीरता के बहुत वर्णन मिलते हैं।[8] मध्यकालीन भारत में राजस्थान की भित्तिचित्रकला ने मंदिरों, महलों और हवेलियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये चित्र केवल सजावट के उद्देश्य से नहीं बनाए जाते थे, बल्कि इनमें धार्मिक कथाएँ, वीर गाथाएँ और सामाजिक संदेश भी समाहित होते थे। राजस्थान की प्रमुख चित्रकला शैलियों मारवाड़ और मेवाड़ के चित्रों में पौराणिक कथाएँ और महाकाव्य जैसे रामायण, महाभारत और पुराणों की गाथाएँ चित्रित की गई हैं।इनमें रामायण,महाभारत,गुरू गोरखनाथ ,राजा भरथरी,भक्त पूरणमल,राजा मोरध्वज,राजा गोपीचंद, राजा रसालू,महाराव शेखा जी , डूंगजी जवाहरजी व लोठ जी जाट, जुंझार जी जैसे प्रसिद्ध लोक साहित्य के पात्रों के चित्र भी यहां बहुत अधिक बने हैं। शिल्पकारों और चित्रकारों ने अपनी रचनाओं में रंगों, प्रतीकों और रूपरेखाओं के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण को व्यक्त किया।

इसके अतिरिक्त, राजस्थान की भित्ति चित्रकला ने विभिन्न स्थानीय घटनाओं और ऐतिहासिक युद्धों को भी संरक्षित किया। उदाहरण स्वरूप राजस्थान की हवेलियों में 18वीं और 19वीं शताब्दी के ऐतिहासिक युद्ध,राजस्थान के वीरों की गाथाएँ और सामाजिक जीवन के दृश्य चित्रित किए गए हैं। जिनमे इतिहास प्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, राव चन्द्रसेन, महाराणा सांगा, अमर सिंह राठौड़, रतन सिंह , दुर्गादास राठौड़, हमीर देव चौहान आदि महापुरुषों के चित्र सर्वाधिक बनाए गए हैं। ये वीर अपने स्वाभिमान, स्वतंत्रता, वीरता, त्याग व बलिदान के लिए अमर है। अपने राज्य, प्रजा व धर्म की रक्षा के लिए ये महापुरुष यौद्धा जीवन भर संघर्ष करते रहे और कभी हार स्वीकार नहीं की।[9] ऐसे वीर पुरुषों के जीवन से हमे कठिन समय में भी संघर्ष करते रहने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इन वीर योद्धाओं ने यहाँ की कला व लोक कथा रूपी साहित्य में अपना अमिट इतिहास रच दिया है,जो सदैव आगामी पीढ़ी को प्रेरणा देता रहेगा। वीरता व साहस में राजस्थान की वीरांगनाएँ भी पीछे नहीं रही रानी पद्मिनी ,रानी कर्मावती, फूलकंवर (मेवाड़), रानी रंगदेवी(रणथंभौर)जैसी वीरांगनाओं द्वारा सतित्व की रक्षा के लिए जोहर किये गये। पन्ना धाय द्वारा अपने पुत्र चंदन का बलिदान दिया गया। हाड़ी रानी सहल कंवर द्वारा अपने पति राणा रतन सिंह चुंडावत द्वारा युद्ध में जाते समय सहनाणी (स्मृति चिह्न) मांगने पर अपना शीश काट कर दे दिया । जिसके कारण राणा रतन सिंह चुंडावत रानी के मोह से प्रथक होकर वीरता से युद्ध कर अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में सफल हो सके। राजस्थान के

कलाकारों नें हवेलियों,महलों,छतरियों, मंदिरों की भित्तियों पर इन कथा नायकों के उज्जवल चरित्र को चित्रों के रूप में जीवन्त कर दिया है।चित्रकला केवल सौंदर्य का प्रस्तुतिकरण नहीं, बल्कि इतिहास और लोक संस्कृति का अभिलेख भी ळें लोककथा और चित्रकला का संबंध यहाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भित्तिचित्रों में स्थानीय कथाएँ न केवल धार्मिक या वीर गाथाओं तक सीमित हैं, बल्कि गाँवों के सामाजिक जीवन, त्यौहारों और रीति–रिवाजों को भी चित्रित किया गया है। इस प्रकार राजस्थान की चित्रकला एक सजीव सांस्कृतिक पहचान के रूप में कार्य करती है, जो लोक कथा साहित्य की समृद्ध परंपरा से गहराई से प्रभावित है। इस समृद्ध कला के प्रमाण हमें उदयपुर जोधपुर ,नागौर व शेखावाटी क्षेत्र के नवलगढ़ ,डूंडलोद, मण्डावा,सीकर, रामगढ़, बिसाऊ, लोसल, अलसीसर,मलसीसर, झुंझुनूं, खेतड़ी आदि स्थानों के मंदिरों , महलों, छतरियों व हवेलियों की भित्तियों पर बने सुन्दर चित्रों सें स्वतः ही मिल जाते हैं।

लोक कथाओं का प्रभाव राजस्थान के भित्ति चित्रों में विषय चयन और शैली दोनों पर स्पष्ट दिखाई देता है। वीर गाथाओं और युद्धकथाओं के चित्रों में तेज और गहरे रंगों का प्रयोग होता है, जबकि धार्मिक कथाओं और देवी–देवताओं के चित्रों में हल्के और शांत रंगों का चयन किया जाता है। इसके अलावा, प्रत्येक चित्र में प्रतीकात्मक तत्वों का समावेश किया जाता है, जो कथाओं की नैतिक, धार्मिक और सामाजिक संदेश को दर्शाता है। राजस्थान के भित्ति चित्र केवल सजावटी कला नहीं है; यह लोक संस्कृति का ऐतिहासिक दस्तावेज भी है। चित्रों के माध्यम से, भित्ति चित्रकार स्थानीय समाज के रीति–रिवाज, त्योहार और सामाजिक मूल्य को भी  चित्रित करते हैं। इसी कारण शेखावाटी की भित्ति चित्रकला  लोक कथाओं और लोक जीवन के बीच एक स्पष्ट कड़ी स्थापित करती है। शेखावाटी के भित्तिचित्र कला और लोक कथाएँ एक–दूसरे के परिपूरक हैं, जो राजस्थान की सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को जीवित बनाए रखती हैं।

ढोला मारू कथा का एक दृश्य,महावीर प्रसाद की हवेली, फतेहपुर, सीकर, 19वीं सदी

### (3) फड चित्रण पर प्रभावः–

राजस्थान के रणबांकुरों की वीरता इतिहास प्रसिद्ध है। निराशा और परिस्थिति के सामने झुकना इन्होंने कभी नहीं सीखा। वीरता से सम्बन्ध रखने वाली लोक कथाएँ राजस्थान में सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध होती हैं। यहां ऐसे असंख्य शूरवीर हुए हैं जिन्हें इतिहास ने चाहे भुला दिया हो लेकिन राजस्थान के लोगों ने लोक कथाओं में इनकी उज्जवल कीर्ति को आज भी अमर बनाये रखा है जिनमें वीर तेजा जी,पाबू जी, गोगा जी, रामदेव जी, ,देवनारायण जी , जुझार जी, रावत रतन सिंह व हाड़ी रानी का नाम आदर से लिया जाता है। इन कथाओं से गौरक्षा, मातृभूमि की रक्षा, धर्म की रक्षा, वचन के लिए प्राण उत्सर्ग करने की प्रेरणा मिलती है। इन समाज की सेवा के कार्यों को करने के कारण ही आज ये महापुरुष लोक देवताओं के रूप में गाँव–गाँव में पूजे जाते हैं। राजस्थात के स्थानिय मौखिक व लिखित लोक कथा साहित्य में वर्णित लोक देवताओं के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को कलात्मक फड़ चित्रण के रूप में चित्रित करने का कार्य पिछले सात–आठ सौ वर्ष पूर्व सें शाहपुरा (भीलवाड़ा) के जोशी चितेरों द्वारा किया जा रहा है।

राजस्थान में इस लोक–कला शैली को मान्यता दिलाने वाले विश्वविख्यात फड़ कलाकार भीलवाड़ा के श्री लाल जोशी के अनुसार उन्हीं के पूर्वजों ने सर्वप्रथम इस शैली को विकसित किया था। चित्रकला की इस अनूठी शैली का जन्म मेवाड़ स्कूल की लोककला शैली के रूप में हुआ। हवेलियों और राजमहलों की दीवारों पर अपनी छाप बिखेरती मौन–मूक इस कला को ख्यातिनाम फड़ कलाकार श्री लाल जोशी के पूर्वजों ने रोचक बनाकर कपड़े पर उतार दिया और यही इसका वर्तमान स्वरूप है। मेवाड़ी भाषा में कपड़े के टुकड़े पर चित्रित 'कथा' को पड़ कहते हैं जो कि संस्कृत के 'पट' (वस्त्र) का ही अपभ्रंश है। पड़ या फड़ का अर्थ पढ़ने से या वाचन से भी है। राजस्थान की समृद्ध लोक संस्कृति में पड़ या फड़ बांचने या पढ़वाए जाने की एक विशेष परम्परा है जो कि मनौती के रूप में किसी अनिष्ट की आशंका दूर करने हेतु सामुहिक रूप से प्रायः देवी–देवताओं से सम्बन्धित तिथि पर ही आयोजित की जाती है। लगभग 30 फुट लम्बी और पांच फुट चौड़ी कथा चित्रित फड़ को बांसों के सहारे तान दिया जाता है। कथा को सुर ताल और लय के साथ गायन के रूप में पढ़ा जाता है। फड़ के गायकों को भोपा कहते हैं। प्राचीन काल में भोपे गाँवों में जाकर वीरों की शौर्य–गाथा, विरुदावली सुनाते थे, उन्हीं कथाओं को वस्त्र पर चित्रित करके इन्हें दृश्य–श्रृव्य बना दिया गया। फड़ रात्रिकाल में बांची जाती है तो भोपि हाथ में एक डण्डे पर लटकता दीपक लिये रहती है जिसके उजाले में चित्र चमकते हैं। इस प्रकार गायी गई घटना और चित्र में ऐसा सामंजस्य होता है कि श्रोता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भोपे के अन्य साथी ढोलक, मंजीरा, अलगोजा, थाली, जंतर, चींपीया व रावणहत्था आदि लोक–वाद्य यंत्र बजाते हैं। मुख्य गायक भोपा लाल रंग की कोर लगी अंगरखी, धोती और साफा बांधकर अपने पूर्ण उत्साह के साथ स्वरों में फड़ चित्रित घटना के अनुरूप गायन में उतार–चढ़ाव का क्रम बनाये रहता है और लयबद्ध कथा–गाथा को श्रद्धालु भावविभोर होकर देखते–सुनते हैं। भोपा फड़ चित्र के द्वारा धार्मिक उत्सवों और सामाजिक समारोहों में प्रदर्शन के माध्यम से स्थानीय लोक कथा साहित्य का प्रचार करते हैं।[10] देवनारायण जी की फड़ सबसे लंबी फड़ है।राजस्थान के मारवाड़ में पाबूजी की फड़ प्रसिद्ध हैं। मारवाड़ में पाबूजी राठौड़ एक वीर व लोक देवता के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। उन्होंने वचन पालन करने के लिए अपने विवाह के समय बीच में ही उठकर गायों की रक्षा की थी।गायों की रक्षा में ही ये काम आये।अब लोक देवता के रूप में पूजे जाने लगे हैं। मारवाड़ के भोपों ने पाबूजी की प्रशंसा में लम्बे–लम्बे गीत बनाए हैं ये पवाडे कहलाते हैं। ये फड़ के सामने गीतों को गाकर सुनाते हैं। फड़ के ऊपर पाबूजी के जीवन चरित्र की झांकियाँ चित्रित रहती हैं।

देवनारायण जी की फड़, शाहपुरा ,भीलवाड़ा

ये चित्र मोटे खादी या रेजा के सूती कपड़े पर कलफ लगाकर उसकी छुटाई के पश्चात बनाए जाते हैं। चित्रों में मुख्यतः पाँच या सात रंगों का प्रयोग होता है। सबसे पहले सिन्दूरी रंग शरीर में, हरा व लाल वस्त्रों में ,भूरा रंग वास्तु निर्माण में एवं अंतिम बाहय रेखाऐं काले रंग से बनाई जाती है। नील, पेवडी, हिरमिच, काजल, हिंगलू आदी स्थानिय रंगों का प्रयोग किया जाता है। फड़ में मुख्य नायक लोक देवताओं को अस्त्र–शस्त्रों सें सुसज्जित व मूछों युक्त प्रभावशाली चेहरे के साथ अन्य चरित्रों सें

बड़े आकारों में चित्रित किया जाता है। फड़ में विभिन्न खण्डों में विभाजित चित्रों की आकृतियों के चेहरे गोल व हाथ–पैर गोलाई लिये हुए होते हैं। इन आकृतियों के पैर के पंजे लम्बे बनाये जाते हैं। इन आकारों को राजस्थानी वेशभूषा से सुसज्जित बनाया जाता है। पारम्परिक आभूषण से युक्त इन आकृ तियों के नयन मादकता लिए होते हैं। इन आकृतियों की नासिका छोटी, होंठ पतले बनाये जाते हैं। इन फड चित्रों में ऊँट एवं घोड़े का अंकन आवश्यक रूप से किया जाता है। इस समृद्धिशाली लोक परम्परा में चित्रकला, संगीत कला एवं नृत्य कला व नाट्य कला का समन्वय देखने को मिलता है। प्रस्तुति देने वाले कलाकार भोपा,भोपी या दियाला कह कर सम्बोधित किये जाते है। शाहपुरा भीलवाड़ा में बने प्राचीन मंदिर एवं भवनों में भी फड़ चित्र बने हैं जिन पर लोक प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। शाहपुरा भीलवाड़ा में दिलखुशहाल बाग में बने प्राचीन धोबियों का देवरा में ये चित्र भित्ति पर देखने को मिलते हैं।राजस्थान में मुख्यतः पाबूजी , देवनारायण जी, रामदेव जी, तेजा जी, रामायण , कृष्ण लला,माताजी कि फड़ अधिक बनाई जाती है। वर्तमान में श्री कल्याण जोशी , गोपाल जोशी फड़ चित्र कला को प्रसिद्धि दिला रहे हैं।श्री कल्याण जोशी नें हालही में विश्व की सबसें बड़ी फड़ बनाकर दिल्ली में प्रस्तुत की इसकी सराहना राष्ट्रपति द्रोपदी मुर्मू ने भी की।[11] फड़चित्रों की प्रमुख विशेषता यह है कि ये चित्र उस समय के मोबाइल अथवा टेलीविजन की तरह होते थे। भोपाओं के गीतों के साथ चित्रित फड़ को विभिन्न गाँवों में प्रदर्शित किया जाता था,जिससे कला और कथा का एक गतिशील संवाद स्थापित होता था। चित्र और कथा एक–दूसरे के पूरक हैं, और दर्शक कलाकारों द्वारा गाए जाने वाले गीतों के माध्यम से कहानी को समझते थे। इस प्रक्रिया में चित्रकला केवल दृश्य सामग्री नहीं रहकर सजीव शिक्षा और लोक स्मृति का साधन बन जाती है। फड़ चित्रकला राजस्थान की लोक संस्कृति और परंपरा के लिए एक सजीव और गतिशील मंच प्रस्तुत करती है। यह कलारूप स्थानीय लोक कथाओं और समाज के धार्मिक–सांस्कृतिक अनुभवों का दृश्य और श्रवणीय रूपांतरण करती है, जिससे स्थानीय लोक कथा साहित्य और चित्रकला की आपसी निकटता स्पष्ट होती है। फड़चित्र कला परम्परा पूर्ण रूप सें स्थानिय लोक कथा साहित्य पर ही टिकी हुई है। बिना लोक कथा साहित्य की प्रेरणा के ऐसी अदभुद कला की उत्पत्ति की कल्पना सायद ही कोई कर सकता था।

लोक कथा साहित्य का प्रभाव न केवल चित्रकला के विषय और शैली पर पड़ता है, बल्कि सांस्कृतिक प्रसार और संरक्षण में भी देखा जा सकता है। लोक कथाओं ने इन शैलियों को जीवन्तता और सामाजिक पहचान दी है। इस प्रकार, राजस्थान की चित्रकला और लोक कथा साहित्य के बीच का संबंध बहुआयामी है। यह केवल प्रेरणा या विषय तक सीमित नहीं, बल्कि शैली, रंग, प्रतीक, प्रदर्शन और सामाजिक प्रसार तक फैला हुआ है। लोक कथाएँ कला को अर्थ देती हैं और कला कथाओं को स्थायित्व और दृश्य शक्ति प्रदान करती हैं, जिससे राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर एक जीवंत रूप में संरक्षित रहती है।

**निष्कर्ष** – राजस्थान भारत की सांस्कृतिक धरोहर का एक अनोखा प्रतीक है, जहाँ लोककथा साहित्य और चित्रकला ने सदियों से परस्पर एक–दूसरे को प्रभावित किया है। इस क्षेत्र की चित्रकला केवल रंगों और रेखाओं का संयोजन नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत सामाजिक दस्तावेज़ के रूप में भी कार्य करती है।स्थानीय लोक कथाएँ और आख्यान समाज के सामूहिक अनुभव, आस्था और मूल्य प्रणाली को संजोए हुए हैं। इन्हीं लोक कथाओं का प्रभाव राजस्थान की विविध चित्रकला शैलियों,भित्तिचित्र,फड़ और लघु चित्रों में स्पष्ट रूप सें देखा जा सकता ळें राजस्थान की चित्रकला और लोक कथा साहित्य का संबंध केवल कलात्मक प्रेरणा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान और धार्मिक आस्थाओं का अभिन्न हिस्सा है। भित्तिचित्र, फड़चित्र और लघु चित्रकला जैसी विभिन्न शैलियों ने लोक कथाओं को दृश्य रूप में प्रस्तुत करके उन्हें पीढ़ियों तक जीवित रखा है। लोक कथा साहित्य ने चित्रकला को कथा के महत्त्वपूर्ण पात्र और प्रतीकों की दृष्टि से समृद्ध किया है उसी प्रकार चित्रकला ने भी लोक साहित्य को दृश्यात्मक और स्थायी रूप दिया। इस प्रकार दोनों परंपराएँ मिलकर एक ऐसे सांस्कृतिक संवाद का निर्माण करती हैं,जिसमें कला और साहित्य एक–दूसरे के पूरक बन गए हैं।

संदर्भ ग्रंथः–

1. शर्मा, कृष्ण कुमार : राजस्थानी लोक गाथा का अध्ययन,जयपुर,1972 , पृ. सं. 34–38

2. नाहटा, भंवरलाल का लेख, "वरदा" (त्रैमासिक), वर्ष–6, अंक–3, बिसाऊ ,झुंझुनूं (राजस्थान), जुलाई 1963, पृ.सं. 20

3. गोस्वामी,प्रेमचन्द्रः राजस्थानः संस्कृति, कला एवं साहित्य (रा. हि.ग्र.अ. ) जयपुर,2013, पृ. सं. 69–70

4. शर्मा, गोपीनाथः भारतीय चित्रकला और राजस्थान, वार्षिकी '63' ,(रा.ल.क.अ.) जयपुर, पृ.सं. 23 एवं Tillotson, Giles : The Rajput Palaces, The Development of an Architectural Style, 1450 & 1750, Yale University Press, 1987, P- 24, 81

5. चौधरी , बाबूलाल : राजस्थान की कला में लोक कथाओं का चिजण : एक अध्ययन (अप्रकाशित शोध ग्रंथ), चित्रकला विभाग,राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,2022, पृ.सं. 231– 239

6. गैरोला, वाचस्पति : भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास,2009 , इलाहाबाद, पृ.सं.– 12 एवं गोयल, राम गोपालः राजस्थानी प्रेमाख्यान परम्परा एवं प्रगति, जयपुर,1969, पृ.सं. 28–84

7. नीरज, जयसिंह : राजस्थानी चित्रकला, जयपुर,1998, पृ.सं. 22–24

8. नीरज , जयसिंह एवं शमा, बी.एल. : राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा ,(रा.हि.ग्र.अ.) जयपुर ,1989, पृ.सं 217

9. मरु–भारती, वर्ष–5, अंक–3, पिलानी (झुंझुनूं), अक्टूम्बर 1957, पृ.सं. 29–30

10. माथुर, कमलेश : पारम्परिक कला एवं लोक संस्कृति, जयपुर, 2010, पृ.सं. 88–90

11. गुप्त, हृदय : देशज कला, रा.हि.ग्र. अकादमी, जयपुर, 2010, पृ.सं. 53–54

12. Kothari, Komal : Oral Traditions and Folk Narratives in Rajasthan, Indian Folklore Studies, vol- 12, no- 3, 1995, p- 45 & 87

41

# राजस्थान की लोककला एंव लोकसाहित्य - लोकजीवन की अभिव्यक्ति

डॉ. दीपिका माली
सहायक आचार्य, दृश्यकला विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

**शोध सार** – राजस्थान की संस्कृति सदियों से एक अविरल सरिता की भांति प्रवाहित हो रही है, जिसका मूल लोकजीवन में निहित है। लोककला और लोकसाहित्य इस संस्कृति के दो प्रमुख आधार हैं, जो जनमानस की भावनाओं, विचारों और अनुभवों की सजीव अभिव्यक्ति करते हैं। लोककला जहाँ रंग, रेखा, आकार और शिल्प के माध्यम से लोकजीवन की सौंदर्य चेतना को प्रकट करती है, वहीं लोकसाहित्य शब्दों के द्वारा जनजीवन के आनंद, दुख, प्रेम, भक्ति और संघर्ष को स्वर देता है। दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं, साहित्य से कला को प्रेरणा मिलती है और कला साहित्य को दृश्यरूप प्रदान करती है।

राजस्थान की लोक परंपराओं में फड़, कावड़, मांडना, सांझी जैसी कलाएं धार्मिक और सामाजिक प्रसंगों से जुड़ी हैं। फड़ चित्रकला में गोगाजी, पाबूजी, रामदेवजी जैसे लोकदेवताओं की गाथाएँ अंकित की जाती हैं, वहीं कावड़ कला में पौराणिक कथाओं को लकड़ी पर उकेरा जाता है। मांडना और सांझी जैसी कलाएं स्त्रियों की सृजनशीलता और श्रद्धा का प्रतीक हैं। इसी प्रकार लोकसाहित्य में लोकगीत, लोककथाएँ, लोकनाट्य, कहावतें और पहेलियाँ लोकजीवन की विविधता और समृद्धि को प्रकट करती हैं।

राजस्थान के लोकगीत जैसे ढोला–मारू, गोरबंद, कुरजन, पिणहारी आदि जीवन के हर अवसर से जुड़े हैं। विवाह, ऋतु परिवर्तन, त्योहार, श्रम या भक्ति सभी में इनकी उपस्थिति है। लोककथाएँ और कहावतें लोकबुद्धि और व्यवहारकुशलता की प्रतीक हैं। इन सबके माध्यम से समाज के नैतिक मूल्य, लोकविश्वास और परंपराएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचारित होती हैं।

निष्कर्षतः, राजस्थान की लोककला और लोकसाहित्य न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि यह समाज की संस्कृति, इतिहास और मानवीय संवेदनाओं का दर्पण भी हैं। इन दोनों की संगति में राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत सजीव बनी रहती है, जो लोकजीवन की आत्मा और भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर का प्रतीक है।

**बीज शब्द** – लोक कला, लोक साहित्य, लोकजीवन, पंरपरा, लोकगीत, कावड़, फड़

**मूल आलेख** – हजारों वर्षों से चली आ रही सरिता के समान देश की संस्कृति अनवरत् बहती जा रही है। संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है लोक। और लोगों के दैनिक जीवन में घटित होती गतिविधियां लोक परंपराओं के रूप में प्रचलित है। लोककला और लोकसाहित्य लोकजीवन के अभिव्यक्ति के दो महत्वपूर्ण माध्यम है यह दोनों ही लोकजीवन की भावनाओं, अनुभव और मूल्यों को अभिव्यक्त करने में मदद करते हैं। लोककला और साहित्य न केवल लोकजीवन की संस्कृति और परंपरा को प्रतिबिंबित करते हैं बल्कि यह लोकजीवन की विविधता और समृद्धि को भी दर्शाते हैं। लोककला और लोकसाहित्य के महत्व को समझने के लिए हमें लोकजीवन की विविधता और समृद्धि को समझना होगा। आज के समय में लोक कला अनुभवों, भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को साकार रूप देने का कार्य करती हैं। जहाँ साहित्य शब्दों के माध्यम से संवेदनाओं को व्यक्त करता है, वहीं कला रंग, रेखाओं और आकारों के द्वारा उन भावनाओं को दृश्य रूप प्रदान करती है। इतिहास गवाह है कि कला और साहित्य ने हमेशा एक–दूसरे को प्रेरित किया है। साहित्य में लेखक शब्दों और बिंबों का प्रयोग करके एक ऐसी कल्पनात्मक दुनिया रचता है, जिसे पाठक अपने मन में देख सकता है। दूसरी ओर, कलाकार उन्हीं भावनाओं को अपनी कला में मूर्त रूप देता है। अनेक चित्रकारों ने प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों से प्रेरणा लेकर अपने चित्रों की रचना की है।

**कला और साहित्य का यह अंतर्संबंध समाज में इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मानव अनुभवों को समझने और अभिव्यक्त करने के विविध अवसर प्रदान करता है। इन दोनों विधाओं के माध्यम से समाज की संवेदनाएँ, संघर्ष, प्रेम, करुणा और विरोध के स्वर उभरते हैं। साथ ही, कला और साहित्य दोनों ही सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने की क्षमता रखते हैं। वे व्यक्ति को सोचने, प्रश्न करने और नए दृ ष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। कलाकार और लेखक मिलकर न केवल सुंदरता की रचना करते हैं, बल्कि समाज में परिवर्तन की चेतना भी जगाते हैं।**

जहां एक और लोककला के विभिन्न रूप जैसे की चित्रकला, मूर्तिकला और शिल्पकला लोकजीवन की संस्कृति और परंपरा को प्रतिबिंबित करते हैं वहीं दूसरी ओर लोकगीत, लोक कलाएं, लोक साहित्य के रूप में संस्कृति और परंपरा को प्रस्तुत करते हैं। साहित्य की भांति सभी कलाओं का उद्गम स्थल लोक ही है। उसी की धारा कला के मूल को अनजाने ही सिंचती रहती है। भारतभर में लोक साहित्य का विकास स्थानीय भाषाओं में हुआ है इसी तरह राजस्थान में मेवाड़ी, मारवाड़ी, हाडोती, ढूंढाड़ी, मालवी एवं वागडी भाषा में लोग साहित्य की रचना हुई है। राजस्थान के लोक साहित्य की अभिव्यक्ति लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोकनाट्य, लोककथाएँ, पहेलियाँ और कहावतों जैसी विविध विधाओं के माध्यम से होती है। पहेलियाँ जो प्रश्न–उत्तर के रूप में होती हैं और बुद्धि तथा हास्य–विनोद से भरपूर होती हैं। कहावतें ये जीवन के व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित व्यंग्यात्मक और तार्किक कथन होते हैं, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। भारत के अन्य प्रांतो की तरह राजस्थान भी कहावतों का विपुल भंडार है। राजस्थानी कहावतें बड़ी अमूल्य हैं। जो जनजीवन के व्यवहार कुशलता की कुजिंया हैं।

**आधी नै छोड़ आखी भावै तो आधी ई जावै।** अर्थात् अत्यधिक लोभ नुकसानदायक होता है। राजस्थानी कहावत की ये पक्ति मनुष्य को जीवन में लोभ न करने की सिख देती है। **यह कहावत हमें सिखाती है कि हमें संतोष रखना चाहिए और लोभ से दूर रहना चाहिए।**

**राजस्थानी चित्रकला में धार्मिक ग्रंथों और लोक कथाओं को अत्यंत सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है। रामायण, महाभारत, गीत गोविंद जैसे प्रसिद्ध महाकाव्यों पर आधारित चित्रों का सृजन यहाँ व्यापक रूप से हुआ। इन चित्रों में लोक साहित्य और लोक कला दोनों के दर्शन एक साथ होते हैं।**

**इन कलाकृतियों में देवी–देवताओं, राजाओं, रानियों, प्रेमी–युगलों और लोकनायकों के भावों को सूक्ष्म रेखांकन, चमकीले रंगों और बारीक अलंकरण के माध्यम से व्यक्त किया गया है। साथ ही, लोक कला में भी काल्पनिक और पौराणिक कथाओं के प्रतीकात्मक रूप देखने को मिलते हैं, जो लोकमानस की कल्पनाशक्ति और विश्वासों को दर्शाते हैं।**

**राजस्थानी चित्रकला का हर रंग, हर आकृति और हर भाव लोक संस्कृति की आत्मा से जुड़ा हुआ है। इसमें न केवल धार्मिक आस्था झलकती है, बल्कि सामाजिक जीवन, त्यौहार, वेशभूषा, संगीत और नृत्य जैसी परंपराएँ भी चित्रों के माध्यम से जीवंत हो उठती हैं।** लोककलाएं, लोकसाहित्य की अभिव्यक्ति के लिए जन साधारण तक प्रसारित करने के लिए उत्कृष्ट माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती है। लोक कलाएं परम्परा की तरह एक पीढी से दूसरी पीढी में हस्तातंरित होती रहती है। स्वाभाविक रूप से यह सतत् चली आ रही है। जो अनायास ही अवसर के अनुरूप प्रस्फुटित होती रहती है। लोक कलाओं का जन्म किसी एक कलाकार के बजाय समुदाय में होता है और यह समाज के दैनिक जीवन, त्यौहारों, धार्मिक अनुष्ठान और परंपराओ से जुडी होती है।

राजस्थान की लोक संस्कृति विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जनमानस के मनोरंजन के लिए अनेको साधनों के अर्न्तगत पर्व और उत्सवों का महत्वपूर्ण स्थान है। लोककला की छलकती हुई रसधारा राजस्थानी चित्रों के साथ साथ धर्म व रीति रिवाजों में भी छलकती है। जिसकी छाप राजस्थानी लोक कला में स्पष्ट दिखाई देती है। राजस्थान के लोक प्रसिद्ध वीर लोक देवताओं की वीरता की गाथाओं को वर्षों से भक्तजन के हृदय तक पहुंचाने के लिए चित्रित कथानकों का प्रयोग किया जाता है। इन चित्रों में लोक देवता गोगाजी, पाबूजी, हड़बूजी, रामदेवजी आदि प्रमुख विषय हैं। फड़ चित्रों को रचने वाले कलाकार लोक गाथा को प्रसंग अनुसार कई भागो में विभाजित कर कपड़े पर लगभग बारह फीट लंबे व चार फीट चौड़े पट पर लाल, पीले, हरे आदि रंगों से चित्रित करते है। साहित्य एवं कला के इस अद्भुत संगम में राजस्थान की उद्धत संस्कृति दृष्टिगोचर होती है।

फड़ कला की तरह बस्सी चित्तौड़गढ़ की प्रसिद्ध कावड़ कला है। विभिन्न दरवाजों में खुलने व बंद होने वाली मंदिरनुमा काष्ठ कलाकृति है जिस पर अनेक प्रकार के धार्मिक व पौराणिक कथाओं से संबंधित देवी देवताओं के प्रमुख प्रसंग चित्रित होते है। कावड़ का वाचन करते समय एक–एक फलक पर चित्रित कथा को वाचन करते हुए पट खोले जाते हैं।

इसी प्रकार से श्राद्ध पक्ष के पंद्रह दिनों तक दीवारों पर बनाई जाने वाली सांझी कला जिसमें कुंवारी कन्याएं अपने पितरों के स्वागत हेतु घर की दहलीज पर सांझी बनाती है एवं उन्हें फूल मालीपन्ने आदि से सजाकर उनकी पूजा अर्चना करती है। विशेष पर्व एंव धार्मिक उत्सवों पर आंगन में बनाए जाने वाले माडनों में भी देवी देवताओं की सांकेतिक रूप उकेरे जाते हैं। मांडना कला जिसमें स्त्रियां भिति या जमीन पर गेरू, खडिया से आडी–तिरछी रेखाओं से आकृति बनाती है, इन सफेद व लाल रंगो में निर्मित ये आकृतियां विभिन्न अभिप्राय लिए होती है। जिनमें पगल्या, पुष्प, दीपक, त्रिभुज, वृत, स्वास्तिक, चौकडी आदि विशेष बनाई जाती है। वहीं दूसरी और आदिवासी घरों में बनाए जाने वाली लोक चित्रकला में विभिन्न कथा कहानियों के प्रतीक रूपों के दर्शन होते हैं। मानव ने अपने हृदय में उठने वाली लहरों को अभिव्यक्त करने के लिए मनोरंजन का उपयोग किया। विभिन्न पर्वों पर किए जाने वाले लोक नृत्य इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं राजस्थान में कई प्रकार के सामूहिक व युगल लोकनाट्य प्रचलित है। वाद्य यंत्रों में लोकगीतों की ताल के साथ जनमानस आनंद से सरोबार हो जाता है। मेवाड़ का प्रमुख लोकनाट्य गवरी है जो की शिव पार्वती की कथा पर आधारित है। सावन–भादो मास में चालीस दिन तक किए जाने वाला इस लोकनाट्य में विभिन्न प्रसंगों को विभिन्न किरदारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है अन्य लोकनाट्य जिसमें ख्याल, स्वांग, रम्मत जैसी विधाएं शामिल हैं, जो लोकगाथाओं और लोककथाओं का नाटकीय रूपांतरण प्रस्तुत करती हैं।

कलाकार रंग, रेखा, शिल्प आदि माध्यमों से अपने विचार और भावनाएँ व्यक्त करते हैं। वास्तव में कला का स्पर्श वेद, वेदांग, काव्य सभी में देखा जा सकता है। वेद, उपनिषद, पुराण, इतिहास, काव्य, चित्र, संगीत, शिल्प और स्थापत्य ये सभी कला के अंग हैं। कला का आरंभ तब माना जा सकता है जब मानव ने लिखना शुरू किया और अपने मनोभावों को लिखित या दृश्य रूप में अभिव्यक्त किया। इस प्रकार, कला न केवल सौंदर्य और सृजन का माध्यम है, बल्कि मानव अनुभव, ज्ञान और संस्कृति का संग्रह और प्रकटिकरण भी है।

राजस्थान के साहित्य में लोकगीतों के रूप में अनमोल रतन के भंडार भरे हुए हैं प्रमुख देवी देवताओं पर रचित गीतों में देवी देवताओं के साथ ही यहां के जनमानस के जीवन के विभिन्न पक्ष बड़ी सहजता के साथ प्रतिबिंबित होते हैं भक्ति रस का संचार करने वाले संत कबीर, दादू दयाल, मीराबाई द्वारा लिखे गए पद्यों को भी यहां भजन के रूप में गाया जाता है। पाबूजी व अन्य लोक नायकों की लोक कथाएं ढोला मारू, नाग नागवंती, निहाल दे सुल्तान आदि प्रेम कथाएं भी बड़े उत्साह के साथ गाई जाती है। यह लोकगीत मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है साथ ही राजस्थान की साहित्य संरक्षक भी। राजस्थान के प्रमुख लोकगीतों में जल्लो, हिचकी, सुपनो, ओल्युं, पिणहारी, कुरजन, उमराव, गोरबंद आदि हैं जिन्हें सुंदर शब्दों में पिरोकर भावों में अभिव्यक्त किया गया है।

वस्तुतः लोकजीवन को केंद्र में रखकर ही लोकगीतों का उद्भव हुआ है। लोकगीतों का उद्भव उतना ही पुराना है जितना की मानव जीवन। लोकगीत मौखिक परम्परा में जीवित रहते हैं। लोकगीतों में लोकजीवन से सम्बन्धित कोई भी विषय अछूता नहीं छोड़ा गया है। लोकगीतों का वर्गीकरण प्रकृति संबंधित, विवाह संबंधित, पारिवारिक संबंधित, संस्कार संबंधित, धार्मिक संबंधित और विविध विषयों के आधार पर किया जा सकता है। वंसत में धरती नवीन श्रृंगार करती है तो लोक (जनता) भी गैर और घूमर जैसे लोकगीत गाकर नृत्य किये जाते है। श्रावण–भादो में बरसाती रातों में विरहणी अपने प्रियतम की राह देखती है, लोकगीतों में व्याकुल होती नायिका के उद्गार देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार नवरात्रा आदि त्यौहारों पर देवी–देवता के गीत और वैसाख मास में लोकगीतों द्वारा पूर्वजों के चरित्र का बखान कर उन्हें रिझाया जाता है। लोकजीवन का कोई भी अवसर लोकगीतों से रहित नहीं होता है।

इसमें प्रकृति संबंधित लोकगीत के अंतर्गत ऋतुओं, बारहमास पर आधारित गीतों को गाया जाता है।

**मत वाओ म्हारा परणिया जीरो, यो जीरो जीव रो बैरी है।**

जीरे की फसल उगाने में आने वाली कठिनाईयों को बताते हुए नायिका, नायक को जीरे की फसल नहीं उगाने का आग्रह कर रही है।

लोकगीत सीधे लोक का संगीत है। जिससे सभी रसों की अनुभूति होती है। लोकगीत हर वर्ग की अपनी परंपराओं से जुड़े गीतों का गुलदस्ता होता है, जिसे जन्म से लेकर मरण तक गाया जाता है। इन लोकगीतों में जहां सामाजिक मूल्यों का दर्शन होता है, वहीं धार्मिक भावनाएं और लोक विश्वास की झलक भी दिखाई देती है। हर ऋतु में प्रकृति में परिवर्तन घटित होता है, लोकगीतों का एक और हिस्सा है, जो ऋतुओं की बदलाव का संदेश लोक समाज तक पहुंचा देता है। लोकगीत लोक समाज के आचार– अनुष्ठानादि को वैचित्र्य और जीवन शक्ति से भर देते हैं।

इसी कारण साहित्य और कला दोनों के अभिप्राय भी अनेक बार प्राय एक ही रहे हैं साहित्य में निरंतर कला के लक्षणों और उनके अनुकृतियों का उल्लेख हुआ है और कला के अनेक भाव विशेष साहित्य से लेकर लिखे, खींचे या उकेरे गए हैं।

निष्कर्षतः राजस्थान के लोक साहित्य और लोक कला एक–दूसरे के पूरक हैं। जहाँ एक ओर लोक साहित्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए लोक कलाओं की सहभागिता पर निर्भर करता है, वहीं विषय–वस्तु के दृष्टिकोण से भी लोक साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य और कला का आपसी समन्वय इस बात को स्पष्ट करता है कि दोनों की रचना समाज द्वारा और समाज के लिए की जाती है।

कथा–काव्य और लोकगीत जैसे ढोला मारू, नल दमयंती, पंचतंत्र, विल्हण चंपावती आदि, कला और साहित्य दोनों में अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभवों को मूर्त रूप देते हैं। इन लोक संस्कृतियों में सहज मनोभाव, चारित्रपूर्ण नीतियाँ और जीवन की नाना प्रकार की अनुभूतियाँ जैसे हीरे–मोती बिखरे हुए मिलते हैं।

इस प्रकार, लोक कला और लोक साहित्य लोक जीवन के अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन हैं। ये न केवल लोक जीवन की संस्कृति, परंपरा और भावनाओं को जीवित रखते हैं, बल्कि समाज के अनुभव, मूल्यों और नैतिक शिक्षा को भी प्रदर्शित करते हैं।

लोक साहित्य की अभिव्यक्ति विभिन्न विधाओं में होती है लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोकनाट्य, लोककथाएँ, पहेलियाँ और कहावतें जो राजस्थान की संस्कृति, परंपरा और जनजीवन की जीवंत झलक प्रस्तुत करती हैं।

इस प्रकार, राजस्थान का लोक साहित्य और लोक कला समाज की सांस्कृतिक धरोहर और मानवीय अनुभवों का अमूल्य दस्तावेज हैं।

## सन्दर्भ

1. लोक : पीयूष दईया , भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, 2002।
2. जनजातियों के धार्मिक सरोकार, डॉ. महेन्द्र भानावत, मुक्तक प्रकाशन, उदयपुर, 2006।
3. संस्कृति के रंग : डॉ. महेन्द्र भानावत, मुक्तक प्रकाशन, उदयपुर,।
4. कला और साहित्य : कैलाश दहिया, सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय, 2009।
5. भारतीय कला के अतंरर्सबंध : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, राष्ट्यि पुस्तक न्यास, 2020।
6. कला विचार : ज्योतिष जोशी, यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019।
7. राजस्थान संस्कृति, कला एंव साहित्य : डॉ. प्रेमचंद गोस्वामी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010।

42

# अतियथार्थवाद से प्रभावित गणेश पाइन की कला मे साहित्य का योगदान

डॉ. रीतिका गर्ग
सहायक आचार्य
चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

दिव्या सुथार
शोधार्थी
चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

**सारांश :-**

कला अपने बहुआयामी रूपों में अनेक विधाओं को समेटे हुए हैं। इन विधाओं का परस्पर जुड़ाव और एक–दूसरे को प्रभावित करने का हजारों वर्षों पुराना इतिहास रहा है। भारतीय कला जगत में भी अनेक चित्रकारों ने अपने कार्यों में साहित्य से प्रेरणा ली हैं, जिनमें से एक कलाकार गणेश पाइन भी है। पाइन की कला में साहित्य का योगदान पौराणिक और समकालीन दोनों काल खण्डों में ही रहा है, चाहे फिर समकालीन लेखकों की रचनाऐं हो या धार्मिक पौराणिक कथाऐं। वे अंतर्मुखी व्यक्तित्व के थे, जो अवचेतन में छिपी अतीत की घटनाओं को कल्पना के माध्यम से प्रकट करते थे। बचपन में अपनी दादी से सुनी लोककथाओं और परियों की कहानियों ने उनकी कल्पना को आकार दिया, जो बाद में 'काव्यात्मक अतियथार्थवाद' के रूप में सामने आया। इन साहित्यिक और लोककथा संबंधी प्रभावों के कारण ही पाइन की कला में दृश्य सौंदर्य ही नहीं, बल्कि गहरी भावनात्मकता और दार्शनिकता भी थी। रहस्यमयी वातावरण को प्रकट करने के लिए धूसर रंगों का प्रयोग और मृत्यु, कंकाल, भय, भ्रम, विचित्र आकृतियां उनके अवचेतन के बिम्बों व मिथकों का प्रकटीकरण रहा हैं।

**प्रमुख शब्द :-** काव्यात्मक अतियथार्थवाद, साहित्य, पौराणिक कथाऐं, अवचेतन, कल्पना।

**प्रस्तावना :-**

कला की अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम रहे है, जिनका प्रयोग करके कलाकार अपने आंतरिक भावों को रूप देता आया है। कला और साहित्य मानव संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिनका अंतर्संबंध भी समाज में महत्व रखता हैं। इन दोनों के जुड़ने और एक–दूसरे को प्रभावित करने का एक लंबा इतिहास हैं। चाहे वह साहित्य में दृश्यात्मक योग्य विवरण हो, दृश्य कला में साहित्यिक संदर्भ हो या समकालीन संस्कृति में दोनों का महत्व हो, कलात्मक तथा भावात्मक अभिव्यक्ति के इन दोनों रूपों के बीच संबंध निर्विवाद है। कलाकार अक्सर साहित्य से प्रेरणा देते हैं और लेखकों के लिए दृश्य कला का वर्णन भी प्रेरणा का स्त्रोत बनते हैं। हम चाहे नाटक, नृत्य, चित्रकला या संगीत किसी भी माध्यम की बात करें उसमें साहित्य का प्रभाव अनेकों बार देखने को मिलता हैं, जिनमें से एक कलाकार गणेश पाइन भी है।

**अतियथार्थवाद और गणेश पाइन की कला :-**

कला आंदोलनों और शैलियों के लंबे इतिहास में समय–समय पर चित्रकारों ने साहित्य से प्रेरणा लेकर चित्र रचना की है। 20 वीं सदी के तीसरे दशक में कला और साहित्य के क्षेत्र में 'अतियथार्थवाद' एक महत्वपूर्ण आंदोलन के रूप में उभरा। इसकी शुरुआत फ्रांसीसी कवि आंद्रे ब्रेटन ने एक घोषणापत्र के रूप में की। यह वैश्विक स्तर का आंदोलन था, जिसमें स्वप्न और वास्तविकता के इस विरोधी जगत

को पूर्ण रूप से यथार्थ मानकर कला सर्जन का कार्य किया गया। साहित्य के क्षेत्र में जहां लेखकों ने स्वचालित लेखन, असंबंध छवियों और विचारों के संयोजन, शब्द और भाषा के क्रीडात्मक उपयोग के साथ मानव मन की मुक्त अभिव्यक्ति का द्वार खोला, वहीं चित्रकारों ने अवचेतन, स्वप्न और कल्पना में देखे विचित्र बिम्बों को चित्रित किया। भारतीय कला परिदृश्य में भी कलाकारों ने इसमें योगदान दिया। शैलियों के इस कालक्रम में कला और साहित्य का परस्पर जुड़ाव रहा ही हैं।

भारतीय कला में तो प्रारंभ से ही चित्रकारों ने काव्य और साहित्य में वर्णित कथानकों के अनुसार चित्रों का निर्माण करके विचारों को अभिव्यक्ति दी है। जिनमें पौराणिक कथाओं, महाकाव्यों, लोक कथाओं, परीकथाओं का प्रभाव विशेष तौर पर चित्रकारों पर देखा जा सकता हैं। पौराणिक आख्यानों और साहित्य के प्रभावस्वरूप मिथकीय कल्पना से रूपात्मक छवियों को गढ़ने वाले 'गणेश पाइन' भारतीय कला के सबसे रहस्यमयी व्यक्तित्वों में से एक है। पाइन का जन्म 11 जून, 1937 ई में भारतीय स्वतंत्रता व विभाजन से पहले के उथल–पुथल भरे वर्षों के दौरान कोलकाता में हुआ। पाइन बंगाल शैली कला के उल्लेखनीय समकालीन कलाकारों में से एक हैं, जिन्होंने बंगाली लोककथाओं और पौराणिक साहित्य के इर्द–गिर्द अपनी रहस्यमय कल्पनाओं की शैली विकसित की। किसी भी कलाकार की कला शैली को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण कड़ी बचपन की घटनायें और उसका अवचेतन पर पड़ने वाला प्रभाव है, जोकि उसके कलात्मक कार्यजीवन के विकास हेतु महत्वपूर्ण है। कुछ इसी प्रकार, पाइन का कलाजीवन भी बचपन में दादी से सुनी लोककथाओं के प्रभावस्वरूप ही आरंभ होता है। पाइन कहते है, "उन्होंने मेरी तीसरी आँख खोल दी और मेरी सबसे बड़ी प्रेरणा बन गई।" उनकी दादी, जो एक बेहतरीन कथावाचक थी, उन्हें शाम को रामायण और महाभारत, परियों और लोक कथाओं की कहानियाँ सुनाती थीं, और ये कहानियाँ उनकी आँखों के सामने चलती–फिरती तस्वीरों की तरह जीवंत हो उठती थीं, शायद किसी जादुई लालटेन से प्रक्षेपित चित्रों की तरह। इन कहानियों को अपने अंतस में कैद करते हुए पाइन अपनी दादी से काल्पनिक दुनियां की चाबियां चुराते है। वे परियों की कहानियों के साथ ही पत्रिका 'मौचक' भी पढ़ते थे, इसी पत्रिका में उन्हें बंगाल शैली के प्रणेता अवनीन्द्रनाथ का एक प्रकाशित चित्र दिखाई पड़ा, जिसका उनके मन पर गहन प्रभाव पड़ा।

पाइन विशेष थे। संत स्वभाव के धनी, सरल व्यक्तित्व और बेहद शर्मिले। चित्रों के प्रति स्वाभाविक लगाव और साहित्य के साथ गहरा नाता तो बचपन से ही था। कालांतर में, साहित्य के पन्नों से भी उन्होंने उस इतिहास का सन्धान पाया (चौधरी 17)| कोलकाता के ही गवर्नमेंट कॉलेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट से कला शिक्षा प्राप्त की। अवनी बाबू के लेखन और कला के प्रति रुची से पाइन बेहद प्रभावित थे, जिसे अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उन्होंने आंतरिकता से ग्रहण किया था। 1946 ई. में पिता का देहांत और कलकत्ता में हो रहे विभाजन काल के दंगों के इस आघात ने उनके जीवन और कला पर गहरा प्रभाव डाला, इस समय वे महज नौ वर्ष के थे। परिवार को एक अस्पताल में शरण लेनी पड़ी, जहां गाडियों से शवगृह में लाई जा रही लाशों को देखा। पाइन कहते है, "मैं उस दृश्य को देखकर दहल गया था, और तब से उस अंधेरी दुनिया से ग्रस्त हो गया हूँ।" भय, आतंक, मृत्यु, बीमारी और भयानक कंकालों का यह वातावरण बचपन में दादी की परीकथाओं के समान जीवंत हो रहा था। कला महाविद्यालय से स्नातक के बाद उन्होंने पुस्तक चित्रण और एनीमेशन फिल्मों के लिए रेखाचित्र बनाने का कार्य किया। शुरुआती कार्य बंगाल शैली से प्रभावित होकर जलरंग माध्यम में किये, जिसके बाद धीरे–धीरे गेरू, काले, नीले और धूसर रंगों में अपने अतियथार्थवादी काम के लिए गौचे और टेम्परा की ओर रुख किया ।

## साहित्य का योगदान :-

साहित्य और पौराणिक कथाओं व दंतकथाओं के विषयों पर आधारित फंतासी और गहन कल्पनाओं की शैली को कला समीक्षकों द्वारा 'काव्यात्मक अतियथार्थवाद' नाम दिया गया। रविन्द्रनाथ टैगोर की ही भांति उनके जीवन में भी कई मौतें हुई, जिनसे वे प्रेरणा लेते थे। मृत्यु उनके कैनवास पर भारी साँसे लेती थी। उनकी कला कल्पना के अंधेरे अंदरूनी हिस्सों और जादुई वास्तविकता का एक अस्थिर मिश्रण थी। बी. दासगुप्ता के अनुसार "गणेश पाइन के चित्र में स्वप्न का तत्व आकर्षक और

परेशान दोनों ही करने वाला हैं (कुमार 14)। दादी की काल्पनिक कहानियों और मृत्यु के साथ जल्द ही सामना उनकी कला में भयावहता, रहस्य और अकथनीय उदासी ला देता है।

पाइन को ऐतिहासिक घटनाओं, धार्मिक ग्रंथों और लोक कथाओं से प्रेरणा मिली। वे कई लेखकों और साहित्यकारों से प्रभावित थे, जिनमें एक श्रीपंथ की पुस्तक 'मेटियाबुरुजेर नवाब', जो वाजिद अली शाह के अंतिम दिनों पर आधारित है, पर वे कई रेखाचित्र बनाते हैं। कवि 'शक्ति चट्टोपाध्याय' की कविताओं को पाइन ने दृश्य बिंबों में रूपांतरित किया था। जिसके कुछ चित्र कवि ने देखे तो कहा, "यह उनके निरंतर अनुभवों का जटिल काव्य है, जो एक असीम आंतरिक दुनिया में रहता है।" उपन्यासों से उनका गहरा लगाव रहा है, शुरू मे बंगाली फिर अंग्रेजी उपन्यासों, जिसमें 'नील गैमन' के बारे में, रेखाचित्रण महत्वपूर्ण है। वे कार्टूनिस्ट के रूप में भी कार्य करते थे, जिसमें रहस्यमयी चेहरों और गुड़िया जैसे जोकरों को सपनों और कविता के आकर्षक जाल में एक – दूसरे में समाहित करके चित्रित करते।

पाइन की अतियथार्थवादी कला मे हम साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उनके चित्रों का अध्ययन कर सकते हैं। यूं तो साहित्यिक प्रभाव बचपन से ही उनके अंतस में घर कर गया था। वे लोकसाहित्य, मिथकीय यथार्थवाद, परीकथा, पौराणिक साहित्य व देशज संस्कृति को पसन्द करते थे। (सेन 13)। इन्हीं सब कारणों से, पाइन के अवचेतन का प्रकटीकरण कला में साहित्यिक विषयों को अतियथार्थवादी रूप में प्रकट करता हैं। वे साल मे नौ या दस कलाकृतियां ही बनाते थे, और अपनी कला का प्रचार करना पसंद नहीं करते थे। स्वप्नों में खोई और वास्तविकता से परे जाकर बनायें उनके कुछ चित्रों में, 'जानवर', 'गार्डनर', 'पीटर', 'हंस', 'विचित्र पक्षी', 'द मास्क', 'स्वप्न', 'रात के सौदागर', 'द पपेट' आदि हैं। साहित्यिक प्रभाव को दर्शाने वाले चित्रों में 'सपने की मौत', 'हार्बर', 'पदचिन्ह', 'अपु' इसके अतिरिक्त 'महाभारत' पर आधारित उनके चित्र है।

समकालीन साहित्य जगत के क्षेत्र में युवा कवि 'शंखो घोष' से वे प्रभावित हुये। कवि 'जीवनानंद दास' ने 1954 में अपना संग्रह 'श्रेष्ठ कविता' प्रकाशित किया, जिसका पाइन पर भी प्रभाव पड़ा। 'हार्बर' (1971), का निर्माण पाइन ने बांग्ला के सुप्रसिद्ध और 'हंग्री जनरेशन' के अग्रणी कवि 'शक्ति चट्टोपाध्याय' की कविताओं से प्रेरित होकर किया। (साहा 283)। टेम्परा माध्यम में बना यह चित्र अमूर्तता के निकट है। भूरे और स्लेटी रंगों के रंगतों के साथ रहस्यात्मक चित्रण किया है। यह चित्र उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता ही नहीं, बल्कि मानसिक सजगता और परिवेश को प्रभावित करने वाले प्रबुद्ध संस्कृतिकर्मियों से संवाद का प्रतीक था। यह चित्र समकालीन बांग्लादेशी नौसेना कमांडो द्वारा इतिहास के सबसे महान नौसेना कमांडों ऑपरेशन को दर्शाती है, जोकि 1971 ई में चटगांव समुद्री बंदरगाह पर पाकिस्तानी सेना के खिलाफ आयोजित किया गया था।

चित्र संख्या-1 : "पदचिन्ह"

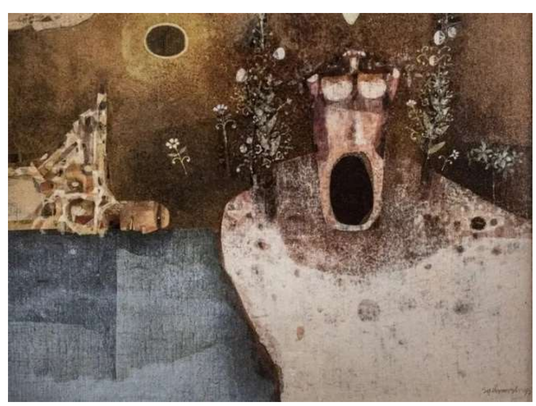

चित्र संख्या-2 : "हार्बर"

विभूतिभूषण बंधोपाध्याय की प्रसिद्ध रचना 'अपु', जोकि पथेर पांचाली का बालनायक था, पर अनेक रेखाचित्र बनाएं, जिन्हें एनिमेशन फिल्म के लिए लिया गया। (साहा 287)। इसमें बालक अपु के साथ लताएं, पेड़–पौधें और पक्षी भी चित्रित किये गये है, यह मोहक वातावरण आश्चर्यजनक बन पड़ा है। रंगों का प्रयोग धूमिलता के साथ किया गया है, जो उनके चित्रों की विशेषता रही है। इसके अतिरिक्त 'वीर बहादुर' श्रृंखला लोककथाओं और उनकी दादी की परीकथाओं से प्रभावित चित्रित है। इसमें राजकुमारों , जादूगरों और बोलने वाले टिड्डों के साथ बंदर का चित्रण है । वीर बहादुर नाम का बंदर रस्सी से बंधा दरबारी वस्त्रों में दिखाया गया है। लोक कथा और साहित्य के साथ उनकी कल्पना और बचपन के अनुभवों का मिश्रण चित्र में विचित्रता ला देता है, जो उन्हें अतियथार्थवाद के निकट ले जाता है।

चैतन्य देव के संबंध में लिखित इतिहास एवं लोक–स्मृतियां दोनों विद्यमान हैं। (सेन 10)। उनके आख्यानों और कथाओं पर आधारित कई चित्र बनायें, जिनमें 'पदचिन्ह' (फुटप्रिंट) बेहद आकर्षक चित्र है। चैतन्य देव के झुके हुए शरीर का चित्र व पदचिन्हों के संकेत दिखते है, जोकि मिथक रूप में चित्रित है। 'श्याम नौका', 'कमलकुमार मजूमदार' की साहित्यिक कृति है, जिसके माध्यम से कृष्ण के चित्र से हमारा परिचय कराया गया है। इस प्रकार एक मिथक दूसरे मिथक के लिए स्थान सृजित करता चलता है।

चित्र संख्या-3 : "वीर बहादुर"

चित्र संख्या-4 : "अपु"

अपने बाद के वर्षों में, पाइन ने पौराणिक धार्मिक साहित्यों से प्रेरणा लेकर चित्र सृजित किये। महाभारत और रामायण की कथाओं से तो बचपन से ही परिचित थे, जिनका सृजन अतियथार्थवादी रूप में आरंभ किया। विशेष रूप से उन्होंने 'एकलव्य' और अंबा' पर ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त द्रौपदी, पांचाली, राम, धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, शकुनि, युधिष्ठिर, उत्तरा, गांधारी आदि पात्रों को चित्रित किया। पाइन महाभारत को हर्ष की नहीं बल्कि विषाद की गाथा मानते थे। इसका चित्रण 2009–10 ई में आरंभ किया, जिसको 2015 ई की कोलकाता में हुई प्रदर्शनी में दर्शाया गया। पाइन की मृत्यु के दो वर्ष बाद प्रदर्शित इस प्रदर्शनी में उनके आठ चित्र 'महाभारत' श्रृंखला के थे। विभिन्न माध्यमों में चित्रित यह श्रृंखला टेम्परा, जलरंग, चारकोल और पेस्टल आदि में कैनवास और कागज पर सृजित थी।

पौराणिक धार्मिक साहित्यिक पात्रों के रूप में राम धनुष लिये, द्रौपदी के चीरहरण के समय जगन्नाथ की छवि, पिता भीम की गोद में घटोत्कच और मृत्यु के मैदान में काली की आकृति वास्तविकता से परे अलौकिक रूप में अंकित है। एक चित्र में, उन्हें अर्जुन के रथ पर काले खड़े छाया रूप में दिखाया है, रहस्यमय अंकन में बांए हाथ में लगाम पकड़े और दायां हाथ अर्जुन के कंधे पर रखे हुये हैं। इसके विपरीत अर्जुन अमूर्तता की स्थिति में डूबा, आंखें बंद और निर्देश की प्रतीक्षा में है। पाइन के चित्रों में खुली और बंद आंखों का यह चित्रण विशेष तौर पर प्रभावित करता है। यह दृष्टि कभी–कभी खुली आंखों में केंद्रित है, जैसे चक्र उठाने की कोशिश कर रहे कर्ण की पीड़ा, अश्वत्थामा

की लाचारी, मृत्युदंड देने वाली काली की तिरछी नजर, यह दृष्टि हमें विचलित कर देती है। इसके अतिरिक्त 'महिषासुरमर्दिनी' पर आधारित चित्रों में शक्ति अस्त्र–शस्त्र सहित दानवों से भीषण युद्ध में रत है। मिथकों और बिम्बों का प्रयोग भी उन्होंने विशेष तौर पर किया है।

चित्र संख्या-5 : "अर्जुन और कृष्ण" (महाभारत)

चित्र संख्या-6 : "शकुनि" (महाभारत)

पाइन के चित्रों में एक विशेष काव्यात्मक आलौकिकता है, जो दर्शक को उनकी ही अनूठी दुनिया में ले जाती है। वे इस लोक में रहकर भी, खोई हुई दुनिया को प्रकट करने का कार्य करते थे। जिस प्रकार जॉक रुसो कहते है, "वास्तविकता की दुनिया की अपनी सीमाएं है, कल्पना की दुनिया असीम है।" ठीक उसी प्रकार पाइन, भी अपने अथाह कल्पना के सागर में गोते लगाते रहते थे। कुछ कला समीक्षकों ने पाइन के चित्रों में 'रॉबर्ट फ्रॉस्ट' की कविताओं के संदर्भ भी पाए हैं। उनकी कला में चित्रित प्रतीकों का साहित्यिक रचनाओं से संबंध रहा हैं। वे प्राथमिक रंगों से परहेज करते हुए, उसके स्थान पर नीले, भूरे और धूमिल धूसर रंगों का प्रयोग करके रहस्यमय और स्वप्निल वातावरण सृजित करते हैं। खुरदरी बनावट और अस्पष्ट रूपों के साथ गहरी पृष्ठभूमि चित्रित है। पाइन को कंकाल अवशेषों में भी गहरी रुची थी, जो मनोवैज्ञानिक रूप से उनके कैनवास का विषय बन गयी। 1990 ई के दशक में हुए एक साक्षात्कार में वे कहते हैं, "सच्चा अंधकार व्यक्ति को डर की सीमा पर असुरक्षा की भावना देता है, लेकिन इसका अपना आकर्षण, रहस्य, गहराई और एक परी जैसा माहौल भी होता है। (दासगुप्ता)। यही  कारण था, कि कला समीक्षक और कवि रंजीत होसकोटे ने उन्हें 'उदासी के कवि' रूप में वर्णित किया। यह उदासी और अंधकारमय वातावरण थोड़ा मंद पड़ा जब 90 के दशक में, वे पचास वर्ष के थे, उन्होंने अपनी प्रेमिका मीरा दत्ता से विवाह किया। जिसके बारे में निषाद अंसारी कहते हैं, "अब अंधेरा उतना भारी नहीं रहा"। (बंद्योपाध्याय )।

पाइन को कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, जिसमें 'राजा रवि वर्मा' पुरस्कार, भारतीय चैंबर ऑफ कॉमर्स द्वारा 'लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार' मुख्य है। उन पर डॉक्यूमेंट्री फिल्म भी बनी, जो बुद्धदेव दासगुप्ता द्वारा 1998 ई. मे 'ए पेंटर ऑफ एलोक्वेंट साइलेंस : गणेश पाइन' नाम से बनीं, जिसे राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पाइन ने अपने चित्रों की अनेक एकल और सामूहिक प्रदर्शनियां राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित की। जिनमें कलकत्ता, दिल्ली, पेरिस, लंदन, सिंगापुर, वाशिंगटन आदि स्थानों पर हुई। पाइन असाधारण थे, उन्हें 'कलाकारों का कलाकार' और 'दार्शनिकों का दार्शनिक' कहा गया। उनकी रचनाओं ने समकालीन युवा चित्रकारों को गहराई से प्रभावित किया और आधुनिकता को नया आयाम दिया। शायद इसी वजह से एम.एफ. हुसैन ने एक समाचार–पत्रिका में उन्हें देश का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार बताया हैं।

## निष्कर्ष :-

गणेश पाइन भारत के उन अग्रणी कलाकारों में से एक है, जिन्होंने अपनी मौलिक शैली के माध्यम से गहन रहस्यवाद को प्रकट किया हैं। पाइन ने कल्पना का आश्रय लेकर पौराणिक साहित्य के मिथकों और प्रतीकों को भावग्राह्य रूप दिया है। अंतर्मुखी कलाकार के रूप में, उनकी चित्रशैली को काव्यात्मक अतियथार्थवाद कहा गया। बचपन में दादी के मुख से सुनी पौराणिक कहानियों, साहित्यिक पत्रिकाओं और समकालीन लेखकों व कवियों की रचनाओं ने उनकी कला को नया रूप प्रदान किया। अतीत की यादें, स्वप्न, भय, मृत्यु से सामना और परीकथाओं ने उनकी गहरी चिंतनशील छवियों के लिए उन्हें अंधेरे का चित्रकार बना दिया। उनकी कला में साहित्य का योगदान पौराणिक और समकालीन दोनों रूपों मे रहा है, चाहे कवियों की रचनाओं का प्रभाव हो या धार्मिक पौराणिक कथाऐं। पाइन की उदासीनता से भरी रचनाओं में मृत्यु को बार–बार चित्रित किया गया, जो अवचेतन में छिपी अतीत की घटनाओं का परिणाम था। कल्पना की दुनिया में रहने वाले पाइन ने सन् 2013 में इस वास्तविक दुनिया को अलविदा कह दिया, जब हृदयाघात ने उन्हें अपने आजीवन साथी मृत्यु से मिलवाया। इस प्रकार बंगाल शैली के समकालीन जगत के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में से एक, अतियथार्थवादी कलाकार, जो अंधकार का स्वप्न देखते थे का जीवन विराम की ओर अग्रसर हो गया।

चित्र संख्या- 7 : “राम”

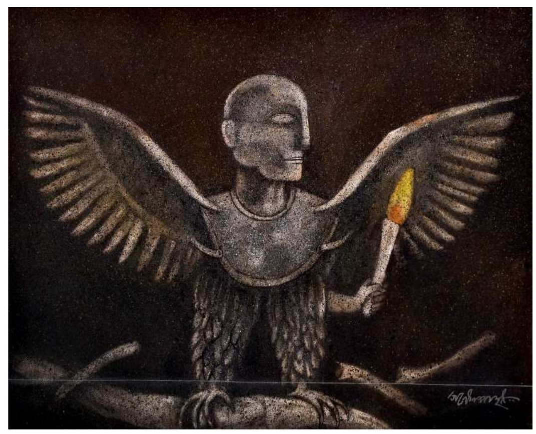

चित्र संख्या- 8 : “विचित्र पक्षी”

चित्र संख्या- 9 : “महिषासुरमर्दिनी”

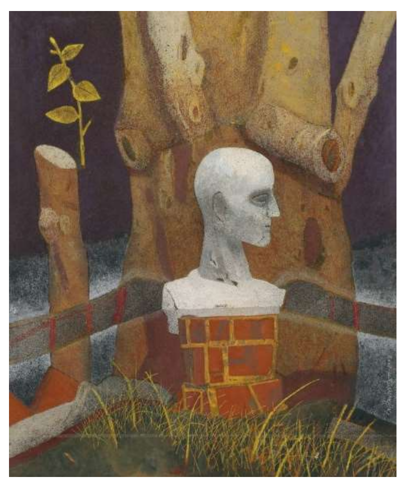

चित्र संख्या- 10 : “द गार्डनर”

## संदर्भ ग्रंथ :-


- चौधरी, जोगेन. '*अन्तर्मग्न कलाकार का त्रिआयामी मायाजाल*'.आकलन, समकालीन कला पत्रिका, अंक–40, 2010ई ,पृ 17.
- कुमार, आर..'*आधुनिक भारतीय कला : एक संक्षिप्त अवलोकन*'. कला पत्रिका, 58 (3), 1999ई, पृ.14–21.
- सेन, अंजन. '*मिथक निर्माण : गणेश पाइन की कला*'. अवदान, समकालीन कला पत्रिका, ललित कला अकादमी प्रकाशन, अंक–35, 2008 ई, पृ.13.
- साहा, डॉ. रणजीत. '*आधुनिक भारतीय चित्रकला की रचनात्मक अनन्यता*'.वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023ई , पृ 283.
- साहा, डॉ. रणजीत, 'आधुनिक भारतीय चित्रकला की रचनात्मक अनन्यता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023ई ,पृ 287.
- सेन, अंजन. '*मिथक निर्माण : गणेश पाइन की कला*'.अवदान, समकालीन कला पत्रिका, ललित कला अकादमी प्रकाशन, अंक–35, 2008 ई, पृ.10.
- दासगुप्ता, बी., सेन, जी.. '*जादुई वास्तविकता*'. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, 2004.
- बंद्योपाध्याय, देबमाल्या. '*गणेश पाइन : ए ड्रिमर ऑफ डार्कनेस*'. स्वदेशी वेब, 2021.

43

# लोक जीवन से संबंधित कला और साहित्य का परस्पर संबंध

दीपिका राठौड़
सहायक आचार्य
राजकीय कला महाविद्यालय कोटा

**प्रस्तावना** – मानव समाज की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, कला एवं साहित्य के माध्यम से सरलतम रूप में अभिव्यक्त होती है । कला व साहित्य, लोक जीवन के दर्पण के रूप में लोक कला एवं लोक साहित्य में प्रतिबिंबित होते हैं। लोक जीवन में धर्म, रीति रिवाज, सामाजिक मान्यताएं, भाषाऐ, परिवेश इत्यादि को ही लोक कला एवं साहित्य अपनी विशेष शैली में प्रकट करते हैं।

इस शोध पत्र का लक्ष्य यह विश्लेषण करना है कि लोक जीवन, कला व साहित्य को कैसे प्रभावित करता हैं एवं कला और साहित्य में लोक जीवन की छवि कैसे दिखाई देती है । लोक जीवन के द्वारा कला व साहित्य कैसे एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं ।

इस शोध के माध्यम से हम निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास करेंगे।
1).लोकजीवन से कला एवं साहित्य कैसे प्रेरित होते हैं ?
2).कला एवं साहित्य लोकजीवन को कैसे प्रतिबिंबित करते हैं?, संरक्षित करते हैं ? और संवर्धित करते हैं?
3). वर्तमान समय में लोक जीवन, कला व साहित्य के बीच के संबंध में क्या–क्या चुनौतियों तथा क्या–क्या संभावनाएँ हैं?

**शोध की रूपरेखा इस प्रकार है –**
–शब्दावली एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
–लोक जीवन, कला व साहित्य–अवधारणाएं
–लोक कला व लोक साहित्य का परस्पर संबंध
–लोक जीवन का साहित्य एवं कला में स्थान –उदाहरण सहित विवेचन
–समस्याएँ एवं चुनौतियां
–आधुनिक युग में संभावनाएँ
–निष्कर्ष एवं सुझाव
–संदर्भ सूची

**शब्दावली एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –**
लोक जीवन का अर्थ – ग्रामीण परिवेश, ग्रामीण जन समूह , उनके रीति रिवाज, उनकी परंपराएं ,उनके विश्वास, भाषा, उत्सव, त्यौहार, कृषि, प्राकृतिक संपदा, वातावरण इत्यादि का सामूहिक रूप ही लोकजीवन है।

**लोक कला–** ग्रामीण जन समुदाय द्वारा कलात्मक रचनाएँ जो विशेष चिन्हों, विशेष प्रतीको, विशेष शैली के माध्यम से लोक जीवन को दर्शाती है, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्य, संगीत इत्यादि सम्मिलित है। यह कला पीढ़ी दर पीढ़ी स्वत ही सीखी जाती है, इसके लिए किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती, इसे लोक कला कहा जाता है।

**लोक साहित्य –** ऐसा लिखित या मौखिक साहित्य जो ग्रामीण जन समुदाय द्वारा कहानियों, लोक कथाओं, लोकगीतों, मुहावरों के रूप में अपनाया गया है एवं पीढ़ी दर पीढ़ी सीखकर, संवर्धित किया गया है उसे लोक साहित्य कहा जाता है।

**लोक कला एवं लोक साहित्य का परस्पर संबंध –** लोककला एवं लोक साहित्य का परस्पर गहरा संबंध है, दोनों ही समाज के आईने हैं और एक दूसरे के पूरक है, दोनों ही आपस में एक दूसरे को सहयोगात्मक संबल प्रदान करते हैं।
लोक कला के अंतर्गत चित्रकला,नृत्य, नाटक मूर्तिकला इत्यादि दृश्य एवं श्रव्य के रूप में प्रस्तुत होते हैं, वही लोक साहित्य के अंतर्गत जनमानस की भावनाएं, शब्दों, गीतों, कथाओं के माध्यम से जीवंत अभिव्यक्त होती है।
लोक कलाकार जहां लोक साहित्य, लोकगीत, इत्यादि को ही आधार मानकर लोक कलाकृतियों को निर्मित करते हैं वही लोक साहित्य भी चित्रों, मृणमूर्ति शिल्प, तीज–त्यौहार आदि को ही आधार मानकर रचित किया जाता है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –**मानव इतिहास में पाषाण काल से चित्र बनाने की परंपरा रही है। लौकिक जीवन की घटनाओं को चित्रों के माध्यम से पाषाण पर उकेरा जाता रहा है । धीरे–धीरे यह घटनाएं मौखिक रूप से कथाओं, किस्सो, लोक गीतों के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती गई और धीरे–धीरे वर्तमान परिदृश्य में लोक जीवन से संबंधित कला व साहित्य का संबंध अत्यंत गहरा होता गया।

## लोक जीवन का साहित्य एवं कला में स्थान उदाहरण सहित विवेचन –

**फड़** –यह एक लोक कला एवं लोक साहित्य का सम्मिलित रूप है इसमें लोक देवता के जीवन वृतांत, उनके संघर्ष, बलिदान इत्यादि को नायक, नायिका, खलनायक आदि अनेक किरदारों के रूप में चित्रित किया जाता है तथा लोक कलाकार भोपा एवं भोपी ही नृत्य नाटिका का मंचन कर दर्शन को कथानक की जानकारी देते हैं, दर्शन भी ग्रामीण जन होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि, फड़ लोक कलाकारों द्वारा लोक देवताओं के जीवन वृतांत को लोक दर्शकों के लिए प्रस्तुतीकरण है।

**माण्डना एवं रंगोली –** उत्तर भारत में ग्रामीण महिलाओं द्वारा घर में उत्सव, त्यौहार, विवाह, जन्मोत्सव इत्यादि अवसरों पर घरों की दीवारों, आंगन ,छत इत्यादि को सजाने के लिए माण्डना व रंगोली बनाए जाते हैं।
उसमें लोक जीवन में उपलब्ध संसाधनों को ही माध्यम के रूप में उपयोग लिया जाता है जैसे चावल का आटा, हल्दी, गोबर, खड़िया मिट्टी, गेरू, कोयला इत्यादि।
कई लोककवि या गीतकार इन सभी विषयों को अपने गीतों तथा साहित्य में स्थान देकर लोक कला और साहित्य के संबंध को अटूट व गहरा बनाते हैं।

## वरली पेंटिंग और लोक जीवन–

वरली पेंटिंग मुख्यतः महाराष्ट्र की लोक कला है। इसमें वहां के लोग जीवन, कृषक जीवन, मानव प्रकृति संबंध, त्यौहार ,समूह नृत्य, रोजमर्रा की गतिविधियों को बहुत ही सरल रेखाकृतियों के द्वारा दर्शाया जाता है। वरली चित्रकला में त्रिभुज, वृत, रेखा इत्यादि ज्यामितिय रूपों को गोबर से पुति दीवार पर, या आंगन पर सफेद खड़िया पाउडर या चावल के आटे द्वारा सुंदरतम रूप में चित्रित किया जाता है । वरली चित्रों को भी कपड़े पर चित्रित करके उन्हें मनोरंजन के लिए नृत्य नाटिका के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है।

## लोकगीत और ग्रामीण जीवन–

लोकगीत साहित्य की ही एक विधा है इसमें पूर्णतया ग्रामीण जीवन ही दिखाई देता है।
कृषि से संबंधित जीवन में किसानों के जीवन की जटिलताओं को गायिका के द्वारा अपने गीतों के माध्यम से गाया जाता है "जीरो जीवडो बेरी रे, मत बाव म्हारा परण्या जीरो"

इस तरीके से खानपान की गुणवत्ता को भी गीतों के माध्यम से प्रस्तुतीकरण मिला है– "झुक जाए रे, लुड जाई रे, झुक जाए रे हरिया पोदीना"

शादी एवं विवाह उत्सव में लड़के एवं लड़की के मन में चल रही उत्सुकता को बना व बनी गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।

इसी तरीके से मायरा व भात आदि कार्यक्रम में बहन व भाई के स्नेह को लोकगीत द्वारा दर्शाया जाता है

"बीरा रुणक झुणक घर आइजो ,
बीरा थे आजो भावज लाजो,
सरदार भतीजो साग लाजो सा,
बीरा रुणक झुणक घर आइजो"

**गोंड व पिथौरा –** यह कलाएं आदिवासी जनजीवन की लोक कलाएं हैं इन चित्रों में प्रकृति, पशु पक्षी, मिथक ,जीव जंतु, लोक जीवन की कथाओं को चित्रित किया जाता है। साहित्य में भी इन लोक चित्रों को विषय के रूप में चुनकर लोक कथाओं की रचना की जाती है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–** मानव इतिहास में पाषाण काल से चित्र बनाने की परंपरा रही है लौकिक जीवन की घटनाओं को चित्रों के माध्यम से पाषाण पर उकेरा जाता रहा है । धीरे–धीरे यह घटनाएँ मौखिक रूप से कथाओं, लोक गीतों के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती गई।

धीरे–धीरे वर्तमान परिदृश्य में लोग जीवन से संबंधित कला व साहित्य का संबंध अत्यंत गहरा होता गया।

**माध्यम सामग्री –** माध्यम/सामग्री के रूप में मूलत लोक जीवन की वस्तुए जैसे कपड़ा, टाट, लकड़ी, प्राकृतिक रंग, रंगीन मिट्टी, खड़िया सभी का उपयोग लेकर अपने विचारों को एक कलाकृति के रूप में जीवंत रूप दिया जाता हैं।

लोक साहित्य के मुख्य विषय में गीत, कहावतें, मुहावरों में लोक जीवन के त्यौहार, उत्सव, जनजीवन की घटनाएं, प्राकृतिक मौसम इत्यादि को आधार लेकर लोक साहित्य का सृजन किया जाता है।

**सामूहिक कार्य** : लोक कला और लोक साहित्य मूलत सामूहिक कार्य होता है। किसी चित्र या मूर्ति की रचना गांव या मोहल्ले के अनेक लोग मिलकर करते हैं ,इसी तरह से लोक साहित्य में गीत हो या नृत्य नाटिका, मुहावरे हो या कहावतें, सभी को सामूहिक रूप से गायन एवं मंचन किया जाता है। यह मूलत समूह मे लोगों के द्वारा किया जाने वाला कार्य है।

लोक कला में मधुबनी, फड़, गोंड कला, सभी कलाओं के विषय ग्रामीण जनजीवन, कृषि, त्यौहार ,लोक देवता आदि पर आधारित है एवं सभी को सामूहिक रूप से ग्रामीण लोककलाकारों द्वारा बनाया जाता है।

**समकालीन दृष्टिकोण–**

आज वर्तमान परिदृश्य में कई कलाकार इन लोक कलाओं को आधार लेकर नए रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं तो कई कलाकार इन रूपों को हूबहू सृजित कर रहे हैं।

आज आधुनिकता वह शहरीकरण की होड़ में हर कोई कुछ नया करने को, नए–नए प्रयोग करने को आतुर है। इस बीच कई आधुनिक कलाकार इन लोककला रूपों को आधार बनाकर प्रयोगात्मक तरीके से भी कला रूपों को रूपांतरित कर रहे हैं।

कई कलाकार संगठन एवं संस्थाएं लोक कला विधाओं को संरक्षण व संवर्धित कर रहे हैं, जैसे भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर।

इसी तरीके से भारत कला भवन भोपाल एवं जवाहर कला केंद्र में भी ऐसी कई प्रदर्शनियों का आयोजन होता है जिसमें लोक कला को प्रोत्साहन मिले।

**चुनौतियां एवं समस्याएँ–**

लोक जीवन से संबंधित कला और साहित्य के लिए आज बहुत चुनौतियां हैं।

1. आधुनिकता व शहरीकरण– आधुनिकता व ग्लोबलाइजेशन की होड़ में कलाकार/युवा पीढ़ी पारंपरिक लोक कलाओं में रुचि कम ले रहे हैं एवं प्रयोगवादी विचारधारा के समर्थक युवा आधुनिक कला और साहित्य की ओर अग्रसर है
2. व्यवसायीकरण व मशीनीकरण – कलाकार लोककलाओं को अपने जीविकोपार्जन के लिए उपयोग ले रहे हैं जिसमें अधिक से अधिक संख्यात्मक वृद्धि के लिए मशीनों का उपयोग लिया जा रहा है जिससे लोककला की मौलिकता खो रही है एवं लोक कलाएं अपने वास्तविक सौंदर्य से कमतर दिख रही है
3: अंतरराष्ट्रीय भाषाओं का दबदबा – साहित्य में भी अंग्रेजी भाषा का दबदबा तथा राष्ट्रीय भाषा के अधिक प्रयोग से क्षेत्रीय भाषा एवं बोलियां में साहित्य रचनाओं की संख्या घटी है।
4: डिजिटलाइजेशन– कंप्यूटर आधारित कलाएं जैसे ए. आई. के प्रयोग द्वारा मन माफिक विषय पर कलाकृतियों के नीरस निर्माण से एक कलाकार की सच्ची मेहनत व सृजनात्मक क्षमता एक पायदान पर रुक सी गई है, जिससे लोक कलाकार निराश होकर, अपने कार्य को छोड़कर, डिजिटलाइजेशन की दौड़ में दौड़ चले हैं।
इसी तरीके से लोक साहित्य में जहां पटकथाओं व फड़ पेंटिंग्स के मंचन से लोग आनंदित होते थे वही मोबाइल ही एकमात्र मनोरंजन का माध्यम बन गया है।
जिससे ग्रामीण लोक कलाकार अपनी पुश्तैनी कला को छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए अन्य राह अपना रहे हैं।

**संभावनाएं –**

लोक कला को बढ़ावा देने के लिए कला संगठनों व संस्थाओं को आगे बढ़कर प्रोत्साहन देना चाहिए एवं लोक कलाकारों तथा साहित्यकारों को राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मंच प्रदान करना चाहिए।

**शिक्षा प्रणाली में समावेश–**

स्कूली एवं कॉलेज शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा देनी चाहिए। जिसके तहत लोक कला भी पाठ्यक्रम में शामिल हो, जिससे कलाकार कला के संवर्धन के साथ–साथ जीविकोपार्जन भी कर सके।

**युवा पीढ़ी का प्रायोगिक प्रशिक्षण :**

लोक कला एवं लोक साहित्य को पाठ्यक्रम में जोड़कर उसके प्रायोगिक प्रशिक्षण के लिए विद्यार्थियों को ग्रामीण कलाकार/प्रशिक्षक के सानिध्य में प्रशिक्षण लेना होगा, जिससे लोक कला व लोक साहित्य के मर्म को वास्तविक रूप से समझा जा सके, जिससे लोक कला अपने मूल रूप में जीवंत बनी रहे ।
तथा मूल रूप से ग्रामीण लोक कलाकारों व साहित्यकारों को भी प्रशिक्षण देने का मौका मिले जिससे उनकी कला को समाज में उच्च स्थान प्राप्त हो तथा वह अपना जीवन यापन अपनी कला के माध्यम से सुचारू रूप से कर सकें ।

**निष्कर्ष एवं सुझाव–**

लोक जीवन का कला एवं साहित्य से गहरा और परस्पर संबंध है लोक जीवन में निहित मान्यताएं, रीति रिवाज, त्यौहार, उत्सव, भावनाएं, संवेदनाएं, जीवन शैली इत्यादि ही कला एवं साहित्य के विषय के रूप में प्रस्तुत होते हैं। वही भाव, भाषा, शब्दो व माध्यम का सहारा लेकर अभिव्यक्त होते हैं।

लोकजीवन जीवन को जीवंत रखने तथा अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करने मे कला व साहित्य सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है।
कलाकार कला के लिए माध्यम के रूप में रंग, धरातल, आकार, भाव इत्यादि लोकजीवन से ही चुनते है, वही साहित्य के लिए भी कथा, संवाद, शब्द, स्वर सभी लोकजीवन से ही लिए जाते हैं।

इसीलिए वर्तमान समय की मांग के अनुसार लोककला और लोकसाहित्य को संरक्षण देने तथा संवर्धन करने की अत्यधिक आवश्यकता है ।

जिसमें हम इस आधुनिकता के साथ दौड़कर भी अपने पारंपरिक सभ्यता एवं संस्कृति को सहेज कर रख सके।

### संदर्भ सूची

1ः हृदय गुप्त, देशज कला

2ः भावसार वीरबाला, आदिवासी कला

3ः शर्मा संगीत, इंडियन फोक आर्ट एण्ड कल्चर

4ः सुनीता, लोक संस्कृति कला और साहित्य

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

44

# कला और साहित्य का संरक्षण : भारतीय संविधान की भूमिका

डॉ. स्वाति आढ़ा
सहायक आचार्य (गेस्ट फैकल्टी, चित्रकला),
राजकीय कन्या महाविद्यालय, सांगानेर, जयपुर।
swati-arha@gmail-com

**शोध सारांश**

भारतीय संविधान, विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से राष्ट्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, कला और साहित्य के संवर्धन और संरक्षण हेतु एक सुदृढ़ ढाँचा प्रदान करता है। अनुच्छेद 29, 49 और 51। जैसे प्रमुख अनुच्छेद सांस्कृतिक विविधता और राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ावा देते हैं। अनुच्छेद 49 राज्य को राष्ट्रीय विरासत के संरक्षण का निर्देश देता है, जबकि अनुच्छेद 51।(f) के अनुसार नागरिकों का मौलिक कर्तव्य है कि वे भारतीय संस्कृति को महत्व दें और उसका संरक्षण करें। सांस्कृतिक संरक्षण पर संविधान के द्वारा बल दिए जाने के फलस्वरूप विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं – साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी, ललित कला अकादमी, और सांस्कृतिक उत्सवों का जन्म एवं विकास हुआ है। इन प्रयासों के उपरांत भी, अपर्याप्त वित्त पोषण और बढ़ता हुआ डिजिटलीकरण सहित अन्य कई चुनौतियाँ बनी हुई है। फिर भी, संविधान कलात्मक और साहित्यिक परंपराओं को फलने–फूलने के लिए एक ढाँचा प्रदान करता है। इन प्रावधानों को समझकर, प्रबुद्ध नागरिक भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन में सक्रिय रूप से योगदान दे सकते हैं। राष्ट्रीय गौरव, सांस्कृतिक पहचान और रचनात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देने के लिए कला और साहित्य का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। केंद्र और राज्य सरकारों ने देश की साहित्यिक और कलात्मक विरासत के संरक्षण तथा भारतीय कला और साहित्य को बढ़ावा देने और मान्यता प्रदान करने के लिए विभिन्न योजनाएँ शुरू की है, जिनसे कलाकारों और लेखकों को अपनी कृतियों को प्रदर्शित करने के लिए मंच मिला है। दुर्गा पूजा, काला घोड़ा कला महोत्सव और विभिन्न कला प्रदर्शनियाँ अपनी कलात्मक विरासत के संरक्षण के प्रति देश की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। हाल ही में प्रस्तावित सिख संग्रहालय और संत शिरोमणि गुरु रविदास संग्रहालय जैसे संग्रहालय सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे। पद्म पुरस्कार तथा भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा स्थापित पुरस्कारों के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत को मान्यता मिलना, कलात्मक परंपराओं के संरक्षण के महत्व को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त प्रयासों के माध्यम से देश सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा दे सकता है और कलाकारों, लेखकों और रचनाकारों की नई पीढ़ियों को प्रेरित कर सकता है। अपनी कला और साहित्य को संरक्षित करके, भारत अपनी राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने के साथ ही विश्व की सांस्कृतिक समृद्धि में अपना योगदान दे सकता है।

भारतीय संविधान देश के शासन की आधारशिला के रूप में कार्य करता है। इसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया था। संविधान ने भारत को एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिर्पेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित किया है।

भारतीय संविधान में कला और साहित्य के संरक्षण को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संविधान के विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से कला और साहित्य के महत्व को रेखांकित किया गया है तथा आवश्यक कदम उठाए गए हैं। अनुच्छेद 19 ।, 29, 49 और 51 । जैसे प्रमुख अनुच्छेद, सांस्कृतिक विविधता और राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ावा देते हैं। इसके अलावा, अनुच्छेद 344 में कहा गया है कि केंद्र सरकार और राज्य सरकारें साहित्य और कला को बढ़ावा देने के लिए योग्य कदम उठाएंगी। इस प्रावधान के अंतर्गत सरकार को साहित्य और कला के विकास के लिए आवश्यक कदम उठाने का निर्देश दिया गया है।

भारतीय संविधान और कलाः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 ए में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपनी संमिश्र संस्कृति की समृद्ध विरासत का संरक्षण करे।

इसके अंतर्गत ललित कला अकादमी की स्थापना की गई है, जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। ललित कला अकादमी भारत सरकार द्वारा स्थापित एक स्वायत्त संस्था है, जो ललित कलाओं के विकास और प्रोत्साहन के लिए काम करती है। इसकी स्थापना 5 अगस्त 1954 को हुई थी। अकादमी का मुख्य उद्देश्य भारतीय कलाकारों के रचनात्मक प्रयासों को बढ़ावा देना तथा कलाकारों की कलाओं को बड़ी संख्या में जनमानस तक पहुँचाना है। यह अकादमी, विभिन्न कार्यक्रमों और प्रकाशनों के माध्यम से कलाकारों को प्रोत्साहित करती है तथा भारतीय कला को विश्वभर में प्रसिद्ध करने में योगदान प्रदान करती है।

**ललित कला अकादमी के उद्देश्य एवं गतिविधियां:**

**प्रदर्शनी आयोजन** : अकादमी विभिन्न प्रकार की प्रदर्शनियों का आयोजन करती है, जिसमें समकालीन भारतीय कला की चयनित श्रेष्ठ कृतियों का प्रदर्शन किया जाता है।

**कला शिक्षा और प्रोत्साहन** : अकादमी कला शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करती है, जिसमें कलाकारों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलता है।

**प्रकाशन** : अकादमी ललित कला से संबंधित पुस्तकें और पत्रिकाएं प्रकाशित करती है, जिसमें भारतीय कला के विभिन्न पहलुओं पर लेख प्रस्तुत किए जाते हैं।

**ललित कला अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें और पत्रिकाएं निम्नलिखित हैं:**

**पुस्तकें:**

**भारतीय ललित कला ग्रंथमाला** : इस श्रृंखला के तहत अकादमी ने प्राचीन भारतीय कला पर पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनमें चित्रकला और मूर्तिकला की प्रमुख शैलियों का विवरण है।

**मोनोग्राफ** : अकादमी ने समकालीन भारतीय कलाकारों की रचनाओं पर मोनोग्राफ प्रकाशित किए हैं।

**जनजातीय और लोक कलाओं पर पुस्तकें** : अकादमी ने प्रमुख लेखकों और कला आलोचकों द्वारा लिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो जनजातीय और लोक कलाओं पर केंद्रित हैं।

**कला से संबंधित अन्य पुस्तकें** : अकादमी ने कला के विभिन्न पहलुओं पर पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनमें कला का इतिहास, तकनीकें और कला की समीक्षा शामिल है।

**पत्रिकाएं** :'ललित कला' यह एक पत्रिका है जो भारतीय कला पर केंद्रित है इसमें समकालीन कला के लेखों के माध्यम से प्रमुख कलाकारों के कार्यों की चर्चा होती है।

**समकालीन कला** : यह एक अर्धवार्षिक पत्रिका है जो समकालीन भारतीय कला पर केंद्रित है।

**ललित कला कंटेम्परेरी** : यह एक अर्धवार्षिक पत्रिका है जो अंग्रेजी में प्रकाशित होती है तथा समकालीन भारतीय कला पर केंद्रित है।

**कलाकारों को सम्मानित करना:** अकादमी कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए कलाकारों को सम्मानित करती है।

**ललित कला अकादमी फैलोशिप (ललित कला अकादमी रत्न)** : यह फैलोशिप अकादमी द्वारा दृश्य कला के क्षेत्र में आजीवन उपलब्धियों के लिए प्रख्यात कलाकारों को प्रदान की जाती है। यह देश में किसी कलाकार को दिया जाने वाला सर्वोच्च सम्मान माना जाता है । यह फैलोशिप पाने वाले कलाकारों में जैमिनी रॉय, नंदलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी,एन. एस बेंद्रे, के. के. हेब्बार , एम. एफ. हुसैन , के. एच. आरा, ऐस. एच. रज़ा, के. जी सुब्रमण्यन , राम गोपाल विजयवर्गीय, ए. रामचन्द्रन, बिकास भट्टाचार्य , राम कुमार, हिम्मत शाह, डी . पी. रॉय चौधरी ,रामकिंकर बैज, धनराज भगत एवम् सांखो चौधरी प्रमुख हैं ।

**ललित कला अकादमी पुरस्कार** : भारत में ललित कला के क्षेत्र में दिया जाने वाला एक प्रतिष्ठित सम्मान है। यह पुरस्कार कलाकारों को उनकी उत्कृष्ट कृतियों के लिए दिया जाता है। इसमें नकद पुरस्कार, प्रशस्ति पत्र और प्रतीक चिह्न शामिल होते हैं। इस पुरस्कार का उद्देश्य कलाकारों को उनके

रचनात्मक प्रयासों के लिए सम्मानित करना, कला गतिविधियों को बढ़ावा देना, तथा उन्हें आत्मनिर्भर बनाना और उनकी आर्थिक प्रगति में योगदान देना है। चयन प्रक्रिया में देश भर से प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन किया जाता है और एक निर्णायक मंडल द्वारा विजेताओं का चयन किया जाता है।

**भारतीय संविधान और साहित्यः** भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस प्रावधान के माध्यम से साहित्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व दिया गया है।

इसके अंतर्गत साहित्य अकादमी की स्थापना की गई है जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है।

**साहित्य अकादमीः** साहित्य अकादमी की स्थापना भारत सरकार द्वारा 1954 में की गई थी। भारत की प्रमुख साहित्यिक संस्था के रूप में अकादमी, पुरस्कार, फैलोशिप, अनुदान, प्रकाशन, साहित्य कार्यक्रम, कार्यशाला एवं प्रदर्शनी के माध्यम से स्वयं प्रदत्त मान्यता प्राप्त, 24 भाषाओं में साहित्य को संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्रदान करती है ।अकादमी भारत की सीमाओं के बाहर भारतीय साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए दुनिया के विभिन्न देशों के साथ साहित्यिक विनिमय कार्यक्रमों का आयोजन भी करती है ।

**साहित्य अकादमी के उद्देश्य एवं गतिविधियां** : साहित्य अकादमी देश की राष्ट्रीय साहित्य अकादमी है, जिसका उद्देश्य साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्टता को बढ़ावा देना और साहित्यिक गतिविधियों, जैसे कि लेखन, कार्यशालाएं, साहित्यिक सम्मेलन, और पुस्तक विमोचन को प्रोत्साहित करना है।

**पुस्तक प्रकाशनः** अकादमी साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन करती है, जिसमें विभिन्न भाषाओं का साहित्य शामिल हैं। कविता संग्रह, उपन्यास, लघु कथाएं, निबन्ध एवं आलोचनाएं सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त 'भारतीय साहित्य के निर्माता' श्रंखला के अंतर्गत विविध भाषाओं के प्रमुख साहित्यकारों के मोनोग्राफ भी प्रकाशित किये गये हैं। राजस्थान के प्रमुख साहित्यकार जिन पर ये मोनोग्राफ प्रकाशित किए गए हैं, उनमें दुरसा आढ़ा, कन्हैयालाल सेठिया, अमरचंद नाहटा, माधवदास दधवाड़िया, सीताराम लालस एवं विजयदान देथा, मुख्य हैं।

**साहित्यकारों को सम्मानित करनाः** अकादमी साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए लेखकों और कवियों को सम्मानित करती है।

**साहित्य अकादमी फैलोशिपः** साहित्य अकादमी फ़ैलोशिप भारत की साहित्य अकादमी द्वारा प्रदान किया जानेवाला सर्वोच्च सम्मान है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सुमित्रानंदन पंत, रघुपति सहाय 'फ़िराक़ गोरखपुरी', काकासाहेब कालेलकर, जैनेन्द्र कुमार, महादेवी वर्मा, मुल्कराज आनंद, आर. के. नारायण, कृष्णा सोबती, कैफ़ी आज़मी, अमृता प्रीतम, विजयदान देथा, विष्णु प्रभाकर, कुँवर नारायण ,खुशवंत सिंह एवं एम॰ टी॰ वासुदेव नायर इत्यादि हैं।

**साहित्य अकादमी पुरस्कारः** साहित्य अकादमी पुरस्कार भारत का दूसरा सबसे बड़ा साहित्यिक सम्मान है, जो प्रतिवर्ष 24 प्रमुख भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों को सम्मानित करता है। साहित्य अकादमी द्वारा ये पुरस्कार1955 से प्रदान किये जा रहे हैं। यह पुरस्कार उपन्यास, कविता, लघु कथाएँ, निबंध और नाटक जैसी कृतियों के लिए दिया जाता है। इस पुरस्कार का उद्देश्य विश्व भर में भारतीय साहित्य को बढ़ावा देना और लेखन में नए रुझानों को मान्यता प्रदान करना है। ये पुरस्कार संविधान की 8 वीं अनुसूची में सूचीबद्ध 22 भाषाओं के अलावा अंग्रेजी और राजस्थानी भाषा की भी कृ तियों के लिए भी प्रदान किए जाते हैं।

**साहित्य के अनुवाद को बढ़ावा देनाः** अकादमी साहित्य के अनुवाद को भी बढ़ावा देती है, जिससे विभिन्न भाषाओं के साहित्य को अधिक लोगों तक पहुंचाया जा सके।

**साहित्यिक सम्मेलनः** अकादमी साहित्यिक सम्मेलनों का आयोजन करती है, जिसमें साहित्यकार और विद्वान साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करते हैं।

**साहित्यिक अनुसंधान को प्रोत्साहित करनाः** अकादमी साहित्यिक अनुसंधान को प्रोत्साहित करती है और साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन और अनुसंधान को बढ़ावा देती है।

**कला और साहित्य के संरक्षण के लिए सरकारी पहलः** भारत सरकार ने कला और साहित्य के संरक्षण और विकास के लिए कई तरह पहल की है। इन पहलों के तहत सरकार ने कला और साहित्य के क्षेत्र में काम करने वाले कलाकारों और लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाएं शुरू की है। उदाहरण के लिए, सरकार ने साहित्य अकादमी, ललित कला अकादमी और संगीत नाटक अकादमी जैसी संस्थाओं की स्थापना की है, जो कला और साहित्य के क्षेत्र में काम करने वाले कलाकारों और लेखकों को प्रोत्साहित करने और उनके काम को बढ़ावा देने के लिए काम करती है।

**पद्म पुरस्कार तथा, भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा स्थापित पुरस्कारः** उपरोक्त पुरस्कारों के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत एवं परंपराओं के संरक्षण का प्रयास किया गया है। कुछ प्रमुख पद्म पुरस्कार  प्राप्त करने वाले कलाकारों एवं साहित्यकारों की सूची इस प्रकार है।

**पद्म पुरस्कार (कला – चित्रकला):** श्री नंदलाल बोस, बिनोद बिहारी मुखर्जी, श्री मकबूल फ़िदा हुसैन, श्री सतीश गुजराल, के. जी. सुब्रमण्यम, श्री सैयद हैदर रज़ा, श्री कृपाल सिंह शेखावत, श्री रामगोपाल विजयवर्गीय एवं श्री तिलक गिताई इत्यादि ।

**पद्म पुरस्कार (साहित्य):** महादेवी वर्मा, फणीश्वर नाथ रेनू, पद्मा सचदेव, हरिशंकर परसाई, विवेक देवराय, सीताराम लालस, विजयदान देथा, डॉ. चन्द्र प्रकाश देवल एवं शीन काफ निज़ाम इत्यादि।

उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त कई संग्रहालयों की स्थापना की गई है तथा कई समारोहों का  आयोजन भी किया जाता है। जैसे सरकारी कला संग्रहालयों में, नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय शामिल है, जहाँ प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक की विविध भारतीय कलाकृतियाँ प्रदर्शित है। इनमें नई दिल्ली, मुंबई और बेंगलुरु स्थित राष्ट्रीय आधुनिक कला दीर्घाएँ भी शामिल हैं। अन्य उदाहरणों में सरकारी केंद्रीय संग्रहालय, जयपुर स्थित अल्बर्ट हॉल (एक ऐतिहासिक कला और पुरावशेष संग्रहालय) और हैदराबाद, कोलकाता और भोपाल जैसे शहरों में स्थित सरकारी संग्रहालय शामिल हैं।

**राजस्थान सरकार द्वारा कला और साहित्य के संरक्षण के लिए किए गए प्रयासः** राजस्थान सरकार कला और साहित्य के संरक्षण हेतु अनेक कदम उठा रही है, जिनमें निम्नांकित कार्य योजनाएं शामिल है।

राजस्थान सरकार कला तथा साहित्य के संरक्षण हेतु विभिन्न साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं का संचालन करती है। साहित्यकारों को प्रोत्साहन पुरस्कार और आर्थिक सहायता योजना जैसे "मुख्यमंत्री लोककलाकार प्रोत्साहन योजना" और वरिष्ठ कलाकारों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

कला और साहित्य से सम्बंधित प्रमुख संस्थाओं एवं विभागों की सूची प्रकार है।

1. राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर।
2. राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर।
3. राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर।
4. राजस्थान राज्य धरोहर संरक्षण एवं प्रोन्नति प्राधिकरण, जयपुर।
5. भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर।
6. जवाहर कला केन्द्र, जयपुर।

**कला और साहित्य की गतिविधियों को अधिक प्रोत्साहन देने के लिए सुझावः**

1. कला एवं साहित्य से संबंधित संस्थाओं एवं विभागों की गतिविधियां तीव्र करने के लिए बजट में समुचित व्यवस्था करना।

2. अनुसंधान को प्रोत्साहन – कला एवं साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने के लिए शोधकर्ताओं को अनुदान या फैलोशिप प्रदान करना।

3. नई तकनीक का उपयोग– कला एवं साहित्य के संरक्षण के लिए अधिक से अधिक डिजिटल माध्यम का प्रयोग किया जाए।

4. कला या साहित्य के क्षेत्र में शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए एक अलग विश्वविद्यालय की स्थापना करना।

5. पढ़ने (रीडिंग) की संस्कृति को बढावा देना– आज के डिजिटल युग में पढ़ने की आदत को बढ़ावा देने के लिए विशेष कार्य योजना बनाना।

7. पुरस्कार प्राप्त करने वाले तथा इस क्षेत्र में कार्यरत कलाकारों और साहित्यकारों की आर्थिक सहायता को अन्य क्षेत्रों के समक्ष लाना।

8. बालकों की वर्तमान पीढ़ी की कला एवं साहित्य निर्माण में रुचि पैदा करने के लिए संस्थागत ढाँचा तैयार करना।

भारत में कला और साहित्य का संरक्षण एक लंबी और विविधतापूर्ण प्रक्रिया रही है। स्वतंत्रता के पूर्व राजाओं, नवाबों एवं अन्य शासकों ने कला और साहित्य को संरक्षण और प्रोत्साहन देने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता के बाद, भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने कला और साहित्य के संरक्षण और प्रचार के लिए कई कदम उठाए हैं। भारतीय संविधान में निहित कई प्रावधानों ने कला और साहित्य के संरक्षण एवं प्रोत्साहन के लिए एक मजबूत आधार प्रदान किया है तथा विभिन्न सरकारों को इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में काम करने के लिए प्रेरित किया है।

संदर्भः

1. भारत का संविधान– एक परिचय, डी० डी० बसु, प्रिंट्स हाल इंडिया, नई दिल्ली, आठवां संस्करण, 2002.
2. भारत का संविधान– एक परिचय, बृज किशोर शर्मा, प्रिंट्स हाल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली , पांचवां संस्करण, 2008.
3. भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था, उदय भान सिंह, प्रभात प्रकाशन, 2023.
4. भारत का संविधान– डॉ. एच. पी. गुप्ता, मॉडर्न लॉ पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण,2015.
5. https://www-wethepeopleabhiyan-org/art&in&the&constitution
6.https://culturalsamvaad-com/constitution&of&india&22&
paintings&ode&to&indian&culture&and&history/
7. https://dashboard&padmaawards-gov-in/Field/Art
8. https://lalitkala-gov-in/
9. https://sahitya&akademi-gov-in/awards/akademi&awards-jsp

45

# कला, समाज एवं स्थानीय कथानक अंतर्संबंध की विवेचना

**डॉ. अनंता शांडिल्य**
एसोसिएट प्रोफेसर
ड्राइंग एंड पेंटिंग विभाग
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल विश्वविद्यालय
Mail: ananta.ananta456@gmail.com
Mob : 7037236587

**शोध सार**

यह शोध कला, समाज एवं स्थानीय कथानकों के परस्पर संबंधों का विश्लेषण करता है। कला न केवल सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि यह समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं का प्रतिबिंब भी होती है। स्थानीय कथानक, जो कि किसी क्षेत्र विशेष की लोककथाओं, परंपराओं, रीति–रिवाजों, और ऐतिहासिक अनुभवों से जन्म लेते हैं, सामाजिक चेतना और सामूहिक स्मृति को आकार देते हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार स्थानीय कथानकों ने लोक कला, चित्रकला, नृत्य, नाट्य एवं अन्य कलात्मक अभिव्यक्तियों को प्रेरित किया है, और साथ ही किस तरह कलात्मक अभिव्यक्तियाँ समाज के भीतर सामाजिक मूल्यों, विरोध, संघर्ष एवं सामंजस्य के विमर्श को प्रस्तुत करती हैं।

शोध में विविध लोककलाओं, लोकनाट्य रूपों, एवं दृश्य–श्रव्य माध्यमों का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि कैसे स्थानीय कथाएँ समाज के सांस्कृतिक ताने–बाने को जीवंत बनाए रखती हैं। साथ ही यह अध्ययन इस पर भी प्रकाश डालता है कि आधुनिकता और वैश्वीकरण के दौर में इन कथानकों और कलाओं की प्रस्तुति किस रूप में परिवर्तित हो रही है।

इस शोध का उद्देश्य समाज और कला के मध्य संवाद की प्रक्रिया को समझना और स्थानीय कथाओं के सांस्कृतिक महत्व को रेखांकित करना है। यह अध्ययन समाज विज्ञान, लोक साहित्य, और दृश्य कला के विद्यार्थियों एवं शोधकर्ताओं के लिए एक उपयोगी दृष्टिकोण प्रदान करता है।

**मुख्य शब्द :**

कला, समाज, स्थानीय कथानक, संस्कृति, लोककला, परंपरा, अभिव्यक्ति, पहचान, सांस्कृतिक निरंतरता

**परिचय**

कला मानव सभ्यता की आत्मा है। यह मनुष्य की रचनात्मकता, संवेदना और अनुभूति की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति है। समाज के आरंभिक चरण से लेकर आधुनिक युग तक कला ने हमेशा समाज के विकास, विचारधारा और संस्कृति को दिशा दी है।

भारतीय परंपरा में कला को सत्य, शिव और सुंदर की त्रिवेणी माना गया है। चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्य, संगीत, नाट्य, साहित्य और वास्तुकला ये सभी सामाजिक जीवन से जुड़े रहे हैं। कला न केवल सौंदर्यबोध का माध्यम है, बल्कि यह समाज के विचार, भावना और संस्कृति का भी दस्तावेज है।

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में हर क्षेत्र की अपनी लोककथाएँ, मिथक, गीत और लोककलाएँ हैं। ये स्थानीय कथानक समाज की जड़ों को पहचान देने का कार्य करते हैं। जब कलाकार इन्हीं कथाओं से प्रेरणा लेकर अपने सृजन में उन्हें अभिव्यक्त करता है, तो कला में स्थानीयता और सार्वभौमिकता दोनों का सुंदर संगम देखने को मिलता है।

## कला और समाज का अंतःसंबंध

कला और समाज का संबंध परस्पर पूरक और गतिशील है। समाज कलाकार को प्रेरणा देता है, जबकि कलाकार अपने सृजन से समाज को नई दृष्टि प्रदान करता है।

कला समाज का दर्पण है कृ जैसे कि प्राचीन गुफा चित्रों में मानव के शिकार और जीवन के दृश्य हैं, मध्यकालीन भित्तिचित्रों में धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है, वहीं आधुनिक चित्रकारों की कृतियों में सामाजिक संघर्ष और अस्तित्व की जटिलता दिखती है।

भारतीय चित्रकला में अजंता और एलोरा की गुफाओं के भित्तिचित्रों से लेकर राजस्थानी, पिचवाई, पटचित्र, मधुबनी और गोंड कला तक, हर शैली में समाज के जीवन–मूल्य, आस्था, त्योहार, और परंपराओं की झलक दिखाई देती है।

कलाकार समाज से प्रेरित होकर ही नए रूप और प्रयोग करता है। जैसे एम.एफ. हुसैन ने भारतीय स्त्री और धार्मिक प्रतीकों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया, या तैयब मेहता ने समाज के भीतर संघर्ष और असंतुलन को अपने चित्रों में रूपायित किया।

इस प्रकार कला न केवल समाज का दस्तावेज है बल्कि सामाजिक चेतना का माध्यम भी है।

## स्थानीय कथानक की अवधारणा

स्थानीय कथानक से तात्पर्य उन कहानियों, मिथकों, लोकगीतों, जनश्रुतियों और जीवनानुभवों से है जो किसी विशिष्ट क्षेत्र या समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को अभिव्यक्त करते हैं।

ये कथानक समाज के लोकजीवन, परंपराओं, संघर्षों और विश्वासों से उत्पन्न होते हैं।

**उदाहरण के लिए :**

- मधुबनी कला में मिथिला की देवी–देवता, विवाह संस्कार और लोककथाएँ झलकती हैं।
- वारली कला महाराष्ट्र की जनजातीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें मानव जीवन और प्रकृति का सुंदर संतुलन दर्शाया गया है।
- गोंड चित्रकला में प्रकृति, जानवरों और जनजातीय जीवन की कहानियाँ उभरती हैं।
- पाटचित्र कला ओडिशा की धार्मिक और पौराणिक परंपराओं पर आधारित है।

ये सभी स्थानीय कथानक समाज के सामूहिक अनुभवों को रंग, रेखा और प्रतीक में व्यक्त करते हैं।

## कला में स्थानीय कथानक की भूमिका :

कला और स्थानीय कथानक के बीच गहरा नाता है। कलाकार अपने समाज की कथाओं, प्रतीकों और विश्वासों से प्रेरणा लेकर उन्हें अपने सृजन में रूपांतरित करता है।

यह प्रक्रिया कला को "लोक" से जोड़ती है कृ अर्थात वह केवल अभिजात्य वर्ग की वस्तु न रहकर जनजीवन की प्रतिनिधि बन जाती है।

उदाहरण के लिए :

- राजस्थान की फड़ चित्रकला में स्थानीय देवताओं और लोकनायकों की गाथाएँ चित्रित होती हैं।
- बिहार की मधुबनी चित्रकला में विवाह संस्कार, मछली, पेड़–पौधे और पौराणिक कथाएँ प्रमुख हैं।
- छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश की गोंड कला में वन्य जीवन और प्रकृति के प्रतीक बार–बार उभरते हैं।

इन कलाओं के माध्यम से कलाकार अपने समाज की संस्कृति, इतिहास और अनुभव को दृश्य रूप देता है। यही स्थानीय कथानक कला को जीवंत बनाए रखते हैं।

**कला, समाज एवं स्थानीय कथानक का त्रिकोणीय अंतःसंबंध**

कला, समाज और स्थानीय कथानक का संबंध त्रिकोणीय है कृ तीनों एक–दूसरे को अर्थ देते हैं और एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं।

5. समाज कलाकार को सामग्री देता है कृ उसकी सोच, अनुभव और जीवनशैली।
2. कलाकार उन अनुभवों को कला के माध्यम से रूपांतरित करता है।

3. स्थानीय कथानक उसे सांस्कृतिक आधार देते हैं, जिससे कला में क्षेत्रीयता और पहचान की गंध बनी रहती है।

यह त्रिकोण समाज की सांस्कृतिक निरंतरता का आधार बनता है।

कला स्थानीय कथाओं से प्रेरणा लेकर जब सृजन करती है, तो वह समाज की आत्मा को सहेजती है। वहीं समाज उस कला के माध्यम से अपनी परंपरा, पहचान और अस्तित्व को जीवित रखता है।

इस प्रकार, यह संबंध न केवल सौंदर्यात्मक है बल्कि समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

**समकालीन परिप्रेक्ष्य**

आज के वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और शहरीकरण के दौर में कला की प्रकृति और माध्यम बदल गए हैं। डिजिटल कला, इंस्टॉलेशन आर्ट, और ग्राफिक डिजाइन जैसे आधुनिक माध्यमों ने अभिव्यक्ति के नए रास्ते खोले हैं।

फिर भी, स्थानीय कथानक की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है।

आधुनिक कलाकार स्थानीय परंपराओं को समकालीन भाषा में रूपांतरित कर रहे हैं। उदाहरण के लिए कृ

• जगन्नाथ साहू जैसे कलाकार पाटचित्र शैली को डिजिटल माध्यम में प्रस्तुत कर रहे हैं।

• भावेश पटेल ने वारली कला को शहरी थीम्स के साथ जोड़ा है।

• कई समकालीन चित्रकार पर्यावरण, स्त्रीवाद, और जनजातीय जीवन जैसे विषयों को लोक प्रतीकों से जोड़कर अभिव्यक्त कर रहे हैं।

इस प्रकार, कला आज भी समाज की अभिव्यक्ति है कृ केवल माध्यम बदले हैं, भाव वही हैं।

**सांस्कृतिक पहचान और निरंतरता**

स्थानीय कथानक केवल कला की प्रेरणा नहीं हैं, बल्कि समाज की पहचान का स्रोत भी हैं।

जब कलाकार लोक परंपराओं से जुड़कर सृजन करता है, तो वह न केवल संस्कृति का संरक्षण करता है बल्कि उसे आधुनिक संदर्भ में पुनर्परिभाषित भी करता है।

भारत की कला परंपरा का सौंदर्य इसी में है कि उसने समय के साथ स्वयं को परिवर्तित किया, पर अपनी जड़ों से जुड़ी रही।

आज भी लोककला के माध्यम से हम अतीत की कहानियों को नए अर्थों में पढ़ते हैं। यही सांस्कृतिक निरंतरता कला, समाज और स्थानीय कथानक के अंतःसंबंध की सबसे सुंदर परिणति है।

## निष्कर्ष :

कला, समाज और स्थानीय कथानक एक–दूसरे के पूरक और परस्पर निर्भर तत्त्व हैं।

कला समाज की चेतना, संस्कृति और अनुभवों का दृश्य रूप है। समाज कलाकार को सामग्री और प्रेरणा देता है, जबकि कलाकार अपने सृजन से समाज की आत्मा को जीवित रखता है।

स्थानीय कथानक इस प्रक्रिया को जड़ों से जोड़ते हैं, जिससे कला में मौलिकता और आत्मीयता बनी रहती है।

इस त्रिकोणीय संबंध के माध्यम से न केवल कला का विकास होता है, बल्कि समाज की सांस्कृतिक पहचान भी संरक्षित रहती है।

अतः कहा जा सकता है कि कला समाज का आईना है और स्थानीय कथानक उस आईने की आत्मा। जब ये तीनों एकसाथ जुड़ते हैं, तो संस्कृति की निरंतरता और रचनात्मकता दोनों का विकास होता है।

## संदर्भ सूची :

1. शर्मा, मोहन. (2019). भारतीय कला और संस्कृति. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।
2. पांडे, राधेश्याम. (2020). लोककला का समाजशास्त्र. वाराणसीः भारती प्रकाशन।
3. कोहली, रवि. (2018). संस्कृति और सृजनात्मकता. भोपालः म.प्र. कला परिषद।
4. रंजन, नील. (2021). आधुनिक कला में लोक तत्व. दिल्लीः साहित्य अकादमी।
5. मिश्रा, अनुराधा. (2020). भारतीय लोककला और समाज. इलाहाबादः कलाभारती प्रकाशन।

46

# आधुनिक युग में कलाकारों और साहित्यकारों के बीच सहयोग: रचनात्मक साझेदारी का विश्लेषण

**डॉ . रानी शर्मा**
शिक्षण सहायक
ललित कला संस्थान
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी (उ.प्र.)
मो.- 9303919757
मेल .ranishrma16@gmail.com

## प्रस्तावना

आधुनिक युग में कलाकारों और साहित्यकारों के बीच सहयोग ने कला और साहित्य के समृद्ध उत्सर्जन को संभव बनाया है। यह साझेदारी विभिन्न माध्यमों, तकनीकों, और वैश्विक प्लेटफार्मों के माध्यम से निरंतर विकसित हो रही है, जिसने दोनों क्षेत्रों की सीमाओं को धुंधला करते हुए नए संचार और अभिव्यक्ति के मार्ग खुले हैं। इस रिसर्च पेपर में इस सहयोग के स्वरूप, प्रभाव, सामाजिक भूमिका, और तकनीकी माध्यमों की भूमिका का व्यापक विश्लेषण किया जाएगा।

## कलाकारों और साहित्यकारों के बीच सहयोग के स्वरूप

कलाकार और साहित्यकार आज अपनी रचनाओं में साहित्यिक और दृश्य कला को समेकित कर रहे हैं। उदाहरण स्वरूप, कविताओं के साथ चित्रों या ग्राफिक्स का संयोजन, चित्रकथाओं में साहित्यिक कथानक का विकास, और प्रदर्शन कला में साहित्यिक संवाद जैसी बहु-माध्यमीय रचनाएं पाई जाती हैं। ऑनलाइन सामग्रियों और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के जरिये यह साझेदारी वैश्विक मंच पर विस्तारित हो रही है, जहां भौगोलिक सीमाएं मायने नहीं रखतीं। इस सहयोग में एक-दूसरे की सीमाओं को चुनौती देते हुए नवाचार और प्रयोगशीलता अधिक प्रबल होती जा रही है।

## तकनीक और डिजिटल युग का प्रभाव

डिजिटल युग ने इस साझेदारी को मजबूती से नई दिशा दी है। सोशल मीडिया, वर्चुअल आर्ट गैलरियाँ, और डिजिटल पब्लिकेशन प्लेटफार्म ने कलाकारों और साहित्यकारों को अपनी कृतियों को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाने का अवसर दिया है। क्राउडसोर्सिंग, ऑनलाइन साहित्यिक क्लब, और फैन आधारित सामग्री लेखन ने सहभागिता और सामूहिक क्रिएशन को बढ़ावा दिया है। इससे पारदर्शिता बढ़ी है और रचनात्मकता की परिभाषा में विस्तार हुआ है।

## सामाजिक प्रभाव और जिम्मेदारी

कलाकार और साहित्यकार मिलकर सामाजिक मुद्दों जैसे असमानता, पर्यावरणीय परिवर्तन, और मानवाधिकारों पर जागरूकता फैलाते हैं। उनकी रचनाएं समाज में सहानुभूति, संवेदनशीलता, और समझ बढ़ाने का माध्यम बनती हैं। साहित्य और कला के सामूहिक प्रयास समाज के लिए चिंतन और परिवर्तन का स्रोत बनते हैं, जो मानवीय मूल्यों को पुष्ट करते हैं और सामाजिक न्याय की दिशा में प्रेरित करते हैं।

## सांस्कृतिक विरासत और नवाचार का समन्वय

इस युग की रचनात्मक प्रक्रिया में पारंपरिक सांस्कृतिक विरासत और आधुनिक नवाचारों का मिश्रण देखने को मिलता है। कलाकार और साहित्यकार अपनी-अपनी सांस्कृतिक पहचान को नए स्वरूपों में प्रस्तुत करते हैं, जो एक ओर सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करता है वहीं दूसरी ओर नवीनता और प्रयोग से सृजनात्मकता को पुष्ट करता है।

**निष्कर्ष**

आधुनिक युग में कलाकारों और साहित्यकारों के बीच सहयोग ने कला और साहित्य को समृद्ध किया है। तकनीकी प्रगति और वैश्विक मंचों ने इस साझेदारी को व्यापकता दी है, जिससे सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक समृद्धि, और रचनात्मक नवाचार का विस्तार हुआ है। यह संयुक्त प्रयास न केवल रचनात्मकता के नए आयाम खोलता है, बल्कि समाज के समग्र विकास एवं मानवता के मूल्यों को भी सुदृढ़ करता है।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

1. Angie Homes. The Intersection of Art and Literature. Angie Homes Blog, 2024.
2. अपूर्वा शर्मा. भारतीय समकालीन महिला कलाकारों की कला में सामाजिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ. आपनी माटी, 2024.
3. शर्मा, रेखा. हिंदी साहित्यिक अनुसंधान में प्रयुक्त परंपरागत एवं आधुनिक शोध पद्धतियाँ. All Research Journal, खंड 11, अंक 3, भाग E,
4. विकिपीडिया. आधुनिक कला. Wikimedia Foundation, संशोधित 2025.
5. हिंदी साहित्य में आधुनिकता का उदय. INFLIBNET, 2024.
6. विकिपीडिया. हिंदी साहित्य का आधुनिक काल. Wikimedia Foundation, संशोधित 2025.
7. गुप्ता, अनीता. समकालीन कला में कला और कलाकार की स्थिति. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), खंड 11, अंक 10, 2023.
8. मिश्र, चंद्रकांत. साहित्यिक अनुसंधान एवं शोध पत्र में समीक्षा दृष्टि का महत्व.
9. गुप्ता, सगीता. *लोक-कला बनाम आधुनिक कला: लोकतत्वों के अविरल प्रवाह के संदर्भ में
10. अनुबुक्स. कला संकाय के शोधपत्र के प्रकार. Anubooks Publications, 2022.

47

# "डॉ० उषा किरण के सृजन में कला और साहित्य की अंतर्धारा"

**डॉ0 पूनम लता सिंह**
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
रघुनाथ गर्ल्स (पी0जी0) कॉलेज, मेरठ

**शोध सारांश**

डॉ0 उषा किरण की रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध हैं, बल्कि उनमें चित्रकला और दृश्य कला की गहन अंतर्धारा भी दृष्टिगोचर होती है। उनका सृजन संसार इस दृष्टि से विशिष्ट है कि उनकी कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास केवल शब्दों का खेल नहीं, बल्कि रंग, रूप और दृश्य संवेदनाओं का भी प्रतिबिंब हैं।

इस शोध में डॉ. उषा किरण के साहित्य और कला के सम्मिलन की प्रकृति, रचनात्मक प्रवाह और अभिव्यक्ति के माध्यमों का अध्ययन किया गया है। उनके रचनात्मक दृष्टिकोण में यह देखा गया कि चित्रकला की संरचना और रूपों की सूक्ष्म समझ उनके साहित्य में भाव, प्रतीक और शैली की गहराई को प्रभावित करती है। इसी प्रकार, साहित्यिक संवेदनाएँ उनके चित्रों में एक दृष्टिगत और भावनात्मक सार प्रदान करती हैं।

शोध में विशेष रूप से यह उजागर किया गया है कि कैसे उनके रचनात्मक अनुभव में कला और साहित्य एक–दूसरे से प्रेरित होते हैं और इस अंतर्धारा के माध्यम से पाठक और दर्शक दोनों के लिए गहन भावनात्मक और बौद्धिक अनुभव सृजित होता है। डॉ0 उषा किरण का सृजन इस दृष्टि से अध्ययन और आलोचना के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह साहित्य और कला के समन्वय की समकालीन भारतीय दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है।

**1. प्रस्तावना**

कला और साहित्य मानव–अभिव्यक्ति के सबसे सशक्त माध्यम हैं। जब शब्द और चित्र मिलकर किसी भाव को प्रस्तुत करते हैं, तो उसकी संवेदना और भी प्रभावशाली हो जाती है। सभी ललित कलाएँ अपने स्वरूप में एक–दूसरे से जुड़ी रहती हैं और निरंतर एक–दूसरे को समृद्ध करती रही हैं।

इसी पृष्ठभूमि में डॉ. उषा किरण का सृजन–संसार साहित्य और कला का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है। कला और कविताओं का यह संवाद पारंपरिक, साहित्यिक परंपरा को पुष्ट करता है, जहाँ कला और साहित्य गहराई से एक–दूसरे में गुंथे हुए हैं।

स्वयं वे लिखती हैं –

"मन की उधेड़बुन से उभरे विचारों को जब शब्द मिले, तो कुछ सिलवटें खुल गईं और कविता में ढ़ल गईं और जब शब्दों से भी मन भटका, तो रेखाएं उभरीं और रेखांकन में ढ़ल गईं, इन्हीं दोनों की जुगलबन्दी से बना है ये ताना–बाना, यहाँ मैं और मेरा समय साथ–साथ बहते हैं।"

## 2. डॉ. उषा किरण का परिचय

अपनी पुस्तक ताना—बाना की पहली कविता 'परिचय' में वे लिखती हैं —

"पूछते हो कौन हूँ मैं शायद भगवान का गढ़ा एक डिफेक्टिव पीस जिसमें जल, आकाश, हवा तो बहुत है पर आग और मिट्टी, बहुत ही कम रंगों की बिसात तो हर तरफ हैः पर आँकड़ों के हिसाब तो गायब हैं..........."

**स्वामी विवेकानन्द सुभारती यूनिवर्सिटी मेरठ की अध्यक्ष डॉ. सीमा शर्मा लिखती हैं —**

"उषा जी वस्तुतः कलाकार हैं। अतः उनकी कला की अभिव्यक्ति कई अलग—अलग रूपों में होती है। कभी कवि, कभी कथाकार और कभी चित्रकार और कहीं कहीं ये विधाएँ एकाकार होने लगती हैं। इस उपन्यास में भी आप कई स्थानों पर देखेंगे जब वे अपने शब्दों से रेखाचित्र बनाती हैं और कथा का आरंभ कविता से करती हैं।"[1]

- 1957 में नगीना (बिजनौर) में जन्मीं डॉ. उषा किरण ने संस्कृत व चित्रकला में एम.ए. एवं पी—एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वे जी.डी.एम. पी.जी. कॉलेज, मोदीनगर एवं मेरठ कॉलेज के ललितकला विभाग में प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष के रूप में लगभग चालीस वर्षों तक कार्यरत रहीं। अनेक शोधार्थियों ने उनके निर्देशन में पी—एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने चार दशकों तक चित्रकला के क्षेत्र में अध्यापन किया। इससे प्राप्त तकनीकी दक्षता, संवेदना तथा भावनात्मक अभिव्यक्तिपूर्ण कौशल उनकी रचनाओं में चित्र के साथ साहित्य में भी प्रवाहित होता है।
- देश के विभिन्न नगरों मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, हरिद्वार आदि में आयोजित सामूहिक कला—प्रदर्शनियों में उनकी कृतियों को व्यापक सराहना मिली। समय—समय पर आयोजित सेमिनार, कॉन्फ्रेंस व वर्कशॉप में भी वे भाग लेती रही हैं।
- विश्व के अनेक देशों — अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, सिंगापुर, नीदरलैंड, कंबोडिया, थाइलैंड, फिलीपींस, स्विट्जरलैंड, श्रीलंका, यू.ए.ई., ऑस्ट्रेलिया, हंगरी, ऑस्ट्रिया, चेक रिपब्लिक, टर्की, चीन, जापान, लंकावी, बाली, मॉरीशस, एम्सटर्डम इत्यादि देशों में स्थित विश्व प्रसिद्ध संग्रहालयों व कला—दीर्घाओं में उन्होंने युग—प्रवर्तक कलाकारों के चित्रों व मूर्तियों का अवलोकन तथा विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया है। भारतीय उच्चायोग, सिंगापुर के तत्वाधान में उपन्यास 'दर्द का चंदन' का विमोचन हुआ।

वे संस्कार—भारती, अवन्तिका, अग्निपथ, ऑल इंडिया कॉन्फ्रेंस ऑफ इंटलेक्चुअल्स, अखिल भारतीय महिला साहित्य समागम, उत्कर्ष ललित कला अकादमी, सिंगापुर संगम आदि प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा सम्मानित हो चुकी हैं।

यूके बेस्ड हिन्दी भाषा के शिक्षण संस्था 'यूके हिन्दी समिति' के सिलेबस औरपरीक्षा पत्र में उनकी लिखी फिल्मों की समीक्षाएँ शामिल की गई हैं। इसके अतिरिक्त अपनी पुस्तकों के कवर पेज के साथ ही अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं के कवर पेज भी उन्होंने बनाए हैं।

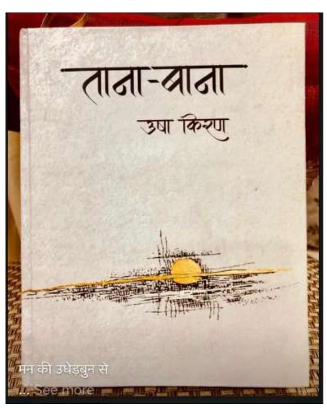

प्रकाशन –

- कविता एवं रेखांकन–संग्रह ताना–बाना (शिवना प्रकाशन)
- उपन्यास – दर्द का चंदन
- साझा संकलन – लगभग बीस साझा संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित।
- अनेक प्रतिष्ठित पत्र – पत्रिकाओं जैसे – सारिका, कटा जिंदगी, विभोम स्वर, नई दुनिया, पाखी, अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका अन्तरदेश व सिंगापुर संगम इत्यादि में कहानी, कविता, लघुकथा, संस्मरण यात्रा–वृतान्त, आलेख व समीक्षा प्रकाशित होती रहती हैं।
- अन्य लघु कथाएँ : स्त्री अस्मिता, सामाजिक कुरीतियों पर देवी, पितृदोष जैसी लघु कथाएँ लिखी हैं। उनको पुस्तक रूप में छपने की योजना पर काम कर रही हैं।
- **ब्लॉग** : आपका ताना–बुना नाम से ब्लॉग भी है जिस पर तथा फेसबुक इन्स्टाग्राम पर भी निरन्तर सार्थक लेखन चलता रहता है।
- समीक्षा : मेरी चश्मे से, शीर्षक से फिल्म समीक्षा व पुस्तक समीक्षा लिखती रहती है।
- संस्मरण : अपने जीवन के खट्टे–मीठे अनुभवों, ग्रामीण प्रवास व देश–विदेश की यात्राओं के अनुभवों को भी लिखती रहती हैं।
- अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से व काव्य–पाठ करती रहती हैं।

उषा किरण कहती हैं ''इस दुनिया से जाने से पहले मैं खुद को हर तरह से खाली कर देना चाहती हूँ'' इसी प्रयास में वे विविध विधाओं में लिखती तथा चित्र बनाती रहती हैं।

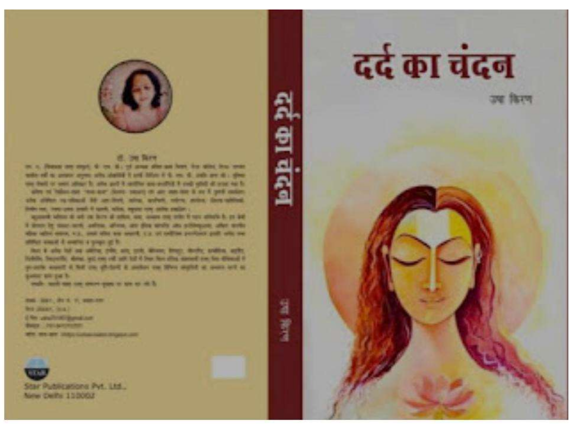


**'दर्द का चंदन' — उपन्यास। मुखपृष्ठ चित्र लेखिका द्वारा निर्मित।**

### 3. डॉ. उषा किरण का साहित्य–सृजन

ताना–बाना नामक काव्य व रेखांकन संग्रह में 101 कविताएँ संकलित हैं। इसमें शब्द और रेखाचित्रों का अद्भुत संगम है। प्रत्येक कविता पर तदनुसार ही उन्होंने काली इंक से रेखांकन बनाए हैं। सुप्रसिद्ध लेखिका गिरिजा कुलश्रेष्ठ अपने ब्लॉग पर लिखती हैं – ''जब कोई आंचल में चाँद–सितारे

भरकर अंधेरे को नकारने लगे, तूफानों की ललकारें, मुट्ठी में आसमान को भरने के स्वप्न देखने लगे, तब 'ताना–बाना' जैसी कृति हमारे सामने आती हैं।''

लंदन की प्रतिष्ठित लेखिका व पत्रकार शिखा वार्ष्णेय लिखती हैं – ''जहाँ शब्दों की सीमाएँ समाप्त होती हैं, वहाँ से उषा किरण की रेखाएँ शुरु होती हैं और जहाँ रेखाएँ सीमित हो जाती हैं, वहाँ से कविता आरम्भ होती है।''[2]

**उपन्यास** : दर्द का चंदन : यह उपन्यास शब्दों में चित्रित जीवन–संघर्ष – यह उपन्यास उनके कैंसर जैसी असाध्य बीमारी से आत्मसंघर्ष पीड़ा और उपचार की यात्रा है। इसके हर अध्याय की शुरुआत एक कविता से होती है। उन्होंने सिफर अपनी पीड़ा ही नहीं उकेरी है अपितु लोगों को जागरुक करने हेतु जानकारी भी दी है। उन्होंने खुलकर बताया कि किस तरह सकारात्मक रहकर उन्होंने इस बीमारी को मात दी।

प्रसिद्ध लेखिका ऋता शेखर मधु लिखती हैं –

''दर्द जब तूलिका थाम ले तो सौंदर्य का ही चित्रांकन करेगा, दर्द जब चंदन बन जाए तो वह खुशबू ही बिखेरेगा।''[3]

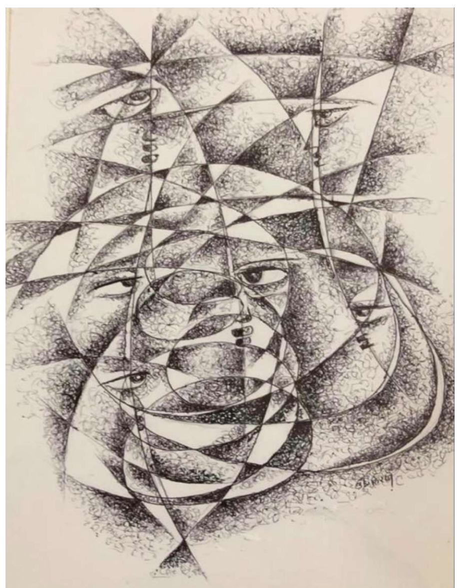

कहानियों में दृश्यात्मक सामाजिक सरोकार : उनकी कहानियों – बिट्टा बुआ, लाल–पीली लड़की, अनकही, गुलमोहर, रज्जो, हवा खामोश है आदि में सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की छवियाँ, नारी संवेदना, विधवा–विवाह, आत्महत्या, वृद्धावस्था की समस्या जैसे विषयों पर कथानक बुना गया है।

लेखिका रचना दीक्षित लिखती हैं – ''यहाँ दर्द को चंदन के काटों में लपेटकर उसे शीतलता देने का प्रयास है, ताकि पढ़ने वालों को दर्द की अनुभूति कम हो पर दर्द तो दर्द है........।[4]

यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटों में प्रवक्ता व सुप्रसिद्ध लेखिका डॉ0 हंसा दीप ने ''दर्द का चंदन' की भूमिका में लिखा है – ''कुछ प्रयोग ऐसे हैं जो बरबस ही लेखक की कलम के प्रशंसक बन जाते हैं जैसे – मकान जब घर बनते हैं तो वे जीवित हो जाते हैं। गद्य के साथ कविता इस तरह संयोजित करके प्रस्तुत की गई है जैसे लगता है इसके, बगैर कही बात अधूरी ही रहती। भाषायी सौंदर्य में रंग कविताओं ने जबरदस्त तड़का लगाया।''[5]

नटखट- चाँद

रात बारिश की
नन्हीं उंगली पकड़
नीचे उतर आया
नटखट-चाँद
चलो
नाव में बिठा कर
वापिस पहुंचाएं .

## 4. चित्रों में साहित्यिक प्रभाव और विविध आयाम

डॉ. उषा किरण के चित्र केवल रेखाओं और रंगों तक सीमित नहीं रहते, उनमें साहित्यिक भावधारा की गहरी अनुगूँज सुनाई देती है। उनकी पेंटिंग्स मानो कविताओं का दृश्य रूप हों और उनकी कविताएँ मानो रंगों और आकृतियों में ढली हुई प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि उनका चित्र–संसार और साहित्यिक संसार एक–दूसरे में विलीन होकर एक नई संवेदना का निर्माण करते हैं।

वे एक्रेलिक, ऑयल तथा मिक्स–मीडियम में कार्य करती हैं और प्रायः अपने चित्रों पर कविताओं की पंक्तियाँ भी लिखती हैं। कबीर, खुसरो और गीता जैसे स्रोतों से प्रेरित होकर उन्होंने कई चित्र बनाए हैं, वहीं अपनी स्वयं की कविताओं को भी रंगों में उतारा है। वे काले इंक पैन से बहुत सुन्दर रेखांकन बनाती हैं। अपने काव्य–संग्रह, ताना–बाना में उन्होंने प्रत्येक कविता पर रेखांकन बनाया है।

### बोंसाई : आधुनिक जीवन की सीमाएँ

उनकी बहुचर्चित पेंटिंग 'बोंसाई' उनकी इसी नाम की कविता पर आधारित है। कविता में बरगद का वृक्ष जो कभी विराट और स्वतंत्रता का प्रतीक था, अब छोटे गमले में सिमट गया है –

"जब से घने जंगलों को छोड़
ड्रॉइंगरूम के कोने में सिमट गए हो
जरूरत के हिसाब से हँसते हो
इंचों में नाप के मुस्कुराते हो
बरगद! तुम कितने मॉडर्न हो गए हो!"

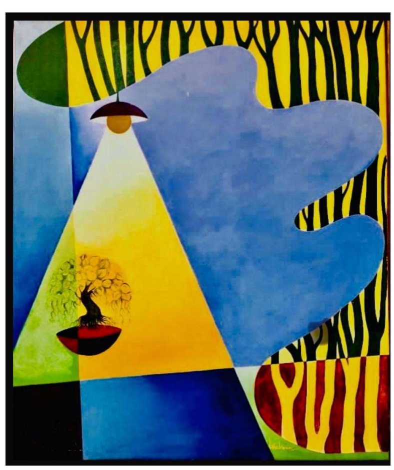

यह चित्र और कविता मिलकर आधुनिक सभ्यता में प्राकृतिक और मानवीय जीवन के कृत्रिम संकुचन को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

**पीला : रंगों का मनोविज्ञान** – उनकी कविता 'पीला' और उस पर आधारित पेंटिंग रंगों के बदलते अर्थ को दर्शाती है। पहले पीला रंग उन्हें झुलसाती धूप और थकी आँखों की तरह प्रतीत होता है, किंतु बाद में वही रंग अमलतास, सरसों के खेत और कान्हा के पीताम्बर के रूप में जीवन की प्रसन्नता और आस्था का प्रतीक बन जाता है / ''पीला रंग पहले पसंद नहीं था मुझे, पीला जैसे – फुलसाती जेट की धूप/तीखी सी पीड़ा/जलाता ताप तन–मन का/फिर दोस्ती हो गई पीले से, जब देखा – खुशमिजाज अमलतास, ताली बजाकर झूमते सरसों के खेत/शरद की कुनकुनी पीली धूप.....।।''

यह उदाहरण दिखाता है कि उनके लिए रंग केवल दृश्य अनुभव नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन के वाहक भी हैं।

**लक्ष्मण रेखा : वर्जनाओं और मुक्ति का प्रतीक** – उनकी पेंटिंग 'लक्ष्मण रेखा' स्त्री–जीवन की उन सीमाओं और बंधनों का प्रतीक है, जिन्हें समाज ने थोप रखा है। परंतु इस चित्र में स्त्री आकृतियाँ उस रेखा को पार करती हुईं सुनहरे क्षितिज की ओर बढ़ती हैं। यह रचना नारी–मुक्ति और आत्म–सशक्तिकरण का सशक्त संदेश देती है।

**'लक्ष्मण रेखा' — स्त्रियों पर थोपे गए सामाजिक बंधनों और उनकी मुक्ति की आकांक्षा का चित्रण।**

**मौन संगीत : भीतर की ध्वनियाँ** – 'मौन संगीत' शीर्षक पेंटिंग आत्मा की उस आंतरिक अनुगूँज को प्रकट करती है, जो शब्दों से परे है। यह चित्र और उससे जुड़ी भावधारा हमें बताती है कि मौन भी गहनतम संगीत की तरह आत्मा में गूंजता है। यहाँ चित्र और साहित्य दोनों मिलकर अध्यात्मिक अनुभव का रूप लेते हैं।

**'मौन संगीत'**

**अहम् ब्रह्मास्मि : अद्वैत का अनुभव** – उनकी पेंटिंग 'अहम् ब्रह्मास्मि' वेदांत के अद्वैत–दर्शन को दृश्य रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें आत्मा और ब्रह्म के एकत्व का भाव साकार होता है। यह चित्र उनके साहित्यिक और आध्यात्मिक चिंतन का समुच्चय है, जिसमें जीवन की परिधियाँ टूटकर अनंत से जुड़ जाती हैं।

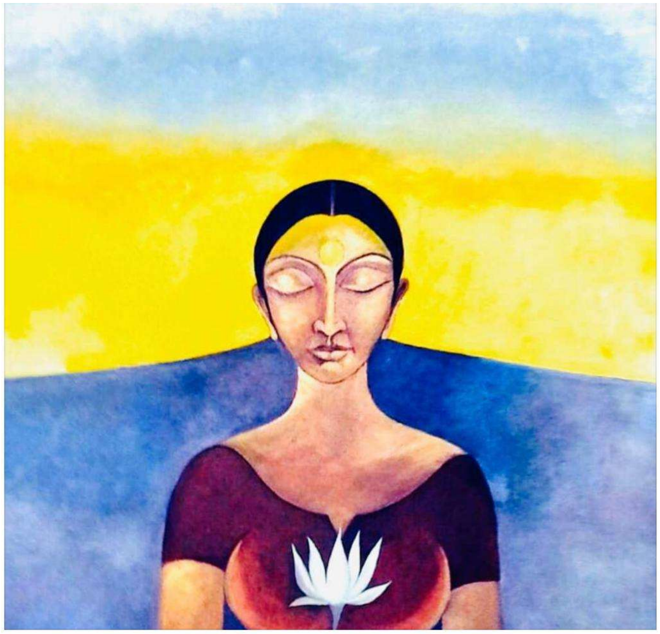

विषय के दृष्टिकोण से उनके चित्रों के तीन आयाम दिखाई देते हैं – प्रारम्भिक दौर में उनके चित्रों पर राजपूत शैली का प्रभाव दिखाई देता है। फिर धीरे–धीरे वे एब्स्ट्रेक्ट की तरफ उन्मुख हुईं। इसका कारण वे बताती हैं कि ''बहुत से सूक्ष्म व गूढ़ भावों को हम प्रतीकात्मक रूप से ज्यादा अच्छी तरह उकेर सकते हैं और कई बार जब विषयों से परे मन सिर्फ रंगों व स्वेज़ के साथ उन्मुक्त होकर खेलना चाहता है तब मैं एब्स्ट्रेक्ट पेन्ट करती हूँ।''

## 5. सृजन की विशेषताएँ

डॉ. उषा किरण का संपूर्ण सृजन साहित्य और कला के अद्भुत संगम का उदाहरण है। उनकी रचनाएँ केवल शब्दों या चित्रों तक सीमित नहीं, बल्कि संवेदनाओं, प्रतीकों और जीवन–दर्शन की गहन अभिव्यक्ति हैं। कवि व ब्लॉगर संगीता स्वरूप लिखती हैं ''हिन्दी साहित्य के आसमान में उषा किरण, उषा की किरण की तरह दैदीप्यमान ले रहा है....... वे गद्य, काव्य लेखन व चित्रकला में सिद्धहस्त हैं। कहानियाँ ऐसी बुनती हैं जैसे घटनाएं सब आंखों के सामने हो रही हैं।''[6] उनके सृजन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

### (1) साहित्य और कला का स्वाभाविक संगम

उषा किरण, सिर्फ एक कवयित्री नहीं, रेखाओं और रंगों की जादूगर भी हैं। एक वह रेशमी धागा, जो समय, रिश्ते, भावनाओं को मजबूती से सीना जानता है, उसे जीना जानता है। ऐसा नहीं कि उन्होंने विरोध के स्वर नहीं उठाए, उठाए, लेकिन धरती पर संतुलन बनाते हुए।

उनकी कविताओं और चित्रों में यह संतुलन सहज दिखाई देता है। वे शब्दों को चित्रात्मक दृष्टि से देखती हैं और चित्रों को काव्यमय संवेदना के साथ रचती हैं।

### (2) चित्रात्मकता और दृश्य–बोध से भरी भाषा

उनकी कविताओं और कहानियों में बिंब–निर्माण और दृश्यात्मकता इतनी सजीव है कि पाठक शब्दों को पढ़ते–पढ़ते मानो चित्रों को आँखों के सामने जीवंत देख लेता है। जब कोई आँचल में चाँद

सितारे भरकर अँधेरे को नकारने लगे, तूफानों को ललकारे, मुट्ठी में आसमान को भरने के स्वप्न देखने लगे, तब 'ताना–बाना' जैसी कृति हमारे सामने आती है।

### (3) जीवन–संघर्ष और संवेदना का गहन चित्रण

उनका उपन्यास 'दर्द का चंदन हो' या कहानी, कविता, हर जगह जीवन की वास्तविकताओं और संघर्षों का मार्मिक चित्रण मिलता है। वे स्वयं भी जीवन की कठिनाइयों से जूझी हैं, और वही अनुभव उनकी रचनाओं में संवेदना और जिजीविषा के रूप में अंकित हो जाता है।

### (4) मौलिकता और बहुआयामी दृष्टि

उनका दृष्टिकोण मौलिक है। वे बाहरी अनुकरण से बचते हुए अपने अनुभवों, संवेदनाओं और आध्यात्मिक चिंतन से ही साहित्य और कला का रूप गढ़ती हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में वैराग्य, करुणा और प्रेम की धारा समान रूप से प्रवाहित होती है।

अपनी कविता 'वसीयत' में वे लिखती हैं –

"निकलूँ जब अन्तिम यात्रा पर
तब मेरे सिरहाने सहेज देना
कुछ रंग शोख तितली से और
कुछ बुझे–बुझे राख से
कुछ ब्रश, कुछ स्याही और कुछ कलम भी
थोड़े से खाली पन्ने और कुछ कोरे कैनवास भी
और हाँ...... कुछ सुर–ताल और कुछ गीत भी.......!!"

अमूर्त चित्र, रंग और प्रतीक साहित्यिक बिंबों जैसे हैं।

### (5) सामाजिक सरोकार

उनकी रचनाएँ केवल व्यक्तिगत संवेदनाओं तक सीमित नहीं हैं। वे समाज की समस्याओं और विसंगतियों पर भी प्रखर दृष्टि डालती हैं। लक्ष्मण रेखा जैसी पेंटिंग और कई कविताएँ नारी–मुक्ति और सामाजिक सुधार की प्रबल आकांक्षा प्रकट करती हैं जैसे 'इससे पहले' कविता में वे लिखती हैं –

"किसी के पूंछे जाने की
किसी के चाहे जाने की
चाह में औरतें प्रायः
मरी जा रही है.... बिसूरते हुए कहती हैं
मर ही जाऊ तो बेहतर है....
क्या फर्क पड़ेगा तब
जब तुम ठीक होगी..........।"

यह स्वर उनकी रचनाओं को समाज से जोड़ते हैं और उन्हें केवल कलात्मक नहीं, बल्कि जागरूक और प्रेरक व्यक्तित्व भी बनाते हैं।

इस प्रकार, डॉ. उषा किरण का सृजन–संसार संवेदनात्मक, कलात्मक, मौलिक और सामाजिक चेतना से संपृक्त है। वे शब्दों और रंगों के संगम से ऐसा संसार रचती हैं, जो पाठक और दर्शक दोनों को गहराई तक प्रभावित करता है।

## 6. समकालीन परिप्रेक्ष्य और रचनात्मक विशिष्टता

डॉ. उषा किरण का सृजन–संसार समकालीन हिंदी साहित्य और भारतीय चित्रकला के परिदृश्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है। आज जब साहित्य और कला दोनों माध्यम अलग–अलग खेमों में बँटकर देखे जाते हैं, वहाँ उनका कार्य इन दोनों को जोड़ने वाला सेतु है।

### (1) समकालीन साहित्य में योगदान

समकालीन हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर उपभोक्तावाद और बाजारवाद के प्रभाव से रचनाएँ कहीं–कहीं सपाट दिखाई देती हैं, वहीं डॉ. उषा किरण की रचनाएँ आत्मीयता, संवेदना और सामाजिक सरोकार से भरी हैं। वे स्त्री–अस्मिता, जीवन–संघर्ष, पारिवारिक रिश्तों और आध्यात्मिकता को अपनी कहानियों और कविताओं में नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं।

### (2) दृश्यकला और साहित्य का संगम

आज के समय में जब कला और साहित्य अक्सर अपनी–अपनी सीमाओं में सिमटे दिखाई देते हैं, डॉ. उषा किरण की रचनाएँ दोनों के संगम की जीवंत मिसाल हैं। उनकी कविताएँ दृश्यात्मकता से भरपूर हैं और उनके चित्र साहित्यिक भावधारा के संवाहक। यह अंतःसंबंध उन्हें न केवल मौलिक बनाता है, बल्कि आधुनिक भारतीय साहित्यिक परंपरा में भी विशिष्ट बनाता है।

### (3) रचनात्मक विशिष्टता

उनकी रचनात्मकता का सबसे बड़ा गुण है – मौलिकता। वे अनुभव से लिखती हैं, जीवन के छोटे–छोटे क्षणों को पकड़कर उन्हें गहरे अर्थ देती हैं। उनके चित्र, कहानी और कविताएँ न केवल सौंदर्य रचते हैं, बल्कि आत्मा को छूने वाली अनुभूति भी जगाते हैं।

उनकी विशिष्टता तीन स्तरों पर देखी जा सकती है –

- व्यक्तिगत स्तर पर – वे अपनी संवेदनाओं और जीवनानुभवों को बिना किसी आवरण के अभिव्यक्त करती हैं।
- सामाजिक स्तर पर – उनकी रचनाएँ समाज की विसंगतियों पर प्रहार करती हैं और परिवर्तन की आकांक्षा जगाती हैं।
- आध्यात्मिक स्तर पर – उनके चित्र और कविताएँ आत्मा की खोज और ईश्वर के साथ एकत्व का अनुभव कराती हैं।

### (4) समकालीन संदर्भ में महत्व

आज की भागदौड़ और तकनीकी युग में जब संवेदनाएँ धुंधली होती जा रही हैं, डॉ. उषा किरण का सृजन पाठकों और दर्शकों को ठहरकर सोचने पर विवश करता है। वे कला और साहित्य दोनों को केवल सौंदर्याभिव्यक्ति का माध्यम न मानकर, आत्म–विकास और समाज–सुधार का साधन मानती हैं।

इस प्रकार, डॉ. उषा किरण का सृजन समकालीन साहित्य और कला दोनों में नई चेतना का संचार करता है। उनकी रचनाएँ न केवल व्यक्तिगत अनुभवों का प्रतिबिंब हैं, बल्कि वे समय की नब्ज पकड़कर भविष्य की दिशा भी दिखाती हैं। यही उनकी रचनात्मक विशिष्टता है।

### 7. निष्कर्ष : कला और साहित्य के बीच सेतु

डॉ. उषा किरण का सृजन केवल साहित्य या केवल चित्रकला तक सीमित नहीं है, बल्कि वह इन दोनों के संगम से निर्मित एक जीवंत कला–संसार है। उनकी रचनाओं में शब्द रंगों से संवाद करते हैं और चित्र शब्दों से। यह अनूठा संगम उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को समकालीन रचनाकारों से अलग श्रेणी में स्थापित करता है।

उनकी कविताओं और कहानियों में चित्रात्मकता और दृश्य–बोध की प्रखर उपस्थिति है, वहीं उनकी पेंटिंग्स साहित्यिक संवेदना से सराबोर हैं। यह द्वंदहीन संगम इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि साहित्य और कला जब मिलते हैं तो अभिव्यक्ति और भी सशक्त, गहन और बहुआयामी हो जाती है।

सुप्रसिद्ध कवि डॉ. कुमार विश्वास ने उनके बारे में कहा है –

"कहते हैं एक चित्र हजार शब्दों की ताकत रखता है। ऐसे में अगर चित्रों को दमदार शब्दों का भी साथ मिल जाए, तो फिर तो इस रचनात्मक संगम से निकली कृति सोने पर सुहागा है। डॉ. उषा किरण एक ऐसी ही चुनिंदा लेखिका और चित्रकार हैं, जिन्हें माँ सरस्वती ने कलम और कूँची दोनों का आशीर्वाद दिया है। संवेदनाओं को पहले शब्दों में ढालना और फिर उसे चित्रों में उकेरना, ये एक ऐसी विशेषता है, जो उषा किरण को दूसरे समकालीन लेखकों से अलग श्रेणी में ला खड़ा करता है।"[7]

निष्कर्षतः, डॉ. उषा किरण का सृजन साहित्य और कला के बीच एक सेतु है। यह सेतु अतीत और वर्तमान, संवेदना और चिंतन, यथार्थ और कल्पना, व्यक्तिगत और सामाजिक–सभी स्तरों को जोड़ता है। आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीय दृश्यकला के परिदृश्य में उनका योगदान न केवल विशिष्ट है, बल्कि प्रेरणास्रोत भी है।

### संदर्भ सूची

1. शर्मा, सीमा : शिवना साहित्यिकी पत्रिका, अप्रैल–जून, पृ0 24, 2020, ISSN: 2455–9717
2. वार्ष्णेय, शिखा : शब्द और रेखाओं का अनूठा 'ताना–बाना', ताना–बाना, उषा किरण, पृ0 8, ISBN-979-93-87310-71-1
3. मधु ऋता शेखर : पुस्तक समीक्षा – 'दर्द का चंदन', त्रैमासिक–पत्रिका, सिंगापुर संगम, पृ0 57, अप्रैल जून 2023, ISSN: 259–25917773
4. दीक्षित रचना : 'दर्द की खुशबू महसूस कराता है दर्द का चंदन', पुस्तक समीक्षा, साहितयनामा, पृ0 63, जून 2023
5. दीप हंसा : दर्द का चंदन उपन्यास की भूमिका, पृ0 9, ISBN: 978–93–95310–00–0
6. स्वरूप संगीता : 'हिन्दी साहित्य के आसमान में उषा किरण का नाम'', साहित्य एक्सप्रेस, 1 जनवरी 2023
7. विश्वास कुमार : ''उषा किरण : कलम और कूंची की की साधिका'' भूमिका – ताना–बाना, पृ0 7 ISBN: 978–93–87310–71–1

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

48

# समकालीन साहित्य और कला में सामाजिक जीवन : नारीवादी दृष्टि के संदर्भ में

कोमल उज्ज्वल
शोधार्थी
चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
ई–मेलः komalujjwal90@gmail.com
शोध निर्देशकः प्रो. (डॉ.) आई.यू.खान
(चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

शोध सार

समकालीन साहित्य और कला दोनों की उपज मानव प्रकृति से ही हुई है। साहित्य अपने अर्थालोक द्वारा कला की भावना को बुद्धिगम्य स्फुटता प्रदान करता है और कला अपने प्रभाव द्वारा अर्थ को भावनामय बनाती है । दूसरे शब्दों में कहें तो हम जो कुछ भी सोचते है, उसे हमारी अनुभूति के माध्यम से शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं जिसका, कोई अर्थ होता है परंतु यदि कुछ शब्द अनुभूतिगम्य होते हुए भी अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं कर पाये वहां रंग,रेखा, रूप, गति इत्यादि के माध्यम से उस भाग की पूर्ति की जाती है और इसी को हम कला कहते हैं।

साहित्य और कला सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं, चुनौतियों और परिवर्तनों को उजागर करने में कारगर साबित हुए हैं। इनमें गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, लैंगिक असमानता, जातीय भेदभाव, परिवार, प्रेम मित्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नारीवाद जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

मेरे लेख में साहित्य और स्त्री के सामाजिक जीवन को प्रदर्शित किया गया है जो नारीवाद की प्रतिध्वनि को प्रस्तुत करते हुए साहित्य एवं कला के अंतर्संबंध की अमिट छाप छोड़ता है। अनेक कलाकारों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न ग्रंथों के शब्दों को अर्थ और सौंदर्य प्रदान किया है जैसे कालिदास की अभिज्ञान शाकुंतलम, भवभूति का उत्तररामचरितम, जयदेव का गीत गोविंद, भानुभट्ट की कादंबरी, तुलसीदास की रामचरितमानस इत्यादि। राजाराम रवि वर्मा नंदलाल बोस से लेकर नलिनी मालानी, जयश्री बर्मन बौआ देवी (मधुबनी कलाकार) जैसे कई कलाकारों ने साहित्यिक ग्रंथों से प्रेरणा लेकर नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे लज्जा, प्रेम, सामाजिक मर्यादा, मातृत्व, विरह, संघर्ष, गरिमा, आत्मसम्मान आदि को अपनी कला में दर्शाया है।

## परिचय

प्रस्तुत शोध पत्र में समकालीन साहित्य और कला में सामाजिक जीवन विषय को नारीवादी दृष्टिकोण से प्रदर्शित किया गया है। समय–समय पर कलाकारों और लेखकों ने अपने परिवेश संस्कृति जीवन अनुभवों और सामाजिक यथार्थ को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से जन–मानस के समक्ष रखा है। सामाजिक जीवन का तात्पर्य केवल समाज के ढांचे और वर्ग विभाजन से नहीं बल्कि, उस मानवीय संवेदना से है जो व्यक्ति को अपने परिवेश से जोड़ती है। समकालीन कला में जब समाज में स्त्री–पुरुष संबंध, समानता, स्वतंत्रता और पहचान के प्रश्नों ने गहराई से जगह बनानी शुरू की तब कला और साहित्य दोनों में नारी–चेतना का दौर आरंभ हुआ, जिसे समकालीन कलाकारों ने अपनी कला का अभिन्न अंग बनाया। इसके लिए कलाकारों ने विभिन्न पौराणिक ग्रंथों से प्रेरणा ली, और स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे– लज्जा, प्रेम, सामाजिक–मर्यादा मातृत्व, विरह, संघर्ष, गरिमा, आत्मसम्मान आदि को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया। इसकी शुरुआत भारतीय कला में सर्वप्रथम राजा रवि वर्मा ने की। इन्होंने भारतीय साहित्य विशेषकर रामायण, महाभारत, कालिदास के नाटक और संस्कृत काव्य परंपरा को आधुनिक चित्रकला के रूप में मूर्त रूप दिया। उनकी कला में उन्होंने स्त्री पात्रों को जीवंत किया।

यह सभी स्त्रियां साहित्यिक नायिकाएं होकर भी आधुनिक भारतीय नारी की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है, एवं सजीव सामाजिक व्यक्तित्व बन जाती हैं। उदाहरण स्वरूप द्रोपदी नामक प्रसिद्ध चित्र भारतीय नारी के आत्मसम्मान का प्रतीक है जिसे इन्होंने सामाजिक चेतना और नारीवाद के आरंभिक स्वर के रूप में चित्रित किया है।

भारतीय समाज का इतिहास सदा से कला और साहित्य के गहरे अंतर्संबंध का साक्षी रहा है। जहां साहित्य, शब्दों में समाज का रूपांकन करता है वही, कला इसे दृश्य रूप में प्रकट करती है। विभिन्न समकालीन कलाकारों में नलिनी मलानी, जयश्री बर्मन, बौआ देवी, एम.एफ.हुसैन, जतिन दास, अतुल डोडिया, नाथूलाल वर्मा इत्यादि प्रमुख है जिन्होंने समाज, साहित्य और नारी जीवन को जोड़ते हुए कला की एक नई भाषा गढ़ी ।

## साहित्यिक चेतना और नारीवादी दृष्टि–

साहित्यिक चेतना वह बौद्धिक संवेदना है जो व्यक्ति को अपने समय, समाज और संस्कृति से संवाद करने की शक्ति देती है। नारीवादी दृष्टि इसी चेतना की वह दिशा है जहां स्त्री अपने अस्तित्व, अनुभव और अधिकार के प्रश्नों को भी व्यक्त करती है। नारीवाद केवल पुरुष–विरोध नहीं है बल्कि, वह सामाजिक समानता और संवेदनशीलता का आग्रह है। यह दृष्टि स्त्री को विषय नहीं बल्कि कृत्री के रूप से देखते हैं। इसी विचारधारा ने समकालीन भारतीय कला को गहराई दी। कलाकारों ने स्त्री जीवन को केवल सौंदर्य देवी के रूप में नहीं बल्कि संवेदनशील, संघर्षशील, आत्म साक्षात्कार करती मानव इकाई के रूप में चित्रित किया है।

## समकालीन कला में स्त्री जीवन का चित्रण : कलाकारों के संदर्भ में

### बौआ देवी

मिथिला की प्रसिद्ध चित्रकार बौआ देवी ने पारंपरिक मधुबनी शैली में आधुनिक सामाजिक जीवन को उकेरा है। उनकी कला का आधार लोक कथा और साहित्य दोनों है। उन्होंने कालिदास की शकुंतला, तुलसीदास की रामचरितमानस और देवी कथाओं से प्रेरित अनेक चित्र बनाएं। उनकी कलाकृतियों में ग्रामीण स्त्री के जीवन, विवाह, श्रम और मातृत्व की झलक के साथ–साथ आधुनिक स्त्री की आकांक्षाएं भी दिखाई देती हैं।

बौआ देवी का नारीवाद मौलिक है। वह ग्रामीण जीवन से उठता हुआ है। उनकी पेंटिंग्स जैसे सीता इन एक्जाइल या विमेन एट वर्क में पौराणिक स्त्री पात्रों के माध्यम से वर्तमान समाज की स्त्री का संघर्ष दिखाई देता है। उनकी कला यह बताती है कि स्त्री केवल देवी नहीं बल्कि धरती से जुड़ी हुई शक्ति है। वह सामाजिक जीवन का सर्जनात्मक केंद्र है – और यही साहित्यिक चेतना का विस्तार भी है।

हाल ही में राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर, जयपुर में **सीता द डॉटर ऑफ बिहार** नामक प्रदर्शनी 2 से 30 सितंबर 2025 का आयोजन किया गया जिसमें बौआ देवी की कृतियों का प्रदर्शन किया गया। इसमें सीता और श्रीराम जी के जीवन से जुड़ी विभिन्न घटनाओं जैसे राम–सीता स्वयंवर, वन में सीता इत्यादि से संबंधित कृतियाँ प्रमुख थी। इस प्रदर्शनी में बौआ देवी के अतिरिक्त दुलारी देवी, पद्मश्री (मधुबनी कलाकार) अशोक कुमार बिस्वास, पद्मश्री (टिकुली कलाकार), शिबानी बिस्वास (टिकुली कलाकार), आशा देवी (सुजनी कलाकार) इत्यादि कलाकारों की कृतियां प्रदर्शित की गई थी, जो सभी साहित्य और पौराणिक कथाओं से संबंधित थी।

### जयश्री बर्मन

जयश्री बर्मन की कला भारतीय पौराणिकता, स्त्री–देवी प्रतीक और साहित्यिक बिंबो से भरी हुई है। उनकी रचनाओं में कविता और चित्रकला का सुंदर संगम देखने को मिलता है। उनकी प्रदर्शनी **व्हिस्पर ऑफ वाटर** और **द सॉन्ग्स ऑफ स्टार्स** में उन्होंने नदी, शंख, जल और देवी के प्रतीकों के माध्यम से स्त्री के सृजनात्मक रूप को दिखाया। जयश्री बर्मन टैगोर और जयदेव के साहित्य से गहराई

से प्रभावित है। उनके चित्रों में स्त्री–देवता रूपी पात्र जैसे– गंगा, सरस्वती, दुर्गा केवल देवी नहीं, बल्कि समाज में करुणा और शक्ति की मूर्तियां है। वह मिथकीय साहित्य को आधुनिक संदर्भों में रूपांतरित करती हैं। जैसे– स्त्री–देवता को प्रकृति, पारिस्थितिकी और पर्यावरण से जोड़ना। उनकी कला स्त्री जीवन की काव्यात्मकता है, जहां हर रंग आकृति एक पद्य की तरह बोलती हैं। उनकी कला का नारीवाद, सौंदर्य और सृजन की दृष्टि से है, आक्रोश से नहीं। वह कहती है– **"मेरी स्त्रियां रोती नहीं, वे जीवन रचती है!"**

नलिनी मलानी

नलिनी मलानी भारतीय समकालीन कला की सबसे सशक्त आवाजों में से एक है। उनकी कला में समाज, राजनीति, नई चेतना और पौराणिक साहित्य का गहरा संगम मिलता है। उनकी श्रृंखला **माय रियलिटी इज डिफरेंट** में उन्होंने कालिदास महाभारत और ग्रीक मिथको से प्रेरित स्त्री पात्रों को आधुनिक सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है। उनके वीडियो इंस्टॉलेशन और पेंटिंग्स में सीता, द्रोपदी जैसी स्त्रियां आधुनिक समय की पीड़ित लेकिन, जागरूक स्त्रियों के प्रतीक है। नलिनी का मानना है कि, समाज में स्त्री का मौन ही सबसे बड़ा अन्याय है। उनकी कलाकृतियों में यह मौन, रंगों के विस्फोट के रूप में टूटता है। लाल, काला और नीला रंग स्त्री की पीड़ा, प्रतिरोध और आत्म बल को दर्शाते हैं। **"मलानी की कला भारतीय साहित्य और मिथक की पुनर्व्याख्या है वह उन स्त्रियों की आवाज है जिन्हें इतिहास ने मौन कर दिया" (गीता कपूर)**

इस प्रकार मलानी का कार्य केवल दृश्य नहीं, बल्कि एक नारीवादी संवाद है जो साहित्यिक चेतना को आधुनिक समाज से जोड़ता है। समकालीन भारत में कई पुरुष कलाकारों ने भी स्त्री के सामाजिक जीवन को साहित्यिक प्रेरणा से जोड़ते हुए चित्रित किया है। उन्होंने स्त्री को केवल प्रेरणा का माध्यम नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना का प्रतीक माना।

एम. एफ. हुसैन

हुसैन की कला में स्त्री भारतीय संस्कृति की आत्मा के रूप में उपस्थित है। उनकी **दुर्गा श्रृंखला** और **मदर टेरेसा श्रृंखला** में स्त्री मातृत्व, करुणा और शक्ति की प्रतिमा है। उन्होंने रामायण और महाभारत के प्रसंगों से प्रेरणा लेकर स्त्री को समाज की नैतिक धुरी के रूप में चित्रित किया। उनकी कला में साहित्यिक चेतना स्पष्ट है– जैसे तुलसीदास और व्यास की नायिकाएँ, हुसैन के कैनवास पर आधुनिक संदर्भ में जीवित हो उठती हैं।

जतिन दास

जतिन दास की कला में स्त्री सामाजिक संघर्ष का प्रतीक है। उनकी विमेन इन द विंड पदक श्रृंखला स्त्री के भावनात्मक बल और अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। उन पर आधुनिक कविता का प्रभाव रहा है, विशेषकर महादेवी वर्मा और अनीता देसाई जैसी रचनाकाराओं का। उनकी पेंटिंग्स में नारी शरीर के माध्यम से मनोभाव और सामाजिक स्थिति का संकेत मिलता है।

वह कहते हैं – **"मेरी स्त्री न तो देवी है, न वस्तु, वह संवेदना है।"** उनकी कला नारीवादी साहित्य का दृश्य रूप बन जाती है।

अतुल डोडिया

अतुल डोडिया ने भारतीय इतिहास और साहित्य को समकालीन समाज से जोड़ने का अद्भुत कार्य किया है। उनकी कबीर'स डॉटर्स श्रृंखला (2014) भक्ति–साहित्य की संत–कवयित्रियों जैसे– मीराबाई, जनाबाई और बहिनाबाई से प्रेरित है। उन्होंने इन ऐतिहासिक स्त्रियों को आधुनिक सामाजिक चेतना के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। डोडिया के चित्रों में स्त्री **"आध्यात्मिक विद्रोह"** की प्रतिमूर्ति बन जाती है।

## निष्कर्ष

समकालीन भारतीय कला और साहित्य में सामाजिक जीवन का चित्रण एक समग्र संवाद बन चुका है जहाँ रंग, शब्द, प्रतीक और विचार मिलकर समाज की आत्मा को प्रतिबिंबित करते हैं। नारीवादी दृष्टि ने इस संवाद को और गहरा किया है। उसने स्त्री को सामाजिक, सांस्कृतिक और रचनात्मक चेतना के केंद्र में ला खड़ा किया है। नलिनी मलानी, जयश्री बर्मन और बौआ देवी जैसी कलाकारों ने जहाँ स्त्री की करुणा, शक्ति और संवेदना को साहित्यिक प्रेरणाओं से जोड़ा, वहीं हुसैन, जतिन दास और अतुल डोडिया जैसे पुरुष कलाकारों ने उसे मानवीयता और समाज के दर्पण के रूप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार **"समकालीन साहित्य और कला में सामाजिक जीवन"** केवल चित्रण का विषय नहीं, बल्कि मानवता की निरंतर यात्रा है जो कभी कविता बनती है, कभी रंगों की लकीर, और कभी मौन प्रतीक्षा में खड़ी स्त्री।

## संदर्भ सूची

1. शर्मा, हरद्वारीलाल : साहित्य और कला; प्रयाग; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2000
2. दलमिया, यशोधरा : भारतीय समकालीन कला; स्वतंत्रता के बाद; वादेरा आर्ट गैलरी, नई दिल्ली 2001
3. हुसैन, मकबूल फिदा : एम. एफ. हुसैन : द पेंटेड वर्ड; नई दिल्ली; 2000
4. कपूर, गीता : व्हेन वाज मॉडर्निज़्म : भारत में समकालीन सांस्कृतिक अभ्यास पर निबंध; नई दिल्ली; 2000
5. टैगोर, रवीन्द्रनाथ : गीतांजलि. लंदन; 1913

49

# समकालीन साहित्य और कला में वैदिक युग

**नंदिनी खण्डेलवाल**
विद्यार्थी, एम .वी .ए, प्रथम सेमिस्टर
डिजाइन एंड आर्ट्स विभाग, पूर्णिमा विश्वविद्यालय, जयपुर - 303905
ईमेल : nandinikhandelwal2910@gmail.com

**सारांश**

वैदिक युग लगभग 1500–500 ईसा पूर्व भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल है जो वेदों की रचना के लिए जाना जाता है। इस काल के चार वैदिक दर्शन के प्रमुख ग्रंथ हैं ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। अन्य ग्रंथ हैं – ब्राह्मण ,अनुष्ठान और अनुष्ठान संबंधी ग्रंथ, आरण्यक ,वन संबंधी ग्रंथ और उपनिषद, दार्शनिक ग्रंथ । अपनी प्राचीन उत्पत्ति के बावजूद वैदिक चिंतन का प्रभाव समकालीन साहित्य और कला को गहन और विकसित रूप में आकार दे रहा है।

उस काल में कला प्रतीकात्मक, क्रियात्मक और पद्धति थी। लेकिन हमें अलंकरण, मंत्रोच्चार और संगीत के भी संकेत मिले। यह शोधपत्र इस बात का अध्ययन करता है कि समकालीन लेखक, कवि और दृश्य कलाकार वैदिक काल के विषयों, ग्रंथों और बिम्बों से कैसे जुड़ते हैं। विषय आध्यात्मिकता से आगे विकसित हुए क्योंकि उनमें पर्यावरण, न्याय आदि जैसे मुद्दे शामिल हैं।

अमीश त्रिपाठी, देवदत्त पटनायक, सुधा मूर्ति, नरेश मेहता, गोविंद चंद्र पांडे, अटल बिहारी वाजपेई जैसे लेखकों के साथ–साथ निर्मल वर्मा, अमित कल्ला, श्याम शर्मा, एस.एच. रजा, बी.डी. पांडे, अशोक अत्रे, प्रकाश परिमल, जैसे कलाकारों की आधुनिक साहित्यिक कृतियाँ वैदिक युग की अपनी रचनात्मक भाषा में पुनर्व्याख्या करती हैं। उन्होंने वैदिक और पौराणिक तत्वों को वर्तमान पीढ़ी के लिए सुलभ स्वरूपों में पुनर्व्याख्या करके उन्हें लोकप्रिय बनाया है। फ्रेडरिक रोज़ेन, फ्रेडरिक मैक्स मूलर, थियोडर बेनले, ए.बी. कीथ, फ्रांसेस नाइट जैसे समकालीन पश्चिमी कलाकारों ने भारतीय उपमहाद्वीप से परे वैदिक साहित्य के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह शोधपत्र तर्क देता है कि वैदिक युग की आज की पुनर्व्याख्याएँ केवल पुनरुत्पादन नहीं हैं बल्कि परंपरा और नवीनता के बीच रचनात्मक संवाद हैं।

वैदिक प्रतीकः जैसे मंडल, बिंदु और ब्रह्मांडीय कल्पना तेजी से आधुनिक कलाकृतियों, प्रतिष्ठानों और डिजिटल डिज़ाइनों में चित्रित हो रहे हैं । मौलिक और गुणात्मक विश्लेषण का उपयोग करते हुए यह शोध इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे समकालीन कलाकार अक्सर वैदिक दर्शनों से प्रेरणा लेते हैं– जैसे धर्म, कर्म और मोक्ष के विषयों की खोज। संस्कृत मंत्र, कर्मकांडीय तत्व और ध्यानात्मक लय भी संगीत, फिल्म और डिजिटल मीडिया में नई अभिव्यक्ति पाते हैं। निष्कर्ष बताते हैं कि ये प्राचीन विचार केवल सौंदर्य मूल्यों के लिए ही संदर्भित नहीं हैं बल्कि आत्म, खोज, नैतिकता, आध्यात्मिक चेतना और अस्तित्व चक्र जैसे गहन प्रश्नों का अन्वेषण करने में सक्रिय रूप से संलग्न हैं ।

**शब्द कुंजी – वैदिक युग, दर्शन, ग्रंथ, साहित्य, कला ।**

## परिचय

वैदिक युग भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण काल था जो लगभग 1500 से 500 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है। इस युग में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जैसे चार प्रमुख वेदों की रचना हुई, जो भारतीय दर्शन, धर्म और संस्कृति की नींव रखते हैं। धर्म, कर्म और मोक्ष जैसे विचार इसी काल में विकसित हुए। वैदिक युग की कला प्रतीकात्मक और मौखिक थी, जिसमें दृश्य कला की अपेक्षा मंत्र, संगीत और अनुष्ठानिक क्रियाओं को अधिक महत्व दिया गया। इस युग की विचारधारा ने न केवल प्राचीन भारत को दिशा दी बल्कि आज भी साहित्य, कला और दर्शन में इसकी छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

वैदिक ग्रंथों ने हिंदू दर्शन के विभिन्न संप्रदायों को प्रभावित किया है, जिनमें वेदांत सांख्य और योग शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक संप्रदाय वैदिक शिक्षाओं की अलग–अलग व्याख्या करता है। वैदिक काल में दृश्य कला रूपों का अभाव वैदिक काल में कलाकृतियों का अभाव देखा जा सकता है क्योंकि उपनिषद दर्शन भौतिक अभिव्यक्ति की तुलना में अमूर्त विचार को अधिक महत्व देते हैं, परिणामस्वरूप, इस काल में मूर्तिकला और प्रतिमा-चित्रण सहित दृश्य कलाओं पर कम ज़ोर दिया गया।

### वेदों से प्रेरित कलात्मक अभिव्यक्तियाँ कुछ इस प्रकार देखी जा सकती हैं :

**क**. शास्त्रीय भारतीय नृत्य व संगीत में सामवेद में पाई जाने वाली लय और माधुर्य संरचनाओं ने शास्त्रीय भारतीय संगीत और नृत्य शैलियों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है।

**ख**. दृश्य कलाओं, मूर्तिकला, चित्रकला और वास्तुकला पर मंदिर और मूर्तियाँ अक्सर वैदिक विषयों को प्रतिबिंबित करती हैं: जिनमें देवताओं और पौराणिक कथाओं का चित्रण होता है जो कि खजुराहो और हप्पी जैसे प्राचीन मंदिरों में देखा जा सकता है।

**ग**. प्राचीन भारतीय साहित्य और काव्य पर प्रभाव समकालीन साहित्यकारों का अपने रूप में वेदों व अन्य ग्रंथों का वर्णन। वहीं नरेश मेहता और गोविंद चंद्र पांडे जैसे लेखकों की कृतियाँ अक्सर भारतीय विचार और साहित्य पर वैदिक दर्शन के स्थायी प्रभाव को दर्शाती हैं।

**घ**. वैदिक भजनों और पारंपरिक भारतीय प्रदर्शन कलाओं के बीच संबंध रंगमंच और नृत्य जैसी पारंपरिक भारतीय प्रदर्शन कलाओं में अक्सर वैदिक स्तोत्रों और दर्शनों का समावेश होता है।

ड. समकालीन कलाकार प्रायः वैदिक दर्शन से प्रेरणा लेते हैं तथा एकता, अस्तित्व की प्रकृति और भौतिक तथा आध्यात्मिक दुनिया के बीच परस्पर क्रिया के विषयों की खोज करते हैं: जिसका प्रभाव दृश्य कला, साहित्य और प्रदर्शन कला सहित कला के विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है।

**च**. समकालीन संदर्भ मैं कई कलाकार व साहित्यकारों ने वैदिक सिद्धांतों को जीवंत करने का प्रयास किया है जैसे : अनीश कपूर व सुबोध गुप्ता जैसे कलाकारों ने नवीन विचारों व वस्तुओं के माध्यम से वेदान्त में प्रचलित पहचान और अस्तित्व की अवधारणाओं के साथ खेलती हैं।

**छ** -आर्टवेद एक ऐसा ऑनलाइन मंच है जो वेदों के आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों को समकालीन कलात्मक अभ्यास के साथ एकीकृत करने का प्रयास करता है। इसमें कला का उपयोग आध्यात्मिक अवधारणाओं की खोज अंतर–सांस्कृतिक शांति और सद्भाव को बढ़ावा देने के रूप में किया जा सकता है।

**ज**- जयपुर की पिंक सिटी, गांधी स्मारक संग्रहालय, और जवाहर कला केंद्र आधुनिक पहलुओं में वैदिक साहित्य के सिद्धांतों को शामिल किया गया है।

**कुछ पश्चिमी विद्वान जिन्होंने वेदों पर काम किया :**

**क. फ्रेडरिक रोज़ेन**

19वीं सदी के शुरुआती दौर के जर्मन विद्वान फ्रेडरिक रोज़ेन, पश्चिमी दुनिया को ऋग्वेद से परिचित कराने वाले पहले लोगों में से थे। 1830 में, उन्होंने ऋग्वेद के कुछ हिस्सों का संपादन और जर्मन भाषा में अनुवाद किया।

**ख. फ्रेडरिक मैक्स मूलर**

इंग्लैंड के फ्रेडरिक मैक्स मूलर ने संपूर्ण ऋग्वेद का उसके 'सेक्सापबिबीत्स्य' सहित संपादन किया।

**ग. आर.टी.एच. ग्रिफ़िथ**

आर.टी.एच. ग्रिफ़िथ ने एच.एच. विल्सन के बाद ऋग्वेद के संपूर्ण पाठ का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले पहले और अंतिम व्यक्ति थे। यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के उनके काव्यात्मक अनुवाद अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध हैं।

**घ. ए.बी. कीथ**

मैकडॉनेल के एक छात्र ए.बी. कीथ ने 'टिटिगिया संहिता' का अंग्रेजी में अनुवाद किया।

**ड. फ्रांसिस नाइट**

लंदन और भारत में प्रशिक्षित एमएफए, फ्रांसिस नाइट ने महर्षि महेश योगी के मार्गदर्शन में गुरु देव की चित्रकारी में 35 वर्षों से अधिक समय तक योगदान दिया है। उनकी कृतियाँ गहन भक्ति को दर्शाती हैं और वैदिक ज्ञान को दृश्य रूप में स्पष्ट रूप से व्यक्त करती हैं।

हाल के वर्षों में वैदिक परम्पराओं में रुचि का पुनरुत्थान हुआ है तथा अनेक अपनी जड़ों से फिर से जुड़ने की कोशिश कर रहे हैं :

समकालीन कलाकार अक्सर वैदिक दर्शन से प्रेरणा लेते हैं और अपनी कलाकृतियों में उन्हें जागृत करने का प्रयास करते हैं,

भारतीय कला के लिए वैदिक रूपक कपिला वात्स्यायन ने भारतीय कला के लिए सात रूपकों का वर्णन किया है–

- बीज जो आरंभ का प्रतीक है। आमलक का फल मंदिर वास्तुकला में कलश के रूप में देखा जाता है।
- बीज से उत्पन्न होने वाला या वृक्ष । वृक्ष पृथ्वी और स्वर्ग को जोड़ने वाला ऊर्ध्वाधर ध्रुव है।
- नाभि व गर्भ जो पुरुष का केंद्र है
- बिन्दु जिसके चारों ओर ज्यामितीय आकृतियाँ बनाकर समय और स्थान की धारणाएँ समझी जाती हैं।
- पूर्णता और शून्यता के प्रतीक के रूप में उण्या।
- ज्योति जो तेज सूर्य प्रकाश और चित का प्रतीक हैं यह हमें बीज के मूल बिंदु तक ले जाती हैं ।

प्रतीक जो समकालीन कलाकार अपनी रचनाओं में प्रयोग करते है

- **शंख** : भारतीय संस्कृति में शंख को पवित्र और शुभ माना जाता है। जब शंख बजाया जाता है, तो उसमें से 'ॐ' की आदि ध्वनि निकलती जो वेदों का मूल है।
- **कलश :** यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उस सर्वव्यापी ब्रह्म का प्रतीक है जो सबका अकारण कारण है।
- **यंत्र**: विशेषकर अतिज यंत्र, गजेश यंत्र आदि, काफी लोकप्रिय हो गए हैं, कुछ तो विज्ञापनों के प्रतीक चिन्ह भी बन गए हैं।

**वैदिक युग की कला के प्रमुख तत्व** ;

| तत्व | अर्थ | आधुनिक रूप |
|---|---|---|
| मंडल | ब्रह्मांड की संरचना, ऊर्जा का चक्र | डिजिटल मंडल, योग और ध्यान डिज़ाइन |
| बिंदु | सृजन का केंद्र,चेतना का मूल | रज़ा की पेंटिंग्स, आधुनिक अमूर्त कला |
| अग्नि | शक्ति, परिवर्तन और जीवन का प्रतीक | लाल.पीले रंगों का प्रयोग, ऊर्जा विषयक चित्र |
| सूर्य और चंद्र | समय, लय और जीवन का संतुलन | आधुनिक प्रतीकात्मक चित्रों में प्रकृति का संतुलन |
| जलऔर वायु | शुद्धता और प्रवाह का प्रतीक | पर्यावरण और जीवन आधारित कला में रूपांतरण |

**वैदिक युग पर काम करने वाले कुछ समकालीन साहित्यकार**

- **अमीश त्रिपाठी**

मुंबई के अमीश त्रिपाठी एक भारतीय लोकप्रिय लेखक है उनकी कुछ रचनाएं जो वेदों से प्रेरित हैं।

**द इम्मोर्टल्स ऑफ मेलुजा** में शिव अपने कार्यों के माध्यम से दिव्य बन जाते हैं, जो वैदिक विश्वास को दर्शाता है कि महानता कर्म से आती हैए जन्म से नहीं।

नैतिक सापेक्षवाद वायुपुत्रों की शपथ से पता चलता है कि अच्छाई और बुराई प्रासंगिक हैं, जो स्थितिजन्य धर्म पर वैदिक शिक्षाओं को प्रतिध्वनित करती हैं।

शिव त्रयी में सोम और अग्नि का उल्लेख/ऋग्वेद के पवित्र अनुष्ठानों को प्रतिबिंबित करता है।

मिथिला की योद्धा सीता. में सीता को एक विद्वान और नेता के रूप में चित्रित किया गया है जो गार्गी और मैत्रेयी जैसी वैदिक युग की महिलाओं के समान है।

सुहेल्द्य की कथाएँ ऋग्वैदिक विचार "एकम् सत् विप्रा बहुधे वेदांत" को पुष्ट करती हैं कि सत्य एक है, यद्यपि उसे अलग.अलग तरीकों से व्यक्त किया जाता है।

- **देवदत्त पटनायक**

देवदत्त पटनायक की रचनाओं के कुछ उदाहरण जो पौराणिक तथ्यों को समकालीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है

मेरी गीता. भगवद्गीता की एक व्यक्तिगत व्याख्या, इसके श्लोकों को आधुनिक जीवन से जोड़ती हुई।

सीता के दृष्टिकोण और रामायण के स्त्रीत्व पर केंद्रित, पटनायक देवदत्त – सीता।

यह बताता है कि पौराणिक कथाएँ किस प्रकार सांस्कृतिक सत्य को आकार देती हैं।

शिखंडी और अन्य कहानियां जो वे आपको नहीं बताते. हिंदू पौराणिक कथाओं में विचित्र कथाओं की पड़ताल करती है, तथा लैंगिक मानदंडों को चुनौती देती है।

- **नरेश मेहता**

मेहता एक प्रसिद्ध कवि नाटककार और उपन्यासकार थे जिनकी कुछ रचनाएं हैं–

प्रवाद पर्व आध्यात्मिक प्रश्नों की पड़ताल करता है तथा उपनिषदिक और वैदिक विचारों को प्रतिध्वनित करता है।

पुरुषः मनुष्य, चेतना और ब्रह्मांड की अवधारणा पर एक काव्यात्मक चिंतन पवित्र स्थान और आंतरिक जागृति पर चिंतन, मकड़ी, चैत्य विन्डीक में एकांत, प्रकृति और आध्यात्मिक आत्मनिरीक्षण के प्रमुख रूपांकनों का अन्वेषण किया गया है

नरेश मेहता का लेखन आर्ष दृष्टि, प्रतीकवाद अमूर्तता] आध्यात्मिक एकांत के लिए जाना जाता है

- **गोविंद चंद्र पांडे**

पांडे भारती इतिहासकार दार्शनिक और साहित्यकार थे जिन्होंने दर्शन व शास्त्रों पर गहन शोध किए

ऋग्वेद – मंडल 3,4,5 ;हिंदी अनुवाद

ऋग्वैदिक ऋचाओं का विस्तृत हिन्दी अनुवाद और व्याख्या जिसमें अग्नि और गायत्री पर दार्शनिक अंतर्दृष्टि शामिल है।

मूल्य मीमांसाः वैदिक और उपनिषदिक विचारों में निहित भारतीय मूल्य प्रणालियों की दार्शनिक जांच।

**अटल बिहारी वाजपेयी**

उनकी कुछ कविताएँ और भाषण वैदिक आदर्शों को दर्शाते हैं जैसे –धर्म और त्याग उनकी देशभक्ति कविताओं जैसे, अमर बलिदान और मौत से ठन गई का केन्द्रीय विषय है।

एकता और ब्रह्मांडीय व्यवस्था उनकी कविता कदम मिला कर चलना होगा में प्रतिध्वनित होती है, जो सामूहिक सद्भाव का आह्वान करती है।

**समकालीन कलाकार जिन्होंने वैदिक युग पर काम करा**

- **श्याम शर्मा**

**भक्ति के रूप भारतीय कला में आध्यात्मिकता**

इसमें शर्मा की कृतियाँ अन्य कलाकारों के साथ साथ भक्ति वेदांत और वैदिक प्रतीकवाद की खोज में भी शामिल हैं। उनकी रिवर्स ग्लास पेंटिंग्स और प्रिंटमेकिंग को उनकी आध्यात्मिक गहराई पर टिप्पणी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

ज्योतिर्गमयः प्रकाश और मिट्टी की यात्रा

शर्मा की यह प्रदर्शनी सत्य, मोक्ष और तम जैसे वैदिक आदर्शों से प्रेरित है। इसमें निबंध या क्यूरेटोरियल शामिल हो सकते हैं।

वैदिक दर्शन की उनकी व्याख्या पर नोट्स।

लेख और साक्षात्कार

श्याम शर्माः कांच के कीमियागर

आर्ट इंडिया पत्रिका में प्रकाशित (अंक/तिथि भिन्न-भिन्न फोकस: उनकी रिवर्स ग्लास पेंटिंग तकनीक और वैदिक और तांत्रिक रूपांकनों सहित दार्शनिक प्रभावों पर चर्चा।

'**प्रिंटमेकर ऑफ दा स्क्रेड**'

- **अमित कल्ला**

जयपुर के एक बहुआयामी कवि और चित्रकार जिन्होंने अध्यात्म और चेतना को अमूर्त चित्रकला के माध्यम से व्यक्त किया है।

उनकी चित्रकला में बिंदु ध्वनि और नाद जैसे वैदिक प्रतिको का अमूर्त दर्शन होता है।

रेखाओं और रंगों के माध्यम से वृत सत्य धर्म जैसे वैदिक मूल्य उनकी कला में देखें जा सकते है। उनके कुछ लेखन होने ना होने से परे ' में अस्तित्व और अनअस्तित्व से जीवन की व्याख्या की गई है।

शब्द कहीं से अधिक में सृजन के वैदिक सिद्धांतों को अनुभव किया जा सकता है।

वोइत अमृत मैं जीवन के चक्र व सृजन से मौन की खोज को रूपांतरित किया है।

- **एस . एच. रज़ा**

उनके वेदान्तिक चरण को अक्सर उनके भूगर्भिक अमूर्तन काल या उनकी बिंदु श्रृंखला के रूप में संदर्भित किया जाता है।

| क्रमांक | चिन्ह | प्रयोग |
|---|---|---|
| १ | बिंदु | सृजन और ब्रह्मांडीय एकता का प्रतीक |
| २ | प्रकृति | स्त्री रचनात्मक ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करती है |
| ३ | पुरुष | आत्माद्ध . चेतना और स्थिरता को दर्शाता है |
| ४ | पंचतत्व श्रृंखला | पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश |
| ५ | अग्नि | परिवर्तन और दिव्य ऊर्जा का प्रतीक है |
| ६ | पृथ्वी | स्थिरता और भौतिक वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करती है |
| ७ | जल | तरलता और जीवन का प्रतीक है |
| ८ | कुण्डलिनी | आंतरिक जागृति और ऊर्जा प्रवाह का प्रतिनिधित्व करती है |

## उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य समकालीन कला में वैदिक युग की प्रेरणा को समझना और उसका विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है :

- वैदिक युग की कला, दर्शन और प्रतीकों का अध्ययन करना।
- यह समझना कि समकालीन कलाकार किस प्रकार वैदिक प्रतीकों; जैसे मंडल, बिंदु, अग्नि आदि, को अपनी कलाओं में पुनः प्रस्तुत करते हैं।
- आधुनिक कला में वैदिक विचारों का दार्शनिक और आध्यात्मिक महत्व पहचानना।
- वैदिक कला और आधुनिक अमूर्त कला के बीच समानताओं का अध्ययन करना।
- पश्चिमी विद्वानों का वैदिक ग्रंथों पर अध्ययन।

शोध पद्धति

- यह शोध गुणात्मक और व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है।
- साहित्यिक अध्ययन, आधुनिक साहित्यकारों और कलाकारों के लेखन तथा भाषणों का अध्ययन किया गया।
- कला विश्लेषण- एस.एच. रज़ा, अमित कल्ला, श्याम शर्मा, आदि कलाकारों की प्रमुख कलाकृतियों का दृश्य अध्ययन किया गया।
- द्वितीयक स्रोत : कला और वैदिक संस्कृति पर लिखी पुस्तकों,: शोधपत्रों ऑनलाइन स्रोतों और प्रदर्शनी रिपोर्ट्स का भी संदर्भ लिया गया।
- तुलनात्मक अध्ययन :वैदिक कला और आधुनिक कला के प्रतीक, विचार और उद्देश्य की तुलना की गई।
- किस प्रकार आधुनिक कलाकार प्राचीन प्रतीकों को नया परिचय देते हैं।

## विश्लेषण

वैदिक कला सौंदर्य और आध्यात्मिकता को एक साथ प्रस्तुत करती है। समकालीन कलाकारों के लिए यह केवल प्रेरणा नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन है। आधुनिक काल में भी वैदिक संस्कृति को कैसे समकालीन कलाकारों व साहित्यकारों ने जीवंत रखा।

## निष्कर्ष

यह शोध यह स्पष्ट करता है की वैदिक युग केवल ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य नहीं बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना है। समकालीन कलाकारों ने इस चेतना को आधुनिक सृजन के माध्यम से परिभाषित करा। इसका दर्शन, प्रतीक और विचार आज भी साहित्य और कला में नई व्याख्याओं के

रूप में जीवित हैं। धर्म, कर्म और मोक्ष के सिद्धांत आज भी विद्यमान हैं। इस शोध से प्रमाणित होता है की वैदिक काल केवल इतिहास नहीं बल्कि आज की कला की नींव है।

## सार

यह शोध पत्र यह दर्शाता है कि वैदिक विचार केवल सौंदर्य दर्शन के लिए ही संदर्भित नहीं है अपितु समकालीन साहित्य और कला में जीवंत संवाद का स्त्रोत है। बिंदु मंडल धर्म कर्म अग्नि सूर्य जैसे वैदिक मूल्य को किस तरह आधुनिक तौर पर चित्रकला व साहित्य के माध्यम से मूर्त व अमूर्त अभिव्यक्ति हो रही है।

## संदर्भ

१. रज़ा, एस.एच. (2010). *The Bindu Series*. नई दिल्ली: ललित कला अकादमी।
२. कल्ला, अमित. (2018). *Vedic Consciousness in Contemporary Art*. जयपुर आर्ट जर्नल।
३. पांडे, गोविंद चंद्र. (1980). *वैदिक संस्कृति का स्वरूप*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
४. त्रिपाठी, अमीश. (2011). *The Immortals of Meluha*. वेस्टलैंड।
५. The Vedas and Their Influence on Indian Art and Culture - Hindu Mythology
६. The Vedas and Their Connection to the Arts - Hindu Mythology
७. : Sanjeev Kumar Mishra May 2024, ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts THE ROLE OF VISUAL ARTS IN VEDIC AND UPANISHAD THOUGHT - A HISTORICAL ANALYSIS
८. Pattanaik, Devdutt. *My Gita*. Rupa Publications, 2015. ISBN: 9788129137708
९. Mehta, Naresh. *Purush*. Lokbharti Prakashan, 1960s Patnaik, Devdutt. (2013). *Indian Mythology and Symbols in Modern Context*. Penguin India.
१०. Raza Foundation. (2020). *Art and Spirituality in Indian Modernism*. नई दिल्ली।
११. Müller, F. Max. (1890). *The Sacred Books of the East*. Oxford University Press.
१२. Sharma, Shyam. (2015). *Vedic Imagery in Contemporary Indian Art*. वाराणसी: भारत कला अध्ययन संस्थान।
१३. Knight, Frances. (2017). *The Mandala Tradition and Global Consciousness*. Cambridge University Press

SAHITYAYAN
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

50

# "कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों का चित्रांकन"

**रवि प्रसाद कोली,**
शोधार्थी, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
**डॉ. जगदीश प्रसाद मीणा,**
सहायक आचार्य, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**सारांश**

भारतीय कला का इतिहास केवल रूप, रेखा और रंग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें शब्द और लिपि का भी गहन योगदान दिखाई देता है। कैलीग्राफी और शब्दों का प्रयोग कला को बहुस्तरीय अभिव्यक्ति प्रदान करता है, जहाँ दृश्य और भाषिक प्रतीक मिलकर नए अर्थों का निर्माण करते हैं। प्राचीन पांडुलिपियों से लेकर समकालीन इंस्टॉलेशन आर्ट तक, शब्दों ने भारतीय कला की संरचना और उसकी वैचारिकी को निरंतर प्रभावित किया है। जैन और बौद्ध पांडुलिपियों में पाठ और चित्र का संयोजन केवल धार्मिक वाचन का साधन न होकर ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव का दृश्य रूपांतरण था। मुगल काल में नस्तअलीक जैसी फ़ारसी कैलीग्राफी ने मिनिएचर पेंटिंग्स को साहित्यिक और धार्मिक गहराई प्रदान की। वहीं राजस्थान और पहाड़ी शैली की पांडुलिपियों में संस्कृत और ब्रजभाषा के श्लोकों ने चित्रकला को काव्यात्मकता और रसात्मकता से समृद्ध किया।

आधुनिक भारतीय कलाकारों ने इस परंपरा को नए संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया। एस.एच. रजा ने बीजाक्षर और मंत्रों को अपनी रचनाओं में आध्यात्मिक प्रतीकों के रूप में स्थापित किया, जबकि एम. एफ. हुसैन ने शब्दों को लोक और आधुनिक प्रतीकों के साथ जोड़कर सांस्कृतिक पहचान का नया विमर्श रचा। भूपेन खक्खर ने शब्दों और संवाद को सीधे चित्रों में शामिल कर कला को कथात्मक और सामाजिक आलोचना का मंच बनाया।

समकालीन दौर में जितेश कलाट, नलिनी मलानी और सुभोध गुप्ता जैसे कलाकारों ने शब्द और टेक्स्ट को मानवीय, वैचारिक और सभ्यतागत विमर्श का वाहक बनाया। उनके कार्यो में भाषा स्मृति, अस्मिता और प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में उभरती है।

अतः यह अध्ययन दर्शाता है कि भारतीय कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों का प्रयोग परंपरा से आधुनिकता तक केवल सजावटी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद और बहुस्तरीय अभिव्यक्ति का सक्रिय साधन रहा है।

**मुख्य शब्दः–** कैलीग्राफी, भारतीय कला, शब्द और चित्र, दृश्य भाषा, बीजाक्षर, बिंदु, प्रतीकवाद, साहित्यिक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक संवाद, आधुनिक भारतीय कलाकार, दृश्य संरचना, परंपरा और आधुनिकता, आध्यात्मिकता, भाषा और लिपि, बहुस्तरीय अभिव्यक्ति।

**भूमिका**

भारतीय कला का इतिहास केवल दृश्यात्मक सौंदर्य, रंग, रेखा और रूप तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह शब्द, भाषा और लिपि की सांस्कृतिक शक्ति से भी गहराई से जुड़ा रहा है। कला के विभिन्न रूपों जैसे चित्रकला, पांडुलिपि सज्जा, भित्तिचित्र, मंदिर शिल्प, और समकालीन इंस्टॉलेशन में शब्द और कैलीग्राफी ने विचार, भावना और अध्यात्म के वाहक के रूप में कार्य किया है। भारतीय संस्कृति में 'शब्द' स्वयं सृष्टि का मूल माना गया है 'वाक्' और 'नाद' दोनों ही सृजन के प्रतीक हैं। अतः भारतीय कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों का चित्रांकन केवल सजावटी प्रयोग नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक अभिव्यक्ति है।

यह शोध इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे शब्द और अक्षर दृश्य संरचना का हिस्सा बनकर अर्थों के नए स्तर निर्मित करते हैं। कैसे जैन–बौद्ध पांडुलिपियों की लिपियाँ, मुगलकालीन नस्तअलीक या आधुनिक कलाकारों के बीजाक्षर भारतीय कलात्मक परंपरा को निरंतर विस्तारित करते हैं।

### अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय कला में शब्द, लिपि और दृश्य रूप के पारस्परिक संबंध को समझना तथा यह विश्लेषण करना है कि कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों ने पारंपरिक से लेकर आधुनिक भारतीय कला तक किस प्रकार वैचारिक, सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति को प्रभावित किया है। इस शोध का लक्ष्य यह स्पष्ट करना है कि सुलेखन केवल लेखन की तकनीक नहीं, बल्कि भारतीय कला में एक दार्शनिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। अध्ययन के अंतर्गत जैन–बौद्ध पांडुलिपियों, मुगलकालीन मिनिएचर चित्रकला तथा आधुनिक कलाकारों जैसे एस.एच. रज़ा, एम.एफ. हुसैन, भूपेन खक्खर, नलिनी मलानी, जितेश कलाट और सुभोध गुप्ता के कार्यों में शब्द और लिपि के कलात्मक उपयोग का विश्लेषण किया गया है। इसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि शब्द और दृश्य के सम्मिलन से कैसे कला में अर्थ, रस, कथा, अस्मिता और सांस्कृतिक संवाद के नए आयाम विकसित होते हैं। यह परंपरा भारतीय कला में निरंतर परिवर्तित होते सामाजिक और वैचारिक संदर्भों में कैसे नए रूप ग्रहण करती रही है।

### परिकल्पना

इस शोध की परिकल्पना यह है कि भारतीय कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों का प्रयोग केवल सजावटी तत्व न होकर गहन सांस्कृतिक, दार्शनिक और वैचारिक अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। यह माना गया है कि शब्द और लिपि, जब दृश्य रूप में प्रस्तुत होते हैं, तो वे केवल भाषा का अर्थ नहीं देते बल्कि आध्यात्मिक अनुभव, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक संवाद के नए स्तर निर्मित करते हैं। जैन–बौद्ध पांडुलिपियों से लेकर आधुनिक कलाकारों जैसे एस.एच. रज़ा, एम.एफ. हुसैन, नलिनी मलानी और जितेश कलाट तक की कृतियों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है कि अक्षर, मंत्र, और साहित्यिक पाठ कला के भीतर एक जीवंत प्रतीकात्मक संरचना का निर्माण करते हैं। अतः यह परिकल्पना की जा सकती है कि भारतीय कला में कैलीग्राफी और शब्दों का चित्रांकन केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि परंपरा, अस्मिता और समकालीन विचारधारा के बीच संवाद का सेतु है, जो भारतीय कलात्मक चेतना की निरंतरता और विकास दोनों को अभिव्यक्त करता है।

### भारतीय कला में शब्द और लिपि का ऐतिहासिक विकास

भारतीय कला की आरंभिक परंपराओं में लिपि और लेखन की उपस्थिति धार्मिक और सांस्कृतिक दोनों ही स्तरों पर दिखाई देती है। जैन और बौद्ध पांडुलिपियाँ, जिनमें चित्र और पाठ का अद्भुत समन्वय देखा जाता है, केवल ग्रंथ नहीं बल्कि दृश्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन पांडुलिपियों में शब्द ज्ञान, धर्म और अध्यात्म के वाहक बनकर चित्रों के साथ संवाद स्थापित करते हैं।

*चित्र संख्या–1. पालकी में ले जाते हुए महावीर का चित्र, जैन मिनियेचर पेंटिंग*

*चित्र संख्या–2. पूजा करती एक भक्त (मुगल–पूर्व), मेवाड़, कागज पर गॉच, 21.2 X 16.64 सेमी.*

बौद्ध पांडुलिपियों में 'धर्मचक्र', 'मंडल' और 'सूत्र' जैसे प्रतीकों के साथ देवनागरी या पाली लिपि में लिखे पाठ दृश्य अनुभव का हिस्सा बनते थे। इसी प्रकार, जैन कल्पसूत्र पांडुलिपियाँ स्वर्ण, गेरुए और नीले रंगों से सुसज्जित होती थीं, जिनमें शब्द और चित्र एक ही सतह पर सह–अस्तित्व रखते थे।

मुगल काल में कैलीग्राफी ने एक स्वतंत्र कला रूप के रूप में विकास किया। 'नस्तअलीक' और 'कूफिक' जैसी फारसी शैलियों को इस्लामी सौंदर्यशास्त्र के साथ जोड़ा गया। बाबर, हुमायूँ और अकबर के दरबारों में अनेक कैलीग्राफर नियुक्त थे। अकबरकालीन चित्रकारों ने जब मिनिएचर पेंटिंग में शायरी और आयतों को जोड़ा, तब दृश्य और भाषिक प्रतीकों का सुंदर संलयन हुआ।

राजस्थान और पहाड़ी चित्रकला में भी संस्कृत और ब्रजभाषा के श्लोक चित्रों के नीचे या किनारों पर अंकित किए जाते थे। इस प्रकार, शब्द चित्र के भीतर रसात्मक गहराई और काव्यात्मकता जोड़ते थे।

### कैलीग्राफीः कला, सौंदर्य और सांस्कृतिक प्रतीकवाद

कैलीग्राफी केवल सुलेखन नहीं है, यह शब्द और रूप के संवाद की कला है। भारतीय सौंदर्यशास्त्र में 'रूप' और 'शब्द' दोनों मिलकर 'रस' का निर्माण करते हैं। इसीलिए, लिपि की बनावट, अक्षर की गति और रेखा की लय– All embody a visual rhythm that transforms writing into painting.

इस्लामी कला में कैलीग्राफी ईश्वर के नाम और शास्त्रीय ग्रंथों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। अरबी या फारसी अक्षरों की गोलाई और प्रवाह ने आध्यात्मिक अर्थों को आकार दिया। भारतीय संदर्भ में, यह कैलीग्राफी मुगलकालीन मिनिएचर चित्रों, दरबार के पांडुलिपियों और स्थापत्य पर उकेरे गए शिलालेखों में देखने को मिलती है।

देवनागरी लिपि की कैलीग्राफी ने आधुनिक भारतीय कलाकारों को प्रेरित किया। अक्षर स्वयं एक प्रतीक बन गया 'अ' सृष्टि का आरंभ, 'ओम्' ब्रह्म का प्रतीक। इस प्रकार शब्द दृश्य और दार्शनिक दोनों स्तरों पर कला का तत्व बन गया।

### साहित्यिक शब्दों का दृश्यात्मक चित्रांकनः परंपरा से आधुनिकता तक

भारतीय चित्रकला में शब्दों का प्रयोग केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि अर्थ–निर्माण का साधन रहा है। उदाहरण के लिएः– राजस्थान की पांडुलिपियों में श्लोक दृश्य कथा का संदर्भ देते हैं, जिससे दर्शक चित्र को पाठ के साथ जोड़कर अर्थ निकालता है। मुगल मिनिएचर में कविताएँ या आयतें चित्र को आध्यात्मिक या रोमांटिक अर्थ देती हैं। आधुनिक युग में जब भारतीय कलाकारों ने पश्चिमी कला आंदोलनों से संवाद स्थापित किया, तब शब्दों का प्रयोग नया रूप लेने लगा। एस.एच. रजा, एम.एफ. हुसैन और भूपेन खक्खर जैसे कलाकारों ने अक्षरों को प्रतीक, कथा और विचार का हिस्सा बनाया।

### प्रमुख कलाकारों का तुलनात्मक विश्लेषण

#### एस.एच रजा

रजा ने बीजाक्षर और मंत्र को अपनी कला का केंद्र बनाया। उनकी रचनाओं में 'ॐ', 'बिंदु' और 'बीज' दृश्य प्रतीक हैं जो सृष्टि और चेतना का बोध कराते हैं। शब्द यहाँ ध्वनि से रूप में बदल जाता है। शब्द यहाँ ध्वनि से रूप में बदल जाता है। ''मध्यप्रदेश के बरबरिया नामक स्थान पर 1922 ई.

में जन्मे रजा का बचपन नर्मदा और जंगलों की सानिध्य में बीता, जहाँ प्रकृति और मौन उनके आंतरिक अनुभव का आधार बने। उनके शिक्षकों ने उन्हें सिखाया था कि चित्र बनाने से पहले मन को पूरी तरह स्थिर करना आवश्यक है, क्योंकि 'इसी बिंदु से ही सारे चिंतन का आरंभ होता है' यही विचार आगे चलकर उनकी कला का मूल दर्शन बना।''[प] उनकी पेंटिंग 'बिंदु' (1980) में यह स्थिरता, ध्यान और सृष्टि–बोध दृश्य रूप में प्रकट होता है। यही कारण है कि 'बिंदु' श्रृंखला ने उन्हें विशिष्ट पहचान और प्रतिष्ठा दिलाई। उनके पिता की शायरी–प्रियता और भाषिक संवेदनशीलता ने भी शब्द और प्रतीक के प्रति उनकी गहरी रुचि को आकार दिया, जिससे उनकी रचनाओं में ध्वनि, शब्द और दृश्य का अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित हुआ।

''सन् 1952 में उनके चित्रों की फ्रांस में प्रदर्शनी आयोजित हुई तो कला–विशेषज्ञ जेकस लेसिन ने रजा के चित्रों के बारे में इस प्रकार कहा था– 'वे अद्‌भुत थीं, सूर्य किरणों से स्निग्ध हुए समयातीत दृश्यचित्र धरती स उपेक्षित नगरी के थे। सैयद हैदर रजा ने इनमें रात और दिन की भिन्नता को व्यक्त करने का प्रयास किया है। उनके चित्रों में आकार और रंगों का सूक्ष्मवादी ढंग से आयोजन किया गया है। उनको रंगवादी कलाकार कहना उपयुक्त होगा। उनकी कृतियों में जंगल की 'अग्नि' से सम्बन्धित चित्र विशेष प्रभावपूर्ण हैं। 'लैम्प और लकड़ी के बीच' उनकी प्रसिद्ध चित्र रचना रही है।''[ii]

## एम.एफ. हुसैन

हुसैन ने शब्दों और प्रतीकों को मिलाकर भारतीय पहचान का नया विमर्श रचा। वे मिथकीय और आधुनिक संदर्भों को जोड़ते हैं जैसे ''मदर टैरेसा श्रृंखला'' में उन्होंने ईसाई शब्दावली और भारतीय प्रतीकों का सम्मिलन किया। हुसैन के कार्यों में शब्द सांस्कृतिक संवाद का माध्यम हैं।

''उन्होंने अपनी कला में सामाजिक विषमता और मनुष्य की जटिलताओं को प्रतीकात्मक रूपाकारों, घोड़ों तथा पौराणिक संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया। उनके सौंदर्यशास्त्रीय विचारों में भाषा, रूप और रंग एक–दूसरे के पूरक रूप में उभरते हैं, जहाँ प्रत्येक आकृति एक कथन की तरह अर्थ निर्माण करती है। 'रामायण' और 'महाभारत' श्रृंखलाओं में उन्होंने साहित्यिक आख्यानों को दृश्य रूपकों में परिवर्तित कर भारतीय संस्कृति की गहराई को आधुनिक संवेदनाओं के साथ जोड़ा। उनके कार्यों की चित्रभाषा में अमूर्तन और यथार्थ का संयोजन है, जो शब्दों की तरह बहुअर्थी और संवादात्मक प्रतीत होती है। इस प्रकार, हुसैन की कला में दृश्य संरचना स्वयं एक जीवंत भाषा बन जाती है, जो भारतीय कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों की परंपरा को समकालीन रूप में पुनर्परिभाषित करती है।''[iii]

*चित्र संख्या–3. स्प्लेश फ्रंट पेज, (समाचारपत्र पर स्याही) एम. एफ. हुसैन*

उनकी कृति **स्प्लेश फ्रंट पेज, (समाचारपत्र पर स्याही)** एम. एफ. हुसैन की सामाजिक चेतना और प्रतीकात्मक दृष्टि का सशक्त उदाहरण है। इसमें कलाकार ने Times of India के शीर्षक War Ends को आधार बनाकर युद्ध के अंत के समाचार को ही एक दृश्य रूपक में परिवर्तित कर दिया है। अखबार के फटे हिस्सों और स्याही के छींटों के माध्यम से उन्होंने युद्ध की त्रासदी, मानवीय पीड़ा और मीडिया की संवेदनहीनता पर प्रश्न उठाया है। नीचे दर्शाई स्त्री आकृति, झंडा लिए, सहिष्णुता और पुनर्निर्माण का प्रतीक बनती है। यह रचना दिखाती है कि हुसैन के लिए शब्द, शीर्षक और चित्र सभी अभिव्यक्ति के सक्रिय तत्व हैं, जो मिलकर समाज के अंतर्विरोधों का कैलीग्राफिक दृश्य संवाद रचते हैं।

## भूपेन खक्खर

''भूपेन खक्कर ने मानवीय भावनाओं तथा एक दूसरों के सम्बन्धों को स्वयं की सोच के अनुरूप चित्रित किया और यही आपके चित्रों की मुख्य विषयवस्तु सदैव रही। साधारण लोग, प्रत्येक दिन की स्थितियाँ, कंघे से अपने बाल बनाता पुरुष, कमीज पहनते हुए, मछली साफ करते हुए, अपनी बालकनी से सुरक्षापूर्ण तरीके से भीड़ को देखते आदि

दृश्यों को अपने विशिष्ट रुक्ष नीले, हरे व गुलाबी रंगों में चित्रित किया। दैनिक जीवन के प्रतीत होने वाले इन विषयों में किंचित व्यंग्योक्ति, बुद्धिचातुर्य तथा समलैंगिता परिलक्षित होती है। भूपेन ने कुछ कथाओं को भी चित्रित किया जो सामान्यतः वर्ग व समाज पर कटाक्ष करती हैं। समकालीन समाज के विविध रूपव्यंजक से चित्र वर्णनात्मक हैं। इनमें प्रयुक्त दृश्यचित्रण, अग्रभूमि, पृठभूमि, लोग तथा स्थान सभी शक्तियुक्त व रहस्यात्मक हैं। भूपेन ने लोकप्रिय छपे हुये चित्रों व कलैण्डरों का प्रयोग अपने चित्रों में किया। आकृतियों को काटकर मुख्य अभिप्राय के आस–पास चिपका कर लाल इनामेल रंग से पृष्ठभूमि में रंग भर देते थे जिसमें कहीं कहीं बहकर रंग चिपकाये चित्रों पर आ जाता था।''[iv]

खक्कर कहते थे– **''मैं अभिव्यक्तिवादी शैली में रुचि रखता था, जिसमें हास्य और व्यंग्य नहीं था। अब मैं अधिक हास्य से जुड़ा हूँ और अपने परिवेश को चित्रित करता हूँ।''**[v]

उन्होंने शब्दों और संवाद को सीधे चित्र में शामिल किया। उनकी पेंटिंग You Can't Please All में भाषा कथा का हिस्सा बन जाती है। वे कला को सामाजिक आलोचना का मंच बनाते हैं।

## ज्योति भट्ट

ज्योति भट्ट आधुनिक भारतीय कला के उन अग्रणी कलाकारों में से हैं जिन्होंने लोक कला, लिपि और साहित्यिक शब्दों को अपनी चित्र शैली में एक साथ समाहित किया। उन्होंने गुजराती, देवनागरी और प्रतीकात्मक लिपियों का प्रयोग करके अपनी रचनाओं में सांस्कृतिक स्मृति और भाषिक सौंदर्य को उभारा। उनके कार्यों में लोककथाओं, सूक्तियों और लोकगीतों के अंश दृश्य संरचना का हिस्सा बनकर चित्र को कथात्मकता प्रदान करते हैं। भट्ट ने Text as Form की अवधारणा को भारतीय सन्दर्भ में नया अर्थ दिया, जहाँ शब्द स्वयं चित्र का रूप बन जाता है। इस प्रकार, उन्होंने शब्द, प्रतीक और लोकसंस्कृति को आधुनिक भारतीय कला में एक सृजनात्मक संवाद के रूप में स्थापित किया।

''ज्योति भट्ट का जन्म 12 मार्च 1934 को भावनगर, गुजरात में हुआ था। वो बचपन से ही विविध पक्षी–प्रजातियों के रूप से मोहित हुए तथा किशोरावस्था की उम्र के दौरान ज्योति भट्ट ने कलागुरू रविशंकर रावल द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'कुमार' पढ़ने की आदत विकसित की जो उनकी कला सृजन में रूचि को विकसित करने के लिए प्रेरक शक्ति रही।''[vi]

ज्योति भट्ट ने एम.एस. विश्वविद्यालय, बडौदा से 1954–56 ई. में चित्रकला में पोस्ट डिप्लोमा प्राप्त किया, जहाँ प्रो. एन.एस. बेन्द्रे, प्रो.के.जी. सुब्रहमण्यम तथा मार्कण्य भट्ट एवं शंखो चौधरी जैसे महान कला शिक्षको से कला के क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। ''सन् 1955–61 के दौरान कला सहयोगियों में से एक कलाकार, कला समीक्षक एवं गुजराती कवि श्री गुलाम मोहम्मद शेख के साहित्यिक प्रकाशनों में कवर पेज और चित्र तैयार करने का अवसर मिला था। इसी के साथ उन्हें लेखन कार्य करने का अवसर भी मिला। उनके द्वारा लिखे गये लेख 'कुमार' नामक मासिक पत्रिका में अक्सर प्रकाशित होते रहे है। सन 1961–62 छात्रवृत्ति मिलने के उपरान्त ग्राफिक कला में उच्च अध्ययन के लिए वो इटली चले गए, तत्पश्चात 1964–65 में फुलब्राइट स्कॉलरशिप के अंतर्गत न्ययॉर्क चले गये गए।''[vii]

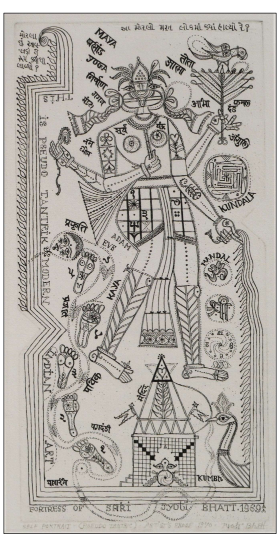

*चित्र संख्या–4. **Self Portrait**, 1970, ज्योति भट्ट*

यह रचना **Self Portrait (Pseudo Tantric)**, 1970 ज्योति भट्ट की उन विशिष्ट कृतियों में से है जिनमें कलाकार ने लिपि, प्रतीक और आध्यात्मिक चिन्हों को समन्वित कर आत्म–अन्वेषण की दृश्य भाषा रची है। इसमें उन्होंने देवनागरी, अंग्रेजी और प्रतीकात्मक आकृतियों को सम्मिलित करते हुए एक तांत्रिक मंडलनुमा संरचना विकसित की है जो

व्यक्ति, समाज और अध्यात्म के संबंधों को उद्घाटित करती है। यह कृति दिखाती है कि भट्ट के लिए शब्द केवल अर्थ नहीं बल्कि सांस्कृतिक पहचान और आत्मचेतना का रूपक हैं।

### सुभोध गुप्ता

उनकी कला में भाषा और वस्तुएँ (Objects) दोनों मिलकर उपभोक्तावादी समाज और भारतीय जीवनशैली का व्यंग्य करती हैं। वे कभी–कभी अंग्रेजी और हिंदी शब्दों को मिश्रित रूप में इस्तेमाल करते हैं ताकि 'ग्लोबल इंडियन' की पहचान को रेखांकित किया जा सके।

''आम भारतीय मध्यवर्गीय जीवन में रसोई के बर्तनों को सुबोध ने कला के एक बड़े अनुभव में बदल दिया है। एक जमाने में उन्होंने अपनी एक कविता 'इच्छा' में लोटे को आम भारतीय जीवन के गहरे और मार्मिक प्रतीक के रूप में देखा। 1979 में दिल्ली की धूमीमल गैलरी में जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों की एक प्रदर्शनी में कविता पाठ का भी कार्यक्रम था। उसमें उन्होंने पहली बार 'इच्छा' को वहीं पढ़ा था। बाद में ग्लास, कढ़ाई, कटोरे सरीखी चीजों में जीवन का एक बड़ा रूपक नजर आने लगा। कवि के रूप में आप अलग–अलग बर्तनों की एक श्रृंखला लिखेंगे तो अभिव्यक्ति कुंद होने लगेगी। एक कलाकार का कैनवास ज्यादा बड़ा है। वह अभिव्यक्ति की इस सीमा से निर्देशित नहीं है। इसीलिए सुबोध ने बर्तनों की 'स्टेनलेस स्टील दुनिया की चमक' में एक अलग तरह के सपने और यथार्थ को देखा है।''[अपपप]

### नलिनी मलानी

उनकी कृतियाँ स्त्री–अस्मिता और स्मृति की अभिव्यक्ति हैं। वे अक्सर टेक्स्ट, वीडियो और इंस्टॉलेशन के माध्यम से कविता और चित्र को एक साथ प्रस्तुत करती हैं। In Search of Vanished Blood (2012) में शब्द नारी प्रतिरोध का प्रतीक बनते हैं।

### जितेश कलाट

कलाट ने शब्दों को शहर, भाषा और स्मृति के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया। उनके कार्यों में Urban Calligraphy दिखाई देती है, जहाँ शब्द ग्राफिक रूपों में बदल जाते हैं।

### समकालीन भारतीय कला में शब्द और कैलीग्राफी का विमर्श

21वीं सदी की भारतीय कला में Text as Image और Image as Text की अवधारणा प्रमुख है। समकालीन कलाकारों ने शब्दों को न केवल अर्थ का बल्कि राजनीतिक, सांस्कृतिक और अस्मितामूलक विमर्श का माध्यम बनाया है।

कैलीग्राफी अब 'सुलेखन' से आगे बढ़कर 'सांस्कृतिक पहचान' का उपकरण बन गई है। डिजिटल और इंस्टॉलेशन आर्ट में टाइपोग्राफी, स्क्रिप्ट और भाषा प्रयोग का विस्तार हुआ है। उदाहरणतः– भूपेन खक्खर के बाद कई कलाकारों ने हिंग्लिश शब्दावली का प्रयोग किया। रजा और कलाट की परंपरा में आज कई कलाकार देवनागरी लिपि को आधुनिक रूपों में पुनः प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भाषा और लिपि भारतीय कला के भीतर निहित 'सांस्कृतिक स्मृति' का पुनरुत्थान करती हैं।

### भविष्य में अध्ययन के लिए सुझाव

भविष्य में इस विषय पर और गहन अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय कला में कैलीग्राफी और शब्दों के प्रयोग को केवल पारंपरिक दृष्टि से नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक, तकनीकी और वैश्विक संदर्भों में भी विश्लेषित किया जाए। डिजिटल युग में जब टाइपोग्राफी, वर्चुअल

इंस्टॉलेशन और मल्टीमीडिया आर्ट नए रूपों में उभर रहे हैं, तब यह अध्ययन किया जा सकता है कि शब्द और लिपि अब कैसे वर्चुअल दृश्य–संरचनाओं में सांस्कृतिक पहचान का माध्यम बन रहे हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय भाषाओं के साथ–साथ विदेशी भाषाओं में कार्य करने वाले कलाकारों की तुलनात्मक समीक्षा भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है, जिससे यह समझा जा सके कि भाषा, लिपि और दृश्य संस्कृति के संबंध में वैश्विक कला परिदृश्य में भारत की स्थिति क्या है। भविष्य में अनुसंधान इस दिशा में भी हो सकता है कि शब्द और चित्र के अंतर्संबंध को मनोवैज्ञानिक, नारीवादी, उपनिवेशोत्तर और सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से पुनर्परिभाषित किया जाए, ताकि कला में अभिव्यक्ति के नए विमर्श और अर्थ–संभावनाएँ उजागर हों।

## निष्कर्ष

भारतीय कला में कैलीग्राफी और साहित्यिक शब्दों का चित्रांकन केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं है, बल्कि वह विचार, संस्कृति और अस्मिता का जीवंत प्रतीक है। पांडुलिपियों से लेकर डिजिटल इंस्टॉलेशन तक, शब्दों ने दृश्य अनुभव को नया अर्थ प्रदान किया है।

जैन–बौद्ध परंपरा में जहाँ शब्द अध्यात्म का माध्यम था, वहीं आधुनिक कला में वह सांस्कृतिक प्रतिरोध और पहचान की खोज का उपकरण बन गया। एस.एच. रजा ने 'बीजाक्षर' के माध्यम से आत्मचेतना की खोज की, जबकि जितेश कलाट ने शहरी जीवन की भाषा को कलात्मक प्रतीक में बदला। इस प्रकार, भारतीय कला में शब्द और लिपि का प्रयोग एक जीवित संवाद है, जो परंपरा, धर्म, साहित्य, और आधुनिकता को एक सूत्र में बाँधता है।

## संदर्भ सूचीः–

1. दत्त, अजित कुमार, साहचर्य, सम्पादक– पीयूस दईया, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या–84.
2. वर्मा, अविनाश बहादुर, भारतीय चिकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 12वां संस्करण, 2021, पृष्ठ संख्या–305.
3. मागो, प्राण नाथ, भारत की समकालीन कला – एक परिप्रेक्ष्य, (अनुवाद : सौमित्र मोहन), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, 2021, पृष्ठ संख्या–148.–149.
4. चतुर्वेदी, ममता, समकालीन भारतीय कला, 7वाँ संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016, पृष्ठ संख्या–129.
5. Setty C.S. Krishna, 1st Print Biennale India-2018, Lalit Kala Akademi, Ramakrishna Vedala, New Delhi, 2018, Page No. 201.
6. दरजी, सुनिल, ज्योति भट्टः बुनी हुयी संस्कृति से परे, समकालीन कला पत्रिका, अंक–51,
7. सम्पादक डॉ. अवधेश मिश्र, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ संख्या–82.
8. कुमार, डॉ. सुनील, भारतीय छापाचित्र कला, आदि से आधुनिक काल तक, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृष्ठ संख्या–83.
9. भारद्वाज, विनोद, बृहद आधुनिक कला कोश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ संख्या–229.

**SAHITYAYAN**
P-ISSN: 3117-5287, E-ISSN: 3117-5295
Fine Arts Special Issue : 01.1, 2025

# पुस्तक समीक्षा – 1

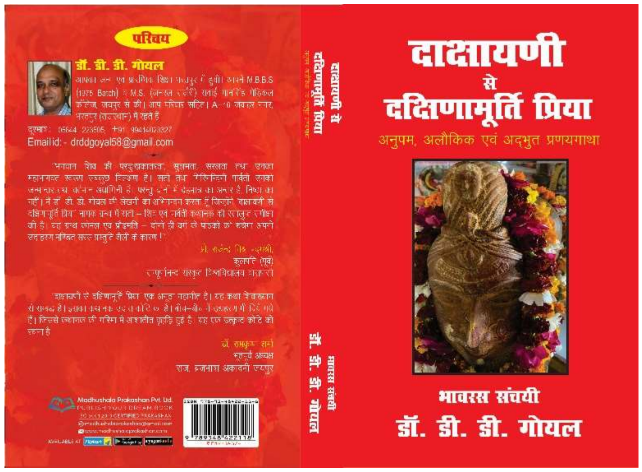


पुस्तक शीर्षक: दाक्षायणी से दक्षिणामूर्ति प्रिया (अनुपम, अलौकिक एवं अद्भुत प्रणय गाथा)
लेखक: डॉ. डी. डी. गोयल
प्रकाशक: मधुशाला प्रकाशन प्रा. लि., भरतपुर
पृष्ठ: 383 | वर्ष: 2025 | विधा: गद्य एवं चौपाई

डॉ. डी. डी. गोयल कृत दाक्षायणी से दक्षिणामूर्ति प्रिया शिव-सती-पार्वती की अलौकिक प्रेमगाथा का भावसमृद्ध, सरस और साहित्यिक पुनर्पाठ है, जो श्रीरामचरितमानस (बालकाण्ड) के शिव-सती प्रसंग को केंद्र में रखकर 18 सुव्यवस्थित अध्यायों में विस्तृत है। मूल कथा-तंतु गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित श्रीरामचरितमानस से अक्षरशः ग्रहण किया गया है, किन्तु लेखक ने इसके भावार्थ, भावरस विस्तार और मौलिक विवेचन द्वारा इसे सहृदय पाठक के लिए अत्यंत सहज, सुगम और रससिक्त रूप में प्रस्तुत किया है।

पुस्तक का आरंभ मंगलाचरण से होता है और क्रमशः शिव-सती का कुंभज ऋषि के पास जाना, सती के अंतर्मन में उठते संशय, श्रीराम की परीक्षा, शिवजी द्वारा सती का परित्याग, सती का पश्चाताप, पितृगृह गमन, योगाग्नि समर्पण, पार्वती जन्म, नारदोपदेश, कठोर तपस्या, सप्तर्षि संवाद, तारकासुर वध हेतु शिव-पार्वती विवाह की कथा और षण्मुख जन्म तक की पूरी आध्यात्मिक यात्रा को अविरल धारा की भाँति बहाया गया है। प्रत्येक अध्याय में लेखक ने मानस के दोहे, चौपाइयाँ, छंद व सोरठों को उद्धृत कर उनका भाव-साम्य और गूढ़ार्थ स्पष्ट किया है, जिससे कथा का प्रवाह अखंडित एवं रोचक बना रहता है।

डॉ. गोयल, जो पेशे से वरिष्ठ चिकित्सक हैं, ने इस कृति में चिकित्सक-मन की सूक्ष्म दृष्टि और साहित्यिक हृदय की कोमलता, दोनों का सुंदर संगम प्रस्तुत किया है। उन्होंने मानस-सागर की गहराइयों में उतरकर भाव-मोती चुने हैं और उन्हें सुविचारित शब्दमाला में पिरोया है। उनके भावरस विस्तार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—पुरुषार्थ चतुष्ट्य—का संतुलित समन्वय दृष्टिगोचर होता है। कथा केवल पौराणिक पुनर्कथन नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और भक्ति-भावनाओं की गहन व्याख्या भी है।

पुस्तक का कलेवर विशेष आकर्षक है। इसमें 2 रंगीन चित्र, 3 फोटोग्राफ तथा डॉ. रमेश चंद मीणा द्वारा सृजित 15 विषयानुकूल रेखाचित्र सम्मिलित हैं, जो कथा की सौंदर्याभिवृद्धि के साथ उसके भावबोध को भी सहज बनाते हैं। प्रस्तुत स्वेत-श्याम रेखाचित्र, पाठक को केवल पढ़ने ही नहीं, अपितु देखने-सुनने जैसा अनुभव भी कराते हैं।
भाषा में साहित्यिक गरिमा और धार्मिक ग्रंथों की गंभीरता दोनों का संतुलन है। शैली में गद्य और पद्य का समन्वित रूप, मानस की भावभूमि के अनुरूप, एक सजीव वातावरण निर्मित करता है। व्याख्या में कहीं भी दुरूहता या कृत्रिमता नहीं आती, जिससे सामान्य पाठक भी सहजता से कथा का आनंद ले सकता है, जबकि विद्वान पाठक इसके गूढ़ार्थ में निहित आध्यात्मिक स्फुरण का आस्वादन कर सकता है।

वर्तमान समय में, जब पौराणिक ग्रंथों का अध्ययन नई पीढ़ी में कम हो रहा है, यह पुस्तक शिव-सती-पार्वती के प्रसंग को भावात्मक, सांस्कृतिक और दार्शनिक संदर्भों सहित पुनः जीवंत करती है। यह केवल भक्ति-पाठ नहीं, बल्कि आदर्श नारी-पुरुष संबंध, त्याग, तप, निष्ठा और मोक्ष के मार्ग का भी सुंदर मार्गदर्शन है।

समग्रतः दाक्षायणी से दक्षिणामूर्ति प्रिया एक अनुपम, अलौकिक और अद्भुत प्रणय गाथा है, जो धार्मिक साहित्य, मानस-रसिकता और सांस्कृतिक चेतना में रुचि रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए संग्रहणीय एवं पठनीय है। यह कृति न केवल मानस के एक प्रसंग का पुनर्लेखन है, बल्कि दाक्षायणी से पार्वती, और पार्वती से शिवप्रिया बनने की अमर कथा की- एक भाव यात्रा हैं।

द्वारा:
कलाकार, समीक्षक एवं सौन्दर्यविद
**डॉ. रमेश चन्द मीणा**
सहायक आचार्य- चित्रकला
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा
मो. न.- 9816083135

## पुस्तक समीक्षा- 2

# "राग कसूमल कला के सत्य के साथ समय के विरूद्ध शांत प्रतिरोध"

पुस्तक शीर्षक- राग कसूमल
लेखक- डॉ. रमेश चंद मीणा
विधा- उपन्यास
वर्ष- 2026
प्रकाशक- वेरा प्रकाशन, जयपुर
मूल्य- ₹ 250

'राग कसूमल' इतिहास का पुनर्पाठ नहीं, इतिहास से थकी हुई मनुष्यता की अंतर्ध्वनि है। यह उपन्यास सत्ता और समय के बीच पिसते मनुष्य को शब्द नहीं, सुर देता है। यहाँ कथा आगे नहीं बढ़ती- वह ठहरती है, और उसी ठहराव में अर्थ जन्म लेता है।

उपन्यास का दर्शन भारतीय चिंतन की उसी धारा में है जहाँ भोग नहीं,बोध लक्ष्य है। प्रेम यहाँ अधिकार नहीं, उत्तरदायित्व है। और स्त्री- केवल पात्र नहीं, वह नैतिक चेतना की वाहक है जो कला को पतन से बचाती है।

राग कसूमल यह भी कहता है कि जब कला प्रदर्शन बनती है तो खोखली हो जाती है, और जब साधना बनती है तो मौन में भी अर्थ रचती है।

यह उपन्यास तेज़ समय के विरुद्ध एक शांत प्रतिरोध है- जो पाठक से कहता है ! धीमे चलो, भीतर सुनो, यहीं सत्य है।

उपन्यास की भाषा सधी हुई, रागात्मक और संकेतप्रधान है। कम शब्दों में गहरी अनुभूति व्यक्त करती है; मौन और विराम भी अर्थ रचते हैं।

सहृदय पाठक: इसे जल्दबाज़ी में न पढ़ें। इतिहास से अधिक संवेदना पर ध्यान दें। यह कृति मनोरंजन नहीं, आत्मिक संवाद चाहती है।

समीक्षक
प्रो. (डॉ.) राजेश्वरी मीना
आचार्य- दर्शनशास्त्र
महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
भरतपुर (राजस्थान)

# पुस्तक लोकार्पण

## विश्व पुस्तक मेला, नई दिल्ली में डॉ. रमेश चन्द मीणा कृत 'राग कसूमल' का विमोचन

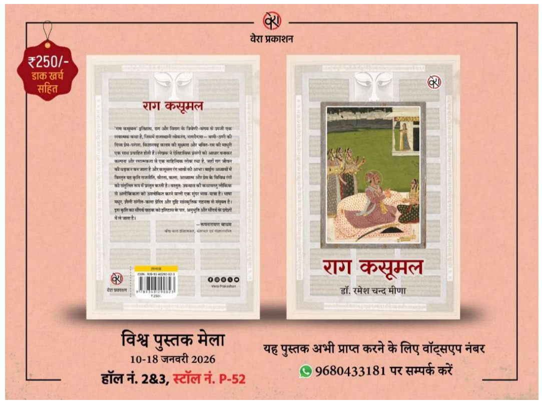


विश्व पुस्तक मेला, नई दिल्ली (10 से 18 जनवरी 2026) के दौरान भोपान की ढाणी, बसवा (दौसा) निवासी तथा राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा में सहायक आचार्य (चित्रकला) डॉ. रमेश चन्द मीणा के उपन्यास 'राग कसूमल' का वरिष्ठ लेखक एवं पत्रकार रामशरण जोशी, वरिष्ठ साहित्यकार फ़ारुख आफ़रीदी, डॉ. अशोक कुमार शर्मा (प्राचार्य - राजकीय महाविद्यालय नदबई) एवं प्रो. बाबूलाल मीणा (दिल्ली विश्वविद्यालय) ने विमोचन किया। वेरा प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित यह कृति उपन्यास विधा में लिखी गई है।

'राग कसूमल' इतिहास, राग और विराग के त्रिवेणी-संगम से उपजी एक लयात्मक कथा है, जिसमें राजस्थानी लोकरंग, नागरीदास (सावंत सिंह) –बणी-ठणी की दिव्य प्रेम-परंपरा, किशनगढ़ कलम की सूक्ष्मता तथा भक्ति-रस की माधुरी का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। लेखक ने ऐतिहासिक प्रसंगों को आधार बनाकर कल्पना और रसात्मकता से एक ऐसा साहित्यिक लोक रचा है, जहाँ राग जीवन की धड़कन बन जाता है और कसूमल रंग भावों की आभा।

बाईस अध्यायों में विस्तृत यह उपन्यास राजनीति, वीरता, कला, आध्यात्म और प्रेम के विविध पक्षों को संतुलित रूप में प्रस्तुत करता है। इसकी भाषा मधुर, शैली संगीत-कला से प्रेरित और दृष्टि गहरी सांस्कृतिक चेतना से संपृक्त है। पुस्तक विमोचन अवसर पर साहित्यप्रेमियों में विशेष उत्साह रहा। आशा व्यक्त की गई कि 'राग कसूमल' अपनी नव महक से रसिक पाठकों को आ  कर्षित करेगा और हिंदी साहित्य जगत में विशिष्ट पहचान बनाएगा।

# Author Guidelines

All manuscripts must be submitted in electronic format via email to sahityayanjournal@gmail.com

The manuscript must be submitted as an email attachment.

The language of the manuscript should be English or Hindi.

Authors must ensure that their manuscripts are original, unpublished, and free from any form of plagiarism. Submissions found to contain plagiarized material will be rejected immediately.

A Covering Letter (incorporating the Abstract, Consent for uploading the publication on the website and for indexation in academic databases, Declaration that the manuscript is the author's original work and has not been published elsewhere, Undertaking to abide by the "Guidelines for Authors", Scholar's Bionote, and Contact details including address, email, and mobile number) should be signed, scanned, and submitted as a second attachment.

**Text Formatting:**

The submitted manuscript must be in Microsoft Word or PDF format.

For English Content: Font – Times New Roman; Font Size – 12 pt; Line Spacing – 1.5.

For Hindi Content: Font – Mangal; Font Size – 14 pt; Line Spacing – 1.5.

**Guidelines for the Content:**

The submitted file should include the following:

Author Details: Name, Designation, Institutional Affiliation, Email ID, and Contact Number.

Abstract: 150–200 words.

Article: 2000–2500 words (including References).

Book Review: 1000–1500 words.

**For citations and references:**

Articles in Humanities and Literature must follow the MLA Handbook (9th Edition).

Articles in Social Sciences and Education must follow the APA (latest edition) guidelines.

All tables, diagrams, drawings, maps, or images should be included within the text and not submitted separately.

Proper acknowledgment of all sources and contributors must be given. Authors should cite all publications and works that have influenced their research.

All sources of financial support for the study or research should be disclosed at the end of the manuscript.

If the manuscript includes any picture(s), image(s), diagram(s), sketch(es), or map(s), their sources must be acknowledged, and necessary permissions from copyright holders must be obtained and mentioned in the references section.

**Submission Preparation Checklist:**
All submissions must meet the following requirements.

This submission meets the requirements outlined in the Author Guidelines.
This submission has not been previously published, nor is it before another journal for consideration.
All references have been checked for accuracy and completeness.
All tables and figures have been numbered and labeled.
Permission has been obtained to publish all photos, datasets and other material provided with this submission.

Articles
Section default policy
Privacy Statement
The names and email addresses entered in this journal site will be used exclusively for the stated purposes of this journal and will not be made available for any other purpose or to any other party.